TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180339

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Access.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

अमरबेल

(उपन्यास)

वृन्दावनलाल वर्मा

(लेखक—मृगनयनी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कचनार, हंस-मयूर, टूटे कांटे, मुसाहिबजू, लगन, विराटा की पद्मिनी, अचल मेरा कोई, प्रेम की भेंट, माधव जी सिंधिया, गढ़ कुंडार, पूर्व की ओर इत्यादि)

सर्वोदय साहित्य मन्दिर,
हुसैनी अलम रोड, हैदराबाद (द.) नं. २
मयूर प्रकाशन,
झाँसी • दिल्ली • ग्वालियर • जबलपुर

प्रकाशक:—
सत्यदेव वर्मा बी. ए., एल-एल बी.
मयूर-प्रकाशन, झांसी।

प्रथम संस्करण-१९५३

अनुवाद, पुनर्मुद्रण आदि के सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन हैं
और चित्रपट निर्माण सम्बन्धी अधिकार लेखक को है।

मूल्य ५)

मुद्रक:—
दुर्गाप्रसाद सिद्ध
स्वाधीन प्रेस, झाँसी।

परिचय

अमरबेल का परिचय कुछ तो उन पेड़ों पर लिखा रहता है जिन पर छाई रह कर यह पेड़ के रस, टहनी और हरियाली को नष्ट करती रहती है और कुछ उस कहावत में व्यक्त है जो लगभग सब कहीं प्रचलित है—'आंखों के अन्धे नाम नैनसुख'। बाकी परिचय हमारे मन की शक्ति को ग्रसे हुये अन्धाग्रह, दुराग्रह और पूर्वाग्रह दे सकते हैं यदि हम उन्हें देख पावें तो।

हम चाहे देखें, या न देखें नगर और गांव में इनकी कहानियां नित्य बनती और बिगड़ती रहती हैं। उपन्यास की घटनायें इन्हीं से ली गई हैं। अधिकांश को गांवों के जीवन से जुटाया गया है। सब सच्ची हैं और पात्र भी सच्चे हैं। उनके और तत्सम्बन्धी स्थानों के नाम अवश्य बदल दिये गये हैं। इस पर भी यदि किसी चरित्र का नाम और ब्योरा किसी के नाम से मेल खा जाये तो इसको आकस्मिक ही समझना चाहिये। मैंने जान बूझकर ऐसा नहीं किया है।

अनीति से रुपया कमाने की धुन गांवों तक में व्यापक रूप में फैली हुई है। साहूकारी, खेती किसानी सब में। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है। जैसे हरे भरे पेड़ पर अमरबेल।

ईमानदारी का श्रम किये बिना दुस्साहसपूर्ण प्रयत्नों से रात भर में लखपती बन जाने की प्रवृत्ति थोड़े से असाधारण मनुष्यों तक सीमित नहीं है जो नगरों में रहते हैं। अफ़ीम के अवैध 'रोज़गार' के समाचार और मुक़दमे बहुधा पत्रों में छपते रहते हैं। इनके नायक उसी प्रवृत्ति के जन्तु हैं जो गांवों में भी पाये जाते हैं। इनकी एक घटना मुझे मध्य-भारत के मन्त्री, मेरे मित्र, श्री श्यामलाल पांडवीय ने विस्तार के साथ सुनाई थी। उपन्यास में मैंने उसका उपयोग किया है। इसके लिये मैं पांडवीय जी का कृतज्ञ हूँ।

कुछ घटनायें ऐसी हैं जो हाल में ही भिन्न भिन्न समय और स्थानों पर घटी हैं। मैंने उन्हें दो ढाई बरसों के भीतर अपने कल्पित स्थानों में रख दिया है। सहकारी अधिकारी 'राघवन' का नाम भर बदल दिया है। कारण एक तो राघवन की अनिच्छा, दूसरे पात्रों और स्थानों के सब के सब बनावटी नाम, सारी घटनाओं के साथ उघड़ जाते और 'अमरबेल' उपन्यास न रह कर, शायद, कचहरी की मिसिल बन जाती।

झाँसी। वृन्दावनलाल वर्मा

अमरबेल

(१)

ऊपर से कलक्टर (जिलाधीश !) के नाम आदेश आया--

ज़िम्मींदारी उन्मूलन में कोई सन्देह नहीं। इसके बाद गांवों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बड़ा भारी परिवर्तन होगा। बढ़ती हुई जन-संख्या, अन्नकष्ट और व्यापक बेकारी की समस्याओं का सामना करने के लिये सहकारी कृषि और सहकारी कुटीर उद्योगों को विकसित और उन्नत करना बहुत ही बहुत ज़रूरी है। अपने ज़िले में अभी से इनको आरम्भ कर दो। सरकार नदियों के बंध बांध रही है जिनसे नहरें निकलेंगी, सस्ती बिजली सुलभ होगी। जहां नहरों द्वारा पानी नहीं पहुँच सकता, वहां ताल-तलैयों का बांधना, नलकूप लगाना इत्यादि की योजना है। हमारा किसान परम्परा-गामी है और परिस्थितियों की भी मांग है कि हम पुरातन और नूतन का समन्वय समझदारी के साथ करें। हमारा व्यक्ति भूमिस्वामित्व का घोर प्रेमी है, इसलिये किसान को क़ानून भूमिस्वामी बनावेगा। कार्य-क्रम में इस बात का ध्यान रखना।

कलक्टर ने अपने आधीन पदाधिकारियों को समझा दिया। उन्होंने क़ानूनगो और पटवारी को बतलाया। इन्होंने रोजनामचे में लिख लिया और दूसरे कार्यों में लग गये।

दो तीन महीने पीछे कलक्टर ने दौरा किया। नीचे के कर्मचारियों को मालूम था कि ऊपर के आदेश को कार्य का रूप देने के सम्बन्ध में सवाल उठेगा। उन्होंने खास-खास गांवों के कुछ छोटे छोटे ज़िमींदार और जोता कलक्टर के सामने पेश कर दिये। बड़े ज़िमींदार और बड़े किसान न बुलाये गये थे, न आये।

कलक्टर आई०सी० एस० का आदमी था। उत्साही और कर्तव्य-परायण; परन्तु सहकारी कृषि का उसने अध्ययन नहीं किया था और न उस सम्बन्ध में उसका अनुभव था। परन्तु अपनी कर्मी का सम्भालना जानता था।

'मिल जुलकर खेती करना शुरू करो।' किसानों से उसने कहा।

एक बोला, 'जिनके पास भूमि है पर हल बैल नहीं, वे सोझ या बटिया पर खेती करते तो हैं।'

दूसरा—'हमारे गांव में कोई बड़ा ज़िमींदार नहीं, हम लोग मिल-जुलकर सब काम करते हैं, कोई लड़ाई-झगड़ा अलवा-बलवा नहीं होता, तहसीलदार साहब, कानूनगो पटवारी सब मदद करते रहते हैं।'

कानूनगो और पटवारी सुनकर प्रसन्न हुए।

कलक्टर मुस्कराया—

'यह तो अच्छी बात है, पर हम कुछ और कह रहे हैं। एक कमीटी बनाओ। वह सहकारी समिति कहलायेगी। उसकी रजिस्ट्री होगी। जो कोई उसके मैम्बर होंगे, उनके खेत उसमें शामिलाती रहेंगे। सब मिलकर काम करेंगे। जिला बैंक से रुपया कर्ज पर मिलेगा। खर्चा काट कर पैदावार या मुनाफा बांट लिया जाया करेगा।'

'और जो कोई इसमें भर्ती न हो तो क्या उसके साथ जबरदस्ती की जावेगी?' एक ने पूछा

'अरे नहीं। जबरदस्ती नहीं की जावेगी, जिसकी मर्जी हो वह उसमें नाम लिखावे।'

उन लोगों के बीच बीच में पटवारी भी थे। किसी पटवारी ने कान में फूँका,—'कह दो ठीक है।' पटवारी की सलाह को उसने सुधार पेश किया—'ठीक है, देखेंगे। सरकार कौन कौनसी मदद करेगी?'

'हमें बन्दूक का लैसन्स चाहिये। जङ्गली जानवर बहुत तंग करते हैं। इनसे पीछा छूटे तो मिल जुलकर काम करना ही बाकी रह जायगा।'

कलक्टर बोला,'यह दूसरी बात है। ध्यान देकर सुनो—तुम्हारी तहसील की ललिता नदी पर बाँध बँध रहा है, उससे नहर निकलेगी। नहर की खुदाई शुरू हो गई है। नहर आने पर अन्न की उपज बढ़ेगी। गरीबी दूर होगी। घरेलू धंधे पनपेंगे, बेकारी चली जावेगी।'

'हमारे गाँव के मजदूर बौखला उठे हैं। बड़ी मुश्किल से काम पर आते है।'

'सुनो जी,—एक दिन मस्ती बिजली भी मिलेगी।'

'मिट्टी का तेल तो मिलता नहीं, सरकार।'

फिर शिकायतों का शोरगुल उमड़ पड़ा।

कलक्टर ने तुरन्त शान्त किया। कहा,—हम जिला सहकारी अफ़सर को भेजेंगे। वे तुम लोगों को मिल-जुलकर खेती करने के क़ायदे और तरीके समझावेंगे। एक बात अभी गांठ में बाँध लो कि बिना सहकारी खेती के आगे गाँवों की उन्नति होनी बहुत ही कठिन है।

कलक्टर तहसीलदार से कह गया—'इस विषय के प्रति इनके मनमें लहर पैदा करना अपना कर्तव्य समझना। इखरी-बिखरी जोतों के एकीकरण की तरफ़ भी ध्यान देना। और देखो, बड़े ज़मींदारों को भी सङ्ग लगाने की कोशिश करना। जैसे, सुहाना-बाँगुर्दन गाँवों के ज़मींदार देशराज को।' कलक्टर ने और भी कई नाम सुझाये।

'एक कर्तव्य है जिस पर जान कुरबान कर दूं? जितना बन पडेगा कर दूँगा,—आखिर ज़िला सहकारी अफ़सर किस वास्ते है?' तहसीलदार सोच रहा था।

(२)

मोटे, नक्काशीदार पायों वाले लम्बे चौड़े पलंग पर जो ऊँचे पक्के चबूतरे पर लगा था, देशराज कुछ लेटा हुआ, हथेली के बल गर्दन कुछ उठाये ढेर से तकिये के सहारे टिकाये, जागता-ऊँघता पड़ा था। दोपहर के भोजन के उपरान्त, अथाई जैसे चबूतरे के ऊपर फैले हुये वट-वृक्ष की छाया और उतरते कुँआर की सहलाने वाली मन्द पवन के मन्थर झोंके, ऊँघ को गहरी नींद में पलटने वाले ही थे कि अधेड़ अवस्था वाला बिकरम आया और देशराज को सोया समझकर ठिठका, फिर ज़रा सी साँस भरकर चबूतरे पर पैताने की तरफ़ बैठ गया। सिरहने की ओर आंख गई—बढ़िया मेज पर खुश्क बैटरी वाला रेडियो सैट, सैट पर क़ीमती सिगरिट का डिब्बा और सिगरिट जलाने के लिये छोटी सी पैट्रोल-बत्ती वाली डिब्बी, सिरहने की बग़ल में चाँदी के हुक्के पर तवेदार बड़ी चिलम। चिलम में कुछ जान तो अब भी होगी, यह अनुमान करके बिकरम ने गर्दन उझका कर देखा। चिलम की आग पर राख की पपड़ी जम गई थी। तो भी उतने बढ़कर हाथ में ले ली। खुशबूदार तम्बाकू की थोड़ी सी महक़ अब भी थी।

देशराज जाग पड़ा। तकिये का सहारा छोड़कर बैठ गया। चौबीस पच्चीस के लगभग अवस्था, गोरा रंग, बड़ी आंखें जिनकी काली पुतलियां रस में डूबी सी, आकृति की रेखायें सुडौल और आकर्षक, भरी-छरेरी देह, छोटी नुकीली मूछ—मूर्तिकार या चित्रकार के लिये सुन्दर देहधारी पुरुष का नमूना। बिकरम की बड़ी आंखें और मोटी फैली मूछें उसके सामने मानो लजा रही हों। चिलमवाला हाथ ज़रा सा कांपा।

बिकरम ने पूछा, 'मालिक, सुल्फ़ा बना लाऊँ या तवा चढ़ा लाऊँ?'

देशराज की अलसाई सी रस-भीगी आंख तकिये पर गई। तकिया तेल की चीकट से सावन-भादों के बादल जैसा हो गया था, धूमरा और कहीं कहीं गई-गुज़री सफ़ेदी की कुछ शिकनें। देशराज ने अँगड़ाई लेकर

एक क्षण पलंग की सफेद चादर पर निगाह डाली—बीच में कई छोटे बड़े मैले छपके। फिर मेज की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, 'मैं तो सिगरिट पियूंगा।' और सिगरिट उठाकर पैट्रोल-बत्ती से सुलगाकर पीने लगा। बिकरम की दृष्टि ऊँचे पलंग के नीचे गई। उसकी निवाड़ के कई टुकड़ों से छूंछने लटक गये थे। बिकरम ने चिलम जहां की तहां रख दी।

सिगरिट के कुछ कश लेकर देशराज ने कहा, 'तवा भर लो, कोई और आ गया तो उसका भी काम चलेगा।'

बिकरम मुस्कराया। घनी मूछों से ढके होठों में से उत्साह के साथ निकला,—'मालिक जो खमीरा लखनऊ से लाये थे वह भरूँगा मैं तो।'

'जगनुआ भीतर होगा। उससे मांग लेना।' देशराज ने लखनऊ का खमीरा पाने की राह बतलाई।

बिकरम चिलम लेकर देशराज के घर चला गया, जिसकी ड्योढ़ी का बड़ा दरवाज़ा चबूतरे से थोड़ी दूर एक ओर था।

देशराज तकिए से टिक गया। सिगरिट के कश लेते लेते ऊपर की ओर देखने लगा। सघन वट-वृक्ष पर अमरबेल छाने लगी थी। पिता के जीवन-काल में उस वृक्ष के एक सिरे पर आ गई थी। पिता का देहावसान हुए दो वर्ष से कुछ ऊपर का समय हो गया था। जब देशराज लखनऊ में वकालत की प्रथमा में पढ़ता था और फ़ेल हो गया था, तब पिता नहीं रहा था। अपने जीवन में पिता जो अंग्रेज़ी-युग में आनरेरी मैजिस्ट्रेट रह चुका था, इसी चबूतरे पर, इसी वटवृक्ष की छाया तले कचहरी करता, लेटता और उठता बैठता, इसलिये वह अमरबेल वहां की वहीं छोड़ दी गई, जो अब अधिक फैल गई थी। पिता के गौरव काल का स्मारक और भी गोचर हो गया। परंतु देशराज उस बेल को नहीं लख रहा था। सिगरिट के झीने धुयें में से देख रहा था कि सूर्य अब कहां है। तीसरा पहर चल रहा था, किरणें झरझर कर भी नहीं आ रही थीं। सोने के लिये समय मिलेगा। सामने कोई ख़ास काम

नहीं। जब तक चिलम आवे और हुक्का तैयार हो, सिगरिट समाप्त हो जावेगा। फिर खमीरे के कशों में से नींद का आवाहन।

चबूतरा और उसके ऊपर छाया हुआ बरगद एक बड़े आंगन में था। आंगन ऊँची मोटी दीवारों से घिरा हुआ था। चबूतरे के सामने मेहराबदार दरवाज़ा, अस्त-व्यस्त दलदार फाटक और सामने गांव की सड़क। फाटक से हटकर आंगन के कोट से लगा हुआ छोटासा सुडोल अतिथि–सदन और मोटरखाना था जिसमें, मोटर रक्खी हुई थी। दूसरी दिशा में पक्के पायों वाली चौपालें, घास लकड़ी और पशुओं के लिये थीं।

फाटक के सामने, चौड़ी गली की उस ओर, एक पक्का मकान था। उस मकान से एक व्यक्ति निकला। घुटनों तक फिसलता हुआ जांघिया, पैर में देशी जूते, आधी बांह वाली कमीज़, बिना तेल के ऊँचे-नीचे बालों पर गांव के बुनकर की रंग–बिरंगी तौलिया। तौलिया के एक छोर की आड़ से उसने आंगन के भीतर चबूतरे पर आंखपसारी। देशराज बैठा हुआ उसी दिशा में देख रहा था। शायद आंख से आंख मिल गई हो। उस व्यक्ति ने गर्दन मोड़ी, घर के किवाड़ भेड़े। सोच रहा था, अथाई पर जाऊँ या रास्ता पकड़ूँ, शायद देशराज ने न देखा हो। देशराज ने पुकार लगाई, 'अरे भाई बनमाली, कहां जा रहे हो, इतनी धूप में ?'

बनमाली को निर्णय करना पड़ा—बिना कोई उत्तर दिये देशराज के पास जा पहुँचा। चबूतरे पर नहीं चढ़ा। देशराज बैठे ही बैठे आगे की ओर झुका। उसके होंठों पर बरबस सी एक रीनी-झीनी मुस्कान आई।

'घर से हुक्का मंगवा लो। बिफरम तवा भर कर ला रहा हूं,' देशराज ने कहा। स्वर में कोई अनुराग न था।

बनमाली बैठता तो उस लम्बे-चौड़े पलङ्ग पर, पर बिना कहे साहस न हुआ। चबूतरे पर देशराज के पलङ्ग के नीचे बैठने में

स्वाभिमान की दाल किरकिरी पड़ जाती। खड़े-खड़े दो बातें करके चला जाना सहज। उसने एक पैर चबूतरे पर रख लिया, मानो अपमान का मार्जन ब्याज समेत कर लिया हो। तौलिया सिर से खिसका कर कन्धे पर डाल ली। गोरा रङ्ग, चिपटी नाक, आंखें सकरीं और तेज, कण्ठ प्रखर। बोला, 'काम से जा रहा था। काम करने वालों को धूप, ठंड, पानी की बाधा ही क्या। वैसे भी सूरज अब नरम पड़ गया है—'

कुछ और भी कहता, क्योंकि भाषण देने का अभ्यास बरसों से था, परंतु देशराज के घर से बिकरम भरी हुई चिलम लिये आता दिखलाई पड़ा। देशराज ने कश खींचकर अधजली सिगरिट फेंक दी। बनमाली को सिगरिट मिलती न थी। लखनऊ की बढ़िया खमीरा का तवा सामने। बनमाली उसकी महक से परिचित था। बिकरम के सामने देशराज से कुछ कहना भी था।

बनमाली ने बिकरम को पुचकारा, 'बिकरम दादा, ज़रा हमारा हुक्का ले आना।'

बिकरम ने हुक्के पर चिलम रख दी और चुपचाप बनमाली के घर चला गया। 'दादा' इसलिये कि बिकरम उससे आयु में कुछ बड़ा था। पुचकार में आदेश लिपटा हुआ, क्योंकि वह बनमाली की भी कुछ ज़मीन जोते हुये था और बनमाली गाँव के नेताओं में भी तो था।

'पीढ़ा मँगवाये देता हूँ,'—देशराज ने बनमाली को पलङ्ग पर न बिठलाने का प्रायश्चित्त किया—'कब तक खड़े रहोगे ऐसे ?'

कुर्सी भी नहीं ! क्यों कि देशराज के घर में कुर्सियों की कमी न थी। यह प्रार्थना भी करें तो पलङ्ग पर न बैठूंगा, बनमाली ने सोचा।

कहा, 'खड़े खड़े ही पियूंगा, सभाओं में बोलने के समय तो घण्टों खड़ा रहना पड़ता है।' एक क्षण चुप रहा। भांपने लगा कि बात का कुछ प्रभाव पड़ा या नहीं।

'चार पांच दिन से गाँव में कोई समाचार पत्र नहीं आया है। पता नहीं, कहां क्या हो रहा है'—बनमाली ने अपने प्रसङ्ग पर पहुँचने की कोशिश की।

देशराज को मालूम था कि ज़मींदारी-उन्मूलन कानून पास होने वाला है। परन्तु उसको परवाह नहीं थी। कुछ तो इस कारण कि उसे विश्वास था कि युगों से आया हुआ चलन एकदम नहीं मिट सकता और यदि उसकी काया मिट भी जावे तो उसका तत्व किसी न किसी मिलते-जुलते रूप में प्रकट होकर ही रहेगा; दूसरे, उसको अपनी प्रतिभा का भरोसा था जिसके बूते वह अपना एक व्यवसाय चला रहा था जिसे उसके पड़ोसी तक नहीं जानते थे। देशराज की आंख तेज़ी के साथ वट-वृक्ष की अनेक छोटी-बड़ी डालों, हरे-भरे गुच्छों में छाई अमरबेल पर गई और बट के उन पत्तों पर भी जो अमरबेल की लपेटों में मुरझा गये थे। एक क्षण उपेक्षा की मुस्कान होठों पर नाची।

बोला, 'जो होता आया है, वही होता रहता है और होता रहेगा, सिर्फ़ रूप बदलता रहता है। तै है कि ज़मींदारी जायगी—क़ानून पास हुये बिना न रहेगा। मैं तो उस दिन का स्वागत करूँगा।' स्वागत वाली बात में कोई उमङ्ग न थी। बनमाली को देशराज की मुस्कान गड़ी। वह उसे थोड़ी सी कुढ़न देना चाहता था।

'पास तो होगा ही क़ानून। लेकिन जो होता आया है उसका केवल रूप ही नहीं बदलेगा, बल्कि कुछ ऐसा हो जायगा जो हाथ से काम न करने वालों को साफ़ कर देगा। किसान-मजदूर के राज्य क़ायम होने की नींव उस दिन पन्द्रह अगस्त को पड़ चुकी है।' बनमाली ने कहा। उसके स्वर में गम्भीरता थी, पर आंखों में दब्बूपन और लालच।

बनमाली स्वयं हाथ से बहुत कम काम करता था। 'किसान-मजदूर राज्य' में उसका निज का भी काफ़ी हाथ रहेगा, यह भावना उस वाक्य में बसी थी।

'अरे भाई कैसा भी राज्य रहे, खेती-पाती करने के लिये शहर से तो लोग यहां आवेंगे नहीं। मैंने राजनीति-शास्त्र पर बहुत सी पुस्तकें पढ़ी हैं। किसी तरह का भी राजतन्त्र हो, बागडोर तो उसकी रहती है पढ़े लिखे और सम्पन्न शक्तिशाली जनों के ही हाथ में, जैसे तुम हो। बिकरम या हमारा नौकर जगनुआ तो राज्य करेगा नहीं।' देशराज ने बनमाली को थपथपाया।

बनमाली ने एक युग पहले हिन्दी मिडिल पास किया था। हाल के पास अंग्रेज़ी पढ़े युवकों को वह अधकचरा और बेडौल समझता था, अपनी गिनती सम्पत्तिशाली सम्पन्नों में पाकर तबियत गुदगुदा गई।

'हां सो तो है ही। सो तो है ही—पर—'

'पर-वर कुछ नहीं। तुम भी तो आखिर ज़िमींदार ही हो। तुम जब हकूमत में शामिल हो जाओगे तो हम सरीखो का भी मन भर जायगा—मानो हमीं शामिल हुये।' फिर वही मुस्कान।

'जो मौज मज़ा बड़े ज़िमीदार अभी तक अपने रोबदाब और धौंस-धमक के ज़रिये करते थे, वह आगे दुर्लभ हो जायगा।'

'हां—आं—' देशराज चुप रह गया।

जिस गाँव में ये लोग रहते थे उसका नाम सुहाना था। जहां आज कल के मध्यभारत, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और विन्ध्यप्रदेश की सीमायें एक दूसरे को छूती हैं, वहां इन्ही में से एक प्रदेश में वह गांव था। सुहाने के पन्द्रह आने हिस्से का वह ज़िमींदार था और निकटवर्ती बाँगुर्दन के पूरे सोलह आने हिस्से का। दोनों गांवों की आबादी के बीच में केवल एक सकरा गहरा नाला था जिसके दोनों किनारों पर खजूर के पेड़ लगे चले गये थे। दोनों गांवों की भूमि का रक़बा लगभग दस हज़ार एकड़ था। इतने बड़े रक़बे में खेती थोड़ी सी ही होती थी; बाक़ी कृषि-योग्य भूमि बरसों से कांस ने ढक ली थी। नाला दो मील चलकर ललिता नाम की नदी में मिल गया था; मिलने से पहले उसने

एक बड़ा रकबा काट-कतर कर छोटे छोटे भरकों में पलट दिया था। दोनों गांवों के एक खासे रकबे में पहाड़ और घना जङ्गल था जो एक विस्तृत सरकारी वन में समा गया था।

सुहाना के बाक़ी एक आने हिस्से में छोटे छोटे से दो तीन ज़िमींदार थे। इनमें बनमाली अपेक्षाकृत बड़ा था। जोतवाली भूमि में देशराज की सीर सबसे अधिक थी जिसको उसके हल-बैल, शिकमी और अधिया बटिया जोतते थे। मौरूसी किसान अधिक न थे—अधिकांश छोटे छोटे खातों वाले, जिनकी जोतें इकरी-बिकरी और फैल-फुट्ट थीं। दोनों गाँवों की जन सँख्या पांच हजार से कम न होगी। रेल, तार, डाकघर सबसे कुछ दूर परन्तु एक प्रदेश के बड़े नगरों से आने वाली पक्की सड़क दूसरे प्रदेश के बड़े नगरों के लिये दोनों के छोरों के पास से गई थी। दोनों गांव की जनता, जब और जहाँ मिल जाय, मजदूरी करती थी। देशराज अधिकांश किसानों और सुहाना के कुछ ज़मींदारों को बीज और खाना-खवाई के लिये ग़ल्ला, सवाई पर देता था—यानी उसका कारिन्दा दिया करता था। गाँवों का बहुत सा काम उसके यहाँ से सरता था—जैसे व्याह शादियों के अवसर पर बर्तन, पाल, घोड़ा, मोटर नहीं, गैस के हंडे, यथायोग्य को दरी क़ालीन इत्यादि। नेता, व्याख्यान, समाचार पत्र, स्वाधीनता आन्दोलन और सुहाना में एक साहूकार के होते हुए भी, उसके दबदबे में बहुत कसर नहीं लगी थी; परन्तु बनमाली ने उस दबदबे को अपने पर से बहुत कुछ झटकार दिया था। वह स्वाधीनता की हलचल में दो बार जेल जा चुका था। यह ठीक है कि इसके पहले वह एक बार चोरी के मुक़द्दमें और दूसरी बार डकैती का माल बिसाने के अपराधों में भी सज़ा भोग आया था; परन्तु उसका विश्वास था कि स्वाधीनता के लिये दो बार जेल जाने से पिछली सारी कालोंच धुलपुछ गई है, और फिर वह यह भी कहा करता था कि निकटवर्ती पुलिस थाने के दरोग़ा की 'धोलधप्प' करने के कारण मैं उन दोनों मामलों में फँसाया गया था। इसमें कोई

सन्देह नहीं कि उसने दो एक बार पुलिस के सिपाहियों की ठोकपीट की थी। निडर और मुंहफट होने के कारण लोगों पर उसका कुछ प्रभाव था। पर देशराज के सामने अपने गुणों की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करने में ज़रा हिचकता था।

देशराज की 'हां·····आं' और चुप्पी को उसने सकारा,—'आप हम, सब को अब साधारण जनता के ढर्रे पर आ जाना चाहिये। हम आप उस कानून का स्वागत करें तो जनता हमारा आपका स्वागत करेगी।' उसके चेहरे पर देशराज को अपने निकट आने का आग्रह था।

बिकरम बनमाली का हुक्का उठा लाया। देशराज का इशारा पाकर बिकरम ने चिलम बनमाली के हुक्के पर रख दी। वह खड़े खड़े पीने लगा।

देशराज ने उसके लिये पीढ़ा नहीं मंगवाया। जब बनमाली पी चुका, उसने चिलम बिकरम को बढ़ा दी। उसने देशराज के हुक्के पर रख दी। बनमाली चलने को हुआ। परन्तु उसने न तो बिकरम से हुक्का घर रख आने के लिये कहा और न बिकरम ने ही कोई चाव प्रकट किया। बनमाली ने भौंहें सिकोड़ कर हुक्का उठा लिया और कहता चला गया—'जनता का राज्य होगा और जो कुछ होगा वह अजीब होगा—' बाक़ी सुनाई नहीं पड़ा।

अब देशराज के स्वर में अनुरोध का नुकीलापन आया,—'अरे वाह! वैसे ही चल दिये!! चिलम तो अपने जोबन पर अब आई है!!!'

बनमाली लौट पड़ा और चबूतरे पर चढ़कर पलंग पर जा बैठा। देशराज ने चिलम उसके हुक्के पर रख दी। वह पीने लगा।

'जनता का राज्य तो होगा ही, हो ही गया है। मगर हांकोगे तो भाई तुम्हीं उसको, यानी तुम धरनीधर सेठ, डाक्टर सनेहीलाल वगैरह।' देशराज ने कहा तो उसे तेल लगाने के लिये पर गांव के साहूकार और डॉक्टर का नाम मालिश में शामिल करके कुरेद भी दिया—जिससे वह

प्रतिवाद न कर सके। बनमाली जरा सा हँसकर हुक्का पीता रहा। उस हँसी में साहूकार और डॉक्टर दोनों की अवहेलना थी।

सामने से डाकिया आया। चबूतरे के नीचे से ही उसने डाक के साथ, जो सप्ताह में दो बार गांव में आया करती थी, तार का एक लिफाफा रख दिया। डाकिया तार की रसीद लिखवाकर चला गया। देशराज ने पहले तार खोला। पढ़कर प्रसन्नता के साथ बतलाया, 'कुमारी अंजना आ रही हैं कल। सांस्कृतिक हलचल मच उठेगी।'

बनमाली ने बिकरम को चिलम देते हुये अपनी जानकारी प्रकट की, 'जरूर। नकी कला ऊँचे दर्जे की है। लेकिन जनता के नजदीक पहुँचने के लिये उनको अपनी कला कुछ अधिक सीधी, सुथरी और चुटीली बनानी पड़ेगी। पिछली बार भी मैंने कहा था। क्यों बिकरम दादा?'

बिकरम ने चिलम का कश लेकर देशराज के हुक्के पर रख दी। हँसकर बोला, 'हम लोग क्या जानें। ढोर चराते और खेती करते हैं। ये बातें तो बड़े लोगों के लिये हैं।'

देशराज ने जगनुआ को पुकारा। जैसे कहीं कान लगाये खड़ा हो, जगनुआ तुरन्त आ गया। अवस्था अधेड़ से आगे; परन्तु खाई-पी पुष्ट देह। पुराना नौकर। नीची गर्दन किये सब कुछ देखने-परखने वाला। देशराज ने जगनुआ से—नाम उसका जगन्नाथ, जगनू था—मोटर को ठीक कर रखने के लिये कहा। जगनुआ आदेश पालन का सिर हिला कर चला गया।

देशराज तार को एक तरफ़ रखकर अन्य डाक खोलते, देखते बोला, 'ठीक कहते हो, भाई बनमाली। अबकी बार अन्जना जी से लोक-गीत और लोक-नृत्य के लिये ही कहूँगा, लेकिन ऊँचे दर्जे के सङ्गीत को भी तो जनप्रिय बनाना है। अपनी स्वाधीनता कलाओं के फूलने-फलने से ही तो रसीली बनेगी।'

देशराज अपनी डाक में तल्लीन होने को हुआ और बनमाली चलने के लिये उद्यत। बनमाली अपना हुक्का उठाने वाला ही था कि बिकरम ने ले लिया और पहुँचा कर लौट आया।

बिकरम तमाखू पीता रहा। देशराज डाक देखकर बोला, 'बनमाली के दिमाग़ में सनक कुछ ज्यादा बढ़ गई है।'

'उहँ, यों ही बरबराते रहते हैं।' बिकरम ने मुंह बिराया।

'तुम तो हमारे ही हो। घर के ही हो—'

'हां मालिक!' बिकरम ने उत्सुकता को आश्वासन का रूप दिया।

'क्या बतलाऊँ। जानते हो इनकी ज़िमींदारी की कहानी?'

बिकरम देशराज का मुंह ताकने लगा। चिलम हुक्के पर रख दी। वह गुड़गुड़ाने लगा।

बिकरम चाहता था देशराज तुरन्त उस कहानी को शुरू करदे, मनोरंजक होगी और 'मालिक' के मन के भीतर और भी गहरी जगह मिल जायगी। देशराज को सहलाया—'थोड़ासा सो न लो, इतना सब पढ़के थक गये होगे।'

देशराज बात करने के लिये व्यग्र था। 'इनकी ज़िमींदारी है तो थोड़ी सी ही सो तुम जानते ही हो, पर उसकी कहानी के जानने वाले न रहे होंगे अब। आज से अस्सी पचासी बरस हुये, ग़दर के बाद जब पहला बन्दोबस्त हुआ, इनके पुरखे ने अपने अनाथ नाबालिग़ भान्जे की जगह अपने को मालिक लिखवा दिया। उन्हीं दिनों वह नाबालिग़ मर गया, न जाने अपनी मौत या कैसे .....'

'तो मालिक, क्या उस ज़माने में कोई ऐसा न था कि सरकार को अन्धेर की बात साफ़ साफ़ बतला देता?'

देशराज के पुरखे उस ज़माने में थे। उन्होंने भी नहीं बतलाया! देशराज को बात ज़रा गड़ी। सोचा, क्यों गड़ा मुर्दा उखाड़ा। आँख

पेड़ पर छाई अमरबेल पर यों ही चली गई, फिर बिकरम के चेहरे पर। वहां भर्त्सना का कोई लक्षण न था।

'मालूम नहीं बिकरम। लोग अपनी अपनी अड़चनों, उलझनों में बींधे होंगे और भाई, इनका वह पुरखा बड़ा मक्कार भी तो था। पिता जी से इतना ही सुना मैंने तो। बनमाली से कुछ मत कहना। नकटे से नकटा कह देने से योंहीं बुराई खड़ी हो जाती है—वैसे कर तो वे कुछ नहीं सकते।'

उसने उत्साह के साथ भरोसा बिठलाया,—'अरे नहीं मालिक।' और अपनी का प्रदर्शन किया,—'अपने भाञ्जे की मिल्कियत डकार गया और उसे मार भी डाला इनके पुरखे ने!'

देशराज के जी को खुटका हुआ—

'अरे नहीं भाई, असल बात क्या थी कोई नहीं कह सकता। सब सुनी-सुनाई है। हमारे पिता जी ने भी कहीं सुना ही होगा।'

जो कांटा गड़ गया था उसके निकालने की देशराज ने कोशिश की। व्यर्थ इतना सब कह गया। यदि इसने चर्चा की तो बनमाली टंटा खड़ा कर देगा, क्योंकि बेहूदा है परंतु यह कहेगा नहीं, मुझको मानता है; अपना ही आदमी है। बात को पाटने के लिये देशराज कुछ और कहता पर उसे भासा, अधिक पाटा-पूटी में झूठा पड़ जाऊँगा, शायद बिकरम सोचे में बनमाली से डरता हूँ। चुप रहा। विषयान्तर करना चाहता था। बिकरम ने पहले किया।

'अखबार के कागद में अब की बार क्या आया है?'

'अरे सब वे ही इधर-उधर की बातें हैं। विलायत वालों में आपसी तनातनी गाली-गलौज चल रहा है। एक खबर मजेदार भी है—एक साहूकार ने मरे आदमी का अंगूठा रुक्के पर लगवा लिया और बारिस पर नालिश कर दी। भेद पकड़ा गया। अब साहूकार जेल में बन्द है! 'अपने गांव में तो इससे भी बढ़कर हुआ था—इन धरनीधर सेठ के बाप ने मरे आसामी का अंगूठा पक्के काग़ज पर लगवाकर चार बीघा

ज़मीन और कुयें का बैनामा रजिस्ट्री करवा लिया जो अब अधिया-बटिया पर चलकर साल भर का अनाज उन्हें देता है। सेठ के बाप को किसी ने न पकड़ा !'

देशराज प्रसन्न हो गया। हँस पड़ा। दबाने के लिये उसकी भी एक कोर मिल गई।

'जाने भी दो। यह सब होता आया है। सबको करना पड़ता है। कहने से क्या फायदा। क्यों बैर बिसाओ ?'

'सो मैं नहीं डरता। मूसल नहीं बदलना है। मुहँ पर कह दूंगा। पर हां, करना क्या है।' गांव का साधारण सा साहूकार धरनीधर भी ज़मींदारी प्रथा के विरुद्ध खुलकर आंदोलन करता आया था। देशराज को उसकी निन्दा अच्छी लगी परन्तु वह उसपर अपनी मुहर नहीं लगाना चाहता था। तो भी थोड़ा सा साथ दिया,—'भाई, पुरखों के लक्षण, सब नहीं तो कई-एक ज़रूरी ही, कई पीढ़ियों तक दिखलाई पड़ते हैं। जैसे तुमने बतलाया—धरनीधर के बाप ने कुछ किया था; ये आजकल के सांचे वाले दन्द-फन्द रचते रहते हैं।'

बिकरम ने एक नई क़िस्म के 'दंद-फंद' की चर्चा उठाई।

'यह कापटी सोसटी क्या है जिसके पसारे की बात चल रही है ?'

'कोआपरेटिव सोसायटी नाम है उसका अंग्रेजी, हिन्दी में सहकारी समिति कहते हैं। बुरी नहीं है, अगर हमारे तुम्हारे सरीखे लोग उसे चलावें तो।' जगनू ने आकर कहा, 'सरकार, मोटर बिलकुल ठीक हालत में है। कब चाहिये है ?'

'बड़े सवेरे कल। स्टेशन जाना है।'

जगनू चला गया।

'राजकुमारी जी आ रही हैं ? बड़ी भली हैं। बहुत मीठी जबान है।' बिकरम ने कहा।

'हां, बहुत। हम दोनों लखनऊ में साथ पढ़ते थे।'

(२)

रेल-स्टेशन के बाहर मोटर खड़ी करके देशराज भीतर आया। स्टेशन बड़ा न था, पर महत्व का होने के कारण सभी गाड़ियां इस पर रुकती थीं। सुहाना-बागुर्दन से स्टेशन बहुत दूर न था।

भीतर जाते ही मालूम हुआ कि गाड़ी आधा घण्टा लेट है। स्टेशन के बाबू, पुलिस के सिपाही और उनके चीफ़, स्टेशन के मज़दूर, चाय पान सिगरिट इत्यादि बेचने वाले, सभी से उसका परिचय था। मीनी मुस्कान, रसीली बानी और फिर दो गांव का ज़मींदार, उस पर भी ग्रैजुएट। जान पड़ता था, सभी के साथ उसने कोई न कोई अहसान किया है। उसके सामने विनय-शीलता दिखलाने में किसी को भी संकोच नहीं हो रहा था। स्टेशन मास्टर के कमरे में चला गया। आवभगत हुई। स्टेशन मास्टर से बेतकुल्लफ़ी थी।

'देशबाबू आज कहां ? क्या बम्बई की सैर के लिए निकल पड़े ?'

'नहीं तो। प्रसिद्ध संगीत–सरस्वती कुमारी अञ्जना इसी गाड़ी से आ रही हैं। उन्हें लेने आया हूँ।'

'पिछली बार आपने कृपा करके अपने गांव में उनका प्रदर्शन हम लोगों को भी दिखलाया था। कितने दिन रहेंगी ?'

'कह नहीं सकता। उनकी इच्छा पर निर्भर है। भारत भर में घूमघूम कर कला का रस बरसाती-जगाती रहती हैं।'

'अबकी बार भी हम लोगों को बुलाने की कृपा कीजियेगा न ?'

'हां,हां। यानी जब वे अपना सङ्गीत समारोह करेंगी, तब। अबकी बार जङ्गल पहाड़ों में घूमनें फिरने और शिकार खेलने की योजना ज्यादा है।'

'खैर, देखा जायगा। चाय पीजिये।'

'चाय वाला नहीं माना। स्टेशन के भीतर उसने तब आने दिया जब एक प्याला पिला चुका।'

'तो मैं यहां से तब तक न निकलने दूंगा जब तक कि एक प्याला और नहीं पी लिया। फिर एक प्याला उन सरस्वती-कुमारी जी के साथ।'

'खैर, आपका हुकुम बजाना ही पड़ेगा।' देशराज हँस पड़ा।

चाय आ गई। देशराज ने पी ली। गाड़ी के आने का भर्राटा सुनाई पड़ा। स्टेशन के लोग अपने अपने काम पर लग गये। देशराज प्लेट फ़ार्म पर आकर आती हुई गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा।

पुलिस का चीफ़ निकट आकर बोला, 'राजा साहब, क्या ये सरसुती बाई लखनऊ से पधार रही हैं?'

'हूँ।' बिना मुंह खोले हुये कुछ उपेक्षा के साथ देशराज ने उत्तर दिया।

चीफ़ चलने लगा। देशराज जैसे चौंका। जेब से बढ़िया सिगरिट की डिबिया पेश करते हुये तपाक से बोला, 'अरे वाह चीफ़ साहब, आपने बहुत दिन से हमारा सिगरिट तो पिया ही नहीं है!'

चीफ़ ने कृतज्ञता के साथ सिगरिट लेकर जेब में रख लिया।

'गाड़ी के चले जाने के बाद आराम के साथ पियूंगा।' कहता हुआ चीफ़ चला गया। गाड़ी आकर प्लेट फ़ार्म पर खड़ी हो गई। सब से ऊँचे दर्जे के एक जनाने डिब्बे से एक बहुत सुन्दर युवती निकली। उसने आंख उठाते ही देख लिया कि देशराज उसकी ओर तेज़ी के साथ लपका आ रहा है। परस्पर नमस्ते हुई। फिर—

'हल्लो! सब ठीक है?'

'हल्लो! सब ठीक है। देखते नहीं हो कितनी स्वस्थ हूँ!'

यह अन्जना थी।

इधर-उधर के निठल्लों ने देखा—युवती गोरी, अनारी, परम रूपवती है। बाल बेपरवाही के साथ बिखरे हुये भी अपने एक अलग ढंग के कलाप में जैसे। होठ लिपस्टिक से पुते न होने पर भी भरी हुई लाली

में। साड़ी बहुमूल्य रेशमी, वेशभूषा चटकदार रंगों से सजी हुई। छोटे छपकोंदार लाल ज़िमीन वाली चोली पर बुंदकियों वाली हरी चमचम साड़ी।

कुलियों ने आकर सामान उठाया। इसमें हरे रङ्ग की एक छेददार पेटी थी। बढ़िया बड़े सेवों से मानो भरी हो। उसका ताला बन्द था। अंजना और देशराज की दृष्टि एक दूसरे की से मिलीं, उस पेटी पर गई और अलग हो गई।

मज़दूरों ने सामान मोटर में रख दिया। पर टिकिट बाबू ने उन दोनों को अभ्यर्थना की मुस्कान से रोक दिया, 'अभी नहीं राजा साहब। बड़े बाबू कह गये हैं कि बिना चाय पिये न जा सकेंगे आप लोग।'

अन्जना टिकिट बाबू पर मर्दीली चितवन के साथ मुस्कराई। देशराज ने हामी भरी,—'नहीं जायेंगे बाबा। सामान देखकर अभी लौटते हैं। देवी जी का कुछ क़ीमती असबाब और इनके ये सेव जो अपने लिये लाई हैं, ज़रा ठिकाने से रखवा दूं।'

अन्जना और देशराज हँसते हुये चले गये। दोनों के दांतों ने जैसे मोतियों को हराने की होड़ लगाई हो। टिकिट बाबू भी हँसता रहा।

देशराज ने हरी छेददार पेटी मोटर के पीछे सामानदान में रख दी और ताला लगा दिया। मज़दूरों को बँधी हुई मज़दूरी से दुगुनी दी। भीड़ छँटने की बाट में दोनों खड़े-खड़े आंखों ही आंखों कुछ कहते सुनते रहे। गाड़ी चली गई। पुलिस का चीफ़ सिगरिट पीता हुआ आया।

'ऐसा बढ़िया सिगरिट तो सरकार, आज ही पिया,' चीफ़ ने कहा। निगाह लजा रही थी अन्जना के चकचौंधियाने वाले रूप पर,—

'बड़े बाबू चाय के लिये बुला रहे हैं। सामान के लिये चिन्ता न कीजिये। मैं पहरा दूंगा।'

'आप भी तो चाय पीजिये। किसी सिपाही को खड़ा कर दीजिये यहां। वैसे सिवाय देवी जी के कपड़ों-वपड़ों के और कुछ नहीं है।' देशराज बोला।

'मैं तो एक बार सवेरे पीता हूँ, बस।' फिर मोटरमें झांककर उसने कहा, 'फलों वाला बक्स नहीं है यहां।'

'क्या फलों पर नियत गई है?'

'सेव ही ऐसे हैं। सारा इस्टीशन महक गया है।'

'भाई, देवी जी अपने लिये लाई हैं। अबकी बार मैं जाकर लाऊँगा, तब ब्याज समेत, चीफ़ साहब।'

'सब पा गया, मैं सब पा गया, राजा साहब। चलते वक़्त एक सिगरिट ज़रूर और लूंगा।'

'एक सिगरिट नहीं पूरी डिब्बी।'

चीफ़ चौकसी के साथ मोटर के आस-पास बना रहा। वे दोनों चाय पीने स्टेशन के बाबू लोगों के कमरे में चले गये।

कमरे में बिजली सी कौंधने लगी। पुरुषों की लाज को अञ्जना ने जल्दी कम कर दिया। वे सोचते थे, अच्छी जोड़ी मिली। यदि गुपचुप ब्याह नहीं हो गया है तो आगे होकर रहेगा। चाहते थे कि अञ्जना का कुछ इतिहास सुनने को मिले, उसी के मुहँ से सुनें तो बढ़िया रहेगा। पर पूछे कौन? और चाय की मेज़ पर बैठे रहने में समय ही कितना मिलता है?

एक ने किनारा समेटते हुए प्रश्न कर ही डाला, 'आप देवी जी, क्या अब भी पढ़ती हैं? शायद किसी कालेज में प्रोफेसर हो?'

प्रोफेसरी के उपयुक्त उसकी आयु न थी।

'नहीं तो। न पढ़ती हूँ और न पढ़ाती हूँ। जिस साल इन्होंने वकालत की परीक्षा से मुंह मोड़ा, उसी साल मैंने एम० ए० का पढ़ना छोड़ा। सङ्गीत में छुटपन से ही रुचि रही है, उसके विस्तार के लिए पागल बनी फिरती हूँ। इसी का इन्हें भी ख़ब्त है। नदी नाव का

संयोग। इनके गाँव बांगुर्दन में और आसपास जङ्गलों में प्राचीन काल की मूर्तियाँ, मन्दिर, शिलालेख बिखरे पड़े हैं। पुरातत्व में इनकी रुचि है और मेरी भी। इसीलिए कहा कि मेरा इनका नदी-नाव का संयोग है।' कहकर मुस्कराई।

उन लोगों की समझ में जो कुछ और जितना आया हो, पर वे इस उलझन को न सुलझा सके कि दोनों में से कौन नदी है और कौन नाव। मधुरिमा में वार्तालाप समाप्त करके दोनो चल दिये।

देशराज ने पुलिस चीफ़ को सिगरिटों की भरी डिब्बी दी। चीफ़ प्रणाम करके इधर हुआ और ये मोटर लेकर उधर। चीफ़ सोचता था, पेटी वाले सेवों की अपेक्षा अञ्जना का रङ्ग ज्यादा चोखा है। चाय-पान दूकान वाले और मज़दूर सोचते थे, कुंवार के महीने की तितली है।

(३)

सुहाना-बांगुर्दन के लिये पक्की सड़क पर मोटर चली जा रही थी। दिन चढ़ आया था परन्तु धूप तेज़ नहीं हुई थी। सड़क के दोनों ओर खेत थे। जिनमें बँधियां पड़ी थीं उनके ढालों में पानी भरा था। जो ज़मीन पानी से उभर आई थी उस पर किसान कहीं हल, कहीं बखर चला रहे थे। छोटे-छोटे बैल, दुबले-पतले हलवाहे। दोनो थोड़े से श्रम से पसीने में लतपत हुए जा रहे थे। दोपहर के पहले छुट्टी नहीं। क्योंकि बीज डालने की घड़ी जल्दी जल्दी निकट आ रही थी।

सुहाना पहुँचने से पूर्व ललिता नाम की नदी मिलती थी। पाट चौड़ा न था परन्तु गहरी बहुत थी। गरमियों में भी उसकी धार नहीं टूटती थी, इस समय तो नीली जलराशि को ढकेलती समेटती सी चली जा रही थी। पुल मिला, पुल के उस पार, नदी किनारे घने पेड़ों की छाया। देशराज ने गाड़ी पटरी पर रोक दी।

''ज़रा देर के लिये इस छाया में रुक जाओ न। कैसा निराला मनोरम स्थान है।' देशराज ने चाव के साथ अनुरोध किया।

अञ्जना प्रसन्नता के साथ सहमत हुई,—'हां, हां, तुम्हें क्या; कोई भी रमणीक एकांत ठौर मिला नहीं कि रिपट पड़े।'

'शर्त यह है कि तुम साथ में हो, तो। नहीं तो पड़े रहने के लिये अपनी हवेली का चबूतरा ही ठीक।' देशराज अपने मकान को हवेली कहता था—गांव के किसान मज़दूर भी कहते थे।

दोनो उतर पड़े। देशराज ने मोटर में पड़े हुये क़ालीन को बिछा दिया। दोनो बैठ कर इधर उधर देखने लगे। पेड़ों के हरे घने पत्तों में होकर धूप झर-झर कर चू सी रही थी; बाहर जैसे बरस रही हो, नदी की धार पर जैसे रिपट रिपट कर जम रही हो। आस पास कोई नहीं था।

'सेव बहुत बढ़िया लाई हो। पेटी मन भर की तो होगी ही ?' देशराज ने आंख गड़ा कर कहा।

'खालिस बीस सेर। हां सब वजन मिला कर तीस-पैंतीस सेर होगा। तुम्हारा अनुमान ठीक है। बड़ी मुश्किलों से माल इकट्ठा कर पाया—'

'और जोखिम भी क्या कम ! पर वाह अपनी करामात में तुम शेरनी हो, मेरी अमरबेल।'

वह हँस पड़ी।

'और तुम अपनी में शेर। बाक़ी चर्चा हवेली में। यहाँ केवल प्रेम की बात, पर वह उपनाम यहां और अभी नहीं।'

'तो एकाध सेव तो खिलाओ।'

'यहां पर ! उस पेटी को खोलो !! ग़नीमत हुई कि स्टेशन पर नहीं मांग बैठे।' वह हँस पड़ी।

'अरे भई, कैसे मांगता ? वे खूंखार बाबू सब गप कर जाते। बचे खुचे उस चीफ़ के पेट में पहुँचते। मांगता था। सिगरिट की फूंक पर ही हवा कर दिया चीफ़ को।'

'तभी तो कहती हूँ कि शेर हो ! मुझसे मांगते वे लोग तो इनकार न कर पाती।'

'तो अब प्रेम की बात।'

'जब तुम साथ में नहीं होते तो सेव वगैरह फलों के बाद केवल तुम्हारी ही मूरत—'

'और जब साथ में होता हूँ तब ?'

'तब जो कुछ मन में होता है कह नहीं पाती।'

'बहुत दिनों बाद मिली हो इसलिये दिल और दिमाग़ में ऐसा तूफ़ान उठ रहा है कि तै नहीं कर पा रहा हूँ कि पहले क्या कहूँ।'

'देशराज उससे लिपटने के लिये झुका कि जिस दिशा में उसकी गाड़ी मुंह किये थी उस दिशा से एक मोटर आती हुई दिखलाई पड़ी। देशराज जहां का तहां बैठ गया। अन्जना हँस पड़ी।

'जहां तुम्हें तूफ़ान उठता है, वहीं मुझे भी; लेकिन यह भी तो सोचो कि कहां बैठे हो।' अन्जना ने तिरछी चितवन और सिमटती हुई हँसी में कहा।

देशराज ने लम्बी साँस ली, 'दो-दो लाख रुपये हमारे तुम्हारे पास हो जाँय तो बस फिर बिना किसी मिहनत के दुनियां हमारे तुम्हारे निहोरे करती फिरे, और—और तुम्हारी लखनऊ छूटे और हमारी हवेली बस जाय। सूनापन प्राण खाने लगता है कभी-कभी।'

उस दिशा से आने वाली मोटर देशराज की मोटर के पास खड़ी हो गई। अन्जना सतर्क हुई। देशराज अपने आसन पर तुल सा गया। मोटर से उतर कर विलायती सज्जा में एक साफ़ सुथरा युवक इनके पास आया। देशराज खड़ा हो गया। अन्जना बैठी रही।

'मैंने मोटर पहिचान ली और आपको देख लिया। उस ओर से आपके गाँव होता आया हूँ, आगन्तुक ने देशराज से हाथ मिलाते हुये कहा और अन्जना की ओर देखकर सकुच गया।

देशराज ने परिचय दिया,—'ये सङ्गीत-सरस्वती कुमारी अन्जना हैं। लखनऊ में हम साथ पढ़ते थे। अब जन्म-सङ्गिनी होने वाली हैं।'

आगन्तुक ने आदर के साथ अन्जना से नमस्ते की। अन्जना ने सौष्ठव के साथ प्रति नमस्कार किया। वह पतलून की शिकन बचाता हुआ बैठ गया।

देशराज ने अन्जना को बतलाया,—'ये मेरे परम मित्र श्री राघवन जी जिला कोआपरेटिव अफ़सर हैं। अमेरिका में कृषि की शिक्षा पाई है। यूरोप घूमे हैं। बड़ी लगन वाले। हैं तो मद्रासी, पर हिन्दी वालों को, बोलने और लिखने, दोनों में मात देते हैं।'

'यह लीजिये! अब लगे आप!! देवी जी, मैं तो समाज का एक छोटा सा सेवक हूँ। आप कृपा करके राजा साहब को समझाइये कि अपने गाँव में सहकारी खेती और घरेलू धंधों, कुटीर-उद्योगों की स्थापना

करके इधर के देहाती जीवन की बागडोर अपने हाथ में लें।' राघवन ने उत्साह प्रकट किया।

अन्जना मदभरी आंखों एक बार देशराज की ओर देखकर बहती हुई ललिता को परखने लगी। मुस्करा भी रही थी।

देशराज हँसा,—'अजी राघवन साहब, इस समय आपका आना अच्छा ही हुआ, क्योंकि देवी जी कुछ रिस मान गई थीं।'

अन्जना ने होठ सिकोड़े। ज़रा तेज आंखों देशराज की तरफ़ मुड़ी।

देशराज ने कहा, 'बात कुछ नहीं थी। लखनऊ की हैं। वहीं से आ रही हैं। इस नदी की सुन्दर ठवन को देखकर लखनऊ की गोमती की बात चल पड़ी। हम दोनो निरखने-परखने के लिये यहाँ उतर पड़े। मैंने कहा तुम्हारी गोमती की करारें मिट्टी की और रंग मटमैला। कहां यह हमारी ललिता! पत्थरों को काट—तराश कर सपने की मूर्तियां बनाती, नीलिमा बांटती—बिखेरती चलती है।'

अन्जना के होठों पर फिर वही मुस्कान।

'ये बड़े बातूनी हैं, राघवन साहब।'

'आप दोनो कवि हैं। भगवान आप दोनों को चिर सुखी करें।'

'देशराज ने राघवन को सिगरिट दिया। वह उठ खड़ा हुआ। बोला, 'मार्ग में पीता जाऊँगा। आपके दर्शन करने थे। गाँवों में सहकारी कार्य आरम्भ करने के लिये गया था। मेरी सहायता कीजिये।'

देशराज भी खड़ा हो गया। आश्वासन दिया, 'मुझ से जो कुछ भी सेवा हो सकेगी, अवश्य करूँगा। देवी जी भी सहायता करेंगी।'

'बहुत अहसान मानूंगा। देवी जी स्त्रियों में बहुत काम कर सकती हैं। मदरास की तरफ़ महिलायें बहुत कुछ कर रही हैं।'

'जरूर,' अन्जना ने कहा।

'अवश्य ही। देवी जी ने अध्ययन एम० ए० से छोड़ा है। सङ्गीत की आचार्य हैं। इनका सङ्गीत का साथ सहकारी कार्य को गति देगा।'

'वाह ! वाह !! क्या कहना ह । सोने में सुगन्धि, काम शुरू करने के लिये मैं जल्दी आऊँगा । तब तक काग़ज पत्र तैयार हो लेंगे ।' नमस्ते करके राघवन् चला गया । उधर उसकी मोटर हुर्र हुर्र की, इधर देशराज ने धीरे से कहा, 'कहां से आ टपका यह नालायक ।'

'कोआपरेटिव का बावला मालूम होता है ।'

'कुछ न पूछो बिकट भूत है । मैं तो परेशान हो जाता हूँ और इस वक्त तो गधे ने सारा गुड़ गोबर कर दिया ।'

अञ्जना खिल-खिला पड़ी । राघवन् ने मोटर बढ़ा दी ।

अञ्जना खड़ी हो गई ।

बोली, 'यहां बैठना बेकार है । घर चलो । मज़े की बातें वहीं । यहां शायद कोई और आ धमके ।'

'कुछ ठीक नहीं । अच्छा हुआ सेव की पेटी नहीं निकाली—नहीं तो चर जाता ।'

'हूँ ।' अञ्जना ने एक आंख का पैना संकेत किया ।

'अभी खाने की इच्छा न थी, सेव के रंग को तुम्हारे कपोलों से मिलाता, बस ।'

अञ्जना ने देखा सामने कुछ दूर सड़क की मोड़ पर एक और मोटर आ रही है ।

'वह देखो आ न गया एक और । बड़ा चलतू मार्ग है जी ।'

'आवे, मैं यह चला गाड़ी बढ़ा कर ।'

अञ्जना लपक कर मोटर में जा बैठी । देशराज ने अविलम्ब चला दी । सामने वाली जैसे ही उसके दायें आई देशराज ने देखा कि पुलिस की गाड़ी है जिसमें आगे पुलिस का अफ़सर बैठा है । एक ने दूसरे को पहिचान लिया । परस्पर अभिवादन हुआ । पुलिस अफ़सर ने गाड़ी यकायक रोक ली । देशराज की भौंह तन गई, पर उसे भी ज़रासा आगे चलकर अपनी रोकनी पड़ी । देशराज उतर पड़ा । पुलिस अफ़सर भी

उतर कर आ गया। उसने अञ्जना को ज़रा सा घूर कर देखा। नमस्ते हुई।

देशराज ने बेतक़ल्लुफ़ी के साथ पूछा, 'आज फ़ौज-फांटे के साथ कहां जा रही है सवारी ?'

अञ्जना पर से दृष्टि सिमटाते हुये उसने बतलाया, 'यहां कई प्रांतों की सीमायें क्या आ कर मिली है हम लोगों के लिये मुसीबतों का सङ्गम सा हो गया है। उधर का वह नामी डाकू कालीसिंह नाहरगढ़ के डांगडूंगर में रमता सुना गया था। हम लोग काफ़ी मारे मारे फिरे, राजा साहब नाहरगढ़ ने भी मदद दी, लेकिन कोई पता निशान नहीं मिला।'

'भारी जङ्गल है साहब, एक पूरी पल्टन वहां बसेरा डाले तब कहीं ठीक पड़े। कौन ठीक है शायद किसी पहाड़ी खोह में हो।'

'आया तो ज़रूर था, मगर रमा नहीं। लोगबाग भी तो पंख का परेवा बना डालते है।'

'हमें भी सावधानी के साथ रहना पड़ेगा। अब कहां जा रहे हैं ?'

'सदर में कुछ काम है।'

'सिगरिट लीजिये।'

पुलिस अफ़सर ने सूंघ कर सिगरिट जलाया। बोला, 'इसकी खुशबू के ऊपर यहां सेवों की महक सवार हो रही है।'

देशराज ने अञ्जना की ओर संकेत करके कहा, 'आप अपने लिये लखनऊ से थोड़े से लाई हैं।'

अञ्जना को अफ़सर का परिचय दिया, 'ये मेरे परम मित्र पुलिस इंस्पैक्टर साहब हैं; इस इलाके में आये इन्हें कुछही महीने हुए हैं, लेकिन थोड़े से ही समय में हम दोनो बरसों के से हिलेमिले हो गये हैं।'

अञ्जना ने गौरव के साथ थोड़ा सा सिर झुकाया।

'अच्छा राजा साहब, अब चलें। आप खूब मिल गये। हवेली पर गये तो आपके कारिन्दों ने जब तक चाय पानी नहीं कराया आने नहीं दिया। कोआपरेटिव का राघवन् भी आपके गांव में मिल गया था। वह आगे निकल आया।'

नमस्ते करके सिगरिट मुंह में दाबे अफ़सर आंख की एक कोर से अञ्जना को देखता हुआ चला गया। देशराज ने तुरंत गाड़ी चलती की।

अञ्जना ने कहा, 'ये सब और आ जाते वहां, तो बस सेव पेटी का बंटाढार ही था।'

'इसको देखते ही मुझे तो लगा कहां से कमबख्त आन मरा। तुम्हें बहुत घूर रहा था। क्या कहीं मिला है पहले कभी ?'

'हो सकता है। कुछ कुछ याद आ रहा है। किसी यात्रा में इसको भी कला का थोड़ासा सेंक देना पड़ा हो।'

'तभी !' दोनो हँस पड़े।

सड़क पर कहीं गायें, कहीं भैंसे और कहीं छोटे छोटे बछड़े मिलने लगे। उनमें शायद ही कोई दर्शनीय हो। बरसात के चरे पिये होने पर भी अपने लिये संकट और मोटर वाले के लिये तो पूरी विपद ही। चरवाहे छोकरे कहीं गुल्ली डण्डा खेल रहे थे और उनके जानवर सड़क पर आवारा घूम रहे थे। देशराज खिसयाहट भरी सावधानी के साथ मोटर चलाने लग गया और अञ्जना जानवरों पर से अपनी ग्लानियुक्त दृष्टि हटाकर कुछ दूरी के घने बिखरे जंगल को देखने लगी जो खतों की हद से लगे हुए थे। जङ्गल के पीछे ऊँचे भरे-पूरे पहाड़—आने वाली शरद ऋतु की प्रतीक्षा में धूप की मार से सन्न से खड़े थे।

थोड़ी देर में वे सुहाना पहुँच गये।

गांव के बच्चे हा हा हू हू करते हुये मोटर के पीछे दौड़ पड़े, जो वयस्क खेतों पर नहीं गये थे वे भीतर हो गये—कौन राम राम करके किसी बेगार को सिर पर ले !

हवेली के आंगन में पहुँचते ही जगनू आ गया। अन्जना को झुककर जुहार की।

'अच्छे हो जगनू ?' अन्जना ने दुलार सा किया।

'सरकार की दया से।' कहकर जगनू सामान की सम्भाल में लग गया।

'देवी जी का सामान अतिथि-सदन में,' देशराज ने आदेश दिया और चबूतरे पर चला गया।

अन्जना सामान रखवाने लगी। मोटर के पीछे से हरे रंग की सेव-पिटारी विशेष सावधानी के साथ अतिथि सदन में रखवा कर अन्जना भी चबूतरे पर आ गई। गाँव के बालक मोटर के आगे, पीछे, पायदानों पर से उसका निरीक्षण-परीक्षण करने लगे, जैसे पहले कभी न देखी हो।

देशराज चिल्लाया 'अबे जगनुआ, निकाल इन भूतों को! लगे कस के दो दो धप्पे!!'

जगनुआ दौड़ा। बालक भाग गये। एक जो ज़रा बड़ा था, कहता गया, 'ऐसे तो पुलिस वाले भी नहीं इतराते जो अभी इनकी कुड़की कर ले गये।'

जगनू ने गाड़ी मोटर-खाने में रख दी।

चबूतरे पर रेडियो सेट वाली मेज तो थी, परन्तु वह पलङ्ग और मैला-कुचैला तकिया चादर न था। उसकी जगह एक बढ़िया पलग जिस पर रंग-बिरंगा कीमती मुलायम क़ालीन-स्वच्छ सफेद चादर से ढका हुआ और सिरहने आबदार रेशमी नरम तकिया। एक ओर क़ायदे से लगी हुई नये वार्निश की कुर्सियाँ।

वे दोनों कुर्सियों पर बैठ गये।

जगनू चबूतरे के नीचे चुपचाप आ खड़ा हुआ।

'खाना ज़रा देर में,' कहकर देशराज ने उसे वहाँ से बिदा किया।

'अब तो, मेरी अमरबेल,'—देशराज ने हँसते हुये ऊपर की ओर देखकर अन्जना से कहा।

वह भी हँसी।

'तुमने भी मेरा क्या उपनाम रक्खा। कहां तो वह पत्तों पर छाई हुई बेल, न जिसकी जड़, न कुछ; और कहां मैं धरती में गड़ी हुई सी!'

'जिस पर छा जाती हो बिचारा तड़पता हीं रह जाता है, पर पाता कुछ नहीं; और एक मैं जिसके लिये यह उपनाम बिलकुल सार्थक है—मेरी सदा लहलहाने लहराने वाली बेल। है न ?

'तुम्हारे वे खब्ती मित्र तुम्हें कवि कह गये हैं न।'

'हम दोनों को भूलो मत, रानी।'

'अगर कहना ही है तो अंग्रेजी में डार्लिङ्ग कहो।'

'यहाँ अपना राज्य है, कोई सुनने वाला नहीं बैठा है। और फिर मेरा मन बाँसों उछल रहा है न।'

'अच्छा यह सब फिर, मेरे सरकार। पहले काम की बातें। याद रखना चाहिये कि दो-दो लाख गाँठ में किये बिना मन का दो चार इंच भी उछलना कुछ यों ही सा है।'

देशराज ने हाँमी का सिर हिलाया।

अन्जना ने काम की बात शुरू की,—'उस झील का क्या नाम है, जहाँ बरसात के पहले गये थे ?'

'धवलसागर।'

'हाँ धवलसागर झील पर कल सन्ध्या के लिये पिकनिक* तै करो। रात भी वहीं रहेंगे। शिकार होगी। राजा बाघराज को भी नाहरगढ़ से बुला लो। यदि वे किसी कारण से वहाँ कल न पहुँच सकते हों, तो जब आ सकें तब के लिये वहाँ का कार्यक्रम रख दो। डेरा तम्बू उन्हीं का आना चाहिये।'

---

*पिकनिक = गोट

'बेशक। अभी तार घर से जरूरी तार देता हूँ। नाहरगढ़ में तार घर है।'

'थोड़े दिन पहले तक रियासत थी। आज हाथ में बिचारों के केवल क़िला है!' अन्जना ने साँस भरी।

देशराज ने तार का आयोजन कर दिया। थोड़ी देर बाद नाहरगढ़ से स्वीकृति का उत्तर आ गया।

(४)

दूसरे दिन सन्ध्या के पहले वे दोनो जगनू को साथ लेकर धवल-सागर झील पर गोट करने के लिये चल दिये। ८, १० कोस की दूरी थी। मार्ग जंगल और पहाड़ों में होकर गया था। छोटे-बड़े नाले भी पड़ते थे, पर जङ्गल विभाग ने रास्ता बना सुधरा ली थी और ढाल के नीचे नालों की तली को लक्कड़ों से पाटकर समतल करने के लिये मिट्टी बिछा दी थी। मोटर पचास मील प्रतिघंटे की गति से चलाई जा सकती थी परन्तु देशराज धीमी लिये जा रहा था।

ऊँचे पेड़ों की लम्बी छाया के झरोखों में होकर खरी सुनहरी किरणें पेड़ों के पल्लव-दलों को चुमकारतीं-चमकातीं, झूमती हुई अधपकी घास के साथ इठला सी रहीं थी। कहीं एक ओर भारी भरकम पेड़ों से लदा हुआ, जगमगाता हुआ पहाड़ तो दूसरी ओर खड्ड और घाटी। सूर्य की किरणें मानो उन खड्डों और चौड़ी-सकरी घाटियों में चुपचाप कोई रस सींच रहीं हों। घाटी में सड़क यकायक उतार पर आती तो लगता जैसे मोटर अब गई अब गई; जब मार्ग सीधे चढ़ाव पर आता तो लगता मोटर को धकेला किसी ने नीचे। मोटर की भड़भड़ाहट के मारे पक्षी चाँय चाँय करके इधर से उधर भरी जाते थे। अञ्जना सोचती थी, शायद कोई जंगली जानवर सड़क पर या दायें या बायें दिखलाई पड़े; पर ऐसा नहीं हुआ। आगे एक छोटा सा गाँव मिला। गांव क्या था सहारियों की पर्ण-कुटीरों का समूह, जिसमें नङ्गे बालक और अधनङ्गे नर-नारी दूर्बल, श्यामकाय। केवल युवकों की आंखों में तेज। गांव के आसपास विस्तृत खुली हुई भूमि जंगल को काटकर कोयला बनाने के कारण विदेह सी हो गई थी। थोड़े से खेत खेती के योग्य, बहुत से कांस से ढके हुये। कांस फूल गया था। उसके फूल सूर्य की किरणों से ठठोली सी करते हुये मानव की मूढ़ता पर मानो हंस रहे थे।

जब मोटर गांव से ज़रा आगे निकली अन्जना ने गाँव की गरीबी को देखकर एक कराह छोड़ी, शायद फूस और पत्तों से ढके मकानों से कोई बदबू आई हो। देशराज से कहा, 'ये बिचारे इन जंगली घाटियों में मरते सड़ते रहते है। यदि शहरों में पहुंच जाय तो पेट भर खाने के लिये इन्हें मजदूरी मिल जाय और शहर में मजदूरों नौकरों का अकाल मिट जाय। सस्ते भी बहुत पड़ें।'

'ये लोग ईमानदार भी बहुत होते हैं। बड़े बहादुर और कट्टर।' देशराज बोला।

'शहरों में क्यों नहीं चले जाते ? यहाँ कन्द, मूल, फलों और कभी कभी मिल जाने वाले अनाज से तो कुछ ज्यादा ही पा जावेंगे वहाँ।'

'कमबख्त है। मूर्ख है। जिद्दी नम्बर एक। यहीं गड़ना-सड़ना पसन्द करते है।'

दोनों के लिये सहरियों की समस्या यहीं समाप्त हो गई। फिर जंगल और पहाड़ और फिर वैसा ही एक गांव। सूर्य की किरणों का तीखापन कम होता जा रहा था और सुनहलापन बढ़ता जा रहा था, वनराजि और भी अधिक ठाठदार—जैसे उन्हें उन झोपड़ीवालों या इन मोटर वालों से कोई भी सरोकार न हो।

दो पहाड़ों की एक दून में प्रवेश करते ही देशराज बोला, 'आ गये। आगे धवलसागर झील है।'

'मुझे भी याद है। झील की शान यहीं से शुरू हो गई है।' अन्जना ने हर्ष प्रकट किया।

दो पहाड़ों के बीच में चौरस था। पेड़ भी कम, क्योंकि धरातल चट्टानी था। मिट्टी कभी की बहकर झील में सरक चुकी थी। मार्ग एक ओर से पहाड़ के नीचे नीचे मोटे—तगड़े हरे—भरे पेड़ों में होकर मुड़ता हुआ गया था। जैसे ही मोड़ समाप्त हुई सामने विस्तृत धवलसागर झील। जहाँ से ये लोग आये थे वहाँ से दूनका ढाल, फिर तीनों ओर पहाड़। दूसरी दिशा में दो पहाड़ों का जोड़ कुछ नीचा पड़ गया था।

ढाल उसका झील की ओर था। झील के एक किनारे धवलसागर नामक गाँव भी था। गांव में एक पक्का मकान, कुछ खपड़ैल, बाँकी वे ही पर्ण-कुटियाँ। पक्का मकान एक ठाकुर का था जो पहले गाँव का मालिक था। अब उसकी केवल थोड़ी सी सीर थी। गाँव, दूर रहने वाले एक महाजन के घर चल दिया था।

बाईं ओर झील के जल का विस्तार। किरणें उसमें रमी जा रहीं थी। दाईं ओर पेड़ों की सघन झुरमुट। मोटर बहुत धीमी हुई।

अञ्जना को अचरच हुआ— राजा साहब का तो यहां कोई चिह्न-चाक नहीं!

'वह देखो मेरी दाईं तरफ़ उन पेड़ो के पीछे तम्बू खड़ा है और राजा साहब बढ़े चले आ रहे है। मैंने रास्ते में मोटर की लीकें देखी थी।' देशराज ने कहा।

दोनो उतर पड़े।

जवानी से कुछ आगे निकला, लम्बे छरेरे शरीर वाला, रीढ़ थोड़ी झुकी हुई, लम्बी सीधी नाक, उमेठी हुई मूंछें, लाल बड़ी आँख, खाकी बुशशर्ट और कत्थई मखमल की पतलून—यह था नाहरगढ़ का राजा बाघराज। कुछ क्षण अभिवादन और स्वागत की गूंजें उस घने जङ्गल और निश्शब्द धवलसागर के किनारे को गुंजाती रहीं।

जगनू ने सामान उतारा। सुर्ख सेवों की हरी पेटी की ओर बाघराज का ध्यान देशराज ने आकृष्ट किया, 'यह देखिये देवी जी के प्रयत्नों का फल। बढ़िया माल है।'

बाघराज हँसा,—'हाँ उनके चमत्कार का फल।'

अञ्जना ने अपने चमत्कार को और भी दमक थी,—'बड़ी मुश्किलों और जोखिमों में होकर आये है ये। इनके बचाने में भी बुद्धि लड़ानी पड़ी।'

उसकी चितवन में मद छलका।

राजा ने जगनू को आदेश दिया, 'सामान उस रावटी में रख दो। मोटर को उन पेड़ों के पीछे ले जाओ। वहीं हमारी लारी और सिपाही, नौकर हैं। तुम उन्हीं की छोलदारी में ठहरना।'

जगनू ने चुपचाप आदेश का पालन किया। सामान पास की रावटी में रख दिया गया। रावटी में चार खंड थे : एक बीच में, दो बगल में, एक पीछे। बीच वाले में टूटदार मेज़ कुर्सियाँ थीं, एक पलङ्ग। एक बगल वाले में, एक और दूसरे में, तीसरा चौथे में।

चाय आ गई। चाय लाने वाले दरबारी सेवकाचार के साथ बाहर चले गये।

'चाय के साथ सेव।' बाघराज ने अर्थपूर्ण कटाक्ष करके कहा।

'हां हां अभी लीजिये, लाये भी तो हम लोग आपके ही लिए हैं।'

अञ्जना विजयिनी मुस्कान के साथ बोल कर तुरंत खड़ी हो गई। तम्बू के द्वार की ओर मुंह करके एक आँख की त्योरी का इशारा किया और तम्बू के उस खण्ड में चली गई जहाँ उसका और देशराज का सामान रक्खा गया था।

देशराज ने बाहर खड़े नौकरों के लिये सहानुभूति पेश की,—'ये बिचारे काहे को खड़े रहें। ज़रूरत पड़ी तो बुला लेंगे।'

'हां हां, वैसे वे निजी स्टाफ़ के लोग हैं।' राजा ने उस सहानुभूति का साथ न देकर उन पर अपना विश्वास प्रकट किया।

निजी स्टाफ़ के लोगों ने एक दूसरे से बाहर के उजाले में मर्म की निगाहें बदलीं।

राजा ने उनसे कहा, 'जब जरूरत पड़ेगी, बुला लेंगे।'

वे लोग चले गये। अनुमान लगाया कि यह अप्सरा इन दोनों के जोड़ की कड़ी है, कुछ दाल में काले के लिये आई है।

अञ्जना थोड़े से सेव ले आई। सामने रखते ही महक़ फैलने लगी।

'जैसी आप स्वयं वैसे सेव,' बाघराज मुस्कराया।

अन्जना ने रावटी के द्वार की ओर ताका।

देशराज ने बतलाया,—'वे लोग चले गये हैं।

अन्जना स्वयं द्वार तक जाकर देख आई। नौकर चले गये थे पहरेदार थोड़ी दूर था।

सेव खाये जाने लगे। उनकी प्रशंसा हुई।

अन्जना ने कहा, 'अनेक कठोर परिस्थितियों से गुज़र कर इन्हें ला पाई हूँ।'

'सुनने के लिये कुतूहल है।' राजा उत्सुक हुआ।

'यहाँ नहीं। झील किनारे चलें, तब वहीं। सूर्यास्त के समय अच्छा लगेगा।' अन्जना ने मदभरी चितवन में सावधान किया।

चाय से निबट कर वे तीनो थोड़ी दूर झील किनारे एक चट्टान पर जा बैठे। पीछे घना जंगल था।

अस्ताचल जाने वाले सूर्य की रश्मियां झील की लहरों पर रङ्ग-बिरङ्गी रेखायें रचे जा रही थीं। चिड़ियां अपने नीड़ों को और मछलियाँ साँस लेने के लिये पानी के ऊपर बार बार आकर धीमी सी डुब्ब कर रही थीं। भुनगे आंखों पर और मच्छड़ खुले अंगों पर भनभनाकर आ रहे थे।

'खालिस माल कितना है पेटी में?' बाघराज ने पूछा।

देशराज ने तुरन्त उत्तर दिया, 'बीस सेर।'

अन्जना ने आंखें फिराकर पूर्ति की,—'बीस हज़ार रुपये का।'

'असल खरीद यानी असल पड़ता?' दूसरा प्रश्न।

अन्जना ने ब्योरा दिया,—'इकट्ठा करने का खर्च, कीमत, छोटी-मोटी रिश्वतें, मार्ग व्यय छै सौ रुपये सेर बैठा है, वैसे भाव तो हज़ार का है।'

जिस समय अन्जना ब्योरा दे रही थी, सूर्य की किरणें उसके रूप पर जिस कोण से पड़ रही थीं, उनसे वह अनाकर्षक, असुन्दर और

उच्चाटन करने वाली प्रतीत हो रहीं थीं। बाघराज को ऐसा ही लगा।

'माल साफ़ है या उसमें मिलावट है ?' तीसरा प्रश्न।

उत्तर मिला, 'बिलकुल स्वच्छ। बर्मा, मलाया, सिंगापूर, इन्डोचाइना कहीं के लिये भी, अपने बन्दरगाह वाले मित्र हजार के भाव ले लेंगे।'

'बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा,' राजा को कुछ अखर सा रहा था।

'यहां तक जो कुछ और जैसे मैंने कर पाया है उससे अब अधिक कुछ नहीं करना पड़ेगा,' अञ्जना ने कहा।

अञ्जना के चेहरे पर कोई मिठास न थी, पर कोकिल-कंठी थी; स्वर में प्रखरता नहीं आने दे रही थी।

राजा को घुलना पड़ा—'ठीक कहती हो। डेरे पर चलकर माल ले लूंगा। रुपये ले आया हूँ।'

देशराज ने हँसकर कहा, 'और सेव अपने राजा की नजर भेंट।'

वह भी हँसा, 'बीच में जिन्हें कोई भी नहीं पा सका।'

बाघराज ने उन परस्थितियों की कहानी पूछी जिनमें से निकल कर आने का अञ्जना ने संकेत किया था। अञ्जना ने बतलाया, किस तरह अपने रूप नखरे और संगीत के करिश्मों से भिन्न-भिन्न विभागों के कर्मचारियों को चरके दिये और धता बता आई।

सूर्यास्त हो गया। पहाड़ों के पीछे से और तलहटी में अँधियारा सिमटता चला आ रहा था। भुनगे कहीं जा चिपके थे और मच्छड़ कहर सा बरसा रहे थे। पहाड़ की चोटियों पर धीरे धीरे मन्द पड़ने वाला उजियाला ऊँघ सा रहा था।

वे तीनों चलने को हुये कि सघन पेड़ों के पीछे से बन्दूक लिये कारतूस कसे एक नाटा, तगड़ा, सांवला व्यक्ति इनके सामने आकर जुहार करके खड़ा हो गया। उन तीनों का पूर्व परिचित था। बाघराज ने साधारण संरक्षकता के भाव से, देशराज ने हँसकर और अञ्जना ने भीतर

भीतर सिकुड़ के उसका स्वागत किया। अञ्जना की आँखें ऐसी हो गईं जैसे गुलाब के फूल में से कोई काला कीड़ा निकल पड़ा हो।

बाघराज ने कहा, 'माल आ गया है, कालीसिंह जी। बन्दरगाह के पड़ौस तक पहुंचाने का काम तुम्हारा। वहाँ अपना आदमी रहेगा। दाम वसूल करके दे देगा।'

यह कालीसिंह था। कुख्यात डाकू। कई क़तल और डाके के अपराध उसके सिर थे। बड़े बड़े उससे थर्राते थे। पुलिस उसके पकड़ने या मारने के लिये बहुत सचेष्ट थी परन्तु अब तक सफल नहीं हो पाई थी। बाघराज का नातेदार होता था। ऊपर ऊपर देखने वाले को उस के चेहरे पर पाशविकता नहीं दरस सकती थी। कुरूप भी नहीं था। आँखें छोटी और पैनी। नथनों से भीतर की निर्दयता और ढ़ोड़ी से अदम्य निश्चय परख में आ सकता था।

'माल कब मिलेगा ?' कालीसिंह बोला। उसका स्वर मुलायम था।

'कल। शिकार में मिलूँगा,' बाघराज ने स्थान और समय बतलाया।

कालीसिंह ने जुहार किया और अञ्जना के गले पर आंख फेरता हुआ अदृश्य हो गया।

डेरे की ओर आते हुये देशराज ने कालीसिंह का यश बखाना—'छोटा सा क़द, साँचे में ढली देह, मीठी वाणी, संगीत का प्रेमी, कितना अदम्य और वीर !'

'हूँ, हूँ।' अञ्जना के मुह से निकला। वह सोच कुछ और रही थी।

'गजब का फुर्तीला और बहुत थोड़ा बोलने वाला,' बाघराज ने बात समाप्त करना चाही।

'जी ?' अञ्जना जैसे चौंक पड़ी हो।

बाघराज ने कहा, 'भोजन–ब्यालू के बाद कुछ गायन होगा न ?'

हँसकर बोली, 'थकी हुई हूँ, मन नहीं चाहता। फिर कभी सही।'

डेरे पर लालटेनों और मोमबत्तियों का प्रकाश कर दिया गया था। जब वहाँ पहुँचे तो आज्ञा पालन के लिये नौकरों को डेरे के बाहर पाया।

बाघराज ने आदेश दिया,—'आध घंटे बाद। अभी अपने तम्बू में जाओ।'

वे लोग चले गये।

'तो अब माल का भुगतान, फिर कुछ और।' देशराज ने सुझाया।

अन्जना प्रसन्न,—'हां, हां,।'

वे तीनो रावटी के उस खंड में गये जहां देशराज और अन्जना का सामान रक्खा था। अन्जना ने सेवों की हरी पेटी खोली, सेव बाहर निकाल कर रख दिये। पेटी के बीचों बीच एक और पेटी उसमें जड़ी थी। उसको खोलकर चिकने काग़ज़ों में लिपटे हुये बीस पिंड निकाले गये।

यह अफीम थी।

तौल-कांटा वहां था। बाघराज ने तौली। ठीक बीस सेर—'खालिस माल।' सेवों की महक उस समय शायद किसी को भी परेशान नहीं कर रही थी!

बाघराज अपने एक बड़े बक्से में से चमड़े की एक नुमायशी सन्दूक़ची लाया। और बारह हज़ार के नोट उन दोनों को गिन दिये।

मदभरी, तिरछी चितवन, उसकाने वाली मुस्कान और पञ्चम के स्वर में अन्जना ने बाघराज से कहा, 'और यह अटैची? सेव वाली हरी पेटी आप ले जाइये। माल उसी में रहे तो ठीक रहेगा।'

बाघराज सहमत था ही,—'आपके लिये ही अटैची लाया हूँ। हरी पेटी तो वैसे भी ले जाता। फल तो आप मेरे ही लिये लाई हैं न?'

'निःसन्देह,' अञ्जना की चितवन में और भी मद। देशराज भी बहुत प्रसन्न था। अञ्जना ने रुपये अटैची में रख लिये। बाघराज ने अफ़ीम के पिण्ड अपने बक्स में।

थोड़ी देर बाद ब्यालू हुई और फिर ऐकान्त में बातचीत—नौकर खाने पीने में लग गये। अञ्जना प्रेम का अभिनय सा कर रही थी। जैसे बाघराज कोई पशु हो और प्यार के साथ बलिभूमि पर ले जाना चाहती हो। बाघराज की हँसी और मुस्कान किसी मशीन की तरह चलती और बन्द होती। देशराज जानता था कि कोरा अभिनय है, जैसे किसी फ़िल्म के स्टूडियो में चलचित्र के निर्माण में होता है। बाघराज का मन भविष्य की उलझनों और समस्याओं की ओर खिच-खिच जा रहा था—पुलिस उसके यहां से हाल ही में लौटी थी, कालीसिंह की नाक के नीचे जैसा था, बारह हजार खजाने में से करवट ले गये थे और अब उस 'माल' को अधिक से अधिक दामों में खपाने की समस्या सामने थी।

'कालीसिंह को शायद आपकी ज़रूरत किसी समय पड़ जाय।' बाघराज ने अपनी एक समस्या के सुलझाव की बात अञ्जना से कही।

अञ्जना का भाव एकदम ठंडा पड़ने को हुआ। तो भी उसका कुछ अवशिष्ट बाँधे हुये बोली, 'कैसे?'

'आबकारी पुलिस इत्यादि के अफ़सरों को चकमा देकर माल निकाल ले जाने के लिये।'

'पर पहले तो कभी ज़रूरत नहीं पड़ी।'

'शायद आगे भी न पड़े, पर पुलिस अब कालीसिंह के पीछे पड़ गई है; वह अत्यन्त निडर और सावधान है। फिर भी आपका सहारा मिलता रहेगा तो उसकी छाया के साथ आपकी छाया मिलकर हमारे और उसके कारिन्दों को बहुत सहारा देती रहेगी।'

'मैं भी नहीं डरती। माल इकट्ठा करके इतनी बार मैं और देशराज यहाँ तक आये जो अधिक संकट की बात है। अब तो बन्दरगाह तक पहुँचना भर ही रह गया है।'

'हां–आं, मुझे कोई हठ नहीं परंतु अटक–भीर के समय के लिये आप यहीं कहीं पास पड़ोस में बनी रहें तो बहुत अच्छा होगा।'

अञ्जना का लुभावनापन लौट पड़ा––तिरछी मदीली चितवन, मुस्कान–गड़ने वाली।

बोली, 'जब तक हमारे कारिन्दे उधर उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम में माल का संग्रह करेंगे। मैं देशराज के साथ रहूँगी, कभी कभी आपके पास हो जाया करूँगी।'

बाघराज ने कहा, 'मेरा अहोभाग्य।' परन्तु शब्दों का भाव भीतर की तली से नहीं निकला था।

देशराज चुपचाप सिगरिट पी रहा था जैसे फ़िल्म निर्माण के समय कोई निर्देशक अपने किसी प्रिय पात्र के रंग-ढंग की परख कर रहा हो। सोचा अब मुझे कहना चाहिये :

'राजा साहब, हम तीनों दो दो लाख रुपये कर लें तो फिर कोई खुला व्यवसाय ढूँढें। आप कोई मिल खोलने जा रहे थे न ?'

'हां, परन्तु दो लाख रुपये से क्या बनता है ? उसके लिए तो दस बीस लाख भी कम बैठेंगे।'

'आपके पास पहले का जो बहुत सा होगा ?'

'ज़ेवर और जवाहरों में है—पुरखों के पराक्रम की निशानियां हैं। फिर बेचने में बदनामी। आप लोग क्या दो दो लाख पर ही संतोष करके बैठ जायेंगे ?'

'नहीं तो',––अञ्जना हँस पड़ी,––'यह तो कम से कम है।'

देशराज बोला, 'मतलब यह कि सङ्कट के काम जितनी जल्दी कम कर दिये जाय, उतना ही अच्छा।'

राजा को अफ़ीम के अवैध व्यवसाय के संकटों की चर्चा स्थगित करनी पड़ी। दूसरे मजेदार संकट की बात उठाई।

'यहां पड़ोस में शेर, भालू, जंगली भैंसे, बड़े खिसारे सुअर बहुतायत से हैं। कल हांके में चलो न।'

'कल हम लोग चले जाना चाहते हैं।'

'तब आज रात में बैठ लो मचान पर। मैंने पहले ही से सब तैयार कर रक्खे हैं। बग़ल वाली खांदी से जानवर निकलते हैं। बिजली की बैटरी और बत्तियों का प्रबन्ध है। एक मचान पर आप दोनों और एक पर मैं। सवेरे लौट पड़ेंगे।' बाघराज के स्वर में आग्रह था।

अञ्जना प्रयोजन भरी अँगड़ाई लेकर हँसी। उसकी इस क्रिया पर बाघराज की दृष्टि गई।'

बोली, 'दिन भर की थकी, मेरे लिए तो मेरे पलङ्ग का मचान भला। आप लोगों की इच्छा हो तो खेल आइये शिकार।'

उन दोनों ने अपनी हिलती डुलती इच्छा प्रकट की। अञ्जना ने उसे अपने प्रति शिष्टाचार माना।

कहा, 'पहरेदार तो हैं ही डेरे की रखवाली के लिये। आप लोग ज़रूर जावें। आपका स्टाफ़ भी तो जान जावे कि हम लोग यहां सेव खाने खिलाने मात्र के लिये जमा नहीं हुये हैं।'

उसको बड़ी सतर्कता के साथ बारह हज़ार की उस पेटी के रखवाली की पड़ रही थी—और वह शिकार के मचान पर कालीसिंह से मिलना भी नहीं चाहती थी, कौन ठीक शायद आ जावे, यद्यपि बाघराज ने 'काम के लिए' उसे दूसरे दिन बुला रक्खा था। फिर, गांठ की नक़द रक़म और वह 'माल' जिसके बिकने पर हिस्से का मुनाफ़ा भी मिलना था। पहरेदारों के भरोसे कौन छोड़े। कहीं ऊँघ गये तो—

बाघराज और देशराज शिकार के लिए चले गए। अञ्जना सावधानी के साथ रातभर सोती-जागती रही। प्रातः काल के उपरांत

वे दोनो मुंह डाले आ गये। जानवर मचानों के पास से नहीं निकले थे।

चाय पी कर अञ्जना और देशराज सुहाना के लिए चलने को हुये। एक दूसरे से हँसते हुये बिदा ली। अञ्जना ने बाघराज की आंखों में अपनी नुकीली चितवन और सजीली मुस्कान बिठलाई; शायद देशराज की निगाह बचाकर। पहले भी उसकी चितवन और मुस्कान को देखा था—कदाचित उतनी मात्रा में नहीं।

वे चल पड़े।

धूप तेज थी। जङ्गल पहाड़ की हवा ठंडी। सागौन के वृक्ष फूलों से लद रहे थे जैसे आने वाली शरद को, पाँवड़े डालकर, आकाश मार्ग से बुला रहे हों।

अञ्जना और देशराज एक बड़ी विजय के हर्ष में भविष्य के कार्यक्रम का ताना-बाना तैयार करते जा रहे थे।

ठंडी हवा में धूप की तेजी को डुबोकर बाघराज ने हांके का प्रबन्ध किया। उसके सङ्गी सोचते थे कि अञ्जना और देशराज हांके की शिकार में सहयोगी नहीं बने तो आये ही काहे के लिये थे? कालीसिंह ने भी बाघराज से यही पूछा था, जब वह जङ्गल में माल के भुगतान के लिये उससे अकेले में मिला। किसी को सन्तोषजनक उत्तर मिला और किसी को नहीं।

(५)

थोड़ा सा पानी बरस गया। धरती की छाती फूल उठी। जिन किसानों ने बोहने के लिये हल बखर से ज़मीन लौट-पौट कर पटेला देके एक सी कर ली थी उनको भी वह रिमझिम प्यारी लगी। जिनके खेतों का कलेजा कठोर था वे तो उतने से ही पानी में अमृत का सा घोल पागये। जैसे ही मिट्टी ताव पर आई, किसान बीज डालने के लिये बेचैन हो उठे। जिनके घर में बीज था उनकी बेचैनी उत्साह का ही एक रूप थी, पर थे ऐसे थोड़े ही। जिनकी गाँठ में कुछ नहीं था, बोहनी का निकट आने वाला समय काठ सा मार-मार जाने लगा। बीज तो था ही नहीं, पेट भरने के लिये भी अन्न की कमी डसने लगी। उन दोनों गाँवों में ऐसे किसान अधिकाँश थे।

देशराज के भांडार से बीज और खवाई के लिये अन्न बहुत समय से मिलता आया था, परन्तु जैसे जैसे स्वाधीनता प्राप्ति का आन्दोलन बढ़ा, बीज और खवाई के लिये अन्न देने के व्यवसाय की सीमायें सिकुड़ती चली गईं। स्वाधीनता प्राप्ति के दिन से तो वे सीमायें बहुत ही संकुचित हो गईं। जिन किसानों पर पूरा विश्वास था केवल उन्हें उस व्यवसाय का क्षेत्र बना लिया गया। अन्य किसानों के लिये थोड़े से ठोस किसान साहूकार बन गये।

हवेली के पिछवाड़े देशराज के गल्ले का भाण्डार था—टीन वाले टपरों के सामने लम्बा चौड़ा मैदान जो एक दीवार और फाटक से घिरा था। इस अहाते में उसका अन्न गोदाम था। सवेरा हो चुका था, मैदान में कुछ बैलगाड़ियाँ थीं और टपरों के नीचे अनाज के ढेरों पर लौ लगाये हुये बहुत से किसान, तौलने वाला और देशराज का कारिन्दा कुंजीलाल,—उतरती अवस्था का दुबला-पतला काईयां वहाँ बैठा था। कुंजीलाल के सामने बहीखाता था जिसके बँध पर सिन्दूर का मोटा स्वस्तिक चिह्न दूर से दिखलाई पड़ सकता था। निकट ही दावात कलम —किसी पुराने युग की स्मारक।

किसान ने अपनी जरूरत बतलाई। कुंजीलाल कारिन्दा ने संक्षेप में यथापात्र, बहस, डाँट फटकार की, तौलने वाले ने डाँड़ी मार मार कर तौल की और कारिन्दे ने बही में दर्ज कर ली। एक मन पीछे फिर भी पाँच सेर कम—दो सेर कारिन्दे का हक़ दस्तूर, एक सेर धर्मादाय में, एक सेर उस टैक्स के लिये जो सरकार ने मालगुजारी के ऊपर जिमींदारों पर लगाया था, एक सेर सूखी बैटरी वाले रेडियो के लिये जो देशराज ने खरीद कर हवेली में लगाया था—बस।

दमरू काठी ने लम्बी नाफ के तुचके नथने फैलाते हुये प्रतिवाद किया, 'रडुो की खबरें और ची ची चखचख मैं तो कभी सुनता ही नही, दूर जो रहता हूँ।'

दमरू खरा किसान था। कठ का स्वर भी बहुत मीठा न था।

'अरे भाई, सुनता मैं भी नही हूँ ससुरे को परन्तु और बहुत से सुनते है। राजा साहब अपने लिये तो लाये नही।'

'और यह धर्मादा क्या ? पहले तो नही लेते थे।'

'बड़ी मुश्किल है। धर्म पर नाक-भौं बिचकाते हो ! साधू, सन्त, मन्दिर, पुजारी, इन सब के लिये धर्मादाय है और ज़माने से लिया जा रहा है।'

'उधर डांड़ी मार ली, इधर तुमने दो सेर हड़प लिया !'

'ओ भगवान ! हक्क दस्तूर को हड़पना कहते हो !! जान पड़ता है बीज सवाई पर गल्ले का देना बन्द कर देना पड़ेगा। इन्हे देखो, बिकरम महते को, जिन बिचारों ने चुपचाप तुलदा लिया और आधी बात भी नहीं की।'

बिकरम मौज के साथ चिलम पी रहा था। कश खीचकर खांसते-खांसते बोला, 'अरे क्यों वैसे ही लगे हो, दमरू ? धरनीधर साहूकार के यहाँ जाओ तब पता चलेगा कैसे हँसते-हँसाते किसानों की खाल खरोचता रहता है।'

दमरू के मुंह से कुछ निकलना चाहता था कि उसने होठ दबोचकर गठड़ी बाँधी, गाड़ी पर रक्खी और चुपचाप चला गया।

'कुछ उजबक सा है' कारिन्दे ने दूसरे आसामी का खाता खोजते हुये कहा, 'पर है खरा। पूरी सवाई समेत दाना दाना लौटाता है।'

यह टीका अन्य किसानों की आलोचना को चुप करने के लिये हुई।

अनेक किसान तो चुपचाप लेकर चले गये, पर छदामी चमार अपने को न रोक सका। वह सुहाना के चमारों का मुखिया था जिनकी संख्या उस गाँव में प्रचुर थी।

गहरा सांवला रङ्ग, रग पट्ठे भरे और तने हुये, छितराये नथने, अधभूरे बाल। जब अनाज ले चुका, बोला, 'इन्होंने डाँड़ी मारी, तुमने अपना हक्क बटोरा, धरम करो तुम, नाज घटे हमारा। रड्डों का गाना सुनें दूसरे, कसर लगाई जाय हमारे पेट को! राजा से फ़रियाद करेंगे कि मिलता है छः पन्सेरी और सवाई समेत लौटाना पड़ता है दस पंसेरी। इस फ़सल चूके तो दस पंसेरी की साढ़े बारह दूसरी फ़सल पर!'

'हैं कैसा!' कारिन्दे ने उठते हुये क्रोध का दमन करके कहा, 'कैसा उल्टा-पुल्टा हिसाब लगाता है रे?'

वह कहता चला गया, 'अन्धेर मचा रक्खा है, अन्धेर! राजा से कहे बिना न रहेंगे।'

'बड़ा जड़ मूर्ख है! दस पंसेरी या पन्द्रह पंसेरी, जो कुछ भी लौटेगा मेरे या तौलने वाले के घर तो जायगा नहीं। हाय रे जुग! इन जैसों को कोई पंसेरी भर भी नाज उधार न देगा, सो मैं दे देता हूँ मनों। होम करते हाथ जलता है अब तो।'

कुंजीलाल ने अपना माथा ठोका।

उसी समय, हवेली की दूसरी ओर, बरगद वाले आँगन से रेडियो से गाने बजाने की ध्वनि आई। गाना होता रहा। कभी मन्द, कभी ऊँचे स्वरों में।

कुंजीलाल ने रेडियो की क़ीमत वसूली का औचित्य बतलाया,—'इस पर जो गाना बजाना हो रहा है अपने यहाँ कराना चाहो तो गाने वालों को हज़ारों रुपये देने पड़ें। एक बार के हज़ारों! और यहां, उस रेडियो का कान उमेठा नहीं कि मन चाहा सुन लो। वह भी मन पर एक सेर दे के! उसको यह गधा कहता है अन्धेर!!'

ग़ल्ले की नाप तौल होती रही। कोई फ़िल्मी गाना रेडियो पर चल रहा था जिसकी लय में खवाई और बीज लेने वालों के ऊँचे नीचे स्वर, गाड़ियों के जाने की खड़बड़, कभी समाकर और कभी ऊपर उठकर चिनौती सी दे रही थी।

जब वहाँ अकेला बिकरम रह गया, तब उसके किसी भाव ने भाषा पाई,—

'जब लगान के साथ रेडियो का चन्दा ले चुके, तब फ़िर यह मन पीछे एक सेर और क्यों काटते हो? मालिक सुनेंगे तो बिगड़ेंग।'

कुंजी ने बहीखाता समेटते हुये फुसलाया,—'अपने यहाँ पया* से तौल नहीं की जाती। जो ज़िमींदार या साहूकार पया से बीज खवाई देते हैं, नौ सेर वाले बर्तन से देते हैं और दस साढ़े दस सेर वाले से लेते हैं। अपने यहाँ काम बहुत साफ़ है। तराजू और बाँट से तौलते हैं। यह बिचारा (तौलने वाला कुछ दूरी पर जा बैठा था) क्या खाय? थोड़ी सी कोर कसर लगा देता है तो कौन सी बड़ी बात हुई। रेडियो का सालाना टैक्स देना पड़ता है जो गाँव की सेवा के लिये आया है। उसके लिये मन पीछे एक सेर ही तो है। भगवान किसानों को एक बीज का सौ करके देते हैं। और देखो महते, तुम्हारे गल्ले में से तो एक दाना भी नहीं काटा जाता। हमारा बहीखाता देख लो।'

बिकरम का समाधान हो गया। वह अपना अनाज लेकर चल दिया।

---

* पया १० सेर अनाज की तौल का बर्तन।

कारिन्दे ने बहीखाता बाँधा, बचे हुये अनाज में से कुछ तौलने वाले का अलग कर दिया, बाकी भांडार में रक्खा, अपने हक़ वाला गठड़ी में बँधवाया, तौलने वाले के हाथों अपनी गाड़ी में रखवाया और चलने को हुआ। तौलने वाले ने अपना बाँधा और चला गया। कारिन्दे का गाड़ीवान वहां न था। कारिन्दा क्षुब्ध होकर उसे स्पष्ट और अस्पष्ट गालियां देकर ठहर गया।

इतने में अहाते भीतर एक युवक आया। चेहरा मोहरा ठीक, देह चुस्त, आँखें छोटीं, पर जलती हुई सीं। ढीला पैजामा—पांयचा ज़रा फटा और मटमैला—अद्धीं कमीज़, बिखरे लहराते बाल, पैरों में चप्पल।

उसको देखते ही कुंजीलाल का क्रोध समाप्त हो गया।

'आओ भैया टहल, आओ। बैठोगे—चारपाई निकालूं ?,

टहलराम ने एक हाथ कमर पर रखकर गर्दन आगे की और दूसरे हाथ की मुट्ठी तान कर ज़हर बुझे स्वर में कहा, 'इन गरीबों का खून चूसकर मोटे पड़ने में लाज नहीं आती तुमको !'

झिझक और झेंप को दबाते हुये कुंजीलाल हँसा,—'अरे भाई मेरे सामने तुम्हारा जन्म हुआ था। कभी मोटापा देखा मेरे शरीर पर ?'

'दिया चौंतीस सेर अनाज और लिख मारा बहीखाते में चालीस सेर ! हक़ दस्तूर !! धर्मादाय !!! रेडियो का टैक्स !!!! और न जाने क्या क्या।'

'तुमने अंग्रेजी पढ़ली सो तुम्हारे लिये धर्म, कर्म, साधू, सन्त, मन्दिर पुजारी कुछ नहीं। सबको ही फांसी पर चढ़ाने को फिरते हो। इन गरीबों को बीज खवाई के लिये हम गल्ला न दें तो ये सब बिना मौत मर जायें—'

'अब तो तुम सरीखे मरेंगे बिना मौत, मुनीम जी। वह लाल लहर उठ रही है जो तुम सरीखे सबको समेट ले जायगी !'

'हः हः, मुनीम जीं तो कहा बेटा तुमने—'

'करो अपना बहीखाता सही, नहीं तो जाता हूँ देशराज बाबू के पास—'

'तो पहले अपनी माता जी—घाटी वाली—के पास जाओ जो छोटे पैमाने पर यही काम हलके से बहीखाते में बड़ी सफाई के साथ करती हैं—'

'गलत। झूठ।'

'झूठ नहीं है, भैया टहल बाबू। कभी आऊँगा तो पुछवा दूँगा।'

हवा का रुख इसी ओर होने के कारण रेडियो गान स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा। किसी फ़िल्म में गाये गये गीत की रङ्गीनी।'

कुंजीलाल ने तुरंत उसका ध्यान आकृष्ट किया, 'वाह! क्या भजन है!! कान पवित्र करने वाला। तुमने भैया उनको देखा ही होगा—वे यहाँ कई बार आई हैं। अरे वे—देवी जी अञ्जना। जैसा रूप वैसा ही गुण। क्या कमाल का गाती हैं। हमारे तो पुरखों ने भी वैसा कभी नहीं सुना। जाओ न हवेली। रेडियो सुनो, फिर उनका भी।'

टहल एक क्षण के लिये क्षोभ और ग्लानि के बीच में झूलसा गया। वह देशराज से शिकायत करने जा रहा था, कारिन्दे को धमकी दे चुका था। धमकी का कोई प्रभाव न हुआ—कहता है जाओ वहाँ,—गाना सुनने! कुंजीलाल के होठों पर मुस्कराहट!

टहल के मुंह से वाक्य फूट पड़ा,—'निर्लज्ज! निर्मम कहीं के!! जाता हूँ देशराज के पास तुम्हारी करतूत सुनाने।'

टहल जल्दी से चला गया।

कुंजीलाल ने मुंह बिदरा कर, गर्दन ऊपर की ओर झटकी, अहाते का फाटक बन्द किया और उपेक्षा के साथ घर का मार्ग पकड़ा।

(६)

बरगद की छाया में चबूतरे के ऊपर नये वार्निश वाली कई कुर्सियां और एक मेज़ जिस पर सूखी बैटरी वाला रेडियो सेट। एक कुर्सी पर अञ्जना बैठी थी, दूसरी पर देशराज। रेडियो से गायन हो रहा था। मेज़ पर एक ओर बढ़िया सिगरेट का डिब्बा रक्खा था। चबूतरे के नीचे गाँव के कुछ लोग बैठे थे। गाना तो जितना भी सुन और समझ रहे हों, आपस में बातें कर रहे थे और कभी कभी अञ्जना की भँवराली काली बिखरी हुई छोटी केश लटों पर आँख घुमा लेते थे। गाँव की स्त्रियाँ लम्बे केश और दीर्घ जूट रखती थीं और अञ्जना अपने जब-तब कटवा लिया करती थी। वह उसका केश कलाप था—जैसे चन्द्रमा की दो तिहाई गोलाई को छितराई हुई बदली ने घेर रक्खा हो।

देशराज ने देखा फाटक से टहलराम आ रहा है, पीछे पीछे छदामी। देखते ही भौंह सिकोड़ी, फिर दृष्टि दूसरी ओर कर ली, जैसे देखा ही न हो, मानो रेडियो संगीत में मग्न हो। जब टहलराम चबूतरे के निकट आ गया, देशराज यकायक मुड़ा। मुस्कान बरसादी। सारा आचरण आवभगत का।

'आओ भाई, आओ टहलबाबू।'

टहराम कुर्सी पर जा बैठा। देशराज ने रेडियो बन्द कर दिया।

टहलराम का परिचय अञ्जना को दिया,—'स्कूल में साथ साथ पढ़े हम दोनो, फिर कॉलेज में भी। इन्होंने सदा प्रथम श्रेणी में दर्जा पास किये, बी० ए० भी। फिर बड़े ओहदे के लिये परीक्षा में बैठे तो सरकार ने फ़ेल कर दिया, क्योंकि सरकार को ग़रीब नहीं सुहाते—'

देशराज ने सरकार की निन्दा कर ली और टहलराम की आर्थिक स्थिति भी सूचित करदी। कुछ और कहता, पर टहल ने बीच में टोक दिया। अञ्जना की ओर उन्मुख होकर बोला—

'देशराज जी के पिता जी ने मुझे पढ़ने के लिए उत्साहित किया था। ऊँचे पद पाने की परीक्षा के लिए उन्हीं के कहने से बैठा था

लेकिन मैं अपने गाँव में राजनीतिक और सामाजिक काम करना चाहता था, इसलिये बेमन होकर परीक्षा दी और चित्त हो गया।'

टहलराम हँसा। चबूतरे के नीचे खड़ा छदामी ज़ोर के साथ खांसा। टहल की हँसी तुरंत सिकुड़ गई।

टहलराम ने उससे कहा, 'चबूतरे पर बैठ जाओ।'

छदामी चबूतरे पर न आ कर, नीचे बैठ गया।

देशराज को खुटका हुआ—टहलराम अपने साथ कोई बला लाया है। आई बला को टालने या कम से कम हलका करने के लिये उसने परिहास का वातावरण रचने की कोशिश की।

'मैं तो खेल-खिलवाड़ में बहुत मगन रहा, इसलिए कभी तीसरी से दूसरी श्रेणी नहीं पाई और ये तो जब देखो तब पुस्तकों से चिपटे रहते थे। फिर लगा मुझे सङ्गीत का शौक़ और मिल गईं ये सङ्गीत-सरस्वती अञ्जना कुमारी—इन्हें जानते हो न टहल बाबू ?'

'देखा है, परंतु परस्पर परिचय आज के पहले कभी नहीं हुआ।'

'इन्होंने देश भर में प्राचीन शुद्ध संगीत के प्रचार का बीड़ा उठाया है'

'जितना बन पड़ता है, करती हूँ। साथियों की ज़रूरत है।'

'मैं भी इनके साथ घिसट रहा हूँ। टहल बाबू, आप भी अपने स्कूल में शुद्ध संगीत का आरम्भ कराओ भाई।'

'क्या आपका कोई स्कूल है ?' अञ्जना ने मीठे स्वर और शिष्ट ढंग से पूछा।

टहलराम अपने सिद्धांत की बात कहने में रुखाई, पैनेपन, दृढ़ता और कड़वाहट में कभी कसर नहीं लगाता था।

बोला, 'पास के गाँव बाँगुर्दन में, जहाँ मेरा घर है, एक स्कूल खोल रक्खा है। समाज की सेवा का व्रत लिया है और यही बालक बालिकाओं को भी सिखलाता हूँ। जिसे आप लोग शुद्ध संगीत कहते हैं वह

केवल धन-सम्पदा वालों के ऐश की चीज़ है। जनता का उससे कोई सम्बन्ध नहीं।'

अञ्जना को ठेस सी लगी। ठेस को उसने अपनी मृदुल मुस्कान में घोला। मदभरी चितवन अर्ध-मुकलित की। मानो यह कह कर विजय पा रही हो—'सबको अपने अपने मत के अनुसरण का अधिकार है।

देशराज ने हँस कर ठेका सा दिया, 'ये अराजकतावादी हैं। अपने वाद के खरे।'

'मैं अराजक नहीं, समूहवादी हूँ; रूढ़ियों के संहार और वर्ग-संघर्ष में विश्वास करने वाला, पुनरुत्थानवादियों का घोर विरोधी—'

देशराज हँसा।

'एक ही बात है, कोई अन्तर नहीं।'

'कैसे नहीं? सम्पत्तिवादी अन्तर न देख पावें, यह और बात है।'

अबकी बार छदामी ज़ोर के साथ खांसा।

'पर हैं ये भीतर बाहर एक से साफ़', देशराज ने छदामी की खांसी को दबाने का प्रयत्न किया, 'टहल बाबू, एक गीत सुनोगे अञ्जना देवी का? वैसा गीत नहीं जिससे तुम्हारी अनबन है, बल्कि लोक-गीत, जनता का गीत।'

छदामी खड़ा हो गया।

टहलराम ने तीखे कंठ से कहा, 'मैं गाना बाना सुनने के लिए नहीं आया हूँ। पहले भूखों को भोजन मिले, तब कहीं उन्हें कुछ और सूझे। यह गायन-वादन सब पलायनवाद है। जनता को अफ़ीम खिलाने जैसा।'

अञ्जना को लगा जैसे वह कुर्सी में धँसी जा रही हो।

'आप अपने सिद्धांत को समय कुसमय प्रकट करने से नहीं चूकते। एक हम हैं जो सब तरह की बात पी डालने के तैयार रहते हैं,' देशराज ने आहत-मर्मज्ञ की तरह कहा।

टहलराम ने जारी रक्खा,—मैं आपके कारिन्दे की शिकायत करने आया हूँ। इन ग़रीब दुखियों को बीज और खवाई के लिये गल्ले की ज़रूरत पड़ती है। कारिन्दा मुश्किल से चौंतीस सेर अनाज देता है, बही में मन भर लिख लेता है और आने वाली फसल पर, यानी तीन चार महीने बाद ही, चौंतीस सेर का बावन, चव्वन सेर वसूल करता है। अत्याचार की हद हो गई।'

अञ्जना बोली, 'मैं अपने निवास स्थान पर जा रही हूँ। कुछ पढ़ूंगी।' टहलराम की रिवाजी नमस्ते लेकर अञ्जना अथिति सदन में चली गई।

'मैं कारिन्दे से बात करूँगा,' देशराज ने कहा।

देशराज के शान्त स्वर से घोर असन्तोष बटोरकर टहलराम तड़का, 'क्या आपने यह सब बेक़ायदा काम करने की अनुमति कारिन्दे को दे रक्खी है ? क्या आपको मालूम है कि थोड़ी ही देर पहले इस छदामी से और दमरू इत्यादि ग़रीबों से कारिन्दे ने अपना हक़दस्तूर, आपके रेडियो सैट का टैक्स, धर्मादाय और न जाने क्या क्या काटकर वसूल किया है ?'

'क्यों रे छदामी ?' देशराज ने पूछा।

'हाँ सरकार।'

'तो तुम हमारे यहाँ से लेने ही क्यों जाते हो ? बाबू टहलराम की माता जी भी तो गल्ले का लेन-देन करती हैं, उन्हीं से क्यों नहीं लेते ?'

छदामी चुप। टहलराम के आग सी लग गई। उठ खड़ा हुआ।

बोला, 'लेकिन ऐसी बेईमानी कोई नहीं करता। यदि आप कारिन्दे को नहीं रोकेंगे तो जल्दी वह दिन आ रहा है जब आपको बेभाव पछताना पड़ेगा।'

'कारिन्दे से बात करूँगा।' देशराज ने बहुत संयम के साथ दुहराया।

'कर लेना बात। चलो छदामी। जितना पाया है फ़सल के समय, उससे एक दाना भी ज्यादा मत देना।'

टहलराम चल दिया। छदामी जरा सा ठिटका। वह नहीं चाहता था कि बात इतनी बढ़े। उसने नम्रता के साथ देशराज की ओर देखा। उसे देशराज की आँखें जलती सी जान पड़ीं। वह धीरे धीरे चला गया।

देशराज ने चबूतरे के नीचे बैठे ग्रामीणों को सम्बोधन किया, 'देखा तुमने ? कितना इतराते हैं। हमारे पिता जी ने इनके पढ़ाने-लिखाने पर उतना खर्च न किया होता तो आज ये क्या करते होते—' भीतर का क्रोध सब ऊपर आ गया।

ग्रामीणों में से किसी ने कहा, 'अरे ये तो वैसे ही बकते रहते हैं।' कोई बोला, 'आधे सिड़ी हैं।' किसी ने कुछ, किसी ने कुछ मनुहर की।

उसी समय विक्रम आया। देशराज के मन ने लौट खाई। बिक्रम का कुछ असाधारण स्वागत किया। बिक्रम ने अपने को कुछ अधिक उँचाई पर अवगत किया।

'आओ भाई बिक्रम, आओ।'

बिक्रम चबूतरे पर बैठ गया।

देशराज ने उन ग्रामीणों की ओर मुंह फेरकर कहा, 'एक ये हैं जिन्हें टहलराम अपढ़-कुपढ़ कहते हैं और समझते हैं, पर जो कितने भले और सबके काम में आने वाले जीव है।'

वे बिक्रम को पहिचानते थे, परन्तु यह भी जानते थे कि वह जो करता है, परिस्थितियों में पड़कर, सभी वैसा करते रहते हैं। उसके सम्बन्ध में कुछ कहना भी चाहते तो कह नहीं सकते थे, क्योंकि देशराज का पिट्ठू था और ये कहीं न कहीं देशराज के दबे थे।

बिक्रम को भास गया कि टहलराम से कुछ खटक गई है। उसने अपने अनुमान को साकार किया,—'अभी आये तो थे टहलू।' और देशराज से कुछ सुनने की प्रतीक्षा करने लगा।

देशराज ने टहलराम की बात अपने रोष में सानकर सुनाई और अपनी सफ़ाई दी,—'मुझे नहीं मालूम कुंजीलाल कारिन्दा ने क्या किया है। मुझे इतना समय ही नहीं मिलता कि सब बातों की जांच पड़ताल करता रहूँ। टहलराम छदमिया को लेकर बीज खवाई की तौल के बारे में कारिन्दे की शिकायत करने आये थे।'

बिक्रम बोला, 'मेरे सामने की बात है। मैंने भी बीज और खवाई के लिये गल्ला लिया था। मेरा तो एक दाना भी नहीं काटा और न कई एकों का। जो ना दिहन्दे हैं, जैसे छदामी, उन पर तो अंकुश रखना ही पड़ेगा।'

एक खेत की मेड़ को लेअर छदामी और बिक्रम में घोर वैमनस्य था।

जगनू तेजी के साथ आकर बोला, 'मालिक, मुड़े सींगवाली भैंस मर गई है। चमारों से लाश उठा ले जाने के लिये कहा तो उन्होंने इन्कार दिया।'

देशराज ने चिल्लाकर कहा, 'कौनसी भैंस ? कैसे मर गई ? कब मर गई ?'

'बुड्ढी भैंस जो चल फिर नहीं सकती थी।' उसने उत्तर दिया।

देशराज ने अपना पूरा गुस्सा उतारा,—'तेरे बाप का क्या गया ? अभी वह एक दो बिहान और दे सकती थी।'

जगनू का चेहरा नहीं बिगड़ा। वह गाड़ी या हल के बैल की तरह का नोकर था जिसको खाना, पीना, गाली, डाँट-फटकार इत्यादि भरपूर मिलते रहते थे और फिर भी काम करता रहता था।

बिक्रम बीच में पड़ा,—'लाश कहां पड़ी है, जगनू ?'

उसने बतलाया, 'हवेली के पीछे।'

झल्लाहट में, देशराज ने कहा,—'समय पर चारा-पानी नहीं देता था; मरती नहीं तो क्या अमर बनी रहती ?'

जगनू नत-मस्तक खड़ा था।

बिक्रम ने शान्ति बिखेरी,—'भैंसों पर इस साल किसी रोग या देवता का कोप है। बहुत दिन से घुलसी रही थी। बुढ़ापे ने आ घेरा था। पर हां, खली, हरी घास, दिन में दो तीन बार पानी पीने को मिलता तो कुछ दिनों और जी लेती। शायद देवता का कोप हो।'

जगनू का काम भैंसों की देखभाल करने का न था, पर देख-भाल करने वाले महींदारों के नियन्त्रण का कुछ भार अवश्य उस पर था।

धीमे स्वर में देशराज ने कहा, 'अब खड़ा क्यों है ? लाश के हटवाने का बन्दोबस्त कर।'

'वही तो मालिक, वही तो कहने आया था। चमारों के मुखिया छदामी ने मना कर दिया है।'

'क्यों ?'

'छदामी कहता है कि जात की पंचायत हो गई है। लाश नहीं उठायेंगे, क्योंकि खाल की अधोही माँगी जाती है।'

'कितने ढीठ हो गये हैं ये लोग। सब ब्राह्मण, ठाकुर बनना चाहते हैं ! हजारों लाखों बरस के रीतिरिवाज एक दिन में मिटा डालना चाहते है !!'

चबूतरे के नीचे जो लोग बैठे थे उनमें से एक बोला, 'नहीं मालिक। हम लोग जाकर मिसल लगवाये देते हैं। चलो जगनू हमारे साथ।'

वे सब जगनू को लेकर चले गये। बिक्रम भी जाने लगा। देशराज ने रोक लिया। वह बिक्रम को अपने और अधिक निकट लाना चाहता था। बोला, 'कालीसिंह से इन कमबख्तों को मैं ही बचाये हुये हूँ। एक ये हैं जो जरा जरा सी बात पर ऐंठते अकड़ते हैं।'

कालीसिंह के नाम से तो यमराज भी कांपते हैं। आपके हथियार हम सबको रखाये हैं।'

'हथियारों की वह बिलकुल परवाह नहीं करता।' फिर देशराज ने बहुत धीरे धीरे उसके कान में कहा, 'कुछ अपना पुराना नाम, कुछ दूर का रिस्ता वास्ता, कुछ सलूक। वे और उसके गिरोह वाले अपने लोग

को कभी नहीं सताते। ज़रूरत पड़ने पर दीन दुखियों की मदद करते हैं। ऊँची जाति की कुआंरी कन्याओं के ब्याह में दान-दहेज तक दे आते हैं।'

विक्रम को अपने अनेक शत्रुओं का स्मरण हो आया—छदामी जिससे ज़मीन का झगड़ा था विशेषकर आंखों के सामने फिर गया—अटक पड़ने पर कालीसिंह मेरी सहायता कर सकता है। कालीसिंह के रहस्य में देशराज के साथ अपने को पाकर बिक्रम को फुरेरू आ गई।

'राजा, एक तो हम आपके थोड़े से कट्टर लोग ही इन सब को अकल ठिकाने लगाने के लिये बहुत हैं और यदि वैसा ही कोई मौक़ा आया तो देख लेंगे। बदमाशों को ठीक तो जरूर करना है।'

देशराज ने अपना अभ्यास-गत संयम फिर पा लिया। विषयान्तर करके बोला, 'अधोटी के बारे में हाईकोर्ट के फैसले हैं। कोई बड़ी रक़म नहीं पल्ले पड़ती परन्तु रीति रिवाज तो देवताओं की तरह पूजनीय होते हैं।'

बिक्रम ने कहा, 'हाँ मालिक।' परन्तु वह सोच कुछ और रहा था —कहीं कालीसिंह को मैं भी अपना बना लूं!'

[७]

सुहाना गाँव में देशराज की 'हवेली' से दूर, धरनीधर का पक्का मकान था। बाहर उसारा, भीतर चबूतरे वाली लम्बी पौर। पौर के ऊपर अटारी और छत।

पौर के चबूतरे पर मैला फ़र्श बिछा था और उस पर सफ़ेद तकिया था। धरनीधर बहीखाते लिये बैठा था। वह युवावस्था में था। रंग रूप अच्छा, आँखें ज़रा बड़ीं और पैनी। चबूतरे पर एक आसामी बैठा था। नीचे कई।

चबूतरे पर जो बैठा था उसका नाम बटोले था। उससे धरनीधर ने कहा, 'कह चुका हूँ कि ब्याह शादी में व्यर्थ व्यय बिलकुल नहीं करना चाहिये। मैं ब्याज दर कम लगाता हूँ तो इसका यह मतलब नहीं कि अपना घर फूक डालो।'

उसकी ब्याज दर एक पैसा रुपया यही न थी, परन्तु अधेला रुपया धर्मादाय और अधेला रुपया समाज-सुधार, राजनीतिक आन्दोलन इत्यादि के लिये भी लेता था। लोग देते थे, क्यों कि वह खर्च भी तो करता था। और खरी-खोटी सुनाते तो वह हँस देता था।

बटोले कड़वे स्वभाव का था परन्तु धरनीधर गाँव के एक दल का नेता भी था और अपने दल के आसामियों को ज़रूरत पड़ने पर बड़ी रक़म तक ऋण पर दे देता था। तो बटोले ने चुटकी काटी,—'हमें तो ब्याज दर तीन रुपया दो आना सैकड़ा महीने की पड़ती है।'

'इसमें से मेरे पल्ले कितना पड़ता है ? देश, समाज और तुम्हारे हीं काम में तो इसका बहुत सा भाग लग जाता है। देशराज को तो देखो, क्या क्या करते हैं !'

देशराज के नाम पर वे सब भनभना उठे।

'वहां तो लूट मार होती है,' बटोले ने जेब में रुपये संभाल कर रखते हुये समर्थन किया।

चबूतरे के नीचे बैठे लोगों में एक दमरू था। चुप्पा, सक्रिय, मांसल, गठीला।

नीचा सिर किये प्रखर स्वर में बोला, 'डाकू है।'

धरनीधर ने बहीखाता संभाला। सब आसामियों को रुपये दिये, रुक्के लिखवाये और बीच बीच में समाज सुधार और राजनीति की चर्चा करता रहा—

'हम सब ने इन्हें इतनी मान्यता दे रक्खी है। उचित से बहुत अधिक। ज़मींदारी समाप्त हो रही है, कन्धों के ऊपर से लदा हुआ जुआं उतार फेको और संगठित हो जाओ। किसी की भी हिम्मत अन्याय अत्याचार करने की न पड़ेगी। जनता मिलकर बड़े बड़े राज्यों तक को लौट-पौट देती है, ये तो ज़मींदार ही हैं जो कारिन्दों और नौकरों के बल पर टिके हैं।'

वे सब साहूकार में कुछ अपनापन पा रहे थे और मज़े में बातें कर रहे थे। चिलम और बीड़ी का आयोजन था। ज़मींदार के यहां वाला अन्तर धरनीधर के घर नहीं था।

रुपया लेकर वे सब चले गये और धरनीधर बहीखाता एक ओर रखके तकिया के सहारे लेटकर विश्राम करने लगा। कुछ आने वालों की आहट बाहर से सुनाई पड़ी। शायद कर्ज़ लेने वाले आ रहे हों। पूरा भरना नहीं भरा था। एक फ़सल के ब्याज-बट्टे का संयोग हो जावे, तभी चैन मिले। दरवाज़े के पास जो कण्ठस्वर सुनाई पड़ा उससे उत्साह नरम पड़ गया।

टहलराम कह रहा था,—'उन्हें न क़ानून की परवाह है न नीति की।'

वह भीतर आ गया और उसके साथ छदामी, दमरू और बटोले, बनमाली कुछ क्षण पीछे आया।

धरनीधर ने अभिवादन किया। बनमाली, बटोले और टहलराम चबूतरे पर बैठ गये, बाकी नीचे। छदामी ने चिलम संजोई।

टहलराम ने चर्चा बढ़ाई,—'देशराज बेगार फिर जारी करना चाहते हैं। दोनो गांवों की जनता के साथ कूड़े कर्कट सरीखा व्यवहार किया जा रहा है। उनके अत्याचारों को रोकने के लिये हम सबको एक राय और एक आवाज़ के साथ कोई कड़ा कदम उठाना पड़ेगा।'

'कहो बटोले दादा, कहो भाई दमरू, अभी थोड़ी देर पहले मैं तुम लोगों को यही समझा रहा था न ?' धरनीधर ने कहा।

दमरू देखता रहा। बटोले ने हामी का सिर हिलाया। टहलराम का जोश गर्मी पर था।

'केवल समझने से क्या होना जाना है ? काम करने का समय आ गया है।' टहलराम ने ज़रा उचट कर चबूतरे के नीचे पैर लटका लिये। ढीली मोहरी के पैजामे से भागते हुये से पैरों को हिलाने लगा।

'क्या ?' धरनीधर ने पूछा।

'तो तुम्हें कुछ नहीं मालूम ?'

बनमाली को बोलने की आवश्यकता जान पड़ी—'नहीं तो। क्या कोई दुर्घटना हो गई है ?'

टहलराम की आंख छदामी पर गई। वह तमाखू पी रहा था।

टहलराम बोला, 'देशराज की एक भैंस मर गई है। लाश उनके घर के पीछे पड़ी है। उसे उठवाना चाहते हैं। अधोटी लेंगे। बीज और खवाई के गल्ले में अलग लूटते हैं। शिकायत के लिये छदामी के साथ गया। अनसुनी करदी। मैं इनके साथ लौटा और बिरादरी की पञ्चायत जुड़वाई। तै कराया कि ऐसे अत्याचारी का कामकाज बन्द कर दो। उसी समय उनका नौकर जगनुआ भैंस की लाश उठवाने के लिये आया। कहलवा दिया कि नहीं उठावेंगे।'

बनमाली नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ रखना चाहता था,—

'लाश पड़ी रही तो सड़ेगी और गांवों में बीमारियां फैलेंगी; पर देशराज को अधोटी नहीं दी जायगी।'

दमरू को चिलम देते हुये छदामी बोला, 'हम लोग किसी हालत में भी नहीं उठाने के लाश को।'

धरनीधर ने सबसे ऊपर पहुँचाने का प्रयास किया,—'बेशक। वे दाम भी दें तो लाश को मत उठाओ।'

पर बनमाली उसके भी ऊपर निकल गया,—'मैं कहता हूँ यह काम हम लोगों को करना चाहिये। चलो, हम सब मिल कर उसे गांव बाहर दूर डाल आवें और अछूतवाद को दफ़ना आवें।'

छदामी ने उन सबके नेतृत्व पर छपके से डाल दिये,—'आप क्यों करो? हम लोग लाश उठा ले जायेंगे, पर अधोटी या बेगार नहीं देंगे।'

'क्योंकि उसका चमड़ा कम से कम पन्द्रह रुपये में बिकेगा।' डॉक्टर सनेहीलाल ने पौर में पैर देते ही कहा। आयु लगभग तीस वर्ष की। रोबीला चेहरा, आंखों में दर्प। सनेहीलाल को आदर के साथ चबूतरे पर बिठला लिया गया। रहने वाला ज़िले के सदर स्थान का था। डॉक्टरी परीक्षा पास करके सुहाना में आ बसा था। देशराज से लखनऊ में परिचय हुआ था। छोटी सी पूंजी लगाकर दवाखाना खोल लिया। थोड़ी फ़ीस, हलके से नफ़े के साथ दवा के दाम और मन लगा कर काम करने के साथ सेवा का भाव। लोकप्रियता के संग्रह की वासना न रखते हुये भी वह जनप्रिय हो गया था।

'लेकिन पन्द्रह में से साढ़े सात पर नियत देशराज की जो है।' टहलराम हँसकर बोला।

'मौजी जीव है।' सनेहीलाल ने कहा।

धरनीधर ने परिहास के वातावरण की रचना के साथ अपना सिक्का बिठलाने का प्रयत्न किया,—'तो वह जो लखनऊ से आई हैं अञ्जना या रञ्जना, उनको और अपने नौकरों को लेकर एक मौज और कर देखें—लाश को सब मिलकर उठा ले जावें।'

सनेहीलाल गंभीर हो गया।

टहलराम ने बात को दूसरी दिशा दी,—'वह पुनरुत्थानवादिनी है,—अधमरे प्राचीन की सिसकती हुई लाश में प्राण फूंकने की कोशिश करती फिरती हैं।'

सनेहीलाल ने धरनीधर के भद्दे व्यङ्ग को दबा देने के लिये यह प्रसङ्ग अच्छा समझा।

'यदि प्राचीन में कुछ अच्छा है तो क्या प्राचीन होने ही के कारण उसे नष्ट कर देना चाहिये ?' वह मुस्कराया।

'नया जीवन, नई लहर, प्रगति, नया संवेग, उस प्राचीन की श्रद्धा और पूजा के ढकोसलों की जकड़ में ही तो रुँध रुँध जा रहे हैं।' टहलराम ने किसी पुस्तक या मासिक पत्रिका में पढ़े हुये उद्धरण को ज्यों का त्यों पेश किया।

बनमाली ने देखा पार्टीवाद और सिद्धान्त विवाद का बखेड़ा खड़ा होने वाला है। तुरन्त बोला, 'क्षमा कीजियेगा, यह अवसर बहस का नहीं है। क्या करना है, इसे तै करिये।'

'अत्याचार की नाक में नकेल डालनी है,' धरनीधर ने पुट दी।

सनेहीलाल ने प्रतिवाद की मुस्कान को बनाये रखने का प्रयास करते हुये कहा, 'तो किसी के व्यक्तिगत जीवन या निजी रहन-सहन पर चोट बिना किये हुये ही बात चलानी चाहिये।

धरनीधर को क्षोभ हुआ। टहलराम ने अपने भीतर के प्रतिवाद को व्यक्त कर डाला,—'डॉक्टर साहब देशराज के घरू डॉक्टर हैं। ये उनको नाराज नहीं कर सकते। फ़ीस जो मारी जायगी।'

सनेहीलाल खिलखिला पड़ा।

'यह है आपका प्रगतिवाद !'

फिर यकायक गम्भीर होकर बोला, 'उनको डॉक्टर मिल सकते हैं, मुझे मरीज। पेट भी मेरा बड़ा नहीं है, थोड़े में ही काम चला लेता हूँ। खैर—मैं आपकी हरएक विवेक सम्मत योजना में शामिल रहूँगा, उसी की चर्चा कीजिये। शायद इसी के लिये मुझे बुलवाया गया है।'

सनेहीलाल बिना बुलाये नहीं आया था।

बनमाली ने चर्चा का सूत अपने हाथ में लिया—

'मेरी राय है कि दोनों गाँवों का एक जलूस निकाला जाय। 'अछूत वाद मुर्दाबाद' के नारे लगाये जावें और न केवल आज की समस्या का हल देशराज से तलब किया जावे बल्कि अन्य मामलों और शिकायतों को भी रफ़ा करवा लिया जावे।'

बटोले ने समर्थन किया।

धरनीधर बोला, 'उनके दरवाज़े सभा की जाय और धरना दिया जावे। वैसे तो वे मानने के नहीं।'

टहलराम ने धरनीधर का अनुमोदन किया।

सनेहीलाल ने कहा, 'जलूस और धरना, सब अतिशयता के रूप हैं, बातचीत करके मामले को निबटवा लीजिये,—जो गुड़ देवे से मरे तो बिस न दीजिये ताहि।'

उसी समय इक आदमी ने आकर संदेशा दिया,—'राजा साहब के महींदार भैंस उठाये लिये जा रहे हैं। वे ही उसकी खाल भी ले लेंगे।'

'ले तो लेंगे ?' छदामी चिल्लाया,—'हम लोग उन सबको न केवल गाँव बिरादरी से बन्द कर देंगे बल्कि उनका खोपड़ा भी फोड़ देंगे। हम उठायेंगे लाश और अधोटी के नाम से कानी कौड़ी भी न देंगे।'

छदामी उठ खड़ा हुआ। उसकी जाति वाले उसके साथ।

टहलराम ने टोका,—'कहाँ जाते हो ? ठहरो। जलूस निकलेगा, सभा होगी—'

छदामी कड़का,—'पहले उन जमींदारों का कचूमर तो निकाल दें जो हमारा हक्क मारने जा रहे हैं।'

बनमाली ने शान्त करते हुये कहा, 'ऐसे नहीं। जत्था बांधकर चलना चाहिये। हम सब साथ रहेंगे। बिना किसी लड़ाई झगड़े के तुम्हारा काम बन जायगा। बुलाओ सब लोगों को और निकालो जलूस।'

छदामी को मानना पड़ा।

सनेहीलाल ने कहा, 'मैं जलूस-वलूस व्यर्थ समझता हूँ, इसलिये मैं जत्थे में नहीं जाऊँगा।'

'मैं तो जानता था,' धरनीधर ने छींटा कसा।

सनेहीलाल जाते जाते बोला, 'फिर भी जब जिस समय मेरी सेवा की ज़रूरत पड़े, तैयार रहूँगा।

वे लोग जलूस की तैयारी में जुट गये।

परन्तु जलूस नहीं बन पाया क्योंकि छदामी और उसके साथी जलूस वालों के विलम्ब के कारण अकुला उठे। उन्होंने देशराज के उन महीं-दारों पर हल्ला बोल दिया जो लाश उठाकर गाँव बाहर लिये जा रहे थे। थोड़ी सी मारपीट हुई, किसी के हाथ पैर या खोपड़े नहीं टूटे। महीं-दार भाग गये। छदामी और उसका दल विजयोल्लास में मस्त होकर गाँव बाहर भैंस के छीलने में लग गये। काफी समय निकल गया इस-लिये बनमाली इत्यादि ने जलूस को दूसरे दिन के लिये स्थगित कर दिया।

देशराज भयभीत नहीं हुआ।

सन्ध्या के बाद ही उसने एक काम पर अपने आदमी जुटा दिये। पिटे हुए महिदारों का उस काम में मन लगा। गांव से थोड़ी दूर एक छोटा सा ज़िमींदारी जङ्गल था। सरकारी जंगल की लकड़ी तक जिन लोगों की पहुंच नहीं हो पाती थी, उन लोगों का काम इस जंगल से चलना था। इनमें अधिकांश छदामी के मुहल्ले के लोग थे। रात भर में काट डाला गया और भोर होने के पहले कटी हुई लकड़ी ढुलकर हवेली के चौड़े आँगन के एक कौने में रखवा ली गई। अब देखें, हल बखर के लिये लकड़ी कहाँ से लाते हैं।

सरकार ने एक आदेश कुछ महीनों पहले निकाला था कि ज़िमींदारी जंगलों को भी कोई न काटे। परन्तु देशराज ने सुन रक्खा था कि बहुत

से जिमींदारों ने जंगल कटवा डाले है और उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सका।

कटवाने और ढुलवाने में बिक्रम ने भी देशराज की सहायता की। जब उसने सकुचकर सरकार के आदेश का स्मरण कराया था तब देशराज ने कहा था, 'सरकार के बाप का नहीं है, हमारे तुम्हारे बाप–दादों का है।'

बिक्रम जान गया था कि देशराज के साहस के पीछे कौन सा सहारा है।

देशराज रात में बहुत कम सो पाया था। भोर होने के उपरान्त चबूतरे पर जमुहाइयों के साथ सिगरिट फूंक रहा था कि टहलराम आ गया। देशराज विचलित नहीं हुआ। कुर्सी पर आसन ग्रहण करने की शिष्टता दिखलाई। टहल नहीं बैठा।

खड़े खड़े ही बोला, 'हद हो गई! हद हो गई!!

'किस बात की?' देशराज के स्वर में ठंडक थी।

टहलराम ने कटी हुई लकड़ियों की ओर सङ्केत करते हुये, जिनमें लगी हुई हरे पत्ते की टेहनियां रो सी रही थी, कहा, 'आप नीति की तो परवाह करते ही नहीं हैं, कानून की अवहेलना करते हैं!

'किस कानून की!'

'सरकार के उस कानून की जिसके द्वारा पेड़ों का काटना बन्द कर दिया गया है।'

'अच्छा! जो सरकार को दिन रात गालियां देते रहते हैं वे भी आज सरकारकी दुहाई देने लगे!'

'मैं आपको सावधान करने आया हूं—अन्तिमबार। आपके अत्याचारों के कारण जनता खलबला उठी है।'

'बौखलाने वालों का इलाज मेरे हाथ में तो है नहीं।'

टहलराम की बाहें फड़क उठीं।

'जनता सत्याग्रह करेगी। आपका बाईकाट होगा।'

उसी समय अञ्जना आ गई।

देशराज ने एक चोट और की,—'करिये यह सब, जिससे आपका गल्ला, सबाई और धरनीधर का डयोढ़े डुगुने का लैन-दैन बढ़े।'

टहलराम ने अञ्जना को नमस्कार नहीं किया। उल्टे वह नमस्ते करके बैठ गई।

देशराज ने कहा, 'आज ये मुझसे न मालूम क्यों इतने रुष्ट हैं।'

अञ्जना को कारण मालूम था। उसने पानी के छींटे डाले,—'आप दोनो एक ही स्कूल और एक ही कालेज में पढ़े हैं। अनबन तो नहीं होनी चाहिये। राजनीतिक मतभेद होते हुये भी सांस्कृतिक कार्यों में तो आप लोग एक हो सकते हैं।'

'मुझे जो कुछ कहना था कह चुका।'

जितनी आतुरता के साथ टहलराम आया था उतनी ही व्यग्रता के साथ चला गया।

देशराज उफना उठा,—'ये अभागे संस्कृति को क्या जाने। जानती हो इन लोगों ने धरनीधर की पौर में क्या कहा था? कहते थे, मैं तुम और अपने नौकर भैंस की लाश को उठा ले जायें! इन्हीं में से एक ने रात में सब बातें आ बतलाई थीं।'

'ऐसा कहते थे!'

(८)

सुहाना से भी अधिक बाँगुर्दन में जलूस की चहल–पहल मच गई। उसका आकर्षण अथाई की गपशप और चिलम तमाखू से भी ज्यादा था। जलूस म भाग लेने वाले उतने न थे जितने उसका तमाशा देखने वाले। बहुत से जलूस निकले और देखे थे, पर आज की हलचल का केन्द्र दोनों गाँवों का ज़िमींदार देशराज था।

'अछूतवाद मुर्दाबाद ! ज़िमींदारी को मरघट दिखलाओ !!' से लेकर कुछ और भी कहा गया जो देशराज की हवेली के निकट जलूस के आने पर काफ़ी स्पष्ट हुआ। जलूस में कुछ स्त्रियां भी थीं। वे पैने स्वर में चिल्ला रहीं थी–'देशराज की ठठरी निकले !' 'देशराज का नाश हो !!' जलूस में विद्यार्थी भी थे––टहलराम के स्कूल के अधिक। वे स्त्रियों के इन नारों पर हँसते थे और बीच बीच में कह देते थे–'देशराज मुर्दाबाद !'

देशराज की हवेली के सामने आते ही जलूस के आगे टहलराम आ गया। बनमाली अज्ञात-वास में सा, धरनीधर सब से पीछे और छदामी लुक-छिपा।

हवेली के आँगन का सड़ा–गला फ़ाटक भीतर से बन्द था। आँगन के एक कोने में जगनू थरथरा रहा था। हवेली के किवाड़ बन्द थे। ऊपर की मञ्ज़िल की केवल एक खिड़की खुली हुई थी; वहीं कहीं से देशराज देख सुन रहा था। फाटक के सामने नारों ने ज़ोर पकड़ा।

टहलराम चिल्लाया,—'तोड़ दो फाटक ! सभा की बैठक आँगन में होगी।'

उसके विद्यार्थी झपटे। इनका अगुआ जनकलाल था। सोलह सत्तरह वर्ष का युवक, टहलराम का प्रिय शिष्य। विद्यार्थी फाटक तोड़ने पर चिपट गये।

बनमाली आगे आया।

बोला, 'यह क्या करते हो ? कानून की सीमा के बाहर मत जाओ।'

'क्रान्ति लकीरों की सीमा नहीं पहिचानती,' टहलराम ने आवेश के साथ कहा।

विद्यार्थियों ने फाटक तोड़ डाला। भीड़ आंगन में घुस पड़ी। कुछ लड़के जगनू पर लपके। बनमाली आड़े आ गया। भीड़ का ध्यान हवेली की खुली खिड़की पर जा जमा। नारे बुलन्द हुये। स्त्रियों ने कुछ नये सृजे। 'इसके बाप-दादे नरक में जांय'। 'देशराज नरक का कीड़ा है।'

धरनीधर हवेली के भीतर नहीं आया, किसी ने नहीं जान पाया कब कहाँ खिसक गया। केवल देशराज ने उसको देखा।

कुछ वर्ष पहिले खाल की अधोटी वसूल करने के लिये देशराज के पिता ने नालिशें की थीं और इन स्त्रियों के घरों की कुर्कियाँ करवा के डिग्रियाँ वसूल की थीं। देशराज ने खिड़की में से कुछ डाँट बतलाई जो किसी की समझ में नहीं आई। लड़कों ने मुंह बिराया-चिढ़ाया।

देशराज ने खिड़की बन्द कर ली। लड़कों ने छोटे छोटे कंकड़ फेंके। जब छोटे हाथ न लगे तो बड़े फेंकने लगे जो दीवारों, खिड़कियों और दरवाजों पर भड़ाभड़ पड़े। कुछ हवेली के भीतर भी जा गिरे।

देशराज ने भीतर से बन्दूक के दो तीन हवाई फायर किये। बनमाली और टहलराम ने भी, भीड़ को काबू में लाने का प्रयत्न किया परन्तु वह नियन्त्रण के परे हो गई।

'आ हत्यारे ! आ !! चला गोली !!!' स्त्रियां चिल्लाईं और लड़के ताव पर चढ़े।

छदामी भीड़ के नेताओं के सामने हाँपता हुआ पहुंचा।

घिघियाया,—'भैया, बात थी सो हो चुकी। जलूस हो गया अब यहाँ से चलो। थाने तहसील में तुम बँधे फिरोगे और हम घिसट मरेंगे। कहीं उन्होंने गोली दागा दी तो'.....'

जनक चीखा,—'गोली हम खायेंगे।'

छदामी ने एक ही क्षण में निश्चय कर लिया। वह अपनी जाति वाले नर नारियों को बटोर कर चल दिया। जो रह गये वे थोड़े से ही थे। उनमें भी बनमाली और उसके कुछ साथी इस सारी कार्रवाई के खिलाफ़। पर इन सबके विरुद्ध थी निर्ममता के साथ बढ़ती हुई साँझ। भीड़ को तितर-बितर होना पड़ा,—वह ऊंचे नारों के साथ वहां से हट गई।

(९)

रात होनें पर देशराज के महींदार आ गये। जगनू बरगद के नीचे था। धीमें स्वर में बातचीत होने लगी।

जगनू बोला, 'आज मरते मरते बच गये।'

एक बोला, 'मरते मरते तो हम बचे। पीठ सूज गई है और पैर की पिंडली। ऊपर से बिरादरी की मार। जात से बन्द कर दिया है।'

'सच्ची बात तो यह है कि राजा ने उस सड़ी हुई भैंस के पीछे यह सब विपदा बिसाई।'

'सड़ी! बिलकुल सड़ी हुई। न जाने किस जुग में पैदा हुई थी।'

'तीस पैंतीस साल की तो रही ही होगी। भला हुआ मर गई। तर गई! उसके खिलाने-पिलाने उठाने-बैठाने में मेरी तो नाकों दम आ गई थी। इस पर भी कहते थे मालिक, कि मैंने मार डाली!'

हवेली का दरवाजा खुला। देशराज लालटेन लिये हुये बाहर आया।

मीठे स्वर में उन लोगों से पूछा, 'तुम्हें किसी की चोट तो नहीं आई?'

उस मिठास का उन लोगों ने कृतज्ञता पूर्वक उत्तर दिया, 'ऐसी ही कुछ। बच गये।'

जगनू बोला, 'बनमाली जी ने बचा लिया मुझे, नहीं तो वे लोग पीस डालते। कोई कसर नहीं लगाई उन लोगों ने।'

'सवेरे ही पुलिस में रिपोर्ट कराऊँगा। उन सब पर मुक़द्दमा चलवाऊँगा; जेल भिजवाऊँगा।' देशराज का स्वर तीव्र हुआ।

जगनू ने अपने पीछे, फाटक की तरफ़ किसी के आने की आहट पाई। लौटकर देखा—जैसे अँधेरे को चीरता हुआ कोई लम्बा पिण्ड बढ़ा चला आ रहा हो। डर के मारे बिजका। देशराज के हाथ की लालटेन काँप गई। आंख फाड़कर देखने लगा।

पास आ जाने पर पहिचाना कि बनमाली है। वे सब घबराये से उसके पीछे के अन्धकार में कुछ टटोलने लगे। देशराज तै नहीं कर पा रहा था कि क्या कहें और क्या करें। डिगमिगाती आंखों उसने भी खोजने की चेष्टा की कि फाटक से और कोई धस आया है। कानों से आहट भी ली। न कुछ दिखलाई पड़ा और न सुनाई पड़ा। लालटेन नीचे रख दी।

पहले बनमाली बोला, 'कुछ बात करनी है।'

अब देशराज के भीतर शरम, क्रोध और परिताप का ज्वार सा आया पर जबान को शब्द नहीं मिले।

'भीतर की बैठक में चलिये। वहीं बात करूँगा।' बनमाली ने तत्परता के साथ कहा।

देशराज दृष्टि घुमाते हुये, लालटेन लेकर, बनमाली के साथ भीतर की बैठक में चला गया जो पौर के भीतरी दरवाजे की बराल में लगी हुई थी। नौकर किवाड़ बन्द करके चबूतरे पर जा बैठे।

'अब ये काहे के लिये आये हैं?' एक ने कहा।

'भगवान जाने। इनकी लीला कोई नहीं समझ सकता।'

जगनू बोला, 'कुछ भी हो, बचाया मुझे इन्होंने ही।'

'पर जलूस के ऊधम में इनका हाथ क्या कम था? कई बार सजा खाई है,—कभी चोरी में, कभी डकैती में, कभी बदमाशी में।'

'दो बार देश के नाम पर भी तो जेल गये।'

'कहते हैं जनता के लिये—हमारे तुम्हारे लिये जेल गये, इनके भीतर इतना जहर भरा है कि कोई नहीं कह सकता कितना।'

'हाँ सो तो ठीक ही है। धरनीधरवा की पौर में जलूस निकालने की पाटी इन्होंने पढ़ाई थी। जातपाँत से बन्द करवाने का हथियार इन्हीं ने माजा है।'

भीतर से आवाज आई,—'जगनुआ! ओरे जगनुआ!!'

बिना कोई उत्तर दिये ही जगनू दौड़कर भीतर गया।

बनमाली ने कहा, 'इससे पूछिये कि भीड़ हवेली को नष्ट करने पर तुल गई थी। मैं वहाँ न होता तो न जाने क्या गुज़रती।'

'हाँ मालिक,' जगनू ने अनुमोदन किया।

'मैं बन्दूक़ न चलाता तो भीड़ आग लगाये बिना न मानती। पत्थरों की वर्षा तो वह कर ही रही थी।' देशराज बोला।

'बन्दूक़ चलाने से तो भीड़ और भी उत्तेजित हो गई थी। मेरे समझाने बुझाने पर ही किसी तरह लौटी।' बनमाली ने देशराज के प्रतिवाद को गोल कर दिया।

'जा, इनका हुक्का उठा ला।' देशराज ने जगनू को बाहर कर दिया।

बनमाली को उलहना दिया,—'फिर भीड़ के साथ क्यों आये? धरनीधर और टहलुआ का सङ्ग क्यों दिया? क्या यही तुम्हारे मज़दूर-किसान राज्य की पेशगी है?'

बनमाली ने बेधड़क उत्तर दिया,—'आप तो यों ही मेरी बात का तीर बनाकर मेरे ही ऊपर छोड़ते हैं। मैं अपने सिद्धान्त पर अटल हूँ। न केवल अपने गाँव में बल्कि बाहर भी व्याख्यानों में कहता हूँ। भूखी-नङ्गी जनता उतेजित होने पर आग और तलवार का रूप धारण कर लेती है, फिर वह बन्दूक़ों की परवाह नहीं करती।'

'हाँ, उसको बहकाने सुलगाने वाले मिलना चाहियें।'

'मैं किन शब्दों में अपनी सफ़ाई दूँ? आपके और मेरे विचारों में अन्तर है। जनतन्त्र में होता ही है। परन्तु मैं आपकी इज्जत करता हूँ। क्या आपको अब भी विश्वास नहीं कि मैंने ही आपके घर द्वार को बचाया है?'

देशराज पिघला।

'तो फिर इनके साथ ही क्यों लगे?'

'अब आई ठिकाने पर बात। मैं जनबा को संभाले रहने के लिये साथ म था। आप तो जानते ही हैं कि अपने गाँव में भीतर भीतर तीन

पार्टियाँ हैं। एक धरनीधर की, दूसरी टहलराम की और तीसरी कुछ अपने लोगों की। टहल की पार्टी बड़ी नहीं है। धरनीधर अपना जोर बढ़ाने की फ़िकर में लगा रहता है। जब इन लोगों ने आँगन का फाटक तोड़ने के लिये भड़काया, तब मैंने ही प्रतिवाद की ललकार ऊँची की थी। आपने शायद सुना होगा।'

'कुछ सुना तो अवश्य था, पर भीड़ के हो-हल्ले में समझ में नहीं आया।'

'और जगनुआ को पीटे जाने से बचाने के लिये मैं ही आड़े आया था—आपने देखा होगा ?'

'जगनुआ भी कहता है।' देशराज के मन में विश्वास बैठने लगा। उसकी समझ में नहीं आया कि बनमाली को धरनीधर और टहलराम का नेतृत्व असह्य हो उठा था, या देशराज का कोई विपत्तिमय भविष्य, अथवा कानून का कोई संकट।

'आगे क्या होगा ?' देशराज ने पूछा। वह बनमाली के आने का प्रयोजन जानना चाहता था।

'उसी की बात करने आया हूँ। यदि आप पुलिस में रिपोर्ट करेंगे तो उल्टे आप ही को कष्ट उठाना पड़ेगा,'—बनमाली ने कहा,—'यह मान लिया जायगा कि भीड़ शान्त थी और आपने कानून के खिलाफ़ गोली चलाई।'

'मेरे आँगन में कंकड़ पत्थर जो भरे पड़े हैं। शरीर और सम्पत्ति की रक्षा में हवाई फ़ायर किये।'

'ढेरों गवाह कहेंगे कि आपने ही कंकड़ पत्थर हवेली में जमा करवा लिये हैं और सड़े-गले फ़ाटक को सबूत घड़ने के लिये तुड़वा लिया। दूसरी पार्टी वालों को मौक़ा न दीजिये कि वे पुलिस को हथियाकर आपको नीचा दिखलावें।'

देशराज सोचने लगा।

बनमाली बोला, 'मैं एक और महत्व की बात कहने आया था।'

'क्या ?'

'यह कि आप खाल की कीमत मरे चमारों से कोई तक़ाज़ा न करें, क्योंकि क़ानून बदल रहा है। बहुत सा बदल भी चुका है।'

'साल दो साल हुये जब डिग्री कराई गई थी और कुर्क़ी से वसूली।'

'उस साल और इस साल में अकाश पाताल का अन्तर हो गया है। मकान, खेत, सब किसानों के हो गए हैं। बन्जर, पड़ती, चरागाहें गांव की पंचायत की। मरे ढोर की खाल, हड्डी जो कोई उठावे उसकी, या, बहुत हुआ तो पंचायत की।'

'ज़िमींदार लोग मुकद्दमा लड़ेंगे।

'कुछ नहीं होगा। जनता के गुस्से की आग में ज़िमींदारों के सारे प्रयत्न भस्म हो जावेंगे। ज़िमींदार अपनी खुदकाश्त और बाग-बगीचे ही गांठ में बाँध सकेंगे, बाक़ी कुछ हाथ नहीं रहेगा।'

देशराज के मन के भीतर की दबी हुई घबराहट ऊपर आ गई,—'बाप दादो के ज़माने से चली आई जायदाद क्या यों ही लूट ली जायगी ?'

बनमाली को मालूम था कि देशराज के बाप-दादों के हाथ में ज़िमींदारी किस तरह आई थी। उसे अपनों की कहानी भी मालूम थी।

उसने कमसे कम छेड़छाड़ की,—'सब ज़िमींदारियों के इतिहास किसी न किसी कालोंच से पुते हुये हैं। किसी का इतिहास उज्वल भी हो तो अब कोई पूछने का नहीं। वर्तमान और भविष्य की बात सोचिये।'

देशराज ने आह भरी,—'तो जो कुछ सिर पर आ टूटेगा, भुगतेंगे।'

'कुछ योजना बनाई जा सकती है जो ढाल का काम करने की शक्ति रक्खेंगी।'

'क्या ?'

'देखिये आपके पास बन्जर, चरागाह वगैरह का बहुत सा रक़बा है।'

'बहुत से मुकद्दमें लड़ने पड़े, कुछ अब भी अदालत में हैं।'

'छोड़िये मुकद्दमों को। उनकी फ़िकर मत कीजिये।' जगनू बनमाली का हुक्का ले आया। उसे रखकर देशराज का उठाने और चिलम भरने के लिये भीतर चला गया।

'आपकी योजना?' देशराज ने उत्सुकता प्रकट की।

'राजनीति में दांव पेच हैं। आपने पढ़ा तो बहुत है, पर, माफ़ कीजियेगा आप सीधे हैं और व्यवहार की राजनीति नहीं जानते।'

देशराज ने अपने भीतर टटोला। उसे अच्छा लगा कि दूसरे लोग मुझे सीधा समझते हैं।

जगनू हुक्का भर लाया और रखकर बाहर चला गया।

बनमाली चिलम पर आंख गड़ाये हुये बोला, 'आप पड़ती, बन्जर के पट्टे ऐसे लोगों के नाम कर दीजिये जो आपके भरोसे के हों।

'जैसे?'

'जैसे डॉक्टर सनेहीलाल, बिक्रम और—' बनमाली ने चिलम फूक कर अपने हुक्के पर रख लीं और पीने लगा।

'डॉक्टर से एक बार कहा था। उन्होंने इनकार कर दिया। बिक्रम तैयार होजायगा। दूसरा कारिन्दा कुंजीलाल है।' देशराज ने बतलाया।

'कारिन्दे को पट्टा करना तो मानो अपने को ही पट्टा करना होगा। अञ्जनादेवी?'

'वे इस झंझट में नहीं पड़ेंगी।'

'यदि आप विश्वास करें तो मैं तैयार हूँ,' बनमाली ने आधे क्षण उसकी आँख से अपनी पैनी निगाह मिला कर हुक्का गुड़गुड़ाते हुए सुझाया।

किसी एक राजनीतिक दल को अपना सहायक बनाने की इच्छा देशराज के मन में उभर चुकी थी। बनमाली को उसने सबसे कम आक्षेपयोग्य समझा। थोड़ा सा किन्तु परन्तु किया।

'परन्तु अब तो पट्टे नहीं किये जा सकते।'

बनमाली हँस पड़ा। भीतर हर्षमग्न।

'काम बनाने के लिए थोड़ा सा इधर उधर भी करना पड़ता है। दो तीन सौ एकड़ मेरे नाम कर दीजिये और इतना ही बिक्रम के नाम। पट्टों में तारीख और सन् पहले की डाल दीजिये। आपको इससे ज्यादा कुछ नहीं करना है। हमलोग पटवारी क़ानूनगो, तहसील, सबको सँभाल लेंगे। हमारे आतङ्क से ही सब काम बन जायेगा।'

देशराज सोचने लगा। छोटे बड़े टुकड़ों में बहुत सा रक़बा अनेक लोगों के पास था, कुछ रक़बा छदामी के निस्तार में था, कुछ दमरू और बटोले के। और भी पड़ती थी जो बेकार पड़ी थी। उसमें कांस उग आया था और गांव के ढोर चरते थे। एक पन्थ दो काज—ये नेता प्रसन्न रहेंगे, समय कुसमय काम में आयेंगे और, छदामी, दमरू, बटोले की मिट्टी पलीत होगी। बाक़ी का जो हो।

देशराज हुक्का पीने लगा। हुक्के का धुआं उसके चेहरे के पास मंडलाने लगा जिसको दूर रक्खी लालटैन का प्रकाश अच्छी तरह नहीं भेद पा रहा था। बनमाली ने इस धुयें में से उसे कनखियों देखा।

निश्चय पर पहुँचने में उसने देशराज की मदद की,—ये लोग झगड़ा झंझट करेंगे। मैं निबट लूंगा। धरनीधर और टहल से भी लोहा ले लूंगा। आप निश्चिन्त रहें।'

'और आप कम से कम मेरा अहसान तो मानेंगे।'

'खूब कहीं! गाढ़े समय में हमेशा आप मुझे अपने साथ पावेंगे। और भूमि का बहुत सा भाग मेरी आड़ में आपका ही तो रहेगा क्योंकि इतनी सारी का मैं करूँगा भी क्या?'

देशराज ने स्वीकार किया,—'अच्छा।'

बनमाली नीची निगाहों अपनी ठोड़ी सहलाने लगा। देशराज भीतर गया और दो पट्टे लिख लाया। एक बनमाली के नाम, दुसरा बिक्रम के लिये। दोनों के नाम तीन तीन सौ एकड़। तारीख और सन् पहले के। बनमाली के पट्टे में ज्यादा झगड़े वाली भूमि, बिक्रम के में कम बखेड़े वाली। एक उसको दे दिया और दूसरा सुनाकर आपने पास रख लिया।

'बिक्रम को अभी बुला कर दे दूंगा।' देशराज ने कहा।

'ठीक है,' बनमाली बोला।

जाते-जाते उसने एक उपदेश दिया,—'वे लोग आपके नौकरों को जात पाँत से अलग कर रहे हैं और आपका बाईकाट। अभी जाकर उन सब को समझाये देता हूँ। आप भी आगे इन लोगों के साथ सहानुभूति का बर्ताव करें। भगवान ने चाहा तो किसीं दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ेगा।'

देशराज ने लम्बी 'हूँ' भरी। बनमाली अपना हुक्का घर भेजने की बात कह कर चला गया।

बाहर नोकर बैठे थे। बनमाली ने मुड़ कर देखा कि हवेली के दरवाज़े पर कोई नहीं है।

बोला, 'तुम लोग चिन्ता मत करना। बिरादरी से नहीं निकाले जा सकोगे। कोई और संकट आ जाय तो राजा साहब हैं ही, मुझसे भी कह सकते हो।'

जगनू ने सकारा, 'हमारे जैसे वे मालिक हैं तैसे आप और ऊपर भगवान।'

'हां—आं—और देखो जगनू, मेरा हुक्का घर रख आना।'

वह चला गया।

एक नौकर ने कहा, 'क्या माया है!'

जगनू बनमाली का हुक्का रखने चला गया।

थोड़ी देर में बिक्रम आ गया। उसने संवेदना के आंसू पोंछे। देशराज ने उसको पट्टा दिया।

'यह ज़िमीन मेरे पास रहे और न रहे। तुम्हारे हाथ में बनी रहेगी तो मानो मेरे ही घर में रही।'

बिक्रम बहुत प्रसन्न था।

'मालिक, जब कहो तब चाहे जिसका सिर फोड़ दूँगा। तुम्हारे काम में मेरी जान चली जाय तो मानो बैकुण्ठ मिल गया।'

'इस ज़िमीन पर थोड़ा सा झगड़ा बटोले और दमरू कर सकते हैं।'

'बिना झगड़े के तो घर में रोटी पानी तक नहीं मिलता। हम झगड़े से नहीं डरते। तुम्हारे निमक की निभायेंगे, राजा। हुकुम भर हो।'

'सो जब जैसी ज़रूरत पड़ेगी तब कहूँगा। वैसे देखे अनदेखे बहुत लोग अपने साथ हैं।'

बिक्रम समझ गया। अपने को उसके ऐसे वर्ग में पाकर उत्साह और गर्व से भर गया।

बोला, 'मेरी तो लाठी सुरसुरा रही है।'

देशराज ने निवारण करते हुये भी उसे उत्तेजना दी,—'अभी नहीं, अभी नहीं। देखो तो मैं क्या क्या करता हूँ।'

'देशराज ने बनमाली को पट्टा देने की बात बतलाई। उसे अपना सहयोगी जतला कर सचेतता के साथ काम करने की सलाह दी और कहा, 'मैं थक गया हूँ। अब सोऊँगा। तुम भी जाओ।'

वह चला गया और जगनू के सिवाय अन्य नौकर चाकर भी।

देशराज नहीं सोया। काफ़ी रात गये कुछ लोग आये। भीतर की एक अटारी में उनमें से केवल एक—कालीसिंह—देशराज और अञ्जना की गोष्ठी में शामिल हुआ।

कालीसिंह साधू के वेश में था। उसके चेहरे पर भयानकता नहीं थी। केवल आंखें तीक्ष्ण—अथवा जैसी कुछ अञ्जना को लगी हों।

कुछ बातचीत के बाद देशराज ने जलूस वाली घटना आदि से अ त तक सुनाई।

कालीसिंह ने संक्षेप में कहा, 'टहलराम—हुँ; धनीराम—हुं बनमाली हुँ—'

देशराज ने टोका,—'बनमाली नहीं, उसे तो हमने अपनी ओर फोड़ लिया है।'

'खैर वे ही दो सही। जल्दी देखूंगा।'

'अभी नहीं,'—अञ्जना ने समझाया,—'उपयुक्त समय पर आपके पास समाचार भेज देंगे। इसी समय कुछ कर बैठे तो अपने सबके ऊपर पुलिस का सन्देह आ जमेगा और अपना वह काम झमेले में पड़ जायगा।'

'जैसा कि मैंने आते ही बतलाया अपना सामान बन्दरगाह तक पहुँच गया है। आगे की राजा बाघराज का गुमाश्ता जाने,' कालीसिंह ने कहा।

देशराज ने सोचा—जो बात कालीसिंह के ध्यान में अञ्जना बिठलाना चाहती थी, वह नहीं बैठ पाई है।

बोला, 'मैं सवेरे ही पुलिस में रिपोर्ट करूँगा। अपनी बात सिरे पर रहेगी। आप यदि जल्दी में कुछकर बैठे तो यह काम तो बिगड़ेगा ही, वह भी गड़बड़ में पड़ जायगा। मैं नहीं चाहता कि हमारा आपका सम्बन्ध पुलिस की निगाह में कभी भी आवे।'

'आप जब और जैसा कहेंगे वैसे ही करूँगा।' कालीसिंह ने आश्वासन दिया।

'एक आदमी और अपनी टोली में आ गया है—नाम उसका बिक्रम है,' देशराज ने कहा।

कालीसिंह मुस्कराया।

'मैं उसे जानता हूँ।'

ऐं!' देशराज को आश्चर्य हुआ।

कालीसिंह जैसे चुपचाप आया था अपने साथियों को लेकर वैसे ही चला गया।

अञ्जना ने कहा, 'बनमाली पुलिस में रिपोर्ट करने से रोक गया है।'

देशराज ने उसकी शंका का समाधान किया,—'बनमाली को पुलिस के सामने हमारे पक्ष की बात कहनी पड़ेगी और इस प्रकार वह उन पार्टीबाज़ों से अलग पड़ जायगा। उसको पट्टा ज्यादा प्यारा लगेगा, उन लोगों की पार्टी बहुत कम। रिपोर्ट करना ही ठीक होगा।'

और उसने दूसरे दिन पुलिस में रिपोर्ट कर दी। पुलिस आई। तहक़ीक़ात हुई। बनमाली को बयान देना पड़ा। वह और उसके अनुगामी, धरनीधर और टहलराम से दूर जा पड़े। जलूस के अगुओं और छदामी को ज़मानत मुचलके की धमकी देकर इन्सपैक्टर ने मामला समाप्त कर दिया। देशराज को पुलिस की सहानुभूति मिल गई, वह कुछ और चाहता भी न था। अब उसे चिन्ता थी हरी पेटियों के सामान के दाम में अपना हिस्सा पाने की।

यह कार्य अञ्जना के हवाले किया गया। ललित कलाओं के प्रचार की ओट में वह नाहर गढ़ चली गई।

(१०)

पानी पहले रिमझिम बरसता रहा फिर एक दिन गर्जनतर्जन के साथ कुछ अधिक। जब यकायक खुला किसान मनाने लगा, अब न बरसे और मैं धरती के कलेजे को मुलायम करके उसमें बीज डाल दूँ।

पौ फट गई थी। दीवाली के पहले की ठंडी हवा झोंकों पर थी। कुछ खेतों पर पपड़ी आगई थी, कुछ पर पानी बिलमा हुआ था।

दूरसे पहाड़ धूमरे और जंगल छिपते भागते अंधेरे में से उभरते हुये दिखलाई पड़ने लगे। पास के हरे भरे ऊँचे पेड़ों को दृष्टि पकड़ उठी। दूर के पेड़ों की चोटियां को प्रकाश की रेखायें सहलाने पुचकारने लगी।

बाँगुर्दन से दक्षिण की ओर लगभग पाव मील की दूरी पर प्राचीन काल का एक बड़ा तालाव था जो अस्त व्यस्त हालत में था। इसलिये उसमें पानी नहीं थम पाता था। थोड़ी सी खेती हो जाती थी बाकी में काँस और लम्बा ऊंचा नागर मोथा घास। तालाब के एक किनारे पर बौद्ध जैन और वैष्णव मन्दिर तथा मूर्तियाँ तालाब की भी अपेक्षा अधिक टूटी फूटी दशा में इधरी बिखरी पड़ी थीं मानो किसी बीते काल की कहानी विषाद और क्षोभ के साथ चुपचाप कह रही हों।

टहलराम तालाब के किनारे इन्हीं खंडहरों के बीच बीच में होकर टहलते टहलते आया। मोटी खादी का कुर्ता, पैजामा, सिर पर तौलिया, हाथ में मोटा डंडा।

अंधेरे को दूर ढकेल देने के लिये प्रकाश की रेखायें बढ़ीं। पर्वत शिखर और उनके ऊपर के बृक्ष मुस्करा उठे। फिर दिशा में अरुणिमा और पीलापन क्षण क्षण में एक दूसरे से अपना परिधान बदलने लगे कि मन्द किरणें फूटीं। वनपर्वत जगमगाया। पेड़ों के हरे भरे धुले पत्ते और शरद की कोंपलें मन्द पवन की लय में थिरकने नाचने लगीं। धरती की गोदी में छाई दूबा हँस पड़ी। टहलराम कभी उन किरणों और कभी इन किसलयों को देखने लगा।

'क्या सोने और हीरे की खानों में यह वैभव अनायास इकट्ठा हो सकता है ? पर इन्सान के लिये सोना भी ज़रुरी है जो थोड़ों को बहुत और बहुतों को बहुत कम मिल पाता है। और एक यह प्रकृति की देन है, जो साधारण–जन को भूख और अभाव के कारण न समझ में आती है और न मिल पाती है। उसके मन में उठा।

फिर उसका ध्यान उन मूर्तियों पर गया। रूप और सौन्दर्य दोनों का समन्वय। खंडित होने पर भी उनमें ऐसा क्या है जो हमारे भीतर पुलक उत्पन्न करता है ? कुछ आवाहन ? चिनौती भी देता है लेकिन सब सामन्त युग की कृतियां ! जब मानव को धर्म की अफ़ीम खिलाई जाने लगी थी तब के उत्पादन !! परन्तु उन कारीगरों शिल्पियों की साधना ?––वह तो हर एक युग की कामना और सम्पदा है। ऐसी मूर्तियां आज कल कितने बना सकते हैं ? क्या भविष्य में बनाई जा सकेंगी ? पर उनका उपयोग ? भूख और अभाव को दूर करने की क्षमता ? टहलराम को उसकी कल्पना ने धक्के पर धक्के दिये। जैसे ही उसका हृदय उन मूर्तियों और खंडहरों पर स्नेह का अर्घ्य चढ़ाने के लिये स्पन्दित होता, तड़पा, उसके मानस के भीतर बसा हुआ कोई आग्रह-जिसे वह अपना सिद्धान्त समझता था दीवार खड़ी करके उस स्नेह को जहां का तहां लौटा देता।

नव–पल्लवों पर से रिपटती हुई रश्मियों को फिर से देखा, पर्वत शिखरों की ऊँचाई को, किसलयों की मुस्कान और दूबा की हँसी को; पर अच्छा न लगा। मूर्तियों के सौन्दर्य के परीक्षण और विश्लेषण का प्रयत्न किया; न कर सका। उसको अपने भीतर एक अनिश्चित हार सी अवगत हुई। सोचा, काफी समय से घूम रहा हूँ, थक गया इसलिये घर लौट पड़ना चाहिये।

घर आकर कलेवा किया ही था कि बाँगुर्दन का मंटू दौड़ता हांफता उसके पास आया। आँखो में ही उसके जोश और जवानी थी, बाकी देह

में सूनापन। जल्दी जल्दी बोलने का स्वभाव तिस पर दौड़ने की हाँफ। टहलराम ने उसकी बात में से जो समाचार पाया वह यह था ;

दमरू और बिक्रम के खेतों के बीच जो चौड़ी मेड़ थी और जिस पर सदा से दमरू का दखल चला आया हैं विक्रम उसे तोड़ कर अपने खेत में मिला रहा है; बटोले की चरोखर में बनमाली के हल चल रहे हैं; छदामी की चरागाह में बनमाली और बिक्रम के बखर जगनुआ डलवाये हुये है; मना करने पर उसको जो बटोले का सोंझिया है, पीट दिया है; और, बटोले पर हल्ला बोल दिया गया है।

टहलराम ने डण्डा उठाया और चल दिया। फिर डंडा मन्टू के घर में, जो मार्ग में पड़ता था, डालकर खाली हाथ नाले पार सुहाना के फैले हुये खेतों की दिशा में गया जहाँ से सबसे अधिक शोर सुनाई पड़ रहा था।

दमरू, बटोले और उसके साथी एक तरफ़, बिक्रम और उसके साथी दूसरी तरफ़, कोई हँकनी, कोई परैना, कोई लाठी लिये तन रहे थे; लड़ाई ज़बान से उचट कर इन हथियारों पर नहीं कूद पाई थी कि टहलराम और मन्टू उस ठौर पहुँच गये। एक ओर से छदामी और उसके कुछ साथी, दूसरी ओर से जगनू और देशराज के महीदार आ गये। कुछ दूरी पर पेड़ों की छाया में बनमाली खड़ा था।

इन सबके खेत बहुत दूर-दूर नहीं थे। झगड़ा दमरू और बिक्रम के खेतों के बीच की पड़ती पर शुरू हुआ था और वही उसका केन्द्र बन गई।

उसके और मन्टू के आते ही बटोलें इत्यादि तेज़ हो गये। दोनो ओर से गालियो का आदान-प्रदान बढ़ा। टहलराम ने निवारण की चेष्टा की, परन्तु वह विफल हुआ। उसने देखा कि बटोलें और दमरू अलग पड़कर फिर गये हैं। बनमाली को ज़ोर से चिल्लाकर बुलाया। वह छया में से धीरे-धीरे बढ़ा।

बटोले कड़का,—'इन्हीं का कराया हुआ है यह उत्पात।'

दमरू भड़भड़ाया,—'और राजा देशराज का जगनुआ इसी लिये तो भेजा गया है।'

बिक्रम ने ज़ोर के साथ कहा, 'इस पड़ती का लगान हम दें और दखल तुम जमाओ! उचक्का कहीं का!'

बटोले के प्रखर कण्ठ से फूटा,—'हमारी और छदामी की चरोखर दबाये लेते हैं ये हरामी!'

इस पर दूसरी ओर से गालियों की बाढ़ दुगने पैमाने पर दागी गई।

बनमाली आ गया। तनी हुई लाठियां कुछ ढीली पड़ीं। उसने कहा, 'मैंने इन सबसे पहले ही कहा था कि यहां झगड़ा मत करो। पटवारी का क़ागज़ देखो और अदालत से तै कराओ।'

तब उन लोगों ने पटवारी के बाप दादों को विशेषण अर्पित किये और बनमाली को 'जालसाज़' कहा।

बनमाली बोला, 'तो जैसे अच्छा लगे वैसे निबट लो' और वह लौट पड़ा।

बिक्रम ने टहलराम को चिनौती दी,—'झगड़ा कराने आये हो; तुम्हारा पेशा ही झगड़ा कराने का है, तो आओ दो-दो हाथ हो जांय।'

टहलराम ने तीव्रता के साथ प्रतिवाद किया,—'झगड़ा कराने नहीं आया हूँ। वैसे दो-दो क्या, चार-चार हाथ से भी हम लोग नहीं डरते।' बिक्रम ने टहलराम को गाली दी। उसका क्रोध भड़क उठा। बोला, 'गाली दी तो ज़बान खींच लूंगा।' वह डण्डा गांव में छोड़ आने पर पछताया।

पर औरों के तैयार थे और चल पड़े। थोड़ी देर काफ़ी चटाक-पटाक होती रही। लाठियों से लाठियां और परैनों से परैने भिड़ते रहे। फिर किसी के पैर किसी के हाथ और किसी की पीठ पर कभी यह और कभी वह पड़ने लगे। बनमाली और भी दूर जा पहुँचा। बटोले

और बिक्रम और भी निकट आ गये, परन्तु चोट किसी को भी अधिक नहीं आई।

टहलराम कुछ करने के लिये छटपटा रहा था। परन्तु कालेज की शिक्षा और पुस्तकों से अर्जित जिस सिद्धान्त ने घर से लाये हुये डंडे को मंटू के घर रखवा दिया था उसी ने फिर विवश कर दिया।

इतने में बनमाली फिर आता दिखलाई पड़ा। अब की बार तेजी के साथ लड़ने वालों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। टहलराम ने देख लिया। क्षुब्ध स्वर में बोला, 'फिर आ गया वह!'

बनमाली हाथ उठाकर चिल्लाया, 'ठहरो, ठहरो! पुलिस आ-रही है।

पुलिस का शब्द उन लोगों के कान में पड़ा और वे अपना अपना बरकाव करते हुये हटने लगे। बनमाली निकट आ गया। कुछ दूरी पर पेड़ों के पीछे से बहुत से लोग आते हुये दिखलाई पड़े।

बनमाली ने शान के साथ कहा, 'अब और लड़ो। सवेरे से समझा रहा हूँ कि लड़ो-झगड़ो मत, कानून के भीतर चलो, पर बटोले, दमरू, मंटू और टहलराम को अपने के सिवाय और कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता।' उसने छदामी का नाम नहीं लिया।

पुलिस इतनी जल्दी कैसे आगई? वे सब मन में प्रश्न कर रहे थे। टहलराम ने अनुमान लगाया: हो न हो बनमाली या देशराज ने पहले से ही न्योत बुलाया है।

लड़ाई ढीली पड़ते पड़ते पुलिस के सिपाही, दरोग़ा और गांव के कुछ लोगों के साथ देशराज, आ गये, पटवारी उनके पीछे बस्ता बग़ल में दाबे।

दरोग़ा ने डाट फटकार बतलाई। पटवारी ने बस्ता खोला और बतलाया कि बटोले दमरू और बिक्रम के खेत इखरे-बिखरे हुये हैं--कहीं बिक्रम का कोई खेत बटोले के खेत के सामने, कहीं दमरू के खेत

के सामने, उन दोनो के खेतों के बीच चौड़ी पड़ती पर किसी नाम का नहीं–पड़ती ज़िमीदार की। देशराज ने लिखाया कि बिक्रम को बहुत पहले इसका पट्टा दे चुका हूँ। दूसरी पड़तियों की बात चली तो बटोले, छदामी और दमरू का नाम बड़े बड़े टुकड़ों पर तो दर्ज, परन्तु कैफ़ियत के खाने में लिखा निकला 'बिना तस्फ़िया लगान।'

उन तीनो ने सौगन्ध खाकर कहा, 'हमने लगान लगातार दिया है।'

'हमें स्याहा तो कभी नहीं करवाया।' पटवारी ने आक्षेप किया।

'है रसीद ज़िमींदार या उनके कारिन्दे की हाथ की ?' दरोगा ने सवाल किया।

'उन्होंने कभी नहीं दी।' उन लोगों ने बयान दिया।

देशराज ने समस्या का हल किया,–'ये सब बिना अधिकार घुसना चाहते हैं। इनका कोई हक नहीं।'

'बेईमान हैं,'—टहलराम ने बेधड़क, कहा,–'सीधे सादे गरीब किसानों का खून चूसने वाले और पटवारी उनका पिट्ठू। लिखिये मेरा बयान–झगड़े वाली ज़िमीनों पर मैंने हक़दारों का ही दखल देखा है—बटोले, छदामी और दमरू का। मटू का बयान लिखिये जो बटोला का बरसों से सोंझिया है।

'यानी जब वह पैदा नहीं हुआ था तभी से,—दरोगा ने व्यङ्ग किया,—'मैं तो हक़ और अधिकार की सरसरी जांच करूँगा, बाक़ी का निबटारा सदर की पूड़ी मिठाई खाकर, वकीलों को थोड़ा बहुत चांदी सोना चढ़ाकर, माल या दीवानी की अदालत से करवाइये।

दरोगा ने अदालत के निर्णय तक झंझट वाले भूमिखंडों का दखल बिक्रम और बनमाली को दिया; बटोले, दमरू, छदामी और मंटू मुंह ताकते रह गये।

टहलराम ने सुझाया,—'नये कानून में बटोले इत्यादि अधिवासी हो जायंगे, अदालत में जायं तो बिक्रम आदि जायं।'

देशराज ने व्यंग कसा, 'पुलिस को इतने गहरे डुबकी लगाने की ज़रूरत नहीं है। आप तो क़ानून पास होने के पहले ही बहुत दूर की कौड़ी ढूंढ़ लाये।'

बनमाली हँस पड़ा,—'मुश्किल तो यह है कि समझाने बुझाने पर भी मानते नहीं हैं।'

टहलराम का रोम रोम जल उठा। पर मुंह से केवल इतना ही निकला,—'बहुत जल्दी देख लोगे कि सही रास्ते पर हम लोग हैं या तुम लोग। क़ानून पास होने में विलम्ब नहीं है।'

बनमाली को अपने बाहुबल की याद आगई,—'सो तो हम लोग करवा रहे हैं; इसमें आपका तो अंगुल भर भी हाथ नहीं। एक बात याद रखिये कि सच्चे झूठे सभी अनधिकारी अधिवासी नहीं हो जायंगे।'

दरोग़ा राजनीति या क़ानून की बहस में नहीं पड़ना चाहता था। लड़ने वालों को उसने धमकी दी,—'तुम्हारे इस फ़साद पर मुक़द्दमा नहीं चलवाना चाहता हूं, क्योंकि अस्पताल पहुंचाने लायक तुम में से कोई भी नहीं; वैसे बड़े दुष्ट हो। अगर कोई बखेड़ा किया तो अब की बार हथकड़ी ठोके बग़ैर न रहूँगा।'

उन लोगों पर आतङ्क छोड़कर, देशराज इत्यादि की कृतज्ञता, लेकर पुलिस चली गई।

परन्तु देशराज को अपनी इस विजय पर उतना हर्ष नहीं हुआ कि जितनी परिधि उस विजय की ऊपर ऊपर दिखलाई पड़ रही थी। उसने देखा कि टहलराम के दल की रेखायें और अधिक फैल गई हैं। टहलराम को लगा पुलिस के सामने उसे देशराज और बनमाली को बेईमान नहीं कहना चाहिये था। फिर भीतर के एक कोने से उसे सान्त्वना मिली,—'बेईमान तो वे दोनों अवश्य हैं।' फिर भी—

उसके मन में गड़ रहा था—देशराज कैसा भी हो अभद्र नहीं है, वाक्पटु और व्यवहार-कुशल है। मैं क्यों इतनी जल्दी आपे से बाहर हो जाता हूं ?

(११)

हल चले, बखर चले, अधिकांश खेतों में चैत की फ़सल के लिये बीज बो दिया गया। जिन खेतों में अभी पानी या गीलापन था उन पर पपड़ी आने की प्रतीक्षा की जाने लगी। बटोले, दमरू और छदामी की जो भूमि दूसरों के दखल में चली गई थी उसकी बाबत माल की अदालत में काररवाई चल उठी, परन्तु निर्णय होने में काफ़ी विलम्ब मालूम होता था।

एक सुहावने प्रातःकाल की बेला में सुहाना और बांगुर्दन में जब ऊँचे नीचे बेतरतीब और रूपहीन घरों पर प्रकाश की रेखायें सोना बरसा रही थीं और वृक्षों की चोटियों के पल्लव पुञ्जों को जैसे नीलम पुखराज की छोटी छोटी खानें बना रही थीं और बछड़े दूध पीने तथा गायें उन्हें पिलाने के लिये रभां रही थीं, चौकीदार डुगडुगी पीट रहा था—'क़ानून पास हो गया है, ज़मींदारी समाप्त हो गई !' और प्रभात फेरियां इसी बात को सुरीले स्वरों, कविता की भाषा और भविष्य की धड़कन में सुना रही थीं।

टहलराम को पहले ही मालूम हो गया था। बांगुर्दन की प्रभात फेरी का नायक वही था। उसमें एक टोली स्त्रियों की भी थी जिसका नेतृत्व उसकी मां घाटीवाली कर रही थी।

सुहाना भी पीछे नहीं था। वहाँ दो फेरियाँ बनीं। एक बनमाली की, दूसरी धरनीधर की। फिर घड़ी आधी घड़ी पीछे वे दोनों डॉक्टर सनेही लाल के नेतृत्व में एक हो गईं। इसमें डॉक्टर की पत्नी राजदुलारी और थोड़ी सी स्त्रियां भी सम्मिलित हुईं। राजदुलारी युवती थी, रूपरेखा की अच्छी और बी० ए० पास।

एक घड़ी पहले वे दोनों फेरियां जो गीत गा रही थीं उनके बीच-बीच में 'जिमींदारी का नाश हो, क़िसान और मज़दूर समृद्ध हों' के नारे लगाती जाती थीं, सनेही के शामिल होने पर नये जीवन के स्वागत के गान

के बीच-बीच में नारे लगे,—'नया प्रभात सबको एकसा उजाला और सुख दे ! जय हिन्द !! भारत माता की जय !!!'

बांजुर्दन में जो गीत गाया जा रहा था वह स्वार्थी सम्पत्तिवादियों के नाश के साथ उग्र सम्बन्ध रखता था और कभी-कभी देशराज तथा बनमाली के विनाश की भी ध्वनि गूंज जाती थी। इस फेरी का नेता टहलराम था जिसमें बटोले, दमरू और मन्टू ज़ोर के साथ भाग ले रहे थे। यह फेरी घूमघामकर टहलराम के घर आ जमी और उसने बातचीत के लिये बैठक का रूप पकड़ा।

सुहाना वाली फेरी बनमाली और देशराज के मकानों के सामने पहुँची। राजादुलारी के साथ अन्य स्त्रियां वहाँ से लौट गईं। सङ्गीत और नारों की ध्वनियां देशराज और अञ्जना को टूटे ये फाटक पर ले आईं। अञ्जना नाहरगढ़ से सन्ध्या के पीछे लौटी थी। वे दोनो बहुत प्रसन्न दिखलाई पड़ते थे।

देशराज ने उनको अपने आंगन में आने के लिए निमन्त्रित किया। चबूतरे पर फ़र्श बिछा दिया गया। कोई चबूतरे पर, कोई नीचे बैठ गये, कुछ खड़े रहे इनमें एक छदामी था।

देशराज ने छदामी को बुलाया,—'आओजी, चबूतरे पर बैठो। आज का दिन चिरजीवी हो।'

छदामी कुछ लाज में, कुछ ग्लनि में और कुछ अपने मन में नीचे ही बैठ गया।

सनेही को छदामी का उस तरह बुलाया जाना अच्छा नहीं लगा।

मुस्कराकर बोला, 'अब आगे की बात पर बिचार करिये, गये गुज़रे को भुला दीजिये।

'इसीलिये तो इनसे खासतौर पर यहां बैठने के लिये कहा। उस जात के मुखिया हैं जिसकी संख्या अपने यहां सबसे ज्यादा है,' देशराज ने बात बनाई।

सनेही ने आगे की बात छेड़ी, 'ज़मींदारी उन्मूलन का क़ानून पास हो गया है। अब हम सब किस रहन-सहन को अपनायें जिससे सबको सुख और शान्ति मिले, इस पर विचार करना चाहिये।'

धरनीधर ऊपर को निगाह उठाकर अमरबेल को देखने लगा जिस का पीलापन सूर्य की कोमल किरणों में चमक रहा था।

छदामी बोला, 'हम तो सबके साथ हैं; लेकिन बेठ-बेगार नहीं करेंगे।'

सनेही हँस पड़ा। देशराज ने साथ दिया।

बनमाली ने कहा, 'कोई भी नहीं करा सकेगा बेगार।'

धरनीधर की आंख छदामी पर गई और फिर बनमाली पर।

बोला, 'पर दूसरों की ज़मीन हथियाना उससे कहीं अधिक बुरा है।'

'सोई तो, सोई तो,' छदामी कुछ और अधिक नहीं कह सका।

सनेही ने कहा, 'अपने गांव में सहकारी कृषि समिति बनने जा रही है। आगे यही एकमात्र साधन ऐसा है जो हम सबको एक दूसरे के निकट ले आवेगा। ज़मींदार और मज़दूर की आपसी खींचातानी इसी से बन्द होगी।'

'यह क्या है ?' छदामी ने अपना सन्देह प्रकट किया।

सनेही ने बतलाया,—'वही जिसके बारे में कोआपरेटिव अफ़सर, राघवन् जी, ने उस दिन मीटिंग की थी और दस्तखत निशान करवाये थे।'

छदामी बोला, 'दस्तखत निशान तो हो गये, पर बात क्या है सो समझ में नहीं आई।'

बनमाली ने व्याख्या की,—'मिल जुलकर खेती करना, अपनी अपनी ज़मीन समिति के भंडार में एक कर देना, इखरी-बिखरी जोतों को इकट्ठा कर देना—ये सब। सरकार रुपये पैसे से मदद करेगी, अच्छा बीज देगी, मार्के के सांड़ भेजेगी जिनसे ढोरों की नसल सुधरे, नहर निकाल देगी जिससे खेतों को अटूट पानी मिलता रहे—'

छदामी बोल उठा,—'मैंने इसी मद्दे अपने अंगूठे का निशान लगाया था, पर और कुछ समझ में आया नहीं। कहीं ऐसा न हो कि सरकार एक हाथ से हमें ज़िमीन दे और दूसरे से छीन ले। मूड़ चाहे कट जाय, पर बापौती तो न देंगे।'

देशराज ने समझाया,—'नहीं, जो कुछ होगा अपनी सबकी मर्ज़ी से होगा। मैं भी शामिल हो जाऊँगा सहकारी समिति में और अपनी भूमि का बहुत सा हिस्सा उसमें लगा दूंगा।'

छदामी इत्यादि के चित्त पर बात नहीं चढ़ी। देशराज भी शामिल होगा उस समिति में, यह बात छदामी को खटकी।

सनेही ने कहा, 'राघवन् साहब जो इस विभाग के बड़े अफ़सर हैं इसी समय आते होंगे। वे समिति के काम को आज ही से चालू कर देंगे। किसी के मन में कोई भ्रम हो तो उसको दूर कर देंगे। मैं इसमें शामिल हो रहा हूँ और धरनीधर जी भी। सब तरह के लोगों को उसमें अपना हाथ बटाना चाहिये।'

छदामी के मन में सवाल उठा,—'क्या बनमाली का भी हाथ उसमें रहेगा?' पर उसने पूछा नहीं।

देशराज उत्साह के साथ बोला, 'आज ज़िमींदारी उन्मूलन की खुशी में रात को अञ्जना देवी का संगीत होगा जिसके लिये दोनों गाँवों के लोगों को बुलाऊँगा।'

दोनों गांवों के लोगों में बाँगुर्दन के टहल, बटोले इत्यादि भी! कुछ भी हो, इस मौक़े पर ऊपर ऊपर की बनाये रखना ठीक होगा।

फिर मुस्कराकर—

'और इस समय सब लोग थोड़ा सा चाय पानी लें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।'

पिछली बात का सब लोगों ने स्वागत किया—विशेषकर जो चबूतरे के नीचे बैठे थे उन लोगों ने।

इतना बड़ा आदमी सचमुच आज हम लोगों को आदर देने के लिये कितना नीचे उतर आया है ! मुक़द्दमें और झगड़े तो लगे ही रहते हैं; मेल जोल का बढ़ाना भी तो कोई चीज़ है !!

चाय पानी की तैयारी हुई; इतने में मोटर से कोआपरेटिव अफ़सर राघवन् आ गया। वह भी हर्ष के साथ चाय पानी में शामिल हुआ। चाय के साथ देशराज ने पकवान भी खिलाये जिन्हें अञ्जना ने परोसा।

देशराज ने सनेहीलाल से कहा, 'श्रीमती राजदुलारी ने भी यहाँ आने की कृपा की होती तो हम सबको अच्छा लगता।'

सनेही हँसकर बोला, 'उन्हें घर गृहस्थी के काम-काज की सुधि आ गई होगी तो लौट पड़ीं।'

'फिर कभी सही—आज के सङ्गीत समारोह में आ जायें।'

'यह उनकी मर्ज़ी पर है। पर्दा तो वे करती नहीं, पर जो कुछ करती हैं, अपने मन का।'

अञ्जना ने मुस्कान बिखेरी,—'तो मैं बुलाने जाऊँगी।'

'आप जाने और वे जाने।' डाक्टर ने सीधी बात कही। अञ्जना को अच्छी नहीं लगी। पर चेहरे पर कोई वैसा भाव नहीं आया।

राघवन् ने संगीत समारोह की बात सुनकर हर्ष प्रकट किया,—'आज संगीत समारोह है ?'

'जी हाँ,' देशराज ने उत्तर दिया, 'ज़मींदारी उन्मूलन और सहकारी कृषि समिति की स्थापना के आनन्द मनाने के लिये।'

राघवन् उत्साही पदाधिकारी था। उछल पड़ा।

'आप भी सदस्य बन जाइये देशराज जी, हमारी सहकारी समिति के। उस दिन जब ललिता के किनारे आप मिले तब मैंने इस सम्बन्ध में आपसे प्रार्थना की थी। आपको याद होगा ?'

'आपका कहना हम दोनों के सिर माथे। इसी लिये तो अन्जना देवी संगीत का आयोजन कर रही हैं।'

'घोर धन्यवाद !' किसी अंग्रेजी मुहाविरे की हिन्दी हंसी के साथ राघवन् ने पेश की और कहा, 'समिति की रजिस्ट्री हो गई है। काग़ज़ अपने साथ लाया हूं। समिति के सभी लोग यहाँ मौजूद हैं। पदाधिकारियों का चुनाव फिर से कर लिया जाय और पूरे ज़ोर के साथ काम चालू कर दिया जाय।'

'मेरे मन भाया साहब, बिलकुल जी में समा गया।' देशराज बोला।

पहले समिति के प्रधान के चुनाव की बात चली। सनेही का नाम लिया गया।

उसने तुरन्त प्रस्ताव किया, 'देशराज जी को प्रधान चुना जाय। इनके प्रधान चुने जाने से सारी गुत्थियाँ सुलझ जावेंगी और उलझनें नहीं आवेंगी।'

एक ही सांस में बनमाली ने समर्थन किया।

अपनी आनन्द-विभोरता को यत्न के साथ छिपाकर देशराज ने कहा, 'डाक्टर साहब को प्रधान बनाया जाना चाहिये, मैं मामूली सदस्य बनकर भी बराबर सेवा करता रहूंगा।'

राघवन् बड़ी उमङ्ग के साथ बोला, 'तो प्रधान बनकर और भी खरी सेवा करिये। क्यों भाइयो ?'

किसी भाई ने आक्षेप करने का साहस नहीं किया।

देशराज सदस्य बना लिया गया और फिर प्रधान चुन लिया गया।

मंत्री और खज़ान्ची के चुनाव की बारी आई। देशराज ने बनमाली को मन्त्रीपद के लिये और धरनीधर को खज़ान्चीपद के लिये प्रस्ताव किया। बनमाली ने बनावटी और धरनीधर ने सच्ची आनाकानी की; परन्तु राघवन् के ज़ोर लगाने पर वे लोग चुन लिये गये और उन्हें स्वीकार करना पड़ा। बिक्रम, छदामी और सनेही पञ्च बनाये गये। रजिस्ट्री के पहले जो काग़ज़ी चुनाव हुआ था, उसकी जगह यह हो गया।

राघवन् ने बतलाया कि ललिता नदी का ऊँचा बाँध लगभग बँध चुका है, उससे इस ओर नहर आयगी और कुछ समय पीछे सस्ती

बिजली भी। हज़ारों एकड़ भूमि की सांस घोटने वाले कांस को उखाड़ फेकने के लिये मशीनें आयंगी, कुटीर उद्योग फैलाये और बढ़ाये जायंगे, ढोरों की नसल बदलने के लिये बड़े-बड़े साँड़ आ रहे हैं, रूखी भूमि अन्न की हरियाली से लहलहा उठेगी, जन जीवन फूलफल उठेगा।'

छदामी ने पूछा, 'क्या हमारे खेत छीन लिये जायेंगे ?'

राघवन् ने पकड़ लगाई,—'किस ने कहा ? बिलकुल ग़लत। सब लोग अपने-खेतों के मालिक रहेंगे। इख री-बिखरी जोतें अवश्य इकट्ठी करदी जायंगी, सो भी जब ऐसी जोतों वाले राज़ी हो जायंगे, तब। हर हालत में खेतों पर मालिकी उन्हीं की रहेगी जो नये क़ानून से उनके मालिक मान लिये गये हैं।'

छदामी ने शङ्का प्रकट की,—'उस दिन आपने कहा था कि कमेटी में जितनी ज़िमीन लगाना चाहे लगा दे और चाहे जितनी उसके बाहर रखकर अपनी निजी खेती करे। अब यह क्या ?'

'कुछ भी नहीं',—राघवन् ने समाधान किया,-'चाहे जौन से खेत अपनी निजी खेती के लिये अलग रक्खो, किसी को उज़र न होगा।'

देशराज ने अपनी छाप लगाई,—'अरे भाई, मैं खुद अपनी बहुत सी सीर खुदकाश्त, समिति से बाहर, अपनी निजी खेती के लिये रक्खूंगा।'

सनेही ने हंसकर कहा, 'मेरे पास तो एक इंच भी भूमि नहीं, पर काम अपनी गांव-समाज के लिये बहुत अच्छा है इसलिये सबकी सेवा के लिये मैं भी इसमें पड़ा हूँ। किसी को घबराने की ज़रूरत नहीं। जब जिसके मन में आवे तब वह समिति को छोड़ सकता है और समिति की गड्डी में डाली हुई ज़िमीन वापिस ले सकता है।'

राघवन् को यह बात अखरी, पर क़ायदे में थी इसलिये चुप रहा।

धरनीधर बोला, 'ज़िमीन तो मेरे पास भी नहीं है, पर सबका हठ है इसलिये सेवा करने को शामिल हुआ हूँ।'

'हैं तो', बनमाली ने पत्थर सा फेंका।

देशराज ने सहला लिया,—'तो क्या हुआ ? क़ायदे के भीतर है। जब ठीक समझेंगे तब समिति में लगा देंगे।'

छदामी पड़ती के बारे में पूछना चाहता था परन्तु फिर कभी के लिये बात उचट गई।

राघवन् ने कहा, 'समिति के मेम्बर भूमि के ज्यादा से ज्यादा रक़बे समिति में लगायंगे, क्योंकि रक़बे के हिसाब से मुनाफ़ा पैदावार के रूप में बांटा जायगा।'

'बहुत अच्छा है', बनमाली ने झुमकर समर्थन किया।

राघवन् के चेहरे से उत्साह के चिह्न कम हो चले। जगनू एक बड़े थाल में पान लगा लाया। देशराज ने मुस्कानों के साथ बांटे।

छदामी ने चलते चलते एक सवाल पूछ डाला, 'जिनके पास भूमि है, पर हल-बैल नहीं उनकी खेती कमेटी कैसे करवायेगी ?'

राघवन् ने उत्तर दिया, 'किराये के हलबैल से। मज़दूरी और किराये की दर समिति तै करेगी जो अच्छी ही होगी।'

'और ?'

'और, भाई मेरे, जब जो कुछ पूछोगे बराबर बताया जायगा। क़ायदे की पुस्तक छोड़ जाऊँगा। तुम्हारे मन्त्री, प्रधान और पंच सब समझा दिया करेंगे।'

छदामी कुछ और नहीं पूछ सका।

अन्तिम प्रश्न राघवन् ने किया,—'सङ्गीत समारोह कितने बजे से होगा ?'

'वही कोई छः-सात बजे से' देशराज ने बतलाया।

'काफ़ी समय है। मैं तब तक आस-पास के गाँवों में कुछ काम करे लेता हूँ।'

'और तब तक मैं अच्छा खासा रंग—मंच खड़ा करवाये देता हूँ। लम्बे लट्ठे बहुत से रक्खे हैं।'

देशराज की आँख आँगन के एक कोने में रक्खी हुई उस लकड़ी पर गई जो कुछ समय पहले उसने कटवा उठाई थी।

धरनीधर की भी आंख गई। माथे की रेखायें फूल गईं।

देशराज ने राघवन् को सुनाया, 'मैं अपने मित्र नाहरगढ़ के राजा को तार देकर बुलाता हूँ। बड़े सङ्गीत प्रेमी हैं। बहुत मिलनसार। आपका परिचय है ?'

'नहीं तो। कभी मिलने का अवसर नहीं आया।'

'मैं आज ही मिलाऊँगा।'

वे सब चले गये।

रास्ते में जब सनेही और धरनीधर अकेले रह गये, धरनीधर न कहा, 'समिति की आज की कार्रवाई शुभ मुहूर्त में नहीं हुई।'

'क्यों ?'

'आपको प्रधान पद स्वीकार करना चाहिये था।'

'देशराज को पद के भार से दबाना जो मुझे अच्छा लगा।'

'देखिये क्या होता है, पर भविष्य अच्छा नहीं दिखता।'

(१२)

उसी दिन टहलराम के घर पर जमाव देर तक रहा। आगे क्या करें चर्चा इस विषय पर होती रही। बाँगुदेन के लोग सुहाना की सहकारी समिति में शामिल नहीं हुये थे और न उन्होंने अपने ही गांव में समिति खुलवाई, क्यों कि टहलराम उसके विरुद्ध था।

टहलराम ने समझाया,—'उन्हीं जिमीदारों, उनके पिछलग्गों और अफ़सरों से लदी हुई समिति से कुछ नहीं होना जाना है। अपनी समिति अलग क्यों न बनावें ? सरकार से कोई वास्ता नहीं रक्खेंगे। सरकारी अफ़सरों के दखल के मारे कोई काम ठिकाने का नहीं हो पाता है, उनको इससे दूर ही रखना भला।'

टहलराम के कई साथियों के विवेक में यह बात नहीं बैठी परन्तु वे सरकार या किसी की भी अपेक्षा टहलराम को अपने निकट अधिक पाते थे, इसी लिये उसकी बात को मानते थे, मन चाहे भरे या न भरे।

'तो बना डालो समिति, भैया टहल' बटोले ने कहा।

'जहां मन एक होता है वहाँ तन अलग नहीं रहते,'—टहलराम ने कहा,—'अपने अपने खेत समिति में जुटा दो और मिल कर काम करो।'

'पर सब के पास तो जिमीन नहीं है,' मंटू ने बात उठाई।

'टहलराम ने मार्ग दिखलाया,—'न सही। अपने हाथ और पसीने का तो बल है। मैं अपने अच्छे बुरे सब खेत समिति को दे दूंगा, अलग से निजी खेती नहीं करूंगा; किसी को भी नहीं करनी चाहिये। मेरे सब खेत समिति के, यानी तुम सब लोगों के हो जावेंगे।'

और गांठ के हमारे भी निकल जावेंगे ! बटोले ने सोचा।

दमरू बोला, 'मैं अपने कुछ खेत लगाने को तैयार हूं, लेकिन उनमें से कई झगड़े वाले भी हैं। बिक्रम, बनमाली, देशराज—सभी से कुछ न कुछ झंझट है।'

'तो वे खेत लगा दो जिन पर कोई लड़ाई मुक़द्दमा नहीं है' मंटू ने सुझाया।

दमरू को अखर गया,—'बग़ल के पिल्ले को फेंक कर कूर कूर करते फिरो !'

बटोले ने समझौता प्रस्तुत किया,—'बीच का रास्ता सबसे भला। कुछ झगड़े वाले लगा दो और एकाध बग़ैर झगड़े वाला। मान लो समिति का काम न चला तो पल्ला फटकार के फिर जहां के तहां खड़े हो जायेंगे।'

जिनके पास खेत थे उनके भूमि-मोह ने यही पसन्द किया।

मंटू ने प्रश्न किया, 'जिनके पास हाथ भर भी ज़मीन नहीं, वे क्या करेंगे ? जैसे मैं हूं। बटोले दादा की सोंझ करता हूं। अगर वह भूमि समिति को सोंप दी गई तो मेरा क्या होगा ?'

टहलराम ने बतलाया,—'अपने गाँव की आबादी सुहाना गांव की आबादी से अधिक है। निज की ज़मीन थोड़े से ही लोगों के पास है। बाक़ी मज़दूरी करते हैं। हज़ारों बीघा अच्छी भूमि को कांस ने खा लिया है। सरकार की मशीनें कांस को उखाड़ फेंकेंगी। जो ज़मीन साफ़ होकर निकलेगी, वह ज़रूरत वाले किसान मज़दूरों में बाँट दी जावेगी।'

यह बात सबको अच्छी लगी।

किसको कौनसा और कितना बड़ा टुकड़ा मिलना चाहिये इस विषय पर देर तक बात चलती रही। उसी समय राघवन की मोटर भर्र भर्र करती हुई टहलराम के दरवाज़े आ खड़ी हुई। वे सब बाहर निकल आये। राघवन टहलराम से मिलने आया था। उसको वे सब सम्मान के साथ भीतर ले गये।

टहलराम ने, संक्षेप में, अपने ढङ्ग की समिति बनाने का संकल्प सुनाया।

राघवन ने अपना विचार प्रकट किया,—'मैं आपकी अधिकांश बातों से सहमत हूँ। मैं स्वयं इस बात के पक्ष में नहीं हूँ कि कुछ

भूमि समिति में लगा दें और कुछ अपनी निजी खेती के लिये अलग रक्खें, क्योंकि होते होते अन्त में निकम्मी भूमि समिति में रह जायगी और अच्छी निजी खेती में। आप अपनी समिति जिस विचार को रखकर बना रहे हैं, वह बहुत सुन्दर है—'

टहलराम को इस विशेषण से सन्तोष नहीं हुआ। वह उत्साह के साथ बीच में बोल उठा,—'मेरे लिये जीवन में जो कुछ भी बहुत सुन्दर है, वह श्रम है। अपनी समिति में श्रम को हम लोग अधिक महत्व देंगे।'

'मेरा भी यही मत है,'—राघवन ने बहस के सभी पहलुओं को बचाते हुये कहा,—'इसीलिये सुहाना की समिति में मज़दूरों को भरपेट मज़दूरी, समिति के कामों में राय देने का हक़ और भत्ता मिलेगा। कुटीर उद्योगों से बेकारी दूर भगाई जावेगी।'

'हम लोग सुहाना से दूर नहीं बसते हैं,—देखेंगे क्या क्या होता है।'

'आपकी समिति अपने ढङ्ग की एक ही रहेगी। मेरा अनुरोध है कि इसकी रजिस्ट्री करवा लीजिये। सुहाना और बाँगुर्दन की समितियां अपने अपने ढङ्ग पर अलग अलग चलें और दोनों में उन्नति और प्रगति की होड़ लगे। यह एक ऐसा प्रयोग रहेगा कि हम सब उससे कुछ न कुछ सीखेंगे।'

राघवन बहुत उमङ्ग में था।

टहलराम रजिस्ट्री कराने के विरुद्ध था। इसलिये बात बहस के क्षेत्र में पहुँचे बिना न रही।

टहलराम ने कहा, 'मैंने आपकी योग्यता और कर्तव्य-भक्ति के बारे में बहुत सुना है, परन्तु सरकार में आप सरीखे कितने अफ़सर हैं? आतंक जमाना, भत्ता सीधा करना और संस्थाओं पर अमरबेल की तरह छाये रहना ही अधिकांश का लक्षण है। ये लोग इस युग के सामन्त हैं। हम उनसे दूर रहना चाहते हैं।'

राघवन को कहना पड़ा,—'अंग्रेज़ों के ज़माने की अफ़सरी और इस युग की अफसरी में बहुत अन्तर हो गया है। कामचोरों, अकड़बेगों ने भी अब अपने को संभाल लिया है। जनता का स्नेह और सम्मान कमाने की लालसा सभी के जी में है।'

लोग काफ़ी देर से बैठे बैठे बातें सुन रहे थे। इतनी सी ही बहस पर उकता उठे।

मंटू जिसे बात करने की उतावली रहती थी, बोला, 'कांस को मिटाने के लिये अफ़सर लोग क्या कर रहे हैं ?'

राघवन को अच्छा प्रसङ्ग मिला।

'मशीनें आ रही हैं। दो खास तौर से बड़े काम की—एक ट्रैक्टर, दूसरी बुलडोज़र। ट्रैक्टरों से कांस उखाड़ फेंका जायगा और बुलडोजरों से बँधियां डाली जायेंगी, और—'

'बिना ज़िमीन वाले और कम ज़िमीन वाले किसान मज़दूरों को इसमें से कुछ मिलेगा ?' मंटू ने जल्दी से प्रश्न किया।

'अवश्य,'—राघवन ने उत्तर दिया। फिर उत्तर की व्यापकता को सुधारा,—'सरकार एक बड़ा नमूना-फ़ार्म बनायगी, क्योंकि हज़ारों एकड़ ज़िमीन तो सरकार की है। जो ज़िमीदारों की पड़ती है, उसका बन्दोबस्त गांव की पचायत करेगी—यानी आप लोग उसको बिना भूमि वालों में बांट देंगे।'

'ज़िमींदारों की पड़ती ! वही फ़साद की बात !!'

'तो क्या मशीनें ज़िमींदारों वाली पड़ती में नहीं चलेंगी ?' मंटू ने दूसरा प्रश्न किया।

टहलराम ने जो आश्वासन दिया था कि कांस को उखाड़ फेंकने के बाद साफ़ भूमि ज़रूरत वाले किसान मज़दूरों में बाँट दी जावेगी, फीका पड़ने लगा। मंटू उस आश्वासन की थाह में जाना चाहता था और वह उसे सरकारी अफ़सर से मिल गई, जिसकी सराहना स्वयं टहलराम ने अभी अभी की थी। परन्तु उसकी आशा का तार नहीं टूटा और टहल-

राम के प्रति आस्था भी कमजोर नहीं पड़ी। टहलराम ने देख लिया कि किसान किसी न किसी प्रकार हर बात को अपनी अपनी कसौटी पर कसता है।

राघवन ने मंटू को बतलाया,—'मशीनें सहकारी समितियों की खास तौर पर मदद करेंगी। जिमींदारों की जो पड़ती सीर कहलाती है उस पर उन्हें खेती करानी पड़ेगी नहीं तो वह गाँव की पचायत के हाथ चली जावेगी। ऐसी जो पड़ती सहकारी कृषि समिति में लगा दी गई होगी या जो लगा दी जावेगी, वह सब मैम्बरों के भोग और उपभोग में आवेगी।

'और ऐसी पड़ती झगड़े वाली भी हो सकती है,' यह शङ्का बटोले और दमरू के मन में उठी।

राघवन की बात अधिकांश लोगों की समझ में साफ़ तौर पर नहीं आई। वे उसका मुंह देखने लगे।

टहलराम ने कहा, 'देखना है,सुहाना में क्या होता है। निरखें-परखेंगे और समस्याओं का मुकाबला करने को तैयार रहेंगे।'

टहलराम के साथी राघवन से कुछ और सुनना—जानना चाहते थे, पर टहलराम की बात का लाँघना अभीष्ट नहीं था।

राघवन ने विषयान्तर करते हुये प्रसंग जारी रक्खा,—'आज संध्या समय सुहाना में, देशराज जी की हवेली के आँगन में, सहकारी कृषि समिति के उद्घाटन का हर्ष प्रकट करने के लिये संगीत समारोह होगा। आप लोगों के लिये भी निमन्त्रण आयेगा। अवश्य पधारिये। जिमींदारों की पड़ती और उसके भोग उपभोग की भी चर्चा होगी। मशीनों के काम परभी बात-चीत चलेगी।'

मन्टू तुरंत बोला, 'यदि देशराज जी बुलायेंगे तो पहुँचेंगे। वहाँ एक नाचने वाली आई है। सुना है, उनका नाच भी होगा?'

मन्टू मौजी तबियत का था।

राघवन ने कहा, 'हां। गाँव-गीत और गाँव-नाच के भी नमूने पेश होंगे।'

लोकगीत और लोकनृत्य की चर्चा टहलराम के सिद्धांतों की परिधि में आती थी, परंतु वह उस समय लोक-सङ्गीत को देशराज के नाम और हवेली के आँगन से संश्लिष्ट नहीं करना चाहता था।

टहलराम बोला, 'हां सो तो खैर ठीक है, परंतु हम सब कुछ बातें यहीं साफ़ समझ लेना चाहते हैं। सरकारी पड़ती में से, जिसका काँस मशीनें उखाड़ेंगी, बांगुर्दन और सुहाना के भूमिहीन किसानों को कितनी दी जावेगी ? और ज़मींदार की जो पड़ती सीर और खुदकाश्त नहीं है, उसका क्या होगा ?'

राघवन ने यथाशक्ति, सावधानी से, बतलाने की चेष्टा की,—'सरकारी पड़ती के एक बड़े भाग में सरकार नमूना-फार्म स्थापित करेगी, यह तै हो चुका है। कुछ पड़ती, जिसका रक़बा भी काफ़ी होगा, भूमि-हीनों को बांटी जायगी, कह नहीं सकता किस-किस को। सम्भव है, बाहर से आये हुए पुरुषार्थियों को उस पर बसाया जावे। उन बिचारों की सहायता करना भी बहुत ज़रूरी है। है न ? रह गई ज़मींदारी पड़ती, वह गाँव की पंचायत के अधिकार में आ जायगी और बँटेगी; परतु जैसा मेरा अनुमान है, पहले सहकारी कृषि समितियों को दी जायगी।'

यहीं के बहुत से निवासी बेघर-बार और बँधे हुए काम से हीन हैं, यह बात टहलके मनमें उठी और कई के भी,परन्तु उस कष्ट-दायक प्रसंग पर मत प्रकट करने का साहस नहीं हुआ।

तो भी टहलराम ने थोड़ा सा छेड़ा,—'यहीं क्या कम बेकारी और ग़रीबी है ? लेकिन अपने उन भाइयों को भी अपनी भुखमरी में से कुछ सहारा देना ही चाहिये। फिर भी इतनी भूमि है कि सबकी गुज़र हो जायगी। हमारे गाँव वालों को भी अवश्य मिलेगी।'

'तो समिति की रजिस्ट्री क्यों नहीं करा लेते ? भूमि के बांट के समय मांगने, लेने का पूरा हक़ रहेगा।' राघवन ने मुस्करा कर अपने मन की बात कह डाली।

वह मुस्कराते समय भी गम्भीर जान पड़ता था।

टहलराम के सिवाय उन सबों के मन में सहकारी कृषि समिति की रजिस्ट्री कराने की बात घर कर गई। जो किसान अनन्त-काल से दुष्ट प्रकृति, कृमिकीट, भाव-कुभाव, आर्थिक और राजनैतिक विपत्तियों से मस्ते दम तक कुश्ती लड़ता आया है, वह पुराने ज़िमींदारों या नये अफ़सर 'सामन्तों' की दाघलात की कुचल-पिचल से भी अन्त में अपने को बचा ले जायगा, यह अन्तर्निहित, अज्ञात, आत्म-विश्वास उनका जन्म-सङ्गी था। मन्टू के जी में आया, रजिस्ट्री करा दो, हर्ज़ ही क्या है। पर वह टहलकी भाव-भंगिमा को देख कर सहम गया। उसका मुंह ताकने लगा।

टहलराम बोला, 'सरकार ऐसा अन्याय नहीं कर सकेगी। हम लोग उसे न्याय करने के लिये मजबूर करेंगे। यह कोई बात है कि सरकारी छाप सहकारी समिति पर लग जावे तब तो वह सरकार को प्यारी लगे, नहीं तो दुतकारी जावे?'

बटोले ने पूछा, 'आपने कुटीर उद्योगों की सहायता की कुछ बात कही थी। इसमें तो सीर और पड़ती की कोई उलझन नहीं। यदि हम सरकारी समिति में शामिल न हों तो क्या हमारी मदद नहीं की जावेगी?'

'क्यों नहीं?' टहलराम ने ज़ोर के साथ कहा।

राघवन ने उतर दिया,—'अवश्य की जावेगी। यदि कुटीर-उद्योग वालों की भी सहकारी समिति बन जावेगी तो सहकारी तौर पर माल बेचने खपाने का भी सुभीता हाथ लग जायगा। ग्राहकों की खोज तलाश नहीं करनी पड़ेगी। दलालों की दलाली से बचे; रुपये-पैसे, सामान, मशीनों की जो मदद मिलेगी वह अलग।'

बटोले ने बात गाँठ में बांध ली। वह प्रसङ्ग पर अधिक बात करके टहलराम का प्रतिवाद आगे नहीं बढ़ाना चाहता था।

उसने तुरन्त विषयांतर किया, 'चलो न आज सांझ को वहाँ। कुछ देना लेना तो पड़ेगा नहीं; अपना क्या बिगड़ता है? पर हाँ, बिना बुलाये नहीं जायेंगे।'

मंटू ने भी अनुरोध किया।

बटोले ने रङ्ग गहरा किया,—'और उन लकड़ी के लट्ठों को भी देखेंगे जिनको देशराज ने चोरा-चोरी रातोंरात, कटवा कर उठा मंगाया था। मैं कोई न कोई मौक़ा निकाल कर बात छेड़े बिना न मानूंगा।'

संघर्ष में टहलराम को रस मिलता था। बटोले की छेड़छाड़ की कल्पना करके उसे भी सङ्गीत समारोह में जाना रुचा—शर्त यह कि निमन्त्रण आवे तो जायेंगे। बटोले, मंटू और इन सरीखे कई सोच रहे थे—मन की कह डालने का मौक़ा भी मिलेगा—मुफ्त में राग-रङ्ग अलग।

राघवन को विश्वास था कि निमन्त्रण आयगा; देशराज भूल गया होगा तो उसे याद दिला दूंगा, इन दोनों गांवों के मुखियों में थोड़ा बहुत भी मेल-जोल करा सका, तब बात है।

राघवन चला गया। कुछ समय उपरान्त उन लोगों के पास देशराज का निमन्त्रण आ पहुँचा।

(१३)

छः बजने के पहले ही सूर्य ने अपनी किरणें पहाड़ों के पीछे समेट लीं। सन्ध्या के प्रकाश को जङ्गल और पहाड़ सेंत रखने की होड़ सी लगा रहे हों।

देशराज की हवेली के आँगन में गांव भर की चहल-पहल सिमट आई। नङ्गे-अधनङ्गे बालक शोर गुल करने में सबसे ज़्यादा व्यस्त थे।

प्रकाश के लिये गैस के हण्डे रंगमंच के बाहर और भीतर लगा लिये गये। मंच सादा सफेद पर्दों का बनाया गया था। हरे पत्तों के बन्दनवार की सजावट थी जिनमें से कुछ मुर्झा चले थे। मंच-सृजन के काम में उस रात के काटे कुछ लट्ठे लगा लिये गये थे, बाक़ी आँगन के एक कोने में इखरे-बिखरे पड़े थे।

थोड़ी देर में अँधेरा हुआ। गैस की बत्तियां जला ली गईं और मञ्च के सामने, दर्शकों के लिये फ़र्श बिछा दिये गये। मञ्च के आगे बढ़िया क़ालीन और तकिये।

खेतों पर काम करके किसान हल बैल बखर लिये आंगन के फाटक के सामने से निकले। थोड़ी देर के लिये ठिठके, फिर एक हाथ से माथे का पसीना पोंछते हुये दूसरे से बैलों की पूंछ मरोड़ कर अपने घर चले गये।

एक मोटर आई। उसमें से नाहरगढ़ का बाघराज, उसका एक साथी और ड्राइवर उतरे। आव-भगत के लिये देशराज, बनमाली इत्यादि झपटे। उन लोगों को आदर के साथ बिठला लिया गया। राघवन भी मोटरसे आगया। देशराज ने बाघराज से उसका परिचय कराया। राघवन को मौक़े-बेमौक़े भी सहकारी कार्यों की चर्चा चलाने की सनक थी। नाहरगढ़ के इलाक़े में सहकारी प्रणाली चलाने के लिये कितनी गुन्जाइश है इस विषय पर बात करता रहा। बाघराज ने चाव के साथ वार्तालाप किया। राघवन को ऐसा ही प्रतीत हुआ।

सनेहीलाल, धरनीधर इत्यादि सुहाना के और टहलराम, बटोले, मंटू इत्यादि बांगुर्दन से आये। स्वागत के लिये फाटक पर, सहकारी कृषि समिति का मन्त्री बनमाली था ही। देशराज ने भी इन सबकी दिखावटी आवभगत की। और आगे के आसनों पर बिठला दिया। टहल ने सोचा उस दिन के जलूस की बात या तो भूल गया है या उसके आतङ्क से प्रभावित है। पीछे का स्थान जब तक न भर जाय, मंच का पर्दा नहीं खुला। इसमें एक घंटे से ऊपर का विलम्ब हो गया।

फिर भीड़ उमड़ी। दोनो गांवों के स्त्री पुरुष और बालक इकट्ठे हुये। इतना शोर कि कान पर हाथ धरते नहीं बनता था।

टहलराम सनेही के पास बैठा था और मटू विक्रम के ज़रा पीछे।

'यदि इन अवसरों पर हमारी जनता को कुछ ऐसा सांस्कृतिक भोजन मिले जो इनको थोड़े से भी समय के लिये सशक्त करदे तो कितना अच्छा रहे।' टहलराम ने सनेही से गला फाड़ कर कहा।

सनेही शोर के मारे वैसे ही परेशान था। बोला, 'हां आं।'

'पर अञ्जना के नाच-गान से क्या मिलता है?' टहल और भी ज़ोर से चिल्लाया।

थोड़ी ही दूर बैठे हुये देशराज ने सुन लिया। उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। अनसुनी कर दी।

सनेही ने कोई टीका नहीं की।

टहलराम से फिर भी न रहा गया,—'जरा तटस्थ होकर इस हल्ले गुल्ले की तह में जाइये; लोग इस नाच गाने के सुनने के लिये नहीं तड़प रहे हैं। उनका भीतर वाला स्वस्थ मानसिक भोजन मांग रहा है, उसी मांग को यह शोर अपनी भाषा में भिन्नता के साथ प्रकट कर रहा है।'

'अब पर्दा उठने वाला है,' सनेही ने उसको चुप रहने का संकेत किया।

पर्दा उठ गया। शोर धीमा पड़ा।

अञ्जना बहुत भड़कीले सजीले वेश में मन्च पर दिखलाई पड़ी। साज में गांव का एक सारङ्गी वाला, दूसरा मृदङ्ग और तीसरा मजीरे बजाने वाला था।

सारङ्गी अञ्जना के गाने का साथ रोरोकर दे रही थी। मृदङ्ग अलग था। मजीरे वाला अपनी धुन में मस्त। परन्तु अञ्जना को इनमें से किसी की परवाह न थी। वह अपनी कला में ध्यान-मग्न थी और अपना प्रदर्शन कौशल के साथ कर रही थी।

शोर बन्द हो गया। जनता को वह सजीव रंगीन पुतली की तरह गाती नाचती जान पड़ी।

मंटू ने धीरे से बुदबुदाया, 'है तो बड़ी मज़ेदार जैसे कोई सनीमा वाली हो।'

'चुप भी रह'—बिक्रम को क्षोभ हुआ,—'बड़ा जानकार बना फिरता है।'

मंटू तमातमा गया।

स्त्रियाँ आपस में बिर-बिरा रही थीं। इनमें सनेही की पत्नी, राजदुलारी, नहीं थी।

अञ्जना की दृष्टि के दो केन्द्र विशेषकर थे—एक, राजा बाघराज और दूसरा देशराज; दूसरे की अपेक्षा पहला अधिक।

हाव-भाव, कटाक्ष, अङ्गों का उद्दीपक दोलन उसने जी खोलकर किया। देशराज और बाघराज ने कई वाह वाह की। निकट और दूर बैठे कुछ और लोगों ने भी। बटोले के मुंह से निकला,—'हिष्ट !'

टहल ने सनेही के कान के पास खिसक कर कहा, 'शरम आनी चाहिये।'

सनेही चुप रहा।

फिर अञ्जना ने एक लोकगीत और नृत्य का प्रदर्शन किया। इसका साथ सारङ्गी, मृदङ्ग और मजीरों ने ठिकाने से किया।

जनता को अच्छा लगा।

टहल ने धीरे से कहा, 'इसमें ऐसा क्या है जिसे ये मूर्ख इतना पसन्द कर रहे हैं ?'

टहल की असंगति पर सनेही बोला, 'वे जानें।'

मंटू ने अपनी जानकारी प्रकट करने के लिये कहा,—'यह है बहुत ठाठ का !'

भिन्न-भिन्न प्रकार के गान और नृत्य लगभग दो घंटे चले। अन्त में सबको विनय-पूर्वक नमस्कार करके अन्जना, बाघराज को अपनी आंख का अन्तिम लक्ष्य बनाती हुई, मन्च पर से चली गई। पर्दा गिर गया। जनता जो, रात-रात भर गांव के नाचगान देखने सुनने की अभ्यस्त थी, कई घंटे और रमना चाहती थी। देशराज के इस आश्वासन देने पर कठिनाई से हटी कि फिर कभी ऐसा ही मेला भरा जायगा।

सनेही, टहलराम और धरनीधर को देशराज ने रोक लिया। बाघराज को तो रातभर वहाँ ठहरना ही था। उसे अन्जना ने मंच के पीछे के शृङ्गार गृह में बुला भेजा।

देशराज ने सनेही से पूछा, 'आपकी श्रीमती जी नहीं आईं ! अन्जना देवी स्वयं उन्हें निमन्त्रण देने गई थीं।'

सनेही ने सहजभाव से उत्तर दिया, 'वे जानें। घर के किसी काम में लग गई होंगीं। ऐसी भीड-भाड़ में वैसे भी वे भाग नहीं लेती हैं।'

'जाती तो हैं !'

'अपने घर पर।'

आधे क्षण गम्भीर रह कर देशराज ने हँसकर कहा, 'अबकी बार उन्हें लाने के लिये मैं जाऊंगा और उनके पैर पड़ूँगा।'

सनेही भी हँसा। राघवन निकट आ गया।

'तो अब जाऊँ न ?' सनेही चलने को हुआ।

देशराज ने रोका,—'ज़रा सा ठहरिये। टहलराम जी और धरनीधर जी तथा इनके मित्रों को मैंने खास तौर से इसलिये बुलाया कि मैं

बतला दूं—मैं अब वह नहीं रहा। सहकारी समिति की जिम्मेदारी सिर पर आगई है। उसका भार इतना बड़ा है कि हम थोड़े से उसे नहीं सँभाल सकते। हम चाहते हैं कि बांगुर्दन भी हाथ बटाये; सहकारी कामों में दोनों गांव एक होकर चलें।'

'तो कुछ साफ़ साफ़ बातें करूँ?' टहलराम ने रुखाई के साथ कहा।

देशराज को भीतर भीतर खटका, पर ऊपर मुस्कान बनी रही जिसमें होकर उसने 'हां क्यों नहीं' निकाली।

'आपने बटोले, दमरू, छदामी के क़ब्जे की ज़िमीन, बनमाली और विक्रम को लगादी? बहुत बुरा किया।'

'मुक़द्दमें से तै हो जायगा कि ज़िमीन किसकी है।'

'इस तरह क्या आप इन दुःखियों के मेल-जोल को पाजायँगे?'

'वह ज़िमीन सहकारी कृषि समिति में लगादी गई है या लग जायगी। यदि मुक़द्दमे से बटोले वग़ैरह की तै हुई तो उनकी हो जायगी। वे समिति में आजावें। भूमि उनकी रहे या नहीं, समिति के नाते सबके खाते में उनका खाता भी जुड़ जायगा।'

'यह आपकी ज्यादती और चालाकी है।'

'इन बातों के सुनने का, मुझे अभ्यास होता जा रहा है।'

टहलराम की आंख आंगन के कोने में पड़े हुये शहतीरों के इखरे बिखरे ढेरों पर गई। धरनीधर की भी।

टहलराम ने उस ढेर की ओर उँगली उठाते हुये ज़रा ज़ोर के साथ कहा, 'और आप को क़ानून की अवहेलना करने में जैसे कुछ लगता ही न हो। यह जङ्गल क्यों कटवा दिया?'

देशराज ने मुस्कराकर उत्तर दिया,—'मैं इस सारी लकड़ी को समिति की सहायता के लिये दान कर दूंगा—'

धरनीधर ने तपाक से टोका,—'हाथ जोड़े ऐसी समिति के जो इस दान को काम में लावे।'

टहलराम ने देशराज को स्मरण दिलाया,—'आपके यहाँ बीज और खवाई के लिये अन्न देने में जो अनाचार होता है उसकी मैंने शिकायत की थी। आपने क्या किया ?'

'आगे से अन्न देना ही बन्द कराये देता हूँ। न रहेगा बांस, न बजेगी बाँसुरी।'

सनेही बीच में पड़ा,—'ऐसा क्यों करते है ? प्रथा को सुधार दीजिये।'

धरनीधर ने आक्षेप को विस्तार दिया,—'कारिन्दे का हक़, रेडियो का टैक्स और तौल में डांडी का मारना ! सहकारी कृषि समिति के साथ यह सब कैसे चलेगा ?'

'जैसे आपका एक पैसा फ़ी रुपया ब्याज के ऊपर अधेला रुपया धर्मादाय, अधेला रुपया चन्दा-वन्दा और न जाने क्या क्या।'

'जिनसे लेता हूँ उन्हीं पर उसे खर्च भी कर देता हूँ।

अबकी बार राघवन ने बीच बचाव दिया,—'इन बातों का बढ़ाना बेकार है। सहकारी समिति और सरकारी बीज गोदाम हो जाने पर न यह रहेगा और न वह। आप सबको इस काम में मन के साथ एक हो जाना चाहिये।'

राघवन प्रत्येक सामाजिक बीमारी और त्रुटि का इलाज सहकारी कामों में पाया करता था।

सनेही ने समझाया,—'गड़े मुर्दों का उखाड़ना व्यर्थ है। सर्वथापूर्ण और निर्दोष सिवाय भगवान के और कोई नहीं। इसलिये व्यक्ति और समाज को आगे बढ़ाने के लिये जहां से जब जो कुछ मिल जाय, लेकर, काम में लाना चाहिये।'

'यानी पूरा अवसरवादी बनना चाहिये,' टहलराम ने व्यङ्ग किया।

'मैं बहस में नहीं पड़ना चाहता, काम करना चाहता हूँ।' सनेही हँसता हुआ चला गया।

देशराज ने निश्चय किया, मैं अकेला ही मोर्चा लूंगा। बोला,—आपने अपने घर में भी देखा क्या होता रहता है ? आपकी माता जी भी सवाई पर ग़ल्ला देती है। देने की तौल वाला बर्तन लेने की तौल वाले बर्तन से भिन्न !'

'आप साबित कर सकेंगे ? यह बहुत नीचा और झूठा आक्षेप है मेरी माता जी पर।'

राघवन सबलता के साथ बीच में पड़ा,—'जाने भी दीजिये ! इन बातों में क्या रक्खा है ? अब अपना देश स्वतन्त्र हो गया है, उसकी बहार छोटे बड़े—सब—को दिखलाइये। इन छोटी-छोटी बातों को छोड़िये।'

'पुराने सामन्त जब उसे पनपने दें, तब तो,' धरनीधर ने चुटकी काटी। टहल का क्रोध उस कक्ष में पहुँच गया जब वह अपने पात्र को एक जगह नहीं टिकने देता।

'चलो जी यहां से,'—टहलराम ने धरनीधर से अनुरोध किया,—'इन्होंने अपमान करने के लिये ही हम लोगों को यहां बुलाया था। धन-सम्पत्ति का बहुत घमण्ड है। धूल में मिली जाती है सब ऐंठ अकड़ कुछ ही समय में !'

टहलराम देशराज के कलेजे में आगी लगाकर चला गया। परन्तु धरनीधर जिस तरह सिर उठाकर और पैर धमधमा कर उसके साथ गया वह देशराज को कुछ कम नहीं अखरा।

राघवन ने सान्त्वना दी,—'इन्हें माफ़ कीजिय राजा साहब और मुझे इनसे भी अधिक, क्योंकि मेरे ही कहने से आपने इन सबको निमन्त्रित किया था। युगान्तर के काल में यह सब होता ही रहता है। सहकारी कार्यक्रम को दत्तचित होकर अपना लेने से यह सब घुलघुला-कर समाप्त हो जायगा। सहकारी सिद्धान्त—'

'चाय मँगवाऊँ आपके लिये ?' देशराज ने पूछा।

'नहीं तो, मैं अभी सदर जा रहा हूँ।' राघवन ने उत्तर दिया।

'फिर कब आइयेगा ?'

'संभवतः मशीनों के साथ, जल्दी ही ।'

'अच्छा, नमस्ते । आपने बड़ी कृपा की; इस समारोह की शोभा को बढ़ाया ।'

राघवन जाते जाते कह गया,—'मैं कह रहा था कि सहकारी सिद्धान्त ही हमारे भारतीय समाज की अनेक आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का हल है । नये युग के स्वागत में उसी को अपनाइये ।'

देशराज कुछ और सोच रहा था ।

[१४]

जब सब चले गये और नौकर सामान इकट्ठा करके जहाँ का तहाँ रखने में लग गये, अञ्जना, बाघराज और देशराज खा पी कर हवेली के भीतर वाले एक एकान्त कमरे में जा बैठे। बाहर के भोंड़ेपन से भीतर की सजावट की बाघराज ने तुलना की और अञ्जना के रङ्ग-मञ्चीय आकर्षक शृङ्गार से इस समय की अपेक्षाकृत सादी वेशभूषा से। रङ्गमंच की जो थिरकनें और चितवनें देखी थीं, वे अब नहीं थीं, फिर भी उसकी आँखों में मद झलक मार जाता था। बाघराज के मन में बैठा—अञ्जना बहुत रूपवती है पर कैसे सङ्कट वाले काम को इसने अपना रक्खा है!

बोला, 'आप कब तक ठहरेंगी यहाँ?'

'बस थोड़े दिन और। फिर उत्तर की दिशा में। अब की बार अधिक माल लाने का सङ्कल्प है।'

'चाहता हूँ जल्दी अपना पेटा भर जाय तो दूसरा धन्धा देखें।'

'मेरी भी यही कामना है,'—देशराज ने कहा,—'मैं भी इनके साथ जाऊँगा।'

'ज़रूर साथ ले जाऊँगी। सोचती हूँ इस सहकारी झंझट में ये कहीं ज़्यादा न उलझ जायें।' अञ्जना हँसी। उसके मोती जैसे चमकदार और सुघड़ दाँत बाघराज को सुहावने लगे।

देशराज ने फीकी हँसी में साथ दिया—'अरे नहीं। जीवन को सुगमता के साथ चलाने के लिये ही बानक बना लिया है। जोश उस काम के लिये सिवाय शायद सनेहीलाल के और किसी के मनमें नहीं है, परन्तु वह राघवन की तरह सनकी नहीं है, इसलिये मुझे नहीं अखरता। बाक़ी तो अपने अपने किसी न किसी मतलब से चिपके हैं। मैं चाहता हूँ इन सबको लड़ाता भिड़ाता रहूँ।'

अञ्जना मुस्कराकर बोली, 'इसकी चिन्ता मत करो। वे स्वतः लड़ते रहेंगे। उस टहलराम को भी इसमें खपा लेते तो एक कांटे की नोक और झड़ जाती।'

देशराज यकायक तमतमा गया।

'आज वह बहुत बकझक कर गया है। कलेजे में तीर सा चुभ रहा है। मैं थकावका नहीं हूँ। असल में उन लोगों की बातें कसक रही हैं।'

'मैं समझी थी कि किसी सहकारी प्रसङ्ग को लेकर बात गम्भीरता पर चढ़ रही है, क्योंकि जब शृङ्गार कक्ष में राजा साहब को चाय पिला रही थी, थोड़ी सी भनक कान में पड़ी थी। क्या बात थी ?'

देशराज ने बतलाया। जैसे जैसे वह बात को घटा-बढ़ाकर कह रहा था क्षोभ की मात्रा बढ़ती जाती थी। वह क्रोध में उसी तरह बेकाबू हो गया था जैसे मनुष्य शराब पीने पर।

'इन टुच्चों की इतनी हिम्मत !' बाघराज को भी क्रोध आया।

अञ्जना उदास होकर एक क्षण के लिये किसी विचार में निमग्न हो गई।

महीन स्वर में बोली, 'इनकी गुस्ताखी का नियन्त्रण तो होना ही चाहिये।' सिर नीचा किये थी।

'कुछ मुश्किल नहीं।' बाघराज ने निश्चय के स्वर में कहा।

'मैं भी चाहता हूँ।' देशराज ने शब्दों में जो कुछ प्रकट किया उससे अधिक उसकी आँख ने कहा।

'हो जायगा। कालीसिंह को जरा छुछकारने की जरूरत है, सो मैं करूँगा। आप लोग निश्चिन्त रहें। बहुत दिन नहीं हुये जब पुलिस, फ़ौज, सब हाथ में थी। अब वह नहीं रही तो कालीसिंह सरीखे नातेदार तो हाथ में हैं।'

वे दोनों आश्वस्त हो गये।

बाघराज ने व्यवसाय की चर्चा चलाई—'माल खपने में देर नहीं लगी। और जितना भी आ जायगा तुरन्त करारे दाम ले आयगा, पर

मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप लोग किसी तरह के भी सङ्कट में न पड़ें, यानी साँप मरे लाठी न टूटे।'

अञ्जना मुस्कराई।

उस मुस्कान में जो आत्माभिमान निहित था उसे बाघराज जानता था। हँसकर बोला, 'मैं आप लोगों के विकट साहस को जानता हूं परन्तु मोह ममता के कारण ऐसा कहा।'

'तो एकमात्र रोज़गार की ही बात नहीं है, थोड़ा सा कुछ और भी है। इनके ऊपर मेरी विजय आरम्भ हो गई है।'

अञ्जना के अहङ्कार को बाघराज की 'मोह-ममता' वाली बात अच्छी लगी।

हिसाब से जो कुछ बैठा था, अञ्जना पिछले दिन चुकता ले गई थी। उसी के उत्साह की प्रेरणा से सङ्गीत समारोह को उन दोनों ने सफल बनाने का प्रयत्न किया था। अञ्जना के मन में आगे अधिक पा जाने की आशा जागी।

कब किसको क्या करना है इस बात का निश्चय किया गया। और तार द्वारा विशेष संवाद भेजने के लिये सांकेतिक शब्द तै कर लिये गये।

बाघराज दूसरे दिन सवेरे नाहरगढ़ चला गया।

[१५]

टहलराम की मां का मायका घाटी नाम के गांव में था। इसलिये वह घाटीवाली कहलाती थी। आयु में उतरी हुई और बात में तेज़। जब कुछ कहने पर आ जाय तो न संकोच करे और न लिहाज़। देशराज के पिता ने तो टहलराम के पढ़ने में थोड़ी सी ही सहायता की थी, घाटीवाली ने अपनी हड्डी घिस घिसकर उसे असल में इतना बढ़ाया था। टहलराम उसका बहुत आदर करता था।

सरकारी नौकरी न पाकर, या न करके, टहलने बाँगुर्दन में एक स्कूल स्थापित किया था जिसमें अंग्रेज़ी की शिक्षा विशेष कर दी जाती थी। उसका एक सहायक शिक्षक भी था। लड़कों की फ़ीस, जो थोड़ी सी ही थी, खेती पाती और घाटीवाली के छोटे से पैमाने पर चलने वाले अन्न सवाई के व्यवसाय से घर का काम चलता रहता था। टहलराम दिन के कुछ घंटे नियमित रूप से अध्यापन पर खर्च करता था, शेष बहुत सा समय किसान मज़दूरों के संगठन पर जिसमें वह थोड़ा सा ही सफल हो पाया था। घाटीवाली उसके काम में हस्तक्षेप नहीं करती थी और न वह माँ के अन्न सवाई के लेन-देन में। मन को न इच्छा थी, न फ़ुरसत। घाटीवाली को विश्वास था कि टहल एक दिन बड़ा नामी आदमी होकर रहेगा।

उस दिन सवेरे सवेरे ही टहलराम गाँव में निकल गया। बहुत से लोगों ने खेत बो लिये थे, कुछ के अभी पड़े हुये थे—या तो किसान की बीमारी या बीज की दुष्प्राप्यता के कारण।

घाटीवाली ऐसे ही कुछ लोगों को बीज दे रही थी। थोड़ासा पढ़ना, लिखना जानती थी। एक छोटी सी कॉपी-बुक में अपना हिसाब रखती थी। धर्मादाय या किसी मद पर ग़ल्ला नहीं काटती थी। फ़सल पर सवाई और फ़सल चूकी तो डयोढ़ा अवश्य लिया करती थी। लेने वाले उसके साफ़ व्यवहार से सन्तुष्ट थे, पर कुछ गिनती के लोगों से

ही उसका ब्योहार था। कहती रहती थी—जब हमारा भण्डार बढ़ जायगा तब ब्योहार फैला दूंगी।

जो लोग बीज लेने आये थे उनके साथ बच्चे भी थे। नङ्गे, अध-नङ्गे। जिन पर कुछ कपड़ा था भी तो वह मैला कुचैला चिथड़ा। किसी बालक की आँखों में कीचड़, किसी की नाक बहती हुई, किसी का पेट बड़ा जैसे तिल्ली निकली पड़ती हो—एकाध ही स्वस्थ।

अनाज का नाप घाटीवाली पीतल के एक बर्तन से कर रही थी जिसे वहाँ पया कहते हैं।

बटोले के साथ टहलराम बातचीत करता हुआ आया। प्रसङ्ग ज़मीन के मुक़द्दमे का था।

'फ़ैसला सुनने को रह गया है। जीत जाने की आशा है। पटवारी ने बयान अच्छा दिया।' बटोले कह रहा था।

पौर में आकर टहलराम पूछ बैठा,—'पटवारी को कुछ देना पड़ा ?'

बटोले ने बैठकर उत्तर दिया,—'यह न पूछो। बिना होम परसादी के तो देवता भी नहीं पसीजते।'

टहलराम अनमना हो गया। उसका ध्यान बीज लेने वालों से उचट कर उन बालकों पर, फिर उस पया पर, गया। देशराज ने जो आक्षेप संगीत समारोह की रात उसकी माता पर किया था, उसने काट सा खाया।

'क्यों माँ,'—टहलने प्रश्न किया,—'क्या अपने घर में दो पया हैं: एक अनाज देने का और दूसरा लेने का ?'

घाटीवाली एकदम तिनक पड़ी—

'किस मुंह झोंसे ने कहा ?'

'वैसे ही पूछा।'

'वैसे ही कैसे पूछा ? बतलाओ किसने कहा ?'

टहलराम प्रश्न करके पछताया। देशराज का नाम लेता हूँ तो ये उसका मुंह नोच डालने के लिये हवेली पर पहुँचेंगी और इनका अपमान होगा, नहीं बतलाता हूँ तो माँ के अनादर का अपराधी बना बनाया।

लम्बी सांस छोड़कर बोला, 'वहीं चल पड़ी थी यह बात।'

बटोले को मालूम हो गया था कि उस रात टहलराम ने देशराज को बुरी तरह फटकारा। बांगुर्दन की साधारण जनता की श्रद्धा उसके प्रति और भी बढ़ गई थी, पर यह कोई नहीं जानता था कि देशराज ने घाटीवाली की कोई निन्दा की है।

बटोले ने अटकल जमाया,—'हवेली का वह कारिन्दा कुञ्जीलाल बड़ा बेलगाम है। चाहे जिसके लिये अण्डबण्ड बक उठता है।'

टहलराम को स्मरण हो आया कि उसने भी निन्दा की थी।

'खैर, देखा जायगा।'

बीज लेने वाले बिगड़ पड़े—

'बड़ा पाजी है वह कुञ्जीलाल।'

'वह और उसके मालिक, दोनों, पापी हैं।'

'हम गरीबों को यहाँ भी ठिकाने नहीं लगने देना चाहते।'

'सत्यानाश हो जाय उनका।'

घाटीवाली लाल पड़ गई। बोली,—'उस निपूते के मुंह में अभी जाकर जलता कण्डा भरती हूँ।'

किसी झगड़े की आशंका से बालक रो पड़े। टहलराम ने अपनी मां के पैर पकड़ लिये,—'ना मां, ऐसा मत करना।'

घाटीवाली ने उसके सिर को उठा लिया और हाथ फेरती रही।

कुछ क्षण उपरान्त बोली,—'साँप को मारो, नहीं तो दांत उसके फिर भी तोड़ दो।'

टहलराम ने सिर उठाया। भीतर लौटे हुये आँसुओं से उसकी आँखें लाल थीं। बोला,—'जहां तक हो सकेगा, हम लोग यही करना

चाहते हैं, माँ । यदि साँप के दाँत न तोड़ सके तो फिर मारे बिना नहीं छोड़ेंगे । अपनी समिति और सङ्गठन इसी लिये है ।'

'उसमें स्त्रियां भी काम कर सकती हैं न ? मैं तुम्हारी सहायता करूँगी । डाक्टर सनेही की दुलहिन बड़ी भली है; मेरा साथ देगी ।'

'पर डाक्टर तो सरकारी समिति के चक्कर में पड़ गये हैं ।'

'कैसी सरकारी ?'

टहलराम ने समझाया ।

'अरे तो रजिस्ट्री का ही भेद है, बस ।' घाटीवाली ने कहा ।

बीज लेने वाले बोले—

'सरकार की मदद लेनी चाहिये । सरकार से तो हर पखवारे काम पड़ता है ।'

'उसमें बुराई क्या है ?'

टहलराम ने हँसकर कहा, 'धीरे धीरे सब समझ लोगे ।'

एक बालक रोकर बोला,—'भूख लगी है ।'

दूसरे ने रोटी माँगी । तीसरा टहल के आंगन की तरफ़ देखने लगा जैसे वहाँ रोटी रक्खी हो ।

घाटीवाली रोटी नहीं दे सकी । बासी रोटी इतनी थी भी नहीं कि उन सब बालकों को दे पाती । बीज बांधकर वे सब चले गये । बच्चे उनके साथ ।

टहलराम ने घाटीवाली से अनुनय के साथ कहा,—'माँ रुपये का सवा न लेकर अठारह आना ही लो तो भी अपना काम चल जायगा ।'

घाटीवाली सोच विचार में पड़ गई ।

बटोले बोला, 'सब साहूकार किसी न किसी तरह की बेईमानी करते हैं । ये फ़सल सवाई के सिवाय एक दाना भी ज्यादा नहीं लेतीं । सो धरम ईमान का है ।'

घाटीवाली ने गला साफ़ करके कहा,—'पिछला वसूल करने के बाद, आगे से न सोलह आने के बीस आने और न अठारह आने ।'

'मां ! मां!!' टहलराम का गला कांप गया और आंखें भर आईं। उसने यह नहीं देखा कि घाटीवाली के चेहरे पर उत्साह या आनन्द के चिह्न नहीं थे ।

'पर यह सलूक करूँगी उन्हीं लोगों के साथ जो तुम्हारे काम में हाथ बटायेंगे,' घाटीवाली ने कहा।

बाँगुर्दन की सहकारी समिति पर बात चल पड़ी। टहलराम के पास एक जोड़ी बैल थे जो उसकी भूमि के लिये पर्याप्त थे। बटोले के दो जोड़ी थे, पर उसकी जोत और वह पड़ती मुकद्दमे से जिसके मिल जाने की आशा थी, उन दोनों जोड़ियों के लिये बहुत थीं। मंटू भूमि-हीन था। दमरू के पास भूमि थोड़ी सी ही थी, पर थी बढ़िया और सींचने के लिये अच्छा पनिहार कुआँ। थोड़े से और ऐसे थे जिनके पास छोटे छोटे इखरे-बिखरे रक़बे और एक एक जोड़ी निर्बल बैल जो खेतों पर झींकते रहते थे। बाकी सब मंटू की तरह भूमिहीन, या तो बटिया पर किसानी करने वाले या दूसरों की मज़दूरी। भैंस किसी किसी के ही पास थी। एक एक दो गायें सभी किसानों के घर, लेकिन दूध कोई भी पाव भर से ज्यादा न देने वाली। बटोले के घर कुछ दुधार बकरियाँ थीं। एक करघा भी था जिससे उसकी घरवाली और वह अवकाश के समय गाँवों में काम आने वाले कपडे बुनते थे। कपड़े से उनको लाभ बहुत कम होता था, क्योंकि मिल के सस्ते कपड़ों की ओर लोगों की रुचि अधिक थी और हाथ के बुने कपड़े में पड़ता नहीं बैठता था।

टहलराम इन सब तत्वों को अपनी समिति में संजो लेना चाहता था। जिसके पास कुछ अधिक था वह कम हो जायगा और जो अभाव ग्रस्त है उसके लिये थोड़ा सा और मिल जाने पर भी, अप्रर्याप्त। ऊपर से पैसे की कमी। साहूकार कोई देवाल नहीं,—होता भी तो टहलराम लेने के लिये तैयार नहीं। तब क्या हो ? यह समस्या उसके और उसके साथियों के सामने थी जो टहलराम के हठ के कारण और भी उलझ उलझ जाती थी। कोई भूमि देने को तैयार तो कोई बैल देने को तैयार

नहीं। बटोले अपनी बकरियाँ समिति में लगा देने को राज़ी न था। मेरे दो जोड़ी बैल क्या कम हैं ? वह कहता था। करघे की बात और भी दूर। टहलराम हठ पूर्वक समझाता,

'करदो सब को एक गड्ढी में और करो डटकर श्रम। पसीने की नदी बहा दो। वह सब विघ्न बाधाओं को बहा ले जायगी।' परन्तु यह बात किसी के मन पर नहीं जमती थी।

इन्हीं बातों पर उलट फेर कर चर्चा हुई।

सब बातें सुन समझ कर घाटी वाली ने कहा, 'चलाओ जब तक और जैसी चलाते बने।'

बटोले ने अपने भीतर की बात कह डाली,—'सो तो हो ही रहा है। जब देखेंगे कि काम नहीं चलता तब सरकार में रजिस्ट्री करा देंगे।'

'अरे वाह !' टहलराम बोला।

बटोले और दमरू के दो छोटे छोटे खेत पास पास दोनों पर पहले की बन्धी पड़ी हुई थी। पानी बरस जाने के कारण मिट्टी गीली थी। जब पपड़ी पड़ जाय तब बखर डाला जाय। फिर आ गई दिवाली। अमावस के दिन बैलों से कोई काम नहीं लिया जाता, नहलाया जाता है और हरे तथा लाल रंग के ठप्पे उनके शरीर पर लगाये जाते हैं। उस दिन वैसे भी बीज नहीं बोया जा सकता था। पड़वा के दिन खेतों पर पपड़ी आई तो गोवर्द्धन पूजा और मौनियों का गश्त। दोज को सही, बटोले और दमरू ने निश्चय किया।

अमावस के दिन बैलों को नहलाया गया और बैल गाय, सब पर हरे और लाल रंग के गोल ठप्पे लगाये गये। दुबले पतले छोटे क़द के बैल और बौनी गायों पर वे ठप्पे उनकी हड्डियों को उभारने में सहायक हुए। रात को हवेली पर बड़ी शानदार रोशनी हुई। थोड़े से घर और थे जिन पर प्रकाश का वैभव जगमगाया। बाक़ी घरों में एक एक दो दो दीपों से लक्ष्मी जी का आवाहन हुआ।

टहलराम ने अपनी माँ से कहा, 'दीपों की सजावट से क्या होता है, पसीने की बूंदों से ही लक्ष्मी प्रसन्न हो सकती हैं।'

घाटीवाली ने उत्तर दिया,—'पसीने की बूंदों से लक्ष्मी जी के चरण प्रसन्न हो सकते हैं, पर मन प्रसन्न होगा ज्योति के उजियाले से ही।' टहल बहस नहीं कर सका।

दूसरे दिन गोवर्द्धन की पूजा के उपरान्त मौनिये—मौनव्रतधारी—ढोल और मजीरे बजाने वालों के साथ गश्त लगाने के लिये निकले। मौनिये १२ वर्ष तक हर दिवाली की पड़वा को दिन भर मौन साधते हैं। दूध, शर्बत और पानी के सिवाय और कुछ ग्रहण नहीं करते। ये कृष्ण के ग्वाल सखा हैं। बाहर गाँवों की सीमाओं को दौड़ते, नाचते, कूदते, छूना पड़ता है, भले ही इसमें आधीरात हो जाय। परम्परा है कि इस दिन कृष्ण आपने ग्वालबालों के साथ नाचते कूदते बांसुरी बजाते बजाते वृन्दावन के आसपास के बाहर गाँवों का चक्कर काट आते थे तब वे सब अपना अपना मौन तोड़ते थे।

नाच कूद के साथ मौनिये चाचर के डण्डे ढोल की ताल के साथ एक दूसरे के डण्डों से खटखटाते हैं और उसी ताल और खटखट का साथ कूदकूद कर नाचते हुये देते हैं। गाने बजाने वाले अन्य लोग होते हैं जो बारह वर्षों तक इस व्रत को साध चुके हैं। बारह वर्ष के बाद मौनिये मथुरा वृन्दावन जाकर अपने चाचर के डण्डे यमुना को भेंट कर आते हैं।

बांगुर्दन के मौनिये पहले अपने गाँव में खास खास घरों पर गये। परिपाटी के अनुसार उन्हें यथायोग्य नजर न्योछावर मिली—कहीं से दो आने, कहीं से चार आने।

कमर में बड़े बड़े घुँघरू कसे—जो बैलों की गर्दनों से खोल लिये गये थे—मोर के पङ्खे कमर में खोंसे, आँखों में गहरा काजल पोते, बालों में तेल भरे—तिलका, सरसों का, निबोरी का! जिसे जो मिल

सका। गले में खँगोरिया डाले जो किसी को अपनी माँ से, किसी को बहिन से और किसी को अपनी पत्नी से मिल गई थी !

टहलराम को अपने घर दूर से ही घुँघरूओं की सामूहिक आवाज़ सुनाई पड़ी। उसने मौनियों का खेल पहले भी देखा था, वे सब उसीके घर आ रहे थे।

माँ से उसने तुरन्त कहा, 'इन्हें देने के लिये एक रुपया तैयार रक्खो, थोड़ासा गुड़ का शर्बत भी।'

'गुड़ का शर्बत तो ठीक है,'—माँ ने बतलाया,—'पर सदा से आठ आने देते आयें हैं, वही देंगे।'

'नहीं माँ, अब की बार एक रुपया।'

'सो क्यों ?'

'अबकी बार समिति जो खोली है जिसके इनमें से बहुत से मेम्बर हैं।'

'भली तुम्हारी समिति। आठ आने से ज्यादा नहीं दूंगी।'

टहलराम को मानना पड़ा।

मौनिये द्वार पर आ गय। मुहल्ले की स्त्रियां और बालक तमाशा देखने के लिये इकट्ठ हो गये।

मौनियों के संगियों ने सुर-बेसुर में गीत गाये—उन्हें वे दोहरा कहते हैं:—

'मधुकरसा महाराज कें रानी कुँवरि गनेश,
अवधपुरी से ओरछे ल्याईं अवध नरेस।
जल थम्मन करि वन गहन, रैन पियारी होय,
छत्रसाल जू भेजियो — देश तुम्हारो होय।
पहले लाल पीछे हरी, फेर लाल जो होय,
वृसिंहदेव जू भेजियो, देश तुम्हारो होय।
बेल बोई, कीरत जमी, करन करी दो पात,
सींची वृसिंहदेव ने, जब देखी कुम्हलात।'

गाने के समय ढोल नहीं बजता था। प्रत्येक दोहे की समाप्ति पर पहले ताल विलम्बित, फिर द्रुत--ताक धिनाधिन, धाधिन धिन्ना; धाधी धिन्ना, ताधी तिन्ना। उसी के अनुसार पूरी उमङ्ग के साथ मौनियों का कूद कूदकर नाचना। ढ़ोल की गति के साथ पैरों का उठान और चाचर के डण्डों की ध्वनि। प्रत्येक दोहे के अन्त पर नृत्य और फिर थोड़े से क्षण विश्राम। यही क्रम।

मौनियों की काजल भरी आंखें, चमकते हुये बाल, थिरकते हुये अङ्ग। इनसे जो यौवन, उल्हास और आनन्द झर रहा था उसमें उनकी सारी गरीबी और निस्सहायता थोड़ी देर के लिये डूब गई। स्त्रियाँ घूंघट के भीतर उत्साह मग्न थीं और बालक मौका पाते ही नाचकूद और चाचर की नक़ल करने पर उतारू।

इनमें यदि यह संवेग, यह लहर, वह ज्योति स्थायी हो जाय तो इनको कौन कुचल सकता है? कौन परास्त कर सकता है? मैं इनको सजग करूँगा, इनकी सेवा करूँगा। टहलराम हुलास में भर गया।

ये गीत दीर्घकाल से दिवाली की पड़वा के दिन गाये जाते रहे हैं। झीलों और हाथी वाले बिकट जंगलों का प्रदेश, जहाँ की रात प्यारी होती है--मालवा और उसके आसपास की रात प्यारी होती ही है--वहाँ छत्रसाल को भेजना जहाँ राजा मधुकरशाह की रानी गणेशकुँवरि अयोध्या जी से रामचन्द्र की मूर्ति ले आईं थी। जहां की भूमि पहले लाल, फिर हरी भरी और पुनः (हर्ष के मारे) लाल हो गई; बेल को बोया, करन ने दो पत्ते उसमें कर दिये, वृसिंहदेव को भेजा तो उन्होंने कुम्हलाती हुई बेल को सीचकर फिर हरा कर दिया!

टहलराम को इन गीतों में पुरातनवाद, पुनरुद्धारवाद और सामन्त वाद की गन्ध जान पड़ी, परन्तु उस नृत्य से उसने जो कुछ पाया उससे वह अपने किसी सिद्धान्त से प्रेरित, उस वाद-विवाद में नहीं उलझा।

गायन और नृत्य की समाप्ति पर वह घाटीवाली को भीतर अकेले में ले गया।

घिघिया कर बोला, 'माँ इन्हें एक रुपया दे दो नहीं तो मैं अपना कुर्ता दे दूंगा जो तुम्हें कहीं ज्यादा महँगा बैठेगा।'

मां मुस्करा गई।

'बड़ा जिद्दी है। तो बोल अपना ब्याह कब करेगा ?'

'हूँ ऊँ।'

टहलराम कुआँरा था। माँ का बहुत लाड़ला।

घाटीवाली को दो अठन्नियां देनी पड़ीं। गुड़ का शर्बत तो दस्तूर में था ही।

'अब कहाँ जाओगे ?' टहलराम ने शर्बत की समाप्ति पर पूछा।

ढोल बजाने वाले ने बतलाया,—'सुहाना—सेठ धरनीधर, डाक्टर साहब और राजा साहब के यहाँ। फिर दूसरे गांवों में।'

'राजा साहब ! वह राजा न थे और न हैं। ऐसे के यहां नहीं जाना चाहिये।' टहल ने कहा।

उन लोगों पर इस बरज का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

'दस्तूर चला आया है।' कहकर वे लोग फुदकते, दौड़ते चले गये।

ग़रज़ बावली होती है, टहलराम ने सोचा।

पहले वे लोग धरनीधर के यहाँ गये। उससे उन्हें दो रुपये मिले—मिलते आये थे—और शकर का शर्बत।

'सेठ सेठ ही है'—वे लोग तीन रुपया दो आने सैकड़े माहवारी ब्याज की बात भूल गये।

और धरनीधर ने सोचा, इनसे जो कुछ लेता हूँ कुछ इस तरह और कुछ उस तरह लौटा भी तो देता हूँ; देशराज नीच है जो उसने मेरी निन्दा की।

धरनीधर के रस्मी सवाल के उत्तर में उन लोगों ने बतलाया कि डाक्टर साहब के घर, फिर राजा साहब की हवेली जायेंगे। इसने भी वहां जाने से मना किया। पुराने दस्तूर ने उसकी अवहेलना की।

डाक्टर सनेहीलाल के घर उनको मिला तो एक ही रुपया, पर सत्कार मन भाया।

राजदुलारी ने आगन्तुकों को आदर और स्नेह के साथ शर्बत पिलाया जैसे बहिन भाइयों के साथ सलूक करती है।

राजदुलारी ने धीरे से सनेही से कहा, 'यदि इन लोगों को थोड़ी सी शिक्षा मिल जाय तो नाच गान दोनों अधिक सुन्दर बन जावें।'

'अञ्जना से कह दो।' सनेही हँसा।

'छिः।' राजदुलारी के मुंह से निकला।

अन्त में सनेही ने उन लोगों से कहा, 'देशराजजी की हवेली जाओगे सब लोग यहां से ?'

'हाँ।'

'सामने बनमाली के यहाँ भी ? ठीक है।'

'उनके यहां जाने की रसम नहीं है।'

वे लोग देशराज की हवेली पहुँच गये। नाच गान होता रहा। नौकर इकट्ठे हो गये; पर अञ्जना और देशराज बहुत पीछे आये और दूर से देखते सुनते रहे।

अञ्जना ने भोंह सिकोड़ी--

'कितना वाहियात है ! बन्दरों जैसी उछलकूद और कितने बेसुरे !' यहाँ से कुछ ही दूर गोंड लोग जो नृत्य करते हैं वह ज्यादा अच्छा होता है।'

'टलें कमबख्त यहां से जल्दी।' देशराज बोला।

देशराज से उन्हें पांच रुपये मिले, पांच वह सुहाना की मंडली को दे चुका था जो पहले हवेली पर आई थी और पीछे दूसरे स्थानों पर गई। उन लोगों ने असीसा। शर्बत नहीं मिला। मिलता ही न था। तमाखू मिली और बाजे वालों को उतारन का एक एक कपड़ा। उन्होंने सराहना की। बिना किसी भाव कुभाव के उनके भीतर से एक बात फूट पड़ी--

'टहलराम ने मना किया था कि हवेली मत जाना, धरनीधर ने रोक लगाई, पर हम न माने, जुगों से आ रहे हैं और अपना बन्धान पा रहे हैं।'

देशराज को यह भी मालूम हो गया कि सनेहीलाल ने निषेध नहीं किया था, प्रत्युत आने के लिये उत्साहित किया था।

उन सब के चले जाने पर देशराज ने अञ्जना से कहा, 'टहलराम और धरनीधर के मन में मेरे बाइकाट की बात अब भी बसी हुई है। देखूंगा इन पाजियों को।'

अञ्जना ने मरहम पट्टी की,—'टुच्चे हैं, टुच्चे। राजासाहब नाहरगढ़ जो नुस्खा बतला गये हैं, उसी को बर्तना पड़ेगा।'

'हां, पर ज़रा ठहर के।'

[१७]

दिवाली, पड़वा, दोज—सब चली गईं और अपने साथ अपनी लहर समेट ले गईं। मन में जो संवेग उठा था, उसका अधिकांश खर्च हो गया, थोड़े से को लेकर तीज से काम आरम्भ हुआ। पर हाथों में उतना कस नहीं प्रतीत होता था। पैर तो ढीले थे ही। किसानों को भविष्य के भय ने उत्तेजना दी।

कहीं खेतों का ताव न चल बसे, बटोले और दमरू सवेरे से ही बीज बोने लगे।

आगे आगे बटोले और दमरू के बखर चल रहे थे। पीछे मंटू बटोले के हल से जिसमें बीज की नली जुड़ी थी कूंड़ करता जाता था और उसकी बहिन हरकुँवरि झोली में से बीज बोती जा रही थी। दमरू के बखर के पीछे बीज का अपना हल टहलराम चला रहा था! लज्जा को जीतने के लिये हँसता हुआ, मुस्कराता हुआ। एक सहयोगी के बखर और हल भी चल रहे थे जिसके पीछे बीज बोने के लिये उसकी स्त्री। वे सब स्त्रियाँ बीज बोने के समय का एक लोकगीत गा रही थीं। उसकी स्थायी को सब एक साथ उठाती थीं और अन्तरों को अलग अलग गाती थीं। काम एक साथ हो रहा था। बटोले वाले खेत को बो लेने पर दमरू वाले को हाथ में लेना था।

टहलराम को हल चलाने का अभ्यास न था। चूक चूक जाता था, कभी कभी लड़खड़ा भी जाता था। स्त्रियाँ गीत के बीच-बीच में उसकी दुर्गति पर हँस हँस देती थीं। बैलों के हाँकने की टिकटिक, टहलराम की लड़खड़ाहट, स्त्रियों का गीत और उनकी हँसी की ऐसी लय बन रही थी कि टहलराम के मन में एक भाव उमड़ा—देशराज के यहाँ वाला वह संगीत समारोह इस श्रम-संगीत के सामने फीका लगता है। मंटू को वह गीत साधारण लग रहा था और बहिन को खिलखिलाना अखर रहा था।

एकबार उसने डाटा—'हरको, तू काम कम करती है, ठिलठिलाती बहुत है।'

'हूँ।' कहकर उसने हँसी बन्द कर ली और गाना जारी रक्खा।

सत्तरह, अठारह साल की युवती, सांवली और रूप-सरूप वाली, आँखें लम्बी बादाम की तरह खिची हुई, परन्तु जब हँसती थी तो आँखें मुंद सी जाती थीं और होठों के बीचों-बीच एक ऐसा छोटासा त्रिकोण बन जाता था जो उसके रूप में कसर लगा देता था—ऊपर की पाँत में एक दांत की कमी दिखलाई पड़ जाती थी।

टहल को मालूम हो गया कि व्याख्यान देना सहज है, हल चलाना कठिन, परन्तु वह अपने हठ से पीछे नहीं हटना चाहता था। पसीने में तर हो गया। स्कूल का समय खिचने को था। उसी समय पटवारी आया। कोई तिकड़म साथ लाया है, टहल ने सोचा और हल रोक लिया।

पटवारी ने आते ही चिरोरी की,—'अरे टहल बाबू, यह काम नहीं है आपका। आप पढ़ाने का जो काम हाथ में लिये हुये हैं वह कितना बड़ा है! विद्यादान से बढ़कर और कुछ नहीं!!' उसका लड़का टहल के स्कूल में नहीं पढ़ता था।

'कैसे आये?' टहल ने पूछा।

'अच्छी खबर लाया हूँ। अभी अभी तहसील का चपरासी इत्तिला दे गया है कि दमरू मुक़द्दमा जीत गया है। वह पड़ती इसी के नाम लिखी जायगी। किसी दिन बटोले को भी ऐसा ही फैसला मिला समझिये।'

टहल हर्षमग्न हो गया—इसने कुछ पैसे लिये तो निभा भी दिया। फिर तुरन्त अपने ऊपर ग्लानि हुई—भूमि इसकी थी सो इसे मिल गई; रिश्वत के चोर दरवाज़े से न्याय आया तो क्या आया।

बटोले और दमरू को बुलाकर बात सुनाई। दमरू आनन्दविभोर हो गया।

पटवारी के प्रति वे दोनो कृतज्ञ थे। पटवारी का कारूजी दांव-पेच मन में नहीं था।

पटवारी बोला, 'एक और शुभ समाचार है।'

वे सब सुनने के लिये उत्सुक हुये।

'कल परसो तक खेती बाड़ी की कई दर्जन मशीनें लारियों पर लदकर आ रही हैं। यहीं फिट की जायेंगी। कारीगर और मिस्त्री आयेंगे। कारखाना खुलेगा। कारखाने की इमारत भी जल्दी बनेगी, बहुत जल्दी, जिसमें अटक पड़ने पर मशीनों की मरम्मत हुआ करेगी, काम कभी नहीं रुकेगा। एक दिन नहर आयगी। जहां नहर का पानी नहीं पहुँच सकेगा वहां नलकूप—नलवाले कुयें—खुदेंगे। एक दिन बिजली भी—'

पटवारी ने वाक्य पूरा नहीं कर पाया। टहलराम अपने आनन्द की बाढ़ को न रोक सका। हँसकर बोला,—'लाला, तुम व्यक्ति नहीं हो, संस्था हो।'

पटवारी नहीं समझा। मुंह ताकने लगा। न बटोले, दमरू इत्यादि समझे, पर उनको भान हुआ कि टहल पटवारी की प्रशंसा कर रहा है।

टहल के मन में उसके प्रति सहानुभूति जागी—यह भी तो दरिद्र जनता में से एक है, कम वेतन मिलता है इसलिये रिश्वत लेता है। फिर पटवारी-संस्था के अन्य कर्मों का नक़शा कल्पना में कौंध गया—शासन और व्यवस्था की उत्पत्ति हैं ये, इसलिये कुछ काम तो इनके बड़े ही निकृष्ट होते हैं।

अपने हल का प्रबन्ध करवाके टहल पटवारी को लेकर चला गया। उसे स्कूल जाना था और वह नहीं चाहता था कि पटवारी को शुक्राना वसूल करने के लिये अपने पीछे छोड़ जाय। बटोले इत्यादि बोने का काम करते रहे।

[१८]

सुहाना बांगुर्दन और निकट के अन्य ग्रामों की पड़ती भूमि सब मिला कर लगभग दस हज़ार एकड़ तो सरकार की ही थी। पूरी की पूरी कांस से ढकी हुई। ज़मींदारों और किसानों की भी लगभग इतनी ही पड़ती का रक़बा कांस से दबा हुआ था। इस कांस में उनके दुबले-पतले ढोर चरते रहते थे। किसान इसी को अपना लाभ समझते थे। लगान देना पड़ता था, नहीं तो यह पड़ती भी सरकारी हो जाती। लगान थोड़ा होने पर भी आँसता था, परन्तु भाग्य की भोगमान; बरसों से भुगतते आ रहे थे।

इस काँस को समूल नष्ट करने के लिये मशीनें आ गईं। काँस-विनाश के उपरान्त ऊँची सीधी चौकोर बँधियों के डालने का आयोजन था, जिससे बरसाती पानी भूमि के प्राणदान तत्वों को धोकर न बहा ले जाय।

अस्थायी सायाबान और स्थायी इमारतों के निर्माण के साथ ही मशीनों का फ़िट होना शुरू हो गया। लुहारी और बढ़ईगीरी का कारख़ाना भी बनने लगा। कारीगर और मिस्त्री तो बहार से आये ही थे, अधिकांश मज़दूर भी बाहर से लाये गये। वहां गांव से कम लिये गये। उनको कम सक्षम समझा गया था।

जाड़ों में ज़मीन को फाड़ कर काँस को सदा के लिये बिदा देनी थी। और हो सके तो कुछ रक़बे में गेहूँ, चना, अलसी, बोकर बढ़िया फ़सल भी तैयार करके दिखला देनी थी।

पड़ोस के एक राज्य का कटु अनुभव अधिकारियों को मालूम था। उस राज्य में मई जून के महीने में ट्रेक्टर चलाकर कांस की खुदाई की गई थी। जड़ें रह गईं। जुलाई में पानी बरसा और कांस बेतहाशा पनपा। सब श्रम और व्यय व्यर्थ गया। इसलिये ठंड के दिनों में ही मशीनों का काम समाप्त करना था।

मशीनों की फिटिङ्ग, इमारतों का निर्माण और बाहर से आये हुये अनेक व्यस्त लोगों का तमाशा देखने के लिये बेकार समूहों की भीड़ लगी रहने लगी।

गांवों में भाग्यवादी तो असंख्य होते ही हैं, निराशावादी निन्दकों की संख्या भी थोड़ी नहीं होती। मशीनों के देखने के शौक़ीन परन्तु उनके काम के ठोसपन और स्थायित्व में अविश्वास करने वाले।

'दान की बछियो से काम नहीं चलता !'

'अरे, सरकार का सब यों ही खेल-तमाशा है !'

'हम लोगों के मन बहलाने की बातें।'

'मोटी तनखाहें पाने वालों की मौज !'

'दिन में खेल खेलकर काम करते हैं और रात को शराब पीते हैं।'

'रुपयों का नास करके किसी दिन सारा बँधना-बोरिया उठाकर चल देंगे !'

'अभी कांस से ढोरों की कुछ गुज़र हो जाती थी, आगे उसमें भी खोट लगी !' इत्यादि।

ग़नीमत थी कि अधिकांश जनता यह सब नहीं सोच रही थी—शायद वह कुछ भी न सोच रही हो !

मशीनें कई दर्जन थीं। एक दर्जन का फ़िटिङ्ग एक सप्ताह के भीतर ही हो गया। उसी सप्ताह में काम भी चालू कर दिया गया। काम बड़े सपाटे के साथ हो रहा था।

जिस दिन कार्यारम्भ होने को था, राघवन आ गया। उसने ग्राम-निवासियों को आग्रह के साथ बुलवाया।

जहां काम होना था उसके कुछ निकट ही महुये के पेड़ों की एक कुञ्ज थी। देशराज ने यहां अधिकारियों, ड्राइवरों, मिस्त्रियों और प्रमुख आगन्तुकों के चाय पानी का आयोजन किया। टहलराम और धरनीधर को भी बुलाने से वह नहीं चूका। मेज़ कुर्सियों का प्रबन्ध कुछ घर से कुछ स्कूलों से कर लिया गया।

मशीनें चलीं।

ट्रैक्टरों के सामने करोंदी, झरबेरी, रेंवजे, चिरौल, इत्यादि के पेड़ जो फैले हुये कांस में इधर उधर उगे और बढ़े थे, तड़ातड़ टूटकर उखड़ने, गिरने और बिछने लगे। उनकी लम्बी लम्बी जड़ें, जो धरती की छाती का खून चूसे जा रही थीं, ऐसे उपटा डाली गईं जैसे कोई प्रबल पहलवान गीली मिट्टी में से मूली को उखाड़ फेंके। कांस तो ऐसे साफ़ होता चला जा रहा था जैसे अनधिकारी की विरासत। मशीनों के पीछे पीछे मज़दूर पेड़ों को उठा कर ढेरों में दूर रखते चले जा रहे थे—ईंधन के लिये। कुछ उखड़े हुये कांस के ढेर वहीं के वहीं लगाते जाते थे; जहां दो तीन दिन में सूखा कि अग्नि के हवाले किया। राख देगी खाद का काम। मानो उस विनाश में सृजन की ध्वनि मशीनों के एन्जिन धुआँधार कर रहे थे। बात की बात में कांस घासफूस और जङ्गली पेड़ों से भूमि साफ़ होने लगी। साथ ही लगभग हाथ हाथ भर गहरे कूँड़। सफ़ाई होने के बाद जहाँ मिट्टी लौटने और बराबर करने वाले ट्रैक्टर-हल चले कि भूमि बीज का स्वागत करने के लिये तैयार!

समूहों में स्त्रियां और पुरुष इस मशीन से उस मशीन के पास आ जा रहे थे। एक के पास टहलराम और बटोले पहुँचे जिसके भाग्य में कुछ अधिक बड़े जङ्गली पेड़ों का उखाड़ना बदा था। टहलराम उत्साह से भरा हुआ था। इस भीमकाय मशीन का प्रचण्ड कर्तव्यपालन देखकर उसकी देह भर में बिजली सी दौड़ गई। तपाक के साथ पैर मिलाकर उसने मशीन को फ़ौजी प्रणाम किया! मशीन पर काम करने वाले दो आदमी ही थे—एक ड्राइवर, दूसरा उसका सहायक। वे हँस पड़े। टहल ने उनकी हँसी में अपनी हँसी मिलाई। बटोले को कुछ आश्चर्य हुआ—क्या यह देवताओं को छोड़कर अब इन्जिनों की पूजा करेगा? एक और मशीन के पास घाटीवाली और हरकुंवरि कुछ स्त्रियों के साथ खड़ी थीं। उनमें उत्सुकता पुरुषों से भी अधिक और उसको अप्रकट रखने की समर्थता भी ज्यादा।

हरको कुछ चञ्चल थी। बोल पड़ी,—'कांस तो अब नहीं रहेगा। डटकर खेती होगी।'

घाटीवाली कुछ कहना चाहती थी। अवसर मिल गया।

'कह नहीं सकते। हां, यदि मशीनें कई साल तक यह काम करती रहें तो मिटेगा, नहीं तो नहीं।'

एक स्त्री ने हरको की फ़सल वाली बात काटी—

'इतने गहरे कूँड़ हो रहे हैं कि ज्वार की फ़सल नहीं हो सकेगी। बीज जमेगा ही नहीं। जमेगा तो सड़ जायगा, आगे की बात इतनी तो मैं अभी से बतलाये देती हूँ।'

आशावादिनी हरको को यह काट बुरा लगा।

'ओ हो हो! जोतिसिन कब हो गई?' हरको ने व्यङ्ग किया।

ज़रा दूर खड़ी एक स्त्री हँस पड़ी।

जिस पर व्यङ्ग किया गया था वह भभक गई—'जिस दिन से तुम ससुराल से भाग आई उस दिन से।'

हरको ने अपने दांत मींच डाले।

हरको के निस्पन्द क्षोभ में उसकी पराजय का लक्षण कल्पित करके वह स्त्री प्रसन्न हुई।

हरकुँअरि, जिसे साधारणतया हरको कहते थे, ससुराल की दुखिनी थी; पति किसी न किसी 'रोग में लगभग सदा ग्रस्त और बहुत गुस्सैल—ज़रा ज़रासी बात पर हरको की ठोकपीट कर डालता था। सास ससुर मर चुके थे। चाचा—ससुर चाची, सास और उनके दो लड़के, हरको के देवर, घर में इतने व्यक्ति थे। कभी कभी सास और ये देवर भी उसे मार बैठते थे। वैसे खाने पीने से तङ्ग न थी। पर पेट भर भोजन और तन भर कपड़े मिल जाना ही तो सब कुछ नहीं होता। जब हरको को लगा कि ससुराल उसे चबाये डालना चाहती है तो एक दिन भाग खड़ी हुई और अपने भाई मंटू के पास आ रही जहां

उसे उतना खाना कपड़ा प्राप्य न होने पर भी स्नेह का आश्रय तो मिला।

एक दूसरी स्त्री बोली, 'जब जनी काम बिगाड़ती है तो घर वाला मारता पीटता ही है। पर हरको तो बिकट है, हवा में घर बनाना चाहती है।'

'हां बनाऊँगी हवा में, तुम आकर बस जाना उसमें।' हरको ने रीस उस पर उतारी।

बात बढ़ती परन्तु छुट्टी का समय हो गया था, इसलिये ट्रैक्टरों ने भोंपू बजाये। काम बन्द कर दिया गया। दो घण्टे की छुट्टी।

ड्राइवर इत्यादि चाय पीने के लिये महुओं की कुञ्ज की छाया में पहुँचे। वहां अञ्जना और देशराज सत्कार के लिये तैयार थे।

बड़े आदमियों का चाय पानी का आयोजन क्या होता है वहां के अनेक स्त्री पुरुष नहीं जानते थे। इधर उधर पेड़ों के आगे पीछे खड़े होकर देखने लगे। स्कूलों के कुछ विद्यार्थी अधिक निकट से। इनमें जनक भी था। घर से सब कुछ न कुछ खा पीकर चले थे। तमाशा देखने की उत्कण्ठा थी। दो घंटे के बाद बुलडोज़रों के काम का प्रदर्शन होना था, जो पलक मारते बड़ी बड़ी बँधियां डाल देते थे। जितनी भूमि का कांस इत्यादि साफ़ हो गया था, उसी की एक तरफ़ बुलडोजरों को बन्धी डालने का प्रदर्शन करना था। दो घंटे की ही तो बात थी, क्यों घर जांय और फिर लौटें?

देशराज ने बांगुर्दन के कुछ अन्य व्यक्तियों के अलावा टहलराम और बटोले को भी बुलाया था। देशराज अपने मनके भीतर बसी हिंसा को ढकने में प्रयत्नशील था। सनेही और बनमाली तो निमंत्रित किये ही गये, धरनीधर और छदामी को भी बुलाया गया। और तो सब मेज़ कुर्सियों पर थे, छदामी और उसके सहयोगी नीचे बैठ गये।

खाने पीने के साथ बात-चीत भी चल रही थी। सनेही और टहलराम पास पास बैठे थे। टहल उत्साह मग्न था, सनेही आलोचक

वृत्ति में। धरनी थोड़ी दूर बटोले के कन्धे से कन्धा भिड़ाये बैठा था। राघवन देशराज के निकट।

राघवन को देशभर का, विशेषकर ग्रामों का भविष्य, मशीनों से जुड़ा हुआ दिखाई पड़ता था। राघवन कह रहा था,—'अन्न की उपज छलांगें भरकर बढ़ेगी, कुटीर उद्योग फूलें फलेंगे और देहात ग़रीबी, अविद्या, गन्दगी सब जायेंगे। मतलब यह कि देश की अनेक समस्याओं का हल यहीं होगा, यों होगा और शीघ्र होगा।'

टहलराम के मन में उस समय देशराज के प्रति कोई विशेष कुढ़न नहीं थी। उस भविष्य को सुहाना बाँगुर्दन इत्यादि गाँवों में लाने का कुछ श्रेय राघवन को भी था। टहलराम उससे सहमत हुआ—

'हमारे देहात के लिये आज का दिन शुभ है, बहुत महत्व का। बिना मशीन के खेती आगे चल ही नहीं सकेगी।'

कुछ दूरी पर दुबले-पतले ढोर दूबा के अवशेष पर जीभ फेर रहे थे।

सनेही ने उनकी ओर इशारा करके कहा, 'इनका क्या होगा? इनकी सुधरी हुई नसल की भी क्या ज़रूरत नहीं रहेगी? अगर सारे पुराने साधनों को समाप्त कर दिया गया तो देश पर ऐसी विपत्ति का पहाड़ टूटेगा कि सँभाले न सँभलेगा।'

राघवन ने समाधान का प्रयत्न किया,—'ये तो अनिवार्य हैं। सुधारे, बढ़ाये और काम में लाये जायेंगे।'

टहल को अच्छा नहीं लगा।

'तो क्या आपकी समिति बैलों के ही हल-बखर से समस्याओं का हल करेगी?'

सनेही ने जैसा कि उसे अभ्यास था, मुस्करा कर उत्तर दिया,—'जब जैसी ज़रूरत पड़ेगी, तब तैसा करेंगे। कांस उखाड़ फेंकने और बड़ी बड़ी बँधियों के डालने के लिये ट्रेक्टरों और बुलडोज़रों की ज़रूरत पड़ेगी। फिर बैलों और पुराने तरीक़ों से ही काम चलेगा।'

'यानी फिर कभी मशीनों का नाम नहीं लिया जावेगा।'

'ज़रूरत पड़ी तो नाम तो क्या उनकी आराधना भी कर लेंगे और वे सुलभ भी हो जायेंगीं; पर ऐसी योजना नहीं बनाना चाहते कि उनके बिना अटके रहें।'

'मतलब यह कि पुरातन पन्थ पर आप लोगों का ज़्यादा ज़ोर है, तो हो चुकी गाँवों की समस्या हल। दूसरे देशों में सामूहिक खेती—'

राघवन ने टहल को तुरन्त टोका,—वह विवाद नहीं बढ़ने देना चाहता था,—'तो सुहाना की समिति में क्यों नहीं अपने साथियों सहित आ जाते? उसमें शामिल होकर डॉक्टर साहब, बनमाली जी, सेठ धरनीधर इत्यादि की सहायता कीजिये और अपने सिद्धान्तों का विवेक-सङ्गत व्यवहार।'

बनमाली बोला,—'हम लोग आप सबका स्वागत करेंगे।'

धरनीधर चुप रहा। बटोले कुछ कहना चाहता था, पर ज़बान न खुली। मौक़े पर बात न कह पाने और पीछे पछताने का उसका स्वभाव था।

टहलराम ने कहा, 'समिति में कुछ कुरूप बातें हैं, जैसे व्यक्तिगत खेती के लिये अच्छे अच्छे खेत सेंत रखना और समिति में कांस वाले निकम्मे, कमज़ोर या झगड़े वाले लगा देना।'

बटोले को अच्छा लगा। वह झगड़े वाले खेतों के लगाने की ही बात कहना चाहता था, पर टहलराम कुछ और भी ज़्यादा कह गया।

धरनीधर बोला, 'देखें कब तक चलती है हमारी समिति?'

'जब तक आपने अपनी भूमि समिति को नहीं सौंपी,'—देशराज ने व्यङ्ग किया।

अञ्जना मुस्कराई।

सनेही ने चर्चा की दिशा मोड़ी,—'हो सकता है ये सब दोष हमारी समिति में हों। क्रम क्रम से सुधारेंगे। मान लिया कि इन और अन्य दोषों के कारण आपको हमारी समिति में आना पसन्द नहीं, तो बांगुर्दन

वाली अपनी समिति की रजिस्ट्री करवा लीजिये और उसका मन चाहा विकास करिये।'

राघवन उमङ्ग के साथ बोला,—'मैंने तो कई बार आपसे प्रार्थना की है।'

टहलराम ने सोचा दमरू को मुक़द्दमें से काफी रक़वा मिल गया है जो कांस से ढका हुआ है; बटोले को भी मिलेगा, और, सरकार की दस हज़ार एकड़ पड़ती में से भी जो अपने नियरे है थोड़ी बहुत तो ले ही लेंगे।

टहलराम ने अपनी कठिनाई बतलाई,—'हम लोग निर्धन हैं। श्रम ही हमारा बल और धन है! परन्तु हमारे समाज की जैसी आर्थिक व्यवस्था है उसमें अकेला श्रम धन लँगड़ाते हुये ही चल पाता है। हमको अपनी समिति की बहुत सी भूमि का कांस उखड़वाना पड़ेगा, बँधिया डलवानी पड़ेगी। मशीनों की फ़ीस जमा करनी पड़ेगी; पेशगी कहां से लायेंगे?'

'सेठ धरनीधर दे देंगे,'—राघवन मुस्कराया।

'बैंक का कुछ रुपया मेरे पास रक्खा है, परन्तु सिवाय समिति के मेम्बरों के और किसी को तो दिया नहीं जा सकता।' धरनीधर ने बतलाया।

'आपका निजी रुपया,'—राघवन फिर हँसा।

धरनीधर बोला, 'देशराज जी क्यों नहीं दे देते? उनके पास तो ढेरों है।'

देशराज ने कसा,—'बैंकों में मेरा जो कुछ जमा है उससे आपका ज़िमीन में गड़ा हुआ कहीं ज़्यादा होगा।'

टहलराम ने देखा कि समस्यायें व्यङ्गों के परों पर बिठलाकर उड़ाई तो जा सकती हैं, पर सुलझाई नहीं जा सकतीं।

'कहीं से मिले, हम लोग अपने मन की समिति बनाकर काम को तेज़ी के साथ बढ़ाने की जी तोड़कर कोशिश करेंगे।' टहलराम ने कहा।

राघवन उत्साहित हुआ।

'जहां दृढ़ सङ्कल्प होता है वहां सफलता की राह निकल ही आती है। मनस्वी के लिये कुछ कठिन नहीं।'

धरनीधर ने चोट की,—'उस लकड़ी के दान से उस या इस समिति का कुछ नहीं बनना है, देशराज जी। ठोस रक़म दीजिये दान में, तब तो बात है।'

देशराज की त्योरी चढी।

अञ्जना ने तुरन्त संभाली—

'मैं पाँच सौ रुपया दूंगी बाँगुर्दन की समिति के लिये जो मशीनो की फ़ीस की मद में जमा कर दिये जायें।'

दानी के चेहरे पर दान करने के समय जो उदारता और शालीनता छा जाती है, वह उसके ऊपर न थी। उसने धरनीधर पर चिनोती भरी दृष्टि घुमाई। फिर कई रङ्ग आते जाते रहे।

राघवन ने एक हाथ से मेज पर ताली पीटी।

'वाह! वाह!! क्या कहना है। बहुत काम बन जायगा इस रकम से।'

फिर राघवन ने हिसाब लगाया—लगभग पैंतीस रुपया प्रति एकड़ सहकारी समितियों से लिया जाता है जबकि प्राइवेट लोगों से पचास रुपया प्रति एकड़ के लगभग। बाँगुर्दन समिति की पन्द्रह एकड़ भूमि तो सुधर ही जायगी।

बनमाली ने नाम कमाने का प्रयत्न किया,—'देशराज जी भी दान करेंगे।' देशराज की तरफ़ देखने लगा।

उसने उस समय यह नही सोचा कि इस दान से उसके जाली पट्टे की कुछ भूमि तो मशीनों से भारी हो जायगी। शायद मन में उठा हो कि वैसे भी जा रही है, कुछ लोक-प्रियता ही संचित कर लूं।

राघवन ने देशराज को निहोरे की दृष्टि से देखा।

देशराज ने तिरछी आंख करके ज़रा ज़ोर से कहा,—'पांचसौ रुपये मेरे !' उसका चेहरा क्षण भर के लिये लाल हो गया।

टहलराम ने धन्यवाद दिया, पर स्वर में खनक नहीं थी। देशराज ने उस धन्यवाद की कमज़ोरी को परख लिया।

उसी समय विद्यार्थियों के समूह से एक वाक्य उसके कान में पड़ा,—'कितना चालाक है यह !' यह स्वर जनक का था।

देशराज के आगसी लग गई। राघवन ने उमङ्ग में आकर फिर ज़ोर से मेज पीटी। बोला, 'सहकारी आन्दोलन के इतिहास में यह दिन अमर रहेगा, और देशराज जी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।'

बनमाली ने बड़े आत्मगौरव के साथ लोगों पर चितवन फिराई, मानो कह रहा हो—मैंने दिलवाई यह रक़म नहीं तो देशराज क्या वैसे पिघलने वाले थे।

राघवन ने टहलराम से अनुरोध किया,—'अब आप समिति की रजिस्ट्री की कारवाई कर डालें। मैं सहायता करूंगा। जैसे ही कारवाई की खानापूरी हुई कि फ़ीस जमा करली जायगी और मशीनें काम शुरू कर देंगीं। इसमें कुछ दिन लग जायेंगे। तब तक राजा साहब और देवीजी का दिया दान सुहाना समिति के खजाञ्ची धरनीधर जी के पास जमा रहेगा। ठीक है न ?'

धरनीधर ने पूछा, 'रुपया कब दिया जायगा ?'

देशराज ने उत्तर दिया, 'आज सन्ध्या समय।'

धरनीधर ने सिर हिलाया, मुंह फेरकर मुस्कराया भी, जैसे कह रहा हो कि मैं इसे टालबाज़ी नहीं करने दूंगा।

देशराज ने इस घूंट को पी लिया। अपनी बात कही, 'मेरी निज की खेती की भूमि यहां से दूर नहीं है। चाहता हूँ कि उस पर बंधी डाल दी जावे। फ़ीस कल ही जमा कर दूंगा।'

पदाधिकारियों ने स्वीकार कर लिया। राघवन ने टहलराम से कहा, 'आप अपनी समिति की रजिस्ट्री करवाने के लिये बैठक कब करेंगे ? काररवाई जल्दी शुरू करना चाहता हूँ।'

टहलराम ने एक आक्षेप प्रस्तुत किया,—'समिति में जो ज़मीन लगाई जाय उसकी मालिक समिति होनी चाहिये, न कि मैम्बर। मैम्बर यदि कभी समिति से अलग हो तो उसको भूमि वापिस नहीं मिलेगी।'

'तो उसको क्या मिलेगा ?' बनमाली ने पूछा।

'भूमि के मूल्य का कूता लगा लिया जाय और उस मूल्य में समिति के जितने हिस्से बैठें उतने हिस्सों का मैम्बर हिस्सेदार; बस, वे हिस्से या उनका दाम लौटा दिया जाय।' सनेही ने कहा।

बटोले फिर कुछ कहना चाहता था, परन्तु बात गले में ही अटक गई।

टहल बोला, 'यह ठीक है। क़ायदा क्या है ?' बटोले के मन में कई प्रश्न बने बिगड़े, परन्तु पूँछ वह एक को भी नहीं सका।

राघवन सरकारी कायदों का पूरा जानकार था, पर वह इस अवसर पर क़ायदों की खुड़ पेंच टालना या दूर रखना चाहता था।

उसने हँसी में घोला,—'अरे साहब, श्रीगणेश तो करिये। क़ायदे बनाते सुधारते रहिये। काम की डगों को बढ़ाइये जिसके गीत तो बहुत गाये जाते हैं, पर उनका व्यवहार कम होता है।' हँसते हुये भी उसके चेहरे पर कुछ रुद्रता तो भी रहती थी।

टहल को भी हँसना पड़ा।

सनेही ने कहा,—'हमारे देश में क़ायदे बाल की खाल खींच-खींच कर बनाये जाते हैं, क़ायदे बनाते बनाते ही काम की टांग भले ही टूट जाय।'

'नहीं डाक्टर साहब, हम लोग काम भी करके दिखलायेंगे। अपनी सारी भूमि समिति को सौंप देंगे; हल, बखर, बैल इत्यादि पशुओं को

भी समिति के शासन में देने पर विचार करेंगे। हमारा काम नई जिन्दगी का, नई लहर का साथ देगा।' टहलराम ने निश्चय प्रकट किया।

'तो काररवाई की पहली बैठक कब होगी ?' राघवन ने पूछा।

'आपतो अभी यहां ठहरे ही है; कल हो जायगी।' टहल ने उत्तर दिया।

बटोले के मन में उठा—मैं अपनी सब की सब भूमि तो नहीं लगाऊँगा समिति में और न अपने जानवर दूंगा।

राघवन ने मेज़ को ठोककर धन्यवाद दिया।

ट्रेक्टरों के नायक ने सूचित किया,—'समय हो रहा है। हम बुलडोज़र द्वारा बन्धी डालने का प्रदर्शन करेंगे।'

'ज़रूर ज़रूर' कई कण्ठों से निकला।

देशराज ने कहा, 'जैसे ही आप लोगों को आज थोड़ासा अवकाश मिले, मैं अपनी भूमि दिखलाऊँगा।'

'और मैं अपनी,' बनमाली बोला।

बटोले तुरन्त सामने आया। 'मैं साथ चलूंगा' उसने कहा।

राघवन और अन्य पदाधिकारी राज़ी हो गये। बनमाली बटोले की बात पर चिन्तित हुआ।

'एक बात रह गई है। मन में गड़ रही है, इसलिये पूछता हूँ: व्यक्तिगत, निजी खेती, कब समाप्त होगी ?' टहल ने प्रश्न किया।

देशराज तिनक कर बोला, 'आप व्यर्थ बारबार मेरे ऊपर लांछन डालते हैं। सहकारी खेती में अधिक लाभ होता दिखलाई पड़ेगा तो व्यक्तिगत को कोई चलावेगा ही क्यों ? इखरी बिखरी हुई जोतें जब एक हो जायेंगी, तब समस्या का सुलझाव शुरू होगा। फैले फूटे खेतों के एकीकरण को व्यक्तिगत खेती ही उत्तेजना देगी। उस उत्तेजना को देने के लिये ही तो मैं व्यक्तिगत खेती कराये हूँ।'

सब लोग उठ खड़े हुये इसलिये आगे बहस न बढ़ सकी।

छुट्टी का समय समाप्त हो गया था। बुलडोज़र चला और उसने मिट्टी काट खोदकर ऊँची सीधी बन्धी डालनी शुरू करदी। नर नारियों में आश्चर्य और आल्हाद की लहर दौड़ गई। रह रहकर उनके मन में एक बात उठती थी,—मशीनों द्वारा काम कराने के लिये इतने पैसे कहाँ से लावें ?

सनेही सोचता था,—इन मशीनों के अधिकाधिक प्रचलन से जो मज़दूर बेकार हो जायेंगे, उनको रोटी कपड़ा कहां से मिलेगा ? पर मशीनों का कार्य उन सबको एक बढ़िया तमाशा लग रहा था, इसलिये सब शङ्काओं को भुलाकर विनोद-मग्न हो रहे थे।

जब दिन का कार्य समाप्त हुआ देशराज पदाधिकारियों को अपनी भूमि दिखलाने ले गया। अञ्जना हवेली चली गई। बनमाली साथ गया। टहलराम के साथ बटोले और दमरू उनके ज़रा पीछे थे।

देशराज ने भूमि दिखलाई वह सब उसकी सीर खुदकाश्त थी, एक बड़ा चक। कुछ भाग में कांस भी था।

कांस खोदने और बन्धी डालने की तारीख और फ़ीस निश्चित हो गई। बनमाली ने अपनी दिखलाई। दमरू और बटोले तो भीड़ में आ ही गये थे। उन्होंने तुरन्त आक्षेप किया,—इसमें इतना रक़वा हमारा है, उतना दूसरों का। दमरू ने अपने मुक़द्दमें के जीतने का हवाला दिया।

'मैं अपील करूँगा, अभी तुमने कैसे समझ लिया कि यह तुम्हारी ही होकर रहेगी ?' बनमाली ज़ोर से बोला।

अधिकारी ने दमरू को समझाया,—'यदि तुम्हारी ही रही तो दाम इनके लगेंगे, काम तुम्हारे आयगी।'

'कभी नहीं,' दमरू दहाड़ा।

बटोले बोला, 'इसमें मेरा भी काफ़ी रक़वा है। मैं मशीन नहीं चलने दूंगा।'

'मुक़द्दमा तै हुआ ही नहीं और ज़िमीन तुम्हारी होगई !' बनमाली ने बहस की।

टहल बोला, 'जो फ़ैसला दमरू के मामले में हुआ है, वही इनके में भी होगा।'

देशराज ने सोचा, इसी की आवाज़ बटोले, दमरू इत्यादि के गलों में होकर बोल रही है।

अधिकारी ने कहा, 'ये तो झगड़े के खेत हैं। पीछे देखा जायगा।'

राघवन काहे को मानने वाला था। प्रत्येक अड़चन का सुलझाव उसके बायें हाथ में—

'अरे भाई, सहकारी समितियों में खेत डाल दो, सबके भोग में आयेंगे। इस पर भी, क़ानून जिसके तै करेगा उसके बने रहेंगे।'

यह बात टहल को खटकी। सनेही की बात याद आई,—'समिति में लगाये हुये खेतों का मूल्य कूता जायगा और उस मूल्य को हिस्सों के रुपयों में परिवर्तित कर लिया जायगा—यह बात कहाँ रही ? भूमि पर स्वामित्व फिर भी व्यक्ति का बना रहा ! पर ख़ैर देखा जायगा। क़ायदे तो हमीं बनावें बिगाड़ेंगे।'

बटोले और दमरू राजी नहीं हुये।

देशराज ने बनमाली को सान्त्वना दी,—'और भी ज़िमीन है। परेशान मत हो।'

अधिकरी बोला, 'जल्दी भी क्या है। हमें तो यहां बहुत समय तक टिकना है।'

'ख़ैर,' बनमाली को कहना पड़ा।

टहलराम, बटोले और दमरू जब लौटे तो देशराज ने देखा कि वे सब हँस रहे थे। वह हँसी बनमाली को उतनी न अखरी होगी जितनी देशराज को।

[१९]

उसी दिन, साँझ होते होते, देशराज और अञ्जना के पांच पांचसौ रुपये—सौ सौ के दस नोट—धरनीधर के पास पहुँच गये। उन दोनों के चरित्र का जो अङ्कन धरनीधर ने अपने मन में कर रक्खा था, उसको ठेस लगी। अपने पूर्वाग्रह पर विजय पाना उसके लिये कठिन हो गया। अनुमान था कि देशराज किसी न किसी बहाने की पोल में होकर निकल जायगा और अञ्जना को भी खिसका ले जायगा। उसको डर लगा कि देशराज की गिरती हुई पाली फिर सिरे की तरफ़ बढ़ेगी। लकड़ी कटवा लेने की बात दब गई। ज़िमींदारी उन्मूलन को न केवल सहलिया बल्कि उसे अपना सहयोग भी दिया!! फिर भी उसमें कुछ ऐसा ज़रूर है जो उसे नीचे घसीटे बग़ैर न रहेगा। बढ़िया भूमि में लम्बी चौड़ी व्यक्तिगत खेती और घटिया ज़िमीन सहकारी समिति को! लेकिन मैंने तो अपनी इंच भर भी नहीं लगाई!! तो क्या हुआ? काम कितना करता रहता हूँ। देशराज सेवा का तो कोई कार्य करता नहीं। जनता इस अन्तर को पहिचाने बिना न रहेगी। सुहाना की जनता तमाशा देखने के बाद ज़रा देर में घर लौट पाई। ढोरों के बाँधने दुहने में इतना विलम्ब हुआ।

स्त्रियाँ देर से पानी भरने कुँये पर पहुँचीं। ठण्डी पवन चल उठी थी। पेड़ों के झोंके सरसरा रहे थे। सूर्य की नरम नरम पीली किरणें उनमें होकर झाक झांक कर छिपने वाली ही थीं। नङ्गे-अधनङ्गे बच्चे अपनी मां बहिनों के साथ रोते चिल्लाते कुयें के आसपास खड़े हो गये। उनको जाड़ा नहीं लग रहा था, क्योंकि कांपते नहीं दिखलाई पड़ रहे थे; भूखे थे इसलिये बिलबिला रहे थे। घर रोटी नहीं बनी थी। स्त्रियां जब पानी भरलें और पिसान पीसलें तब कहीं रोटी बन पावे। स्त्रियाँ बातें करती जाती थीं और बीच बीच में बच्चों को डांटती भी जाती थीं। दुलार पुचकार का वहां काम न था।

एक कह रही थी,—'इंजिन हिलकारी क्या मार रहे हैं, रुपये वालों का रुपया बोल रहा है।'

दूसरी,—'अपने भाग में तो वही हल-बखर बदा है।'

'सो अच्छा है जीजी, दूसरों का मुंह तो नहीं देखना पड़ेगा। भगवान वहाँ और अपने हाथ पैर यहाँ।'

मशीनों की भकभक-फकफक, सत्यानासी पेड़ों का उखाड़ना, कांस का फिकना और धूल का उड़ना हमें तो ऐसा लग रहा था जैसे दिवाली के पटाखे और होली की धुलेंड़ी एक ही साथ हो रही हों।'

'ओ हो ! हो हो !! खा लेना उसे, भर लेना उससे पेट अपना।'

एक ने अपने रोते हुये बच्चे को कोसा,—'आग लगी यहां आई रोने को !'

फिर खाने पीने की चर्चा छिड़ी।

'आज दो रोटी खाई थीं—भोर, फिर उन दईजारी मशीनों को देखने निकल पड़ी।'

'मैंने तो एक ही खाई थी, ढाई वे डाल गये थे पेट में।'

'मैंने मठे में चार मीस ली थीं, पर अब तो आँतें जल रहीं हैं।'

'और मैंने तो बाई, दो कौर महेरी ही पाई।'

बांगुर्दन में भी एक कुँयें पर कुछ इसी प्रकार की बातें हो रही थीं। कुछ बच्चे भी थे जो आने जाने वाले ढोरों को गालियां दे रहे थे।

'तुझे सांप डसले !'

'तुम पे पड़े भवानी ! तुम पै !!'

'तुझे खा जावे तेंदुआ !'

'तुम्हें लग जाब भोंरा रोग !' और ऐसी गन्दी गालियां जो उन्होंने अपने वातावरण में से सीखी थीं।

हरको भी पानी भरने आई। कुयें के पास ही एक घर के सामने करौंदी की झाड़ी से घिरा बेड़ा था। उसी में खाद के लिये कूड़ा कचड़ा

और गोबर का ढेर। चारों तरफ़ दुर्गन्धि फैल रही थी। जब उस ढेर के पास से होकर निकली तब उसने न नाक सिकोड़ी, न भौंह। पर जैसे ही कुयें के मनघटे पर आई, उसने घड़े जगात पर रख के अंचल नाक पर रख लिया।'

बोली, 'बदबू के मारे नाक फटी जा रही है।'

एक स्त्री ने फबती कसी,—'सुसराल में तो खाद के ढेरों से गेंदा, चमेली की सुगन्ध आती होगी।'

दूसरी हँसी,—'अरी बाई, नाक सँभालती है कि अपने अङ्ग! देखो तो इसने कपड़ा कितना ऊँचा उठा लिया है!!'

हरको के पेट की शिकनों के ऊपर का कुछ अङ्ग दिख रहा था। उसने तुरन्त नाक पर से अञ्चल हटाया और अङ्ग ढक लिये। उसकी ओढ़नी काफ़ी लम्बी चौड़ी न थी। जो कुछ भी थी, उसमें कई जगह फटनें और छेद।

उसको उतनी लज्जा नहीं जितनी रिस। परन्तु वह किसी से कुछ न कह कर पानी खींचने में लग गई।

मशीनों के प्रसङ्ग पर चर्चा फिर चल पड़ी।

'कूँड़ हाथ हाथ भर के हो जाते हैं; बीज इतने गहरे बैठकर जमा भी तो वहीं मर जावेगा।'

'आगे फिर कांस का कांस।'

हरको उबल पड़ी,—'वे तो सब मूरख ही हैं जिन्होंने मशीनें बनाईं और चलवाईं। अपने हल-बखर से न उखाड़ फेका कांस और जंगल झाड़ी को? बेमतलब की बातें करती हो।'

'ओ हो हो! ये आईं बड़ी जानकार।' ससुराल में चलवाओ मशीनें। ले जाओ डिरैवरों को।'

कई हँस पड़ीं।

'यहीं चलवाऊँगी, यहीं जहाँ तुम्हारी ससुराल है और मेरा मायका। दिखाऊँगी करके।'

हरको ने जल्दी जल्दी पानी भरा और चली गई।

[२०]

उसी शाम, जब देशराज धरनीधर के पास रुपया भेज चुका, वचन के निभाने पर, उसका भार हलका नहीं हुआ, कुछ भारी पड़ गया।

सूर्यास्त के उपरांत अञ्जना और देशराज हवेली के भीतर कमरे में इकट्ठे हुये।

'आज जोश में आकर नाहक़ एक हजार रुपये ठंडे कर दिये,' देशराज ने अपना एक कन्धा आधी अँगड़ाई में मरोड़ते हुये कहा।

अञ्जना मुस्कराई। आँखों में कांइयांपन था।

'तुम भले ही जोश में बह गये होगे, मैंने तो जान-बूझकर किया।'

'हां कुछ लोकप्रियता तो मिल ही गई है।'

'लोक-प्रियता मिली है और मिलती रहेगी। रुपये भी ब्याज समेत वापिस होंगे।'

'सहकारी समिति के काम से तो होंगे नहीं। हाँ आँ—अपनी जिमीन पर बुलडोज़र बन्धी जल्दी डाल देंगे, तब वहाँ कुछ होगा, पर बन्धियों के डालने का असर तो अगली फसलों पर पड़ेगा।'

'अजी मेरे सरकार, पढ़िये इस कागज़ के टुकड़े को।' अञ्जना ने अपनी एक भीतरी जेब से कागज़ का टुकड़ा निकाल कर देशराज को दिया। देशराज पढ़ने लगा। उस पर लिखा था—'सम्वाद भेजो। हम कुछ समय बाद आवेंगे।'

अञ्जना ने कहा, 'जब तुम सब बुलडोज़र का प्रदर्शन देखने के बाद खेत-वेत देखने दिखलाने के लिये गये तब मैं वहाँ से चली आई और यह तार नाहरगढ़ भेज दिया।'

उस काग़ज़ के टुकड़े पर जो कुछ लिखा था उसके शब्दों का सामान्य अर्थ किसी प्रकार की गुदगुदी या उत्सुकता उत्पन्न नहीं कर सकता था, पर जैसे ही देशराज ने अपनी स्मृति को कुरेदा, फड़क उठा।

'तुम ग़ज़ब की हो !' दो तीन क्षण चुप रहा। फिर अपनी नाक के सिरे पर उँगली फेरते हुये बोला, 'है बड़े खतरे का काम !'

'खतरों में हम लोग पले और खतरे ही हमारा तुम्हारा पुष्टिकारक भोजन है,'—अञ्जना ने भौंहें समेटकर कहा।

'ठीक कहा तुमने,'—देशराज उत्साह पूर्वक बोला,—'पर यह सबका सब इतनी जल्दी !'

अञ्जना की भौंहें ढीली पड़ी। चितवन मदभरी हुई और मुस्कान विजय के रस में डूबी।

'यह नुस्खा कब सोचा ?' देशराज ने पूछा।

सिर हिलाकर सङ्गीत के स्वर में अञ्जना ने उतर दिया,—'पाँच सौ रुपये देने का वादा करने के पहले।'

देशराज उमड़ पड़ा,—'वाह री अमरबेल ! शब्दों के सच्चे अर्थ में मेरी अमरलता !!'

वह हँस पड़ी,—'हाँ अकेले में यह सब कह सकते हो।'

देशराज ने उसको लिपटा लिया।

× × ×

धरनीधर ने सिरख परखकर नोट रख लिये और अपने भविष्य की बहुत सी बातों को सोचता बिचारता सो गया।

कई घड़ी दिन चढ़े समिति के कुछ लोग रुपया उधार लेने आये। अगहन का महीना लगने वाला था। किसी को लड़की का, किसी को लड़के का ब्याह करना था। ज़िला बैंक से आये हुये रुपयों का कुछ भाग जो मशीन चलवाने की फ़ीस में जमा करना था पेटी के ऊपरी भाग में रक्खा हुआ था और अपना निजी नीचे के भाग में, जिसको साधारण दृष्टि नहीं भेद सकती थी। फ़ीस में रुपया तभी जमा होता जब सदस्य अपने इस या उस खेत पर मशीन चलवाने के लिये राजी होते। इसमें अभी कुछ विलम्ब था और विलम्ब की सीमा बढ़ाई भी जा सकती थी।

जो लोग ऋण लेने आये थे उन पर धरनीधर का कुछ पहले का दातव्य चला आ रहा था। धरनीधर ने ज़िला बैंक का रुपया और अपना इन लोगों को अपने निजी खाते में उधार दिया और जो बाकी चली आ रही थी उसको उधार दिये रुपयों में से काट लिया। आशा थी ही कि दूसरे ऋणिये अठवारे पखवारे में रुपये जब दे जायेंगे तब कुछ तो उस एक हज़ार में से और कुछ इससे रोकड़ बराबर कर लूंगा, क्योंकि वह एक हज़ार भी तो एक साथ खर्च होगा नहीं। और नहीं तो थोड़े से ब्याज का मुनाफ़ा ही सही, क्योंकि धरनीधर उस पुरानी कहावत का अनुयायी था कि गाँठ से निमक तक खरीद कर खाने वाला साहूकार जड़मूल से मारा जाता है!

एक ने जब प्रतिवाद किया कि,—'बाक़ी को इसमें से न काटो; बक की ब्याज-दर इतनी सस्ती और तुम्हारी इतनी कड़ी! फिर भी तुम्हीं से लेते हैं और लौटा देते हैं, बाक़ी को आने वाली फ़सल पर ले लेना,' तो उसने बतलाया कि—'बंक आज है और कल न रहे! ओस चाटे प्यास नहीं बुझती। काम हमीं आयँगे। सदा से हैं, और सदा रहेंगे। और फिर भाई, बंक शादी ब्याह के लिये तो रुपया देता नहीं। वे लोग मन मार कर चले गये।

रास्ते में कुड़कुड़ाते गये,—'सब एकसे हैं। कोई लम्बी नाक वाला! कोई लम्बे हाथ वाला!!'

× × × ×

दिन भर ट्रैक्टर चले। मशीनों के भिन्न भिन्न कार्य होते रहे। उनका काम देखने और हल्ला-गुल्ला सुनने के लिये इन दोनों गाँवों के बहुत से लोग और बड़ी संख्या में दूर दूर के गाँवों के लोग आये। थोड़े से बाँगुर्दन में अपने अपने नातेदारों के रूखे सूखे के मेहमान हुये और बहुत से लौट गये। इन दोनों गावों में ब्यालू के समय तक काफ़ी चहल पहल रही। फिर वह घटती गई और नीरव बढ़ता गया। आधी रात के समय बिलकुल सन्नाटा।

निस्तब्धता जैसे किसी का आवाहन कर रही हो, किसी की प्रतीक्षा में हो। दोपहर रात गये के पखेरू बोलकर चुप हो गये। हवा चलते चलते रुक गई। वृक्ष-पल्लव निस्पन्द से। चन्द्रमा पश्चिम के एक कोने की ओर सरकता सरकता मन्द होने लगा और बड़े बड़े तारों में आभा बढ़ने लगी।

निश्शब्दता का साथ देते हुये कुछ हथियार-बन्द धरनीधर के मकान के सामने चुपचाप आ खड़े हुये, चेहरे पर वे ढाठियाँ बाँधे हुये थे। मार्गों की नाकेबन्दी के लिये वे अपने साथियों को पहले ही छोड़ आये थे।

उनमें से एक ने किवाड़ खटखटाये। कुछ क्षण उपरान्त भीतर से आवाज़ आई,—'कौन है ? क्या है ?'

स्थानिक बोली में आगन्तुक ने कांपते हुये गले से कहा,—'बड़ी अटक का काम है। ऊँचे नातेदार की बात जा रही है। मुंह अँधियारे उठकर चले जायेंगे। काम छोटा सा ही है पर है बहुत ज़रूरी। आधी घड़ी के लिये आ जाइये। अहसान कभी नहीं भूलूंगा।'

एक किवाड़ों के सामने खड़ा हो गया; उसके साथी अगल बगल डट गये।

धरनीधर कुछ मिनिट बाद लालटैन लिये आ गया।

भीतर की सांकल खुली। एक किवाड़ हटा कि वह व्यक्ति आंधी के वेग के समान टूट पड़ा। पीछे से उसके कुछ साथी घुस पड़े।

जो सबसे आगे था उसने कठोर स्वर में कहा, 'मैं हूँ कालीसिंह।'

धरनीधर के हाथ से लालटैन छूट गई। कालीसिंह के एक साथी ने लपक कर लालटैन उठा ली, कालीसिंह ने धरनीधर के गले की तरफ़ हाथ बढ़ाया।

धरनीधर चिल्लाया,—'दौड़ियो ! बचाइयो !!'

इससे अधिक वह नहीं बोल सका। कालीसिंह ने उसे दबोच लिया।

बोला, 'चल भीतर !' धरनीधर अचेत सा था। उसके पैर लड़खड़ा गये। कालीसिंह और उसके कुछ साथी धरनीधर को घसीट कर भीतर ले गये। वह एक जगह गिरकर बैठ गया। कालीसिंह ने उसकी छाती पर बन्दूक अड़ा दी।

'बोल, माल कहाँ है ?' कालीसिंह गरजा। धरनीधर की घिग्घी बँध गई।

फिर जो कुछ हुआ उसमें देर नहीं लगी। धरनीधर को अपनी पेटी बतलानी पड़ी।

किवाड़ खुलते ही कालीसिंह और उसके साथियों के घुस पड़ने पर जब धरनीधर चिल्लाया,—दौड़ियो, बचाइयो,—तब उसके एक दो पड़ोसियों ने, थोड़ी सी देर के बाद दरवाज़े खोले और वे लालटेन लेकर बाहर निकले भी।

'कौन है ? क्या बात है ?' उन्होंने हड़बड़ा कर प्रश्न किये कि एक डाकू ने बन्दूक का हवाई फ़ायर किया। पड़ोसी जल्दी से अपने अपने घरों में चले गये और किवाड़ बन्द कर लिये।

बन्दूक के उस फ़ायर पर, कुछ समय पीछे, हवेली की दिशा से बन्दूक़ दागे जाने की दो तीन आवाज़ें आईं।

इस बीच में कालीसिंह ने धरनीधर की पेटी से सौ सौ रुपये के वे दस नोट निकाल लिये, साथ में उसकी निजी रक़म भी। यह सब लेकर वह साथियों सहित चला गया।

घड़ी डेढ़ घड़ी धरनीधर अर्द्ध अचेत अवस्था में पड़ा रहा। कानों में तरह तरह की ध्वनियाँ सनसना रही थीं। उन ध्वनियों के ऊपर घर में हल्ला-गुल्ला और लोगों के चलने की आहट सुनाई पड़ी। उसने कल्पना की,—डाकू लौट पड़े हैं। अब और जो कुछ होना हो सो होले; अपने को भाग्य के हवाले करके वह सन्न हो गया। उसके चारों ओर कई लालटेनों का प्रकाश हुआ।

एक ऊँची आवाज़ कान में पड़ी,—'अरे भाई धरनीधर जी !'

यह स्वर देशराज का था। धरनीधर ने आंख खोली। देशराज, बनमाली, बिक्रम और कुछ पड़ोसी उसे घेरे खड़े थे। देशराज बन्दूक लिये था। यह बनमाली और बिक्रम को लेकर आया था जिनके घर मार्ग ही में पड़ते थे। इनको आता देखकर पड़ोसी भी साहस करके निकल पड़े थे। डाकू धरनीधर के किवाड़ खुले हुये छोड़ गये थे इसलिये इनको भीतर चले आने में अड़चन नहीं पड़ी। स्त्रियां सिकुड़ी हुईं, किवाड़ बन्द किये, भीतर सिसक रही थीं।

थोड़ी देर बाद, पूरा चेत आ गया, तब धरनीधर ने डाके का ब्योरा सुनाया। किसी ने सच्ची, किसी ने बनावटी सहानुभूति प्रदर्शित की।

देशराज ने कहा, 'मैं अध-सोया सा था। बन्दूक के फ़ायरों पर चौंक पड़ा। सोचा कहीं कुछ गड़बड़ है। शायद डाकू कहीं गाँव में उत्पात कर रहे हों। कहां कर रहे होंगे? बनमाली जी के यहाँ या आपके यहाँ? इनका घर है मेरे निकट ही और बन्दूक चलने की आवाज आई कुछ दूर से। मैंने कपड़े पहिने, बन्दूक उठाई और कारतूसों की पेटी ले ली। आंगन से निकल कर दो फ़ायर दागे। बनमाली जी को बुलाया। ये आ गये। फिर बिक्रम को साथ लिया। आपके पड़ोसी हम लोगों को आया देखकर निकल पड़े। उनसे मालूम हुआ कि आप पर डाका पड़ गया है!'

बनमाली, बिक्रम और पड़ोसियों ने समर्थन किया।

देशराज ने धरनीधर से पूछा, 'आपने उन नोटों के नम्बर कहीं लिख लिये थे?'

'नहीं तो,'—उसने धीमे स्वर में कहा,—'आपके पास होंगे।'

'हमारे पास भी नहीं हैं। रुपये आते जाते बने रहते हैं। नम्बरों के टीप लेने का अवसर ही नहीं आता—अभ्यास ही नहीं है।'

बहुत सान्त्वना देने और धीरज धराने के बाद सब लोग अपने अपने घर चले गये।

× × ×

रात तीसरे पहर में भीगने लगी। गाँव के सन्नाटे में घर घर लोग खुसफुस करते रहे। सोचते थे कब सवेरा हो। अञ्जना और देशराज भी जाग रहे थे। अञ्जना अतिथि-भवन में न होकर, हवेली के ही एक भीतरी भाग में थी। देशराज कुछ ही समय पहले धरनीधर के घर से लौटा था।

'तो धरनीधर ने उन नोटों के नम्बर कहीं नहीं लिखे ?'

'नहीं लिखे। मैंने अच्छी तरह से पूछ लिया है।'

'कालीसिंह क्या है, एक तूफ़ान है !'

'विकट है।'

अञ्जना प्रसन्न थी। होठों पर बारीक मुस्कान। आँखों में मादकता नहीं, एक भयानकता थी। यदि उस समय एक विशेष कोण से उसका फ़ोटो लिया जाता, तो बहुत कुरूप दिखती।

देशराज संयत हर्ष में था।

'तुम्हारी सूझ-बूझ पर मैं तो न्योछावर हूँ।' देशराज बोला।

वह हँसी।

'यह तो कोई बड़ी बात नहीं हुई। आगे बहुत करने को शेष है। लखनऊ की दिशा में चलना है। कब तक चल सकोगे ?'

'ज़िमीन पर मशीनें चलवालूँ और जाँच पड़ताल के लिये पुलिस आ जा ले, तब चल पड़ो।'

'देर हो रही है,'—एक विजय पर दूसरी विजय का ढेर लगाने की आकांक्षा की लहर में अञ्जना बोली। 'नहीं, शीघ्रता करेंगे। मशीनों का उपयोग हर प्रकार से ज़रूरी है—रुपये की वृद्धि में सहायता मिलेगी और दूसरे साधनों से प्राप्त और बढ़ाई हुई सम्पत्ति के लिये आड़ ओट।'

× × ×

प्रातःकाल ही पुलिस में रिपोर्ट करा दी गई। पुलिस अविलम्ब दौड़ी आई। राजा देशराज के गाँव में भी डाका पड़ गया ! पुलिस इंसपैक्टर को आश्चर्य था।

जाँच पड़ताल हुई। देशराज को, और उसके साथ,यद्यपि उससे कम, बनमाली और बिक्रम को सराहना मिली। अपनी जान पर खेलकर एक साधारण साहूकार की सहायता के लिये दौड़े आये बिचारे !

आये थे वे दो घड़ी पीछे !!

कालीसिंह अपना नाम बतला गया था, इसलिये किसी और पर सन्देह करना व्यर्थ था। परसों शाम को धरनीधर के पास रुपये पहुँचे, कल रात डाका पड़ गया। कालीसिंह को कैसे पता लगा ? वह कहां रहा होगा ? निकटवर्ती जंगलों और पहाड़ों को पुलिस की असंख्य गालियां मिलीं। यहीं कहीं छिपा होगा अपने गिरोह के साथ। या तो किसी गाँव वाले ने उसको उन रुपयों की खबर दी या मशीनों का तमाशा देखने के लिये आने जाने वालों में उसके किसी सहयोगी ने। गाँव में धरनीधर की ऐसी शत्रुता भी किसी से नहीं जो बैर चुकाने के लिये किसीने यह कुकर्म करवाया हो। हो न हो बाहर का ही कोई बदमाश आया और कालीसिंह को सूचना दे गया। पुलिश की जांच पड़ताल समाप्त हो गई। वह आगे कुछ न कर सकी। नोटों के नम्बर कहीं लिखे थे नहीं कि उनके सम्बन्ध में रोक-टोक की कोई कारर्वाई की जाती।

पुलिस के चले जाने पर राघवन धरनीधर के घर आया। संक्षेप में सहानुभूति प्रकट करने के उपरान्त उसने बैंक के रुपयों के सम्बन्ध में प्रश्न किया।

धरनीधर ने बतलाया,—'वे एक हज़ार गये, बैंक से जो रुपया आया था वह गया और इनके साथ मेरा निज का भी।' बैंक से आये रुपये उधार में डाल दिये थे, इस बात को वह छिपा गया।

'बुरा हुआ। बहुत बुरा हुआ।' राघवन ने कहा। पर क्या बुरा हुआ, यह उसने अभी मन में ही रक्खा। धरनीधर बहुत उदास था।

राघवन उसे उत्साहित करने के लिये बोला, 'कल सन्ध्या समय टहलराम जी के घर बांगुर्दन के लोगों की सहकारी कृषि समिति बनाने के लिये बैठक हुई।

धरनीधर को यह प्रसङ्ग बुरा लगा। राघवन ने देखा उसने मुंह लटका लिया है, परन्तु वह तो धुनी था, कहता गया—

'टहल जी व्यक्तिगत खेती के बहुत विरुद्ध हैं, पर बटोले पक्ष में हैं। उन्होंने टहल जी की बात नहीं मानी और बिगड़ पड़े। और भी कुछ थे—नाम याद नहीं—जो व्यक्तिगत खेती के लिये ज़मीन अलग रखने के पक्ष में हैं। आप शायद उनके नाम जानते होंगे।'

धरनीधर जानता भी होगा तो उसने न जानने का सिर हिलाया।

राघवन ने बात समाप्त की,—'व्यक्तिगत खेती और भूमि स्वामित्व के लिये क़ायदों में स्थान है। टहल जी को अपने साथियों के आग्रह के सामने झुकना नहीं आता। समिति बनाने का प्रस्ताव पास न हो पाया। पर शीघ्रही होगा। समिति की रजिस्ट्री होते ही आपको मशीनें चलवाने की फ़ीस जमा करनी पड़ेगी।'

धरनीधर जानता था।

क्षीण स्वर में बोला, 'कहां से दूंगा ?'

सान्त्वना के लिये मुस्कान में डुबोकर राघवन ने उत्तर दिया,—परन्तु होठों के सिवाय शेष आकृति पर स्वाभाविक रुक्षता की छाप थी,—'धीरे धीरे दे दीजियेगा, पर देना तो पड़ेगा ही और बैंक के रुपये तो बहुत जल्दी देने पड़ेंगे। जितनी मुहलत मुझ से बनेगी, मैं आपको दिलवा दूंगा।'

धरनीधर की आंखें छलछला आईं। मेरे पास इतना है ही नहीं कि दे सकूं।'

'मैं क्या करूँ, भाई मेरे ? मेरे सिर पर भी तो क़ानून है।' कहकर राघवन चला गया।

धरनीधर सोच रहा था, इस सहकारी समिति से कैसे पीछा छूटे ?

[२१]

सुहाना बांगुर्दन के बीच वाला नाला आगे जाकर चौड़ा होता चला गया था। ललिता नदी में मिलने से पहले इस नाले ने किनारे की एक एक दो-दो फर्लाङ्ग भूमि को काट कूटकर छोटे छोटे भरकों में पलट दिया था। इन भरकों में रेंवजा और झरबेरी के लटे दुबले, कुंठित पेड़ थे, पर घास न था। रेंवजा और झरबेरी को उन गांवों की और आस-पास की भेड़ बकरियां चरा करती थीं। उस चारे से उनमें जान ही कितनी पड़ती थी ? कोई बकरी आधपाव दूध देती थी, कोई तीन छटाक। वह भी साल में चार महीने। पर गाय बैलों की इतनी भी गुज़र इन भरकों से नहीं होती थी और दूध तो गर्मियों में पच्चीस गायों से दो सेर मिल जाय तो बहुत। काँस चला तो यह भी हाथ से गया ! गर्मियों में ढोर बेभाव मरेंगे वह आफ़त अलग !!

घास को कांस चाट गया और काँस को मशीनें डसने लगीं। अब ढोर क्या खायें ? आगे कैसे गुज़र होगी। लोग सोचने लगे।

मशीनों का हो-हल्ला, झाड़ी-झंकाड़ की उखाड़-पछाड़, बंधियों का डाला जाना, रोज़ रोज़ इतना हुआ कि तमाशा पुराना पड़ने लगा।

आरम्भ में सरकारी पड़ती पर मशीनें चलीं। फिर कुछ देशराज को किराये पर मिलीं। अब सुहाना की सहकारी समिति के उन खेतों की बारी आने वाली थी जो काँस से ढँके हुये थे। इनमें वे भी थे जिन पर छदामी का दावा था। कुछ ऐसों के भी थे जिन्होंने मुक़द्दमा नहीं चलाया था और न चला सकते थे, केवल किलप रहे थे।

गाँव की राजनीतिक प्रगति पर भी मशीनों के आने का प्रभाव पड़ा —नेतागीरी खटाई में पड़ने लगी। बड़े छोटे सरकारी अफ़सर जब देखो तब हवेली में, मशीनों के ड्राइवर और मिस्त्री भी वहाँ बहुधा आ जमते थे। देशराज का अदृष्ट रूप बढ़ने लगा। योजना में सहकारी कार्यों को महत्व दिया गया था। इसलिये उन कार्यों के प्रमुख संचालकों

को मान्यता मिलने लगी। इखरी बिखरी जोतों की चकबन्दी की जानी थी। चकबन्दी में जोत वालों की अरुचि थी। उस अरुचि का या तो प्रतीकार हो या सम्पादन। महत्वाकांक्षी ग्राम्यनेता के लिये जरूरी था कि अपनी प्रभावहीनता से छुटकारा पाये और आगे बढ़े। इसलिये धरनीधर ने सुहाना की जनता के असन्तोष का सम्पादन आरम्भ कर दिया। टहलराम ने बांगुर्दन में अपने मन की सहकारी समिति नहीं बना पाई थी, इसलिये वह किसी दूसरे मार्ग के खोजने में लगा था, पर बटोले मंटू, दमरू इत्यादि जानदार आदमियों को वह नहीं छोड़ सकता था।

बनमाली ने देखा कि सरकारी अफ़सरों की रीझ बूझ तो मिलने लगी है, फिर भी देशराज के मुकाबिले में कम। उधर जनता उसके प्रति विमन। और देशराज के पट्टे द्वारा जो विस्तृत भूमि खंड मिले थे, वे सङ्कट के शिकन्जे में। कपास ओंटने चले थे अब मिलता दिख रहा था जपने को केवल हरि नाम! बटोले की तरह दमरू और छदामी भी किसी दिन मामला जीत ले जायेंगे; गाँव पञ्चायत या गांव समाज जब जिमींदारी उन्मूलन द्वारा प्राप्त भूमि का प्रबन्ध—यानी बाँट बटवरा—करेगी, तब कुछ हाथ लगने का नहीं, क्योंकि जिन्होंने अदालती कारर-वाई नहीं की थी और कोस-किलप रहे थे, चुनाव में उनका वोट मिलने से रहा। पञ्चायत या गांव समाज में पहुँचने का एकमात्र साधन था यही। इसलिये बनमाली भी, यद्यपि स्वतन्त्र रूप से, परोक्ष में धरनीधर का सहयोगी बना।

× × ×

धरनीधर चाहते हुये भी सहकारी समिति को नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि चार्ज सोंपने के समय समिति या जिला बैंक की पूरी धरोहर वापिस करनी पड़ती। देनी तो पड़ेगी ही किसी न किसी दिन, परन्तु दीर्घकाल के लिये टल जाय तो बड़ी ग़नीमत। तब तक ब्याज पर फैला हुआ रुपया लौट आयगा और किसी प्रकार आगे का काम चलायेंगे।

समिति की थोड़ी सी निर्विवाद भूमि पर मशीनें चलवाने का किराया धरनीधर को जमा करना पड़ा। अन्य भूमि के निर्विवाद हो जाने पर और भी जमा करना पड़ेगा। यहां मशीनों का चलना रुक जाय तो सांस लेने के लिये तो समय मिल जाय, धरनीधर मना रहा था।

साधारण जनता के लिये कांस का और अधिक उत्पाटन अब दुस्सह हो गया। कैसे बन्द किया जाय ? प्रश्न यह था—

धरनीधर और बनमाली ने अलग अलग एक ही उत्तर दिया—

सत्याग्रह करो। ट्रैक्टरों और बुलडोज़र इत्यादि मशीनों के सामने, पांतें बाँध बाँध कर लेट जाओ, बिलकुल न चलने दो ! तुम्हें शायद पकड़ पकड़ कर और घसीट घसीट कर हटाया जायगा, इसलिये बीच बीच में स्त्रियों को लिटा देना, उन्हें कोई छू भी नहीं सकेगा !!

जनता को बनमाली या धरनीधर की नियत में कोई बल— दावपेंच नहीं दिखलाई पड़ा।

और, एक दिन यकायक सत्याग्रह हो गया !

जब स्त्री पुरुषों की भीड़ की भीड़ मशीनों के सामने आई तब मशीन संचालकों ने समझा तमाशा देखने के लिये फिर टूट पड़ी है। परन्तु जब यह भीड़ पांतों में मशीनों के सामने हाय हाय करती हुई पट्ट लेट गई, तब वे चक्कर में पड़ गये।

कारण पूछने पर किसी ने न बतलाया। उन्होंने समझाया, मनाया, डाँट-डपट की। किसी ने परवाह नहीं की। अन्य लोगों ने कारण बतलाया तो अधिकारियों की समझ में न आया।

राघवन बहुत परेशान था।

देशराज को बुला भेजा। बनमाली, धरनीधर और टहलराम को भी।

इनके आने के पहले उसने भविष्य की हरियाली दिखलाई,—'नहर आयगी तो तुम्हारे इन खेतों की उपज दिन दूनी बढ़ेगी। नल कुयें

खोदे जायँगे, सस्ती बिजली मिलेगी। ऐसे खाद पाओगे जिनसे फ़सले चौगुनी हो जायँगी। उद्योग धन्धे बढ़ेंगे कि फूले न समाओगे।'

उन लोगों के कान पर जूं तक न रेंगी।

देशराज आ गया।

राघवन ने भीड़ वालों से कहा 'क्यों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी चलाते हो? कांस उपट जाने पर अगली साल अच्छा घास पैदा होगा, फ़सलें बढ़ेंगी—'

लेटे ही लेटे कुछ बोले, 'गर्मियों में जब हमारे सब जानवर मर जायँगे, तब अगली साल का घास कौन चरेगा?'

'मशीनें जो तेल खाती हैं वह हमारे देश में नहीं होता। तेल फूंक कर ये कोई खाद नहीं देती। कांस खाकर ढोर गोबर करते हैं और खाद तो देते हैं!'

देशराज ने कहा,—'यह इनकी नहीं, इनके दिमाग़ में दूसरों की ठूंसी हुई बात है।'

बनमाली नहीं आया। उसके पेट में यकायक दर्द हो आया था! धरनीधर को बुखार था!!

बनमाली के लिये देशराज कुछ नहीं कह सकता था; समझता था हमारे वर्ग का हो गया है। धरनीधर के सम्बन्ध में उसने कहा,—'उन्हीं के बहकाये, बरगलाये हुये हैं ये बिचारे। बुखार का बहाना लेकर अब पड़ गये हैं घर के भीतर!

राघवन की आकृति भयानक हो गई। उसने और उसके सहायकों ने बाहें उसकाईं, पुरुषों को पकड़ा घसीटा। परन्तु वे फिर जहां के तहां। स्त्रियों को राघवन इत्यादि बाहें घुमा घुमाकर, पैर पटक पटक कर धमका तो रहे थे, परन्तु उनको छू नहीं रहे थे।

एक स्त्री पड़े पड़े ही चीखी, 'रोंद डाल, मार डाल हमें!'

दूसरी—'अरे हत्यारे, क्या तेरे घर में कोई नहीं है?'

अन्य स्त्रियाँ चिल्लाईं—

'निपूते हैं, निपूते, मूँछों जले !'

'गाँव मिटाने आये हैं !!'

'चला दो मशीनें हमारे ऊपर !!!'

राघवन ने क्रोध के स्वर में, परन्तु आँखों से वर्जित करते हुये कहा, चला दो मशीनें ! कुचल डालो इन पाजियों को !!'

ड्राइवरों ने एन्जिनों की धुत्कारें, फुफकारें छोड़ीं, परन्तु मशीनों को बढ़ाया नहीं।

स्त्रियाँ जानती थीं—एक रोम भी नहीं कुचला-पिचला जा सकता।

एन्जिनों की धू धू हू हू के ऊपर स्त्रियों के चीत्कार उठे—

"मार डाला ! मार डाला !!'

'भगवान करें इनके घर में रांडें रह जायें !!!'

राघवन का क्रोध गहरे जा पहुँचा। एन्जिन बन्द करा दिये। एक सहयोगी को पुलिस ले आने का आदेश दिया।

भर्राये हुये स्वर में बोला,—'तुरन्त जाकर एक दस्ते को मय हथियारों के लिवा लाओ। उनके डंडे जब पीठ फोड़ेंगे तब होश ठिकाने आयगा। सूचना दो कि बलवा हो रहा है।'

उसी समय एक दिशा से टहलराम और दूसरी से सनेहीलाल आ पहुँचे। टहल के पीछे पीछे उसकी माँ और हरको भी आ रही थीं।

परिस्थिति उनकी समझ में जल्दी आ गई। असली कारण का भी उन्हें कुछ आभास था, परन्तु यह नहीं जानते थे कि 'सत्याग्रह' इतनी जल्दी छेड़ दिया जायगा।

टहलराम ने दौड़-धूप की। उन सबको समझाया। घाटीवाली ने स्त्रियों की बहक को दूर करने का बहुत प्रयत्न किया—हरको अपनी जान पहिचान वाली स्त्रियों को फुसला रही थी,—परन्तु उनके ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा।

सनेही ने राघवन को रोका,—'पुलिस को मत बुलाइये, गुत्थी और भी उलझ जायगी।'

राघवन झल्लाया,—'और कोई उपाय नहीं।'

सनेही ने निर्भयतापूर्वक भर्त्सना की,—'असल में आपके उत्साह की व्यग्रता समस्या को जटिल बना रही है। आपने इन लोगों पर मशीनें दौड़ाने का हुकुम दिया ?'

'केवल डराने धमकाने के लिये !'

'खूब ! इससे वे और भी उत्तेजित हो गये। अब क्या पुलिस को बुलाकर गोली चलवाइयेगा ?'

पुलिस जाने।

'बिना इन लोगों की मर्ज़ी के सहकारी काम तो चलने से रहे। इनमें बहुत से सहकारी समिति के सदस्य भी हैं; वे नहीं चाहते तो ज़बरदस्ती मत करिये। पहले उन्हें समझाइये। समझाते रहिये। तब तक सरकारी पड़ती जो अब भी कोसों फैली पड़ी है, उसे ठिकाने लगाइये। ऐसे तो काम नहीं चलेगा।'

'इखरी-बिखरी जोतों की चकबन्दी कैसे होगी ? राघवन ने असङ्गत सा प्रश्न किया।

सनेही ने उत्तर दिया,—'मशीनों से नहीं होगी, इनके ही बहुमत से होगी।'

राघवन को क़ानून का स्मरण हो आया। ठंडा पड़ने लगा।

सनेही की बातें कुछ लोगों ने सुनीं। टहल ने भी जो पास ही था।

बोला, 'मशीनें यदि सरकारी पड़ती में बिध गईं तो गांवों के पास की यह ज़िमीन तो रही जिसका काँस निकट के खेतों में भी फैलता रहेगा।'

सनेही मुस्कराया। राघवन उन दोनों के पास आ गया।

सनेही ने कहा, 'जब तक जगाते जगाते इन बिचारों की बुद्धि जागे तब तक बटोले इत्यादि वाली पड़ती में क्यों नहीं मशीनें चलवा देते जो इसे अदालत से मिली है ?'

बटोले के भूस्वामित्व-हठ और व्यक्तिगत खेती के आग्रह के कारण टहलराम बाँगुर्दन में अपने मन की सहकारी समिति नहीं बनवा सका था।

सोचने लगा।

सनेही लेटे, अधलेटे नर नारियों के पास गया। बोला, 'मशीनें तुम्हारी भूमि पर नहीं चलेंगी। मैं ज़िम्मा लेता हूँ। घर जाओ या छाया में जा बैठो।'

उन लोगों ने देख लिया था कि सनेही ने आते ही राघवन से कड़ी कहा सुनी की है। उसके प्रति उन लोगों की निष्ठा थी। कुछ ढीले पड़े।

राघवन ने टहल से कहा, 'आप समिति बन जाने देते तो सुगमता से काम चलता, पर आपने बटोले जैसे अपने साथी की भी न मानी। आप अपने सामूहिक खेती के घोड़े को बेलगाम दौड़ाने की यों ही ज़िद कर रहे हैं।'

सनेही पास आ गया।

मशीन वालों को राघवन ने आदेश दिया,—'काम बन्द कर दो। ट्रैक्टर इत्यादि सरकारी पड़ती में चलेंगे।'

जनता ने सुन लिया। 'सत्याग्रह समाप्त हो गया। नरनारी हटने लगे।

टहल यकायक बोला, 'सरकारी में नहीं चलेंगे ट्रैक्टर, हमारी समिति की पड़ती में चलेंगे।'

'है कहां वह समिति ?' सनेही ने धीरे से पूछा। थकी हुई दृष्टि से राघवन टहल की तरफ़ देखने लगा।

'यहीं कर लीजिये उसकी काररवाई, कराइये उसकी रजिस्ट्री। मैं अपने साथियों को नहीं छोड़ सकता। उनके मन की समिति बना दीजिये।' टहल ने उत्साह की खनक में कहा।

घाटीवाली दूर नहीं थी। टहल को अपनी मां के शब्द सुनाई पड़े, 'ठीक कहा बेटा। बनाओ समिति। कुछ स्त्रियाँ भी उसमें शामिल होंगी।'

अपनी धुन का मस्त राघवन टहल से जा लिपटा।

'मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूं? मेरी लाज रख ली।' राघवन के गले में कम्प था। आँखों में आँसू दृढ़तापूर्वक क़ैद कर लिये गये थे। बोला, 'समितियों के रूप में कुछ भिन्नता भी रहे तो कोई हर्ज नहीं। कोई नाला सकरा होता है, कोई चौड़ा; परन्तु दोनों का पानी मिलकर एक बड़ी नदी बना देता है। हमें तो उस बड़ी नदी की तरफ़ आंख पसारनी है।'

सनेही ने आगे बढ़कर कहा,—'मेरी बधाई, टहल बाबू।'

टहल ने सनेही की मुस्कान में व्यङ्ग ढूंढ़ने का प्रयत्न किया। वहाँ ऐसा कुछ न था।

राघवन के आलिङ्गन से मुक्त होकर बोला, 'मेरा सिद्धान्त तो सामूहिक खेती का ही है, परन्तु विवश हो गया हूँ।'

सनेही जरा सा हँसा। परन्तु उसकी हँसी में भी व्यङ्ग की काट-कतर नहीं थी।

'सिद्धान्तों से कोई लड़ाई नहीं; मैं तो व्यवहार मात्र देखा करता हूँ। यदि कभी मेरी सेवा की ज़रूरत पड़े तो आप मुझे अपने से दूर नहीं पायेंगे।'

सनेही के प्रति टहल के मन में एक अपरिचित श्रद्धा उत्पन्न हुई। कह सका वह केवल इतना ही—'बहुत अच्छा, डॉक्टर साहब।'

सनेही से राघवन उतना सन्तुष्ट नहीं था।

मशीनें उस दिन बन्द रहीं। मशीन वालों ने छुट्टी मनाई। परन्तु राघवन को चैन तभी मिला जब उसने टहलराम के घर बाँगुर्दन सहकारी कृषि समिति का, अपने क़ायदों के अनुकूल निर्माण करवा लिया। उसमें घाटीवाली और हरको ने भी अपने नाम लिखवाये।

बनमाली ने देखा कि नेतृत्व गाँठ में न पड़ सका, कहीं अन्यत्र चला गया। मन को सान्त्वना दे ली—धरनीधर से तो सनेही कहीं अच्छा।

धरनीधर पर मानो वज्र सा टूटा। बाँगुर्दन समिति का निर्माण उन एक हज़ार रुपयों को देर सबेर बिना लिये न रहेगा—शायद जल्दी ही। खैर भुगतूंगा।

राघवन ने तक़ाज़े को गरम किया। उसे सरकारी पड़ती की अपेक्षा सहकारी समिति का काम ज्यादा प्यारा था। इसके अतिरिक्त 'मशीन-बाईकाट' में धरनीधर के हाथ की भी बात उसे मालूम हो गई थी। पड़ गया वह धरनीधर के पीछे। उसे रुपयों का प्रबन्ध करना ही पड़ा।

धरनीधर ने निश्चय कर लिया कि उधार फैला हुआ रुपया वसूल करने बाद समिति से इस्तीफ़ा दे दूंगा।

[२२]

बाँगुर्दन सहकारी कृषि समिति की रजिस्ट्री हो गई। धरनीधर को रुपये लौटाने पड़े। फ़ीस जमा करदी गई। बटोले वाली पड़ती पर ट्रैक्टर चला और बन्धी पड़ी। काँस साफ़ हो गया। बढ़िया भूमि अपनी पुरानी विभूति के साथ दिखलाई पड़ने लगी। बन्धी ऐसी शुद्ध नाप और डील-डौल की बनी जैसे किसी चित्रकार ने चित्र बनाने के लिये किसी युवती के रूपसरूप की रेखायें बनाई हों, रङ्गों के सौन्दर्य का समन्वय मानो, तब होगा जब उसमें मुस्कराती हुई फ़सलें अपने नीले, लाल, पीले, फूलों की सजधज में आ खड़ी होंगी।

टहलने बटोले को बाँगुर्दन समिति का प्रधान बनाया। घाटीवाली खज़ान्ची और वह स्वयम् मन्त्री चुना गया।

गाँव में, ऊपर से कोई विशेष झगड़े नहीं दिखलाई पड़ते थे। लोग अपने अपने काम में लग गये।

अन्जना और देशराज नाहरगढ़ गये।

जाने से पहले अञ्जना ने नाहरगढ तार भेजा--'हवाला उस दिन का तार, हम आरहे हैं।'

जिस तार का उसने हवाला दिया था वह था उस दिन वाला तार जिसकी रात धरनीधर पर डाका पड़ा था।

नाहरगढ़ मध्यकाल का पहाड़ी क़िला था। बड़ा नहीं था परन्तु ऊँचाई पर होने के कारण आकर्षक और विशाल लगता था।

चौथे पहर का आरम्भ। जाड़े की ऋतु जिसमें अभी तीखापन नहीं आया था। सड़क किनारे के काग के पेड़ सफेद फूलों के लम्बे लम्बे गुच्छों से लद गये थे, इतने की पत्तों की हरियाली उनमें होकर झांक-झांक के झांईंसी मार रही थी। महक इतनी कि चम्पा चमेली उसके सामने सहम जाय। सूर्य की नरम किरणें अपने सोने के डोरों का उन फूलों और पत्तियों पर जालसा बुन रही थी। पहाड़ों की नीची घाटियों के

सम विषम फैलाव में सुनसान समाया था। एक दूसरे से दूर बसे हुये छोटे छोटे गांवों की कल्पना केवल उस धुंये से की जा सकती थी जो कुहरे की तरह उनके ऊपर पहाड़ों की तली में छितराया हुआ दिखता था।

सन्ध्या के पहले ही अञ्जना और देशराज नाहरगढ़ पहुँच गये। नाहरगढ़ की वस्ती बड़ी न थी। टूटे फूटे परकोटे के बाहर खेती थी और भीतर इखरे बिखरे गृह-समूह।

ये दोनों खा पीकर निवृत्त हुये थे कि इनकी और बाघराज की गोष्ठी में कालीसिंह आ गया। अञ्जना ने अपने भीतर भाव को छिपाया। चर्चा उसी के सम्बन्ध में चल रही थी। उन तीनों ने उसका अभिनन्दन किया।

अन्जना ने मुस्कराने का प्रयास करते हुये कहा,—'उस रात जब आये तब साधू की लम्बी दाढ़ी लगाये थे! और कैसा चोगा। मूछों की ऐंठी हुई नोक ऊपर न होती तो मैं तो न पहचान पाती!'

'जब आपके यहां आया, गांव में घर बाहर कोई नहीं मिला। मिलता भी तो पहिचान नहीं सकता था।' कालीसिंह के स्वर में दम्भ था।

'यहां तक कि जगनू ने भी नहीं पहिचान पाया होगा!' बाघराज ने हँसते हुये शाबाशी दी।

'जगनू ने पहिचान लिया था। उसके आँख कान तेज़ हैं, परन्तु उसने इन्हें भांपने नहीं दिया,' देशराज ने बतलाया,—'सो कोई बात नहीं, वह तो अपना ही है।'

'और आज आप दूसरे ही वेश में हैं, परन्तु मूछें वैसी ही।' अन्जना ने कालीसिंह का यश बढ़ाया।

'मैं मूछों को कभी नहीं गिरने देता। वे पुरुष भी क्या जो सफ़ाचट किये रहते हैं!' कालीसिंह ने देशराज के सफ़ाचट चेहरे पर आँख गड़ाई।

सब हँस पड़े।

बाघराज बोला, 'इनका प्रण है कि सिर चाहे जाय, पर मूँछ न जाने पाय।'

कालीसिंह का हाथ अनायास मूछ पर फिरकर जहां का तहां आ गया।

'अब काम की बात', बाघराज ने कहा।

देशराज ने चर्चा आरम्भ की,--'हम दोनों बहुत शीघ्र लखनऊ जा रहे हैं। फिर वहां से उत्तर का भ्रमण।'

'अब की बार कम से कम चार पेटियां आनी चाहिये, तब कहीं हम लोगों के पल्ले मुनाफ़े की अच्छी सी रकम हाथ लगेगी।' कालीसिंह ने बिना किसी रुखाई परन्तु बिना किसी विनय के कहा।

अञ्जना मुस्कराई।

'मैं तो सोलह पेटियां साथ लाना चाहती हूँ, परन्तु करूँ क्या, माल के इकट्ठा करने और लाने में जिन खतरों का सामना करना पड़ता है उन्हें हमीं जानते हैं। बेचने में भी जोखिम है, पर उतनी नहीं।'

कालीसिंह ने अपनी छोटी पैनी आँखें उठाईं, परन्तु अञ्जना की मुस्कान और एकाग्र चितवन के सामने से हटकर देशराज पर आ जमीं।

देशराज ने कहा, 'कुछ पेशगी चाहिये, राजा साहब।'

'आजकल तो बड़ी मुश्किल है',--बाघराज बोला,--'कालीसिंह जी से कुछ लेना पड़ेगा। उस दिन की तरह आज भी ये हमारे पड़ोस में थे, नहीं तो हम कुछ न कर पाते। आपका तार सवेरे ही मिल गया था। इनको ढूंढ़ निकाला।'

अञ्जना की मुस्कान में भिन्नता आई और मात्रा में बढ़ती हुई--

इनके लिये तो सब तरफ़ यह विख्यात है कि इन्हें कोई देवी सिद्ध हैं, चाहे जहां पहुँच जाते हैं और चाहे जो कर डालते हैं।'

'धरनीधर अब तो बहुत दब गया होगा?' बाघराज ने पूछा।

'हाँ काफ़ी'—देशराज ने उत्तर दिया,—'बिना दन्त वाला सांप सा हो गया है; पर अभी एक टहलराम और है।'

'कभी उसको भी देखूंगा,' कालीसिंह ने मूँछ की नोक उमेठी।

अञ्जना अपने विषय पर आई।

'खैर, उसके सम्बन्ध में अभी तो कोई जल्दी नहीं है। आज तो हम लोग कुछ रुपये के लिये आये हैं।'

कालीसिंह ने बाघराज की ओर देखा। वह भीतर गया और वहाँ से कुछ नोट लेकर आया।

बोला, 'आज तो आपके वे एक हज़ार रुपये ही हैं। इन्हीं से काम चलाइये।'

बाघराज ने सौ सौ रुपये के दस नोट देशराज को थमा दिये।

'कुछ और पूँजी हो जाती तो काम चलता,' देशराज ने नोटों की गिनती करते हुये कहा।

बाघराज ने अपनी विवशता प्रकट की।

'गुज़ारा तो सरकार से मिलता है वह ऊपर के खर्चों और परिवार के लोगों पर ही निबट जाता है। बड़ी महारानी साहब, मेरी माता जी के खज़ाने से ही जब तब कुछ काम सध जाता है।'

देशराज ने कालीसिंह से मुस्कराते हुये अनुरोध किया,—'धरनीधर के यहाँ से इनके अलावा जो लाये थे, यदि वह जुड़ जाता, और'—बाघराज से विनय की,—'कुछ श्रीमान दे देते तो गाड़ी का पहिया घूमता रहता।'

'श्रीमान' ने होठ बिदराये और नाहीं का सिर हिला दिया—'अपनी मज़बूरी पहले ही ज़ाहिर कर दी।

कालीसिंह बोला, 'इन दस नोटों के ऊपर जो कुछ हाथ लगा था वह अपने साथियों को बाँट दिया। कोई और मोटा आसामी सुहाना या बाँगुर्दन में?'

देशराज ने बिना किसी उत्साह के उत्तर दिया,—'सुहाना में तो ऐसा कोई नहीं है। हाँ बाँगुर्दन में एक बटोले है जो टहलराम के पड़ोस में रहता है। परन्तु आपके धरनीधर वाले पराक्रम को अभी थोड़े ही दिन हुये हैं, इसलिये उचित नहीं है।'

'कोई जल्दी नहीं।' बाघराज ने सावधान किया।

बाघराज देशराज की उत्साहहीनता के सुनसान में सरसता उत्पन्न करना चाहता था।

अञ्जना को प्रोत्साहन दिया,—'उस रात आपका संगीत प्रदर्शन ग़ज़ब का रहा। बिचारे कालीसिंह वहां आ नहीं सकते थे। होते तो रसगुल्ले बनकर लौटते।'

कालीसिंह होठों की एक कोर को चांप कर दूसरी से जरा सा मुस्कराया। चेहरे पर भयानकता आई और चली गई। बोला तो कुछ नहीं, पर उसके गले तक आ गया था,—मुझे सङ्गीत-वङ्गीत से क्या सरोकार ?

अञ्जना रसमयी हो गई।

बोली, 'मुझे सङ्गीत छुटपन से ही प्रिय है। मां ने सिखलाया और फिर बड़े बड़े उस्तादों से शिक्षा दिलवाई। स्कूल और कालेज से भी कुछ पाया। मुझे स्वयं बहुत अच्छा लगता है और जब दूसरों को रस में भिगो देती हूँ तो बड़ा आनन्द मिलता है।'

फिर उसने मोहक मुस्कान में बिखेरा,—'इस सङ्गीत की सहायता से ही तो इतना काम बना ले जाती हूँ।'

बाघराज देशराज की ओर देखते हुये हंसा; बोला,—'अपनी शिकार को मन्त्रमुग्ध कर डालती हैं सङ्गीत के घूंट पिला पिलाकर।'

देशराज ने भी उमंग के साथ सराहना की,—'वह तो है ही, पर इनका व्यक्तित्व उससे भी बढ़कर है जो किसी जानी मानी परिभाषा के भीतर नहीं आता।'

कालीसिंह की समझ में नहीं आया, इधर उधर देखने लगा।

अञ्जना की मदीली चितवनें और रसभरी मुस्कानें उसकी बात के साथ प्रखर हो उठीं।

'ऐसे ऐसे अभिनय करने पड़ते हैं कि क्या बतलाऊँ। कभी तितली, कभी मोर और कभी कोयल बनना पड़ता है। इन्द्रानी, कभी मेनका, कभी इस अप्सरा, कभी उस अप्सरा की भूमिका में उतरना पड़ता है। मैं खुद अपने अभिनय पर जब कभी चकरा जाती हूँ।'

फिर खिल खिलाकर बोली, 'कभी कभी ऐसी निपट गँवार देहातिन बन जाती हूँ कि ऐसे ऐसे लोकनृत्य दिखलाती हूँ कि अपनी ही हँसी मुश्किल से रोक पाती हूँ। एक बार घसियारी बनी थी। उसी घास में दस सेर माल छिपा लाई थी। उस दिन सोचा था, यदि मैं फिल्मों में काम करती तो बहुत सी तारिकाओं को ठिकाने लगा देती, पर मुझे सिनेमा की क़ैद का जीवन पसन्द नहीं। मैं तो भ्रमण और पराक्रम का जीवन पसन्द करती हूँ।'

बाघराज ने कहा, 'हीरों जवाहिरों को घास पात से कैसे ढका जा सकता है! आप तो कमाल करती हैं।'

अञ्जना के भीतर कल्पना कोंधी,—बाघराज पर विजय पाने की आधी मंजिल तो पूरी कर ली, किसी दिन पराकाष्ठा पर भी पहुँचूंगी; और तब—तब इनके गड़े हुये हीरा जवाहिर बाहर निकलकर अञ्चल में आ जायेंगे।

कालीसिंह केवल इतना समझा—यह किसी वेश्या की पुत्री है जो किसी तरह पढ़-लिख जाने पर भी वेश्या ही है; पर है काम की।

बाघराज को लगा कि इस समय भी कोई अभिनय ही कर रही है, बहुत करके मुझे उल्लू बनाने के लिये।

देशराज के मन में आया,—इस बार नहीं तो अगली बार राजा साहब से बहुत सारा लेंगे जिसके द्वारा सब मिलकर कोई खासा रोज़गार उजागर होकर चलायेंगे, फिर न तो अञ्जना को उन अभिनयों

की ज़रूरत पड़ेगी और न हम दोनों को संकटों में प्राण झोंकने की, और सारी दुनियां हमारे हाथ जोड़े फिरेगी !'

थोड़ी देर बातचीत करने के बाद अञ्जना और देशराज जा सोये। बाघराज और कालीसिंह बैठे रहे।

कालीसिंह ने कहा, 'बड़ी वाहियात औरत है।'

बाघराज बोला, 'वाहियात नहीं, भयंकर है।'

'चील है। इसके पंजों और नाखूनों से बचे रहना।'

'मैं मूर्ख नहीं हूँ, भाई। जब राज था काफ़ी ऐश आराम कर लिये। यों ही थोड़े हिल जाऊँगा।'

'इनको कोई लम्बी पेशगी मत देना, महाराज।'

'समझ बूझकर ही काम कर रहा हूँ।'

कालीसिंह प्रातःकाल के बहुत पहले एक चोर दरवाज़े से क़िले बाहर निकल गया।

अञ्जना और देशराज दिन चढ़े चाय पानी के उपरान्त कुछ घंटे शिकार में लीन रहे, क्योंकि वे उसकी भी ओट लिया करते थे, फिर सन्ध्या के पहले सुहाना लौट पड़े। दो तीन दिन पीछे लखनऊ चले गये।

[२३]

खेतों के कूँड़ों में से गेहूँ, चना और अलसी के नन्हें नन्हें पौधे फूट कर ऊपर आ गये और सांझ सवेरे की रश्मियों में मिट्टी के ढेलों को ढकते हुये दिखलाई पड़ने लगे। पवन चलने पर जब धीरे-धीरे हिलते तो लगता जैसे पलने में झूल रहे हैं।

सरकारी फ़ार्म के भी एक बड़े से रक़बे में बीज डाल दिया गया था। जम निकला परन्तु अभी ऊपर नहीं आ पाया था। बोहनी कुछ देर में हो सकी थी।

देशराज के व्यक्तिगत खेतों में पौधों की हरियाली की लहर कुछ अधिक थी, क्योंकि समय पर जुताइयां हुई थीं और बोहनी भी। चौकोर बन्धी पड़ जाने से पौधे ऐसे जान पड़ते थे जैसे एक बड़े चौखटे में हरी मखमल सजा दी गई हो।

इन पौधों के बीच बीच में बथुआ, कलैना घास-फूस भी जम आया था। छोटी खेती वाले इस घास-फूस की निदाई करते थे, बड़ी खेती वालों को गुन्जाइश नहीं थी, इसलिये चिन्ता भी न थी।

बटोले, छदामी, दमरू, टहल इत्यादि के खेत बड़े बड़े न थे। टहल को एक चैन था—उसके सब खेत एक चक में थे। बटोले की केवल वह भूमि जो उसे अदालत से मिली थी, बड़े रक़बे वाली थी। बाकी दूरदूर बिखरे हुये छोटे छोटे खेतों में बँटी हुई थी यही हाल दमरू का था और सुहाना में छदामी का। बहुत से और थे जो इसी परस्थिति में थे।

बटोले ने वह लम्बी चौड़ी पड़ती बाँगुर्दन सहकारी समिति में डाल दी। थोड़े से अच्छे खेत भी सौंप दिये, पर ज्यादा बढ़िया व्यक्तिगत खेती के लिये सेंत रक्खे। उस पड़ती पर ट्रैक्टर चलने लगा। बटोले कभी कभी देख आता था, अधिकांश समय अपने निजी खेतों के घास-फूस की निदाई को देता था। दमरू ने भी यही किया। अन्तर यह रहा कि उसे वह पड़ती अभी अदालत से नहीं मिली थी जिसके सम्बन्ध में झगड़ा

बिक्रम से बाँगुर्दन गांव के रक़बे का और बनमाली से सुहाने वाले का चल रहा था। परन्तु लगा उसने भी दी थी यह पड़ती बाँगुर्दन समिति को; ट्रैक्टर अलबत्ता नहीं चला था उस पर--और जब तक झगड़ा अदालत से तै न हो जाय, चल भी नहीं सकता था। मंटू के पास गांठ की कोई ज़िमीन थी नहीं, बटोले की सोंझ करता था। टहलने अपनी सारी ज़िमीन सहकारी समिति को सोंप दी थी और जी तोड़ कर काम कर रहा था। उधर सुहाना में यही लगन डाक्टर सनेहीलाल को थी। यद्यपि भूमि उसके पास एक इंच भी न थी, तो भी अपने किसी विश्वास और सिद्धांत की प्रेरणा से वह जितना समय देता था उसमें मन लगा कर काम करता था। उसकी आस्था कुटीर उद्योग की स्थापना और उन्नति में थी और वह सहकारी कृषि समिति को उसका साधन मानता था।'

× × ×

बटोले ने मंटू के साथ अपने एक खेत में निदाई पूरी की और दूरवर्ती दूसरे खेत पर पहुँचा। शरद का अवसान था, फिर भी तीसरे पहर की धूप इतनी कड़ी थी कि पसीने में कुर्ता तर हो गया और साफ़े के नीचे से पसीना माथे पर लीकें बनाता हुआ नाक और आँखों पर आ गया। इस खेत को निबटाते निबटाते सूर्यास्त होने को हुआ। तीसरे खेत पर न पहुँच पाया जो वहाँ से काफ़ी दूर था। दूसरे दिन, टहल तो सहकारी कृषि के खेतों की देख-भाल करता हुआ थोड़ी देर के लिये ट्रैक्टर के पास गया फिर अपने स्कूल; पर बटोले और दमरू अपनी अपनी निजी खेती पर रहे। उधर सुहाना में सनेहीलाल सहकारी समिति का जितना काम करा देता उतना तो हो जाता, बाक़ी की वही गति। छदामी अपनी निजी खेती की धुन में; बनमाली में हांका-हूँकी तो बहुत, पर काम नहीं के बराबर था। ध्यान अपनी खेती पर अधिक केन्द्रित। देशराज को सहकारी कृषि की देखभाल से कोई वास्ता न था

और चाह अवश्य निजी खेती पर अधिक थी, जिसको उसका कारिन्दा किराये के मज़दूरों से पूरी किया करता था।

लखनऊ जाने के समय वह कारिन्दे से कह गया था—निदाई का काम डँट कर करवाना मज़दूरों से; बहुत बदमाश हो गये हैं ये सबके सब।

कारिन्दे को इस हिदायत की ज़रूरत नहीं थी, वह कारिन्दागिरी का मर्मज्ञ था।

एक मज़दूर का बुख़ार तो चला गया था—यानी जाड़ा देकर नहीं आता था, थोड़ी सी झुरझुरी बराबर रहती थी। तिल्ली के कारण पेट बढ़ गया था। खांसी भी आती थी, जो तमाखू पीने से कम नहीं होती थी।

इसे कारिन्दे ने कई बार सावधान किया,—'कामचोरी कर रहे हो, पैसे कटेंगे।'

एक को काम करते करते घाम में भी ठंड लग आई! और वह एक पेड़ की छाया में, फटे साफे की लपेट में गठड़ी सी बनकर, घड़ी भर के लिये जा लेटा।

'दूसरों को देखो, पसीना बहा रहे हैं, पानी पीने तक के लिये दम नहीं लेते! और एक ये हैं जो बहाना बना कर उधर चल दिये!! शाम को मज़दूरी बांटने के समय देखूंगा।' कारिन्दे ने चेतावनी दी।

स्त्रियां बच्चों को दूध पिलाने के लिये रुकीं तो उनका नाम एक काग़ज़ पर टीप लिया।

और जो मज़दूर उसकी चिरौरी करते थे, ढीले हाथों कभी खुरपी इधर कभी इधर और मौज के साथ चने की भाजी भी नोच नोचकर अपने कपड़े में बाँधते जाते थे, उनकी तरफ़ कारिन्दा पीठ फेरे था।

सन्ध्या समय जब मज़दूरी बाँटी गई, तब कारिन्दे ने कइयों की मज़दूरी काट ली; खर्च बही में पूरी दर्ज कर दी, बाकी अपनी जेब में। मज़दूर भी ऐसी मोटी खाल के कि न तो मन लगाकर काम करें और

न दूसरी जगह काम करने जायें—शायद दूर दूर तक काम दुष्प्राप्य भी था, और देशराज के यहाँ मजूरी की दर एक दो आना ज़्यादा थी।

× × ×

हरको सहकारी समिति के एक खेत में निदाई कर रही थी। बीच बीच में काम रोक कर एक मजूरनी से बातें भी हँस हँसकर करती जाती थी। खुरपी लेकर घाटीवाली भी थोड़ी देर के लिये आ गई और काम पर चिपट गई।

एक दो मजदूर मन लगा कर काम कर रहे थे जैसे हरको; परन्तु दूसरों को ढीला और असावधान देखकर वह भी उसी तरह काम करने लगी। साथ साथ बातें भी।

'बातें कर करके तुम तो अन्न के पौधों को भी गोड़े डालती हो, हरको!' घाटीवाली ने टोका।

'तो जब पौधे बड़े हो जायें तब निदाई करवाओ।'

'बड़े होने पर क्या निदाई होगी?'

'तो फिर होगी तो ऐसे ही होगी।'

'क्या मुफ्त में करती हो? मजदूरी नहीं लेतीं?'

'बड़ी मजदूरी मिलती है! वाह! वाह!! मुझ ही से कहती हो दूसरों से कुछ नहीं कहतीं!'

घाटीवाली को ताव आ गया। उसी समय टहल आ पहुँचा। यह सब इसी के सिखापन का फल है, घाटीवाली के मन में उठा। उसने टहल से शिकायत की। टहल ने हरको को ठीक तरह काम करने के लिये कहा।

वह बोली, 'मैं कल से काम पर नहीं आऊँगी। जो अच्छा काम करे उसे भी वही मजूरी और मरियल सड़ियल करे उसे भी वही।'

टहल के मुंह से निकला, 'क्या मुश्किल है!' और सोचा, इन सब को मजदूरी तो पूरी दी जाय, पर काम कराने में रियायत न बर्ती जाय बल्कि जबरदस्ती भी काम कराया जावे!

मंटू को लिये हुये बटोले निजी खेती वाले उस टुकड़े की ओर जाते हुये वहां से निकला जिस पर पिछले दिन नहीं पहुँच पाया था।

टहल ने बटोले से कहा, 'आज के दिन यहीं काम कर लो।'

बटोले मिठास के साथ बोला, 'भैया, अपना वह खेत घासफूस के मारे हा हा खाने लगा होगा। यहां तो काम हो ही रहा है। वहाँ का चुका दिया तो सब गुड़ गोबर हो जायगा।'

'तुम तो समिति के प्रधान हो। दूसरों के लिये नमूना बनो। हमारी माँ तक यहाँ काम कर रही हैं।'

'सोई तो भैया टहल, सोई तो। उनकी और तुम्हारी क्या कहनी। जैसे ही हम उन खेतों से निबटे, फिर बस यहीं आ चिपटेंगे।'

टहल ने मंटू पर आंख पसारी। बटोले से अधिया-बटिया में जो मिलेगा वह समिति की मजदूरी से कहीं ज्यादा बैठेगा, मंटू का विश्वास था।

बोला, 'बटोले दादा ठीक तो कहते हैं, भैया। वहाँ का काम पूरा करके फिर इसी को तो देखना है। और फिर हरको तो है यहाँ। एक ही घर के दो दो का क्या करोगे, भैया ?

वे दोनों चले गये। काम कैसे चलेगा, टहल सोच रहा था। उसको एक देश की याद आई जहां निकम्मों को कोड़े लगाकर कार्यारूढ़ किया जाता है; दूसरे देश की—जहां सामूहिक काम न करने वाले आलसियों का बहिष्कार किया जाता है, भोजन दुर्लभ कर दिया जाता है, निन्दा की जाती है और मुंह नहीं देखा जाता। और दूसरे देशों में क्या होता है, आगे कल्पना न जा सकी। यहाँ किस किस का मुंह न देखें ? आलसियों और निकम्मों की तो पल्टनें की पल्टनें बिना किसी क़वायद परेड के ही आँखों में समाई रहती हैं ! टहल खीज गया।

× × ×

छदामी के पास खेत तो बहुत थे, पर उतनी खेती नहीं थी जितने खाने वाले। जात बिरादरी के पञ्चायती झगड़े सिर पर अलग।

अच्छे अच्छे खेत एक दूसरे से अलग, दूर दूर। घर का कोई व्यक्ति इस खेत पर, तो कोई उस पर। थोड़े से, सहकारी खेतों में मजदूरी पर। जब निगरानी सनेही करता था उसकी दुलार-पुचकार में भी करारी त्योरियों को देखकर हाथ पैर चलाने पड़ते थे। परन्तु जब बनमाली की पाली आती थी, तब ज़रा मौज पट जाती थी, क्योंकि वह प्रायः छाया में बैठकर अखबार, कहानियाँ, कवितायें पढ़ने में ज्यादा लग जाता था।

उस दिन छदामी की घरवाली— बुढ़िया और उसकी दस बारह साल की लड़की सहकारी खेती पर काम करने के लिये आई थीं।

बुढ़िया अपने निकट काम करने वाली स्त्री से बोली, 'कलेवा में एक रोटी में खा आई और आधी यह छोकरी। हाथ चलें तो कैसे चलें।'

'तुम्हें रोटी तो मिल गई। मैं तो महुये ही भून खाकर आई हूँ। उस पर भी कमर में दर्द।'

दोनों बैठकर गांव की किसी खटपट पर बात करने लगीं। बनमाली का ध्यान उचटा।

वहीं से बैठा बैठा बोला, 'बाई काम किये आओ। बातें तो बहुत कर लीं।'

बुढ़िया ने गला फाड़ा,—'हो कैसे! जैसा सब कर रहे हैं वैसा ही तो कर रही हैं, हम।'

'बाई, अपना पञ्चायती काम है, यह।'

'तो पञ्चायती काम में से क्या हाथी घोड़े उपजेंगे?'

× × ×

बिक्रम ने कुछ बिना झगड़े का और अधिक रक़बा विवाद-ग्रस्त लगाया था। घर वाली खेती की देख भाल कर लेती थी, वह स्वयं, सरकारी जंगल में अपने ढोर, आंख बचाकर ले जाता था। पैरों का मजबूत था। कभी इधर, कभी उधर निकल जाता था और ढोरों को

पेट भर चराकर लौटता था। उसे सहकारी कृषि की परवाह नहीं थी। जानता था, अन्त में कुछ तो मिल ही जायगा।

× × ×

काम से जब लौटकर टहल स्कूल गया तो खेतों पर से कोई उमङ्ग बाँध कर न ला सका—थका सा आया। बटोले जब आया तो मुंह उतरा हुआ, मंटू का मुर्झाया हुआ।

बनमाली अखबार पढ़ते पढ़ते राजनीतिक महत्वाकांक्षा में डूबता उतराता, छदामी पैर घसीटता हुआ, दमरू के गालों की झुर्रियां कुछ और गहरीं, बिक्रम जब लौटा तो पैरों पर धूल, पर चेहरे पर मौज। मजदूर कुड़कुड़ाते आये।

सनेही सोचता था, परिवर्तन का युग है: जैसे अस्पताल में मरीज, धीरे धीरे जब चङ्गे हो जाने पर अस्पताल छोड़ेंगे, तब कुछ और दिखलाई पड़ेंगे—अभी तो रोग-ग्रस्त हैं, पर आ गये ह अस्पताल में।

[२४]

खेतों पर काम नहीं रहा तो उस दिन हरको गाय के लिये हरी घास लाने थोड़ी दूर नाले के किनारे गई। मंटू की गाय दूध देती तो एक जून पाव भर ही थी, लेकिन थी तो गाय। एक बार में कितनी गायें पाव पाव भर दूध देती थीं? जिस दिन उस गाय को हरी दूबा मिल जाती थी उस दिन पाव भर में कसर नहीं लगाती थी, वैसे आध पाव, हद तीन छटाक। और बुड्ढी नहीं थी। दूध न तो मंटू पीता था और न उसके दो छोटे छोटे बच्चे। उसकी पत्नी और बहिन को मिल ही कहां से सकता था? पांचवें छठवें दिन मट्ठा भांया बिलोया जाता था, तब एक दिन ज्वार की महेरी और दूसरे दिन मट्ठे में पीसकर रोटी खाने को मिल जाती थी--वे दो दिन बड़े शुभ रहते थे।

हरको दूबा का गट्ठा सिर पर रक्खे भूख की गरमी को महेरी द्वारा शान्त करने की लालसा में तेज़ी के साथ बांगुर्दन की ओर बढ़ी चली आ रही थी। आगे आगे ढोर चले जा रहे थे। जिस गली से गाँव में प्रवेश करना था उसमें कुछ ढोर पहुँच गये थे। धूल बहुत उठ रही थी। ढोरों में से निकल जाना बहुत कठिन, क्योंकि हरी दूबा पर मुंह मारने के लिये न जाने कितने चिपट पड़ते। हरको ने एक हाथ से घास का गट्ठा सँभाला और दूसरा नाक पर रख लिया।

पीछे से किसी ने झटका देकर घास का गट्ठा पटक दिया। हरको समझी किसी गाय या बैल का काम है। कमर के फेंटे में खुर्सी हुई खुरपी निकाल कर मारने के लिये मुड़ी थी कि उसका पति जोधा अपने एक नातेदार को लिये ऊपर झपटते हुये दिखलाई पड़ा। खुरपी हाथ से छूट गई और वह सन्न से रह गई। वे दोनों लाठियां लिये हुये थे। जोधा दुबला पीला युवक था। हरको उसके मुकाबिले बहुत तगड़ी थी, परन्तु एक तो जोधा पति दूसरे उसके साथ एक लठैत। जोधा ने उसका हाथ पकड़ा और घसीट कर वहाँ से ले जाना चाहा। हरको बैठ गई।

रोने चिल्लाने लगी। जोधा ने दो चार हाथ जमाये। गाँव से कुछ लोग आ गये। उनको मालूम हो गया कि जोधा हरको का पति है, अपने घर लिवा ले जाना चाहता है।

एक ने सलाह दी,—'अपनी ससुराल चले जाओ। गली में ऐसा कांड रचना अच्छा नहीं मालूम होता।'

जोधा ने अपना अधिकार प्रकट किया,—'घर से भाग भाग आती है चुड़ैल। ससुराल नहीं जाऊँगा, यहीं से झोंटा पकड़े घसीट ले जाऊँगा।'

'ले तो जाओगे!' हरको रोते रोते चिल्लाई।

गांव वालों ने समझाया कि हरको के भाई मंटू से बात करलो, वह बिदा कर देगा, उस तरह की मारपीट गाँव वालों को नहीं भायगी।

जोधा चीखा,—'मेरी ब्याहता है, गाँव वालों की नहीं है और हरको पर उसने फिर सपाटे लगाये।

'डायन! उठ नहीं तो अब लाठी से हड्डी तोड़ूंगा।'

कुछ गाँव वाले वहीं खड़े खड़े ज़बानी बीच-बिचाव करते रहे, एक गांव की ओर दौड़ा गया। हरको को पति और उसका साथी उठाकर नहीं ले जा सकते थे। मारपीट तो बन्द करदी, परन्तु उसे घसीटने लगे। हरको भूमि को ऐसे पकड़ने का प्रयास कर रही थी जैसे वहाँ खूँटियाँ गड़ी हों।

थोड़ी देर में टहल को लिये हुये मंटू आ गया। मंटू अपने बहिनोई और उस नातेदार पर क्रोध में बावला था। टहल की दृष्टि में व्यक्ति नहीं थे, वह पुरुषों के एक सारे वर्ग विशेष पर क्षुब्ध था। इन लोगों के आते ही हरको की घसीट तो बन्द हो गई, पर मंटू और उसके उन नातेदारों के बीच गालियों की आंधी सी आ गई। मां, बहिन, पिता, पितामह से लेकर आगे की कई पीढ़ियों तक को गालियों की उस आंधी में समेटा गया। टहल का क्षोभ लाजों डूबने लगा। कभी इसको और कभी उनको चिल्ला चिल्ला कर मना करने लगा। गांव के बहुत से

लोग आ गये। उनमें बटोले भी था। उसकी देह, आँखें और लाठी की लम्बाई मुटाई को देख कर,— उनका साथ उसकी स्वरावलि भी दे रही थी,—उस भीड़ में वे बाहर वाले दोनों धीमें और ढीले पड़ गये।

हरको घास के गठ्ठे समेत न जाने कब की खिसक गई थी।

अन्त में वे सब टहल के घर गये। टहल ने हरको की छोड़-छुट्टी की बात उठाई, पर जम न सकी। बहुमत ने तै किया कि हरको एक बार और ससुराल जावे, यदि उसके साथ फिर बुरा बर्ताव किया तो देखा जायगा। 'जात के पञ्च मर तो गये नहीं हैं।'

हरको की बिदा करदी गई। मंटू मुंह-फट था और पैसे कपड़े से उतना ही तङ्ग। एक धोती पहने हरको रोती बिलखती घर से निकली। वह लौट-लौट कर टहलराम के घरकी ओर देख रही थी। घाटीवाली द्वार पर खड़ी थी। देखकर चुपचाप हिलक उठी। उसने अञ्चल के छोर से अपनी आँखें पोंछी। मन में कहा, 'भगवान लड़की दें तो ग़रीबी न दें।' फिर उसने एक निश्चय किया,—'इससे कभी कड़ी बात नहीं कहूँगी। बुरे बर्ताव के कारण अबके भागकर आई तो इसकी पीठ पर हाथ धरूँगी।' मंटू घर भीतर अपनी कड़ी उँगलियों आँसू हटा रहा था। कभी एक गीत सुना था। इसकी एक कड़ी कान में झांई मार गई—'तिरिया जनम जिन देय बिधाता—'

हरको अपने पति और नातेदार के साथ चली गई। जब दूर निकल गई रोना तो बन्द हो गया, पर उसके मन में बिरादरी की पञ्चायत के लिये जो गालियां पर गालियां उमड़ी उनका सार यह था—

'सत्यानास जाय इन पञ्चों का!' रांड़ें हो जायँ इनकी औरतें!!

ये गालियां उन पञ्चों तक पहुँचती भी तो वे करते क्या? ससुराल पहुँचने के दो चार दिन पीछे ही उसकी वही मारा-कुट्टी फिर हो उठी।

[२५]

सुहाना सहकारी समिति में साठ सदस्य हो गये। आधे से कुछ ही कम ऐसे जो भूमि-हीन मज़दूर थे। हिस्सा बिना खरीदे समिति का सदस्य कोई भी नहीं हो सकता था। हिस्से के रुपये की पहली किश्त थी छोटीसी ही, पर मज़दूर मैम्बर वह रक़म भी नहीं दे सकते थे। रोज़ खोदना, रोज़ पीना। हिस्से की क़िस्त का रुपया कहाँ से लावें? मजदूरी में से कट कट कर उनकी क़िस्त का रुपया समिति में जमा होने लगा। उन्हें बहुत अखरा। परन्तु राघवन की उमङ्ग और दृढ़ता के सामने मज़दूरों के क्षोभ को दब जाना पड़ा। समिति को अपने सदस्यों की क़िस्त के रुपये से ज़िला बैंक के हिस्से खरीदने थे; अनिवार्य था। बैंक लेता खरीदे हुये हिस्से की पहली छोटी ही क़िस्त, पर बिना इस वसूली के समिति को, ऋण पर रुपया नहीं दे सकता था। लेकिन देता था हिस्से की रकम का अठगुना तक जो रुपया बैंक से समिति के लिये आया उसमें से कुछ सदस्यों को बीज और बैल खरीदने के लिये दिया गया,—कुछ ब्याह शादी के लिये भी, क्योंकि यह काम बीज बैल से भी अधिक महत्व का था!—कुछ रुपया सहकारी समिति के एक छोटे से भवन निर्माण के लिये राघवन ने रखवा दिया। राघवन का उत्साह उसके शारीरिक बल और मानसिक वर्चस्व से ही सीमित था और किसी से नहीं। उसने अपने जीवन का ध्येय, थोड़े से थोड़े समय के भीतर, अपने कार्य क्षेत्र में, अधिक से अधिक सहकारी कामों की स्थापना का बना लिया था। उसकी लगन को कोई सनक, कोई ख़ब्त और कोई पागलपन तक कहते थे। अपने नीचे के कर्मचारियों के लिये तो वह कभी कभी यमतुल्य हो जाता था और वे ही अधिकतर उसकी इस कीर्ति के कारण थे!

सहकारी समिति का भवन बनने लगा। बन जाने पर इसमें समिति की बैठकें होंगी, एक कोने में छोटा सा वाचनालय होगा जिसमें कुछ

पुस्तकें और समाचार पत्र, और सप्ताह में एक सांझ तुलसीदास रामायण का गा बजाकर पारायण, बाहर से सुन्दर दिखलाई पड़ने वाला भवन और भीतर से सुनाई पड़नेवाला सदस्यों का कलरव। क्या बढ़िया प्रतीक रहेगा सहकारी कर्मठता का! राघवन कल्पना करता था।

उसका ध्यान सहकारी कृषि और सहकारी कुटीर उद्योगों पर केन्द्रित था। चाहता था गांव गांव इस कार्य को फैला दूं परन्तु अवस्था अभी परीक्षण की थी। अन्य गांवों में सहकारी ऋण समितियाँ तो थीं, लेकिन वे कृषि-समितियां नहीं थीं। वह इन सबों को कृषि समिति में परिवर्तित करने का महत्वाकांक्षी था। किन्तु ज़िला बैंक की समिति पूंजी और सरकार की सावधानता पर आधारित नीति उसकी बेदम दौड़ को रोक-थाम रही थी। उसे अपने मनमें यही शिकायत थी।

बीज बोने के डेढ़ दो महीने पीछे खेतों की मिट्टी हरियाली से ढक गई। जिन खेतों की निदाई गुड़ाई हुई थी, उनमें अधिक चमक दमक थी। जिन खेतों पर बँधियां पड़ी थीं उनमें निदाई न होने के कारण फ़सलों के साथ घास-फूस भी बढ़ गया था, फिर भी फ़सलें ऊँची थी और घमण्ड के साथ लहरा उठी थी।

बोहनी और निकाई निदाई से निबटे तो अब फ़सल की रखवाली का काम आ खड़ा हुआ। दिन भर निठल्ला बैठता कोई न था। कोई बिरवाई के लिये झाड़-झङ्कड़ काट काट कर इकट्ठा कर रहा था, कोई पलाश की जड़ें खोद कर कूटता और रस्सी भांजता, कोई मज़दूरी करता तो कोई पुराने ताप तिल्ली में कांखते कांखते समय काटता। फिर रात में खेतों की रखवाली। जिनके पास ओढ़ने बिछौने के लिये कपड़े थे वे भी नींद न आने देने के लिये एक मोटी चादर ही ले जाते थे। ठंड से बचने के लिये अलाव की आग, अलाव के पास चिलम और धोती के छोर में तमाखू, जागरण में सहायता देने के लिये। इस पर भी जङ्गली जानवर जिनसे पड़ोस के जङ्गल पहाड़ भरे मालूम पड़ते थे

फ़सल चर जावें तो भाग्य और भगवान के सिवाय दोष देवें तो किसको दें ?

बनमाली को सेवा का काम दिखलाना था। समिति के कुछ खेतों के बीच एक मड़वा डाला जिसके ऊपरी भाग में चारपाई बँधवा ली। लालटैन लेकर आया, मड़वे की एक खूँटी से चारपाई के ऊपर बाँधी और लम्बी तानकर शृङ्गार रस का कोई उपन्यास पढ़ने लगा। जितना अश्लील हो उतना ही मनोरञ्जक। भीतर की वासनाओं को तृप्त करने की सामग्री उसमें हुई तो जागते रहे और बीच बीच में बीड़ी पीते हुये 'हाहू' कर दी। पढ़ने में मन न लगा तो नींद तो कहीं गई नहीं। सोगये। दूर के खेत वाले तो हल्ला-गुल्ला करते ही थे, यहाँ तक जंङ्गली जानवर आयेंगे कैसे ?

जब वह लालटैन के उजियाले में पढ़ रहा था, दूर के खेत का एक रखवाला वहां होकर निकला—

'लेटे लेटे तो सो जाओगे भैया !' उसने रामराम करके कहा।

'पढ़ता रहता हूँ, सो कैसे जाऊँगा ? और सो भी गया तो लालटैन की रोशनी को देखकर जानवर दूर से ही भाग जायेंगे।' बनमाली ने लालटैन के उपयोग का लाभ बतलाया।

सरकारी फ़ार्म पर रखवाली के लिये दो बन्दूक़ वाले रात में रहते थे। छपरी और अलाव की आग ठंड से बचने के लिये थी ही, ठाव पर आते ही बन्दूकों के दो दो फ़ायर किये फिर क्या मजाल कि जानवर फ़सल को झांक भी जायँ। कुछ दिन तो इस उपचार ने काम किया, परन्तु इन रखवालों की अपेक्षा जङ्गली जानवर ज़्यादा चालाक निकले। उन्होंने इसको रोज़ का एक बँधा हुआ तमाशा समझा और कभी इधर से, कभी उधर से फ़सल चौपट करना आरम्भ कर दिया। बनमाली की लालटैन भी कुछ न कर सकी। दिन में रखवाली न तो कोई कर सकता था और न उसकी ज़रूरत समझी जाती थी। इसलिये दूर के

खेतों में, विशेषकर समिति के इखरों-बिखरों में और सरकारी फ़ार्म में, गांव के ढोर घुस पड़ते और एक न एक कोने को साफ कर देते ! सरकारी फ़ार्म के रखवालों से जवाब मांगा गया तो उन्होंने गांव के ढोरों का एक पूरा बगर पकड़ कर अफ़सर के सामने पेश कर दिया।

'ये चरते हैं फ़सल दिन दहाड़े। रात में हमारी रखवाली के कारण जंङ्गली जानवर नहीं आ पाते और न नुक़सान कर पाते हैं।' रखवालों ने सफ़ाई दी।

ढोर वालों ने प्रतिवाद किया, 'थराई विनती की। सरकारी फ़सल को हानि पहुँची थी और उसकी कुछ ज़िम्मेदारी गांव के थोड़े से ढोरों की थी भी। उनकी एक न चली। कानीहौद (काईन हाउस – पशु बन्दीगृह) में बन्द कर दिये गये और ढोर वालों को ढेर भर रुपये जुर्माने में देने पड़े।

परन्तु समिति के रखवालों से कोई जवाब नहीं मांगा जा सका। उन्होंने पेशबन्दी कर ली थी—

'गांव के ढोर नहीं जाते वहां चरने। जंगली जानवर फ़सल चर जाते हैं। रातभर जागते जागते आँखें फोड़ते हैं, इस पर भी सुअर, चीतल, सांभर, नीलगाय और न जानें कौन कौन जानवर बेधड़क चुपचाप आकर चर जाते हैं! बन्दूक पास हो तो हम उन्हें मार गिरावें।'

गाँवों में बन्दूकों के लाइसैन्स बहुत थोड़े थे। जो थे वे अधिकांश देशराज के। देशराज की खेती की रखवाली उसके महींदार करते थे। चूकें तो वेतन कटे और ऊपर से चमड़ी की ख़ैरियत नहीं। वहां बन्दूकें भी रहती थीं। फ़सल को जङ्गली या गांवटी जानवर तो नहीं चर पाते थे, पर इतने नौकरों का वेतन फ़सल पर चढ़ता था कि पैदावार पर कसर बैठ जाती थी।

सरकारी जङ्गल का हांका किया नहीं जा सकता था क्योंकि वह 'रक्षित वन' था। गांव के सब लोग सुअर को छोड़कर बाकी सब जान-

वरों की शिकार के विरुद्ध थे, इसलिये भी साधारण जन के मन में हांके के लिये उत्साह न था। और वे अपनी अरुचि की पुष्टि यह सोचकर कर लेते थे--कभी इसके और कभी उसके ढोर ही खेती चरते रहते हैं, जङ्गली जानवर तो इस ओर आते ही नहीं !

× × ×

बटोले दिन भर अपने करघे पर लगा रहा। चौखाने की तौलियां और बचकानी धोतियाँ तैयार करनी थीं। कई दिन से उसकी घरवाली और वह तन्मयता के साथ यही काम कर रहे थे। एक अठवारे के बाद ही सुहाना में एक बड़ा सा मेला लगना था। तौलियां और धोलियां बिक जायेंगी तो कुछ पैसे पल्ले पड़ जायेंगे, जिनसे काम चलेगा। समिति के खेतों की रखवाली वह कभी कभी ही करता था, पर अपनी निजी खेती के लिये तो उसके सिवाय और कोई था नहीं। मजदूर मँहगे पड़ते। फिर उनका भरोसा ही कितना ? इसलिये वह अपने खेतों पर, भले ही देर में पहुँच पाये, पर जाता अवश्य था। जब कभी रात में दूर दूर बिखरे हुये खेतों का गश्त भी करना पड़ता था। काफी कष्ट होता था, पर वह थी अपनी खेती; उसके लिये सभी प्रकार का दुःख झेलना पड़ेगा।

उसका एक खेत बिक्रम के एक खेत से लगा हुआ था। बिक्रम तत्पर पशुपालक था--वह रात में कभी कभी पसर भी चराता था--यानी निकटवर्ती सरकारी जङ्गल में चराते चराते सुहाना और बांगुर्दन के लोगों के खेत भी चरा लेता था ! मुस्तैद इतना कि जिस रात पसर चराता था, इतनी होशियारी बर्तता था कि रखवाले सिर खुजलाते रह रह जाते थे। और उसके जानवर भी कितने चालाक ! जैसे उन्होंने कहीं शिक्षा पाई हो !! जैसे ही कोई रखवाला उन्हें पहिचानने ताड़ने या घेरने पकड़ने को दौड़ा कि वे नौ दो ग्यारह हो गये !!! और बिक्रम तो कहीं ऐसा छिपकर बैठ जाता था कि दिखलाई ही नहीं पड़ सकता था। उसका पौ बारह। मवेशी तगड़े और स्वयं आनन्द मग्न। बिक्रम चुपचाप अपने ढोर लेकर आया। बटोले के खेत में आहट ली।

किसी को भी न पाकर खेत में ढोर छोड़कर पसर चराने लगा। अपने खेत पर मड़वा था ही, वहां जा बैठा।

ठंडी हवा चल रही थी। अँधेरी रात। झींगुरों की झंकारों में होकर दूर बजने वाली नगड़िया और फाग का गीत आ रहा था। अन्न के लहराते हुये पौधे जैसे पशुओं के मुंह से बचना चाहते हों, परन्तु वे चरमरा कर उनके पेट में चले जा रहे थे और बहुत से रौंदे जा रहे थे। बिक्रम को झपकी आ गई और वह सो गया। ढोर बटोले की खेती चरते हुये उसी के खेत में धँस आये और मौज में चरने लगे। उसी समय गश्त लगाता हुआ बटोले आ पहुँचा। अपने खेत के एक भाग की दुर्गति देखी। गुस्से के मारे कांप गया। पास ही बिक्रम के खेत में ढोर वही सब किये जा रहे थे जो उन्होंने बटोले के खेत में किया था। अपने खेत की दुर्गति देखकर क्रुद्ध हो गया था, अब जी कुछ हलका हुआ। समझने में देर नहीं लगी कि जिन ढोरों ने उसके खेत का चौपट किया है वे ही बिक्रम के खेत में कहर बरसा रहे हैं, और--बहुत करके उसी के होंगे। देखा तो मड़वे पर बिक्रम कम्बल ओढे सो रहा है। निश्चय ही इसी के जानवर हैं। मेरे खेत में पसर चराने के लिये ढोर ले आया और चराता रहा! अब सो गया तो उल्टी आतें गले पड़ गईं।

बटोले चिल्लाया,--'बिकरमा, ओरे बिकरमा!'

बिक्रम हड़बड़ा कर उठ बैठा। लाठी टटोली। बग़ल में ही थी, संभाली और मड़वे से नीचे उतर पड़ा।

'कौन?'

'मेरा खेत चरवा लिया अब सो रहा है!'

'कौन कहता है?'

'तुम्हारे ढोर, जो अब तुम्हारे खेत को मैदान कर रहे हैं।'

'तुम्हारे होंगे। तुम पसर चरा रहे होगे मेरे खेत में। देख लिया कि मैं यहां पड़ा हूँ तो यह बदमाशी रच डाली! देखूं कहाँ हैं वे ढोर।'

बिक्रम खिसका। बटोले उसके पीछे पड़ा। बिक्रम के ढोर अपने मालिक के इशारे को पहिचानते थे। बिक्रम ने एक विशेष ललकार दी। ढोरों ने सिर उठाकर फूंसा, कान खड़े किये और भर्राटा करते हुये भाग गये।

बटोले बिक्रम की इस क्रिया को जानता था। 'साले, आज तुझे तेरे पुरखों की याद दिलाता हूँ। तेरी हड्डियों का चूरा न कर दिया तो मेरा नाम बटोले नहीं।'

'एक तो मेरा खेत अपने ढोरों से चरवा लिया! ऊपर से गाली देता है!! नीच कही का!!!' बिक्रम ने भी गालियों का कोष खाली किया।

फ़िर लाठी तनी और चली। बीच बीच में ज़ोर के साथ गाली-गलौज।

बिक्रम पर बहुत मार पड़ी। जगह जगह से रक्त बहने लगा। बटोले को भी चोटें आईं, परन्तु बिक्रम को तो इतनी लगीं कि अचेत होकर गिर पड़ा।

गाली गलौज और मारपीट का शोर झींगुरों की झंकार और फाग के गायनवादन के ऊपर भी चढ़ गया और दूर दूर तक सुनाई पड़ा। 'क्या है? क्या है?' कहते हुये लोग इकट्ठे होकर घटनास्थल पर आ गये। बिक्रम अचेत था। बटोले बेहोशी का दन्दफन्द बना रहा था।

आगन्तुकों की समझ में थोड़ी देर तक वास्तविक बात नहीं आई। फिर बटोले से नहीं रहा गया। अचेतता का ढोंग करते हुये उसने बतलाया—'मेरे खेत में पसर चरा रहा था। मैंने रोका तो लड़ बैठा। मैंने इसके ढोर हाँके। इसने लाठी चलाई, तो मैंने भी अपने बचाव के लिये उठा ली। फिर चल पड़ी। मैं अपने को न बचाता तो यह आज मुझे मार डालता। वैसे भी इसने कोई कसर नहीं लगाई।'

'और अगर यह मर गया तो?' एक ने कहा।

'मर जाय तो गाँव की एक बला टले।'

'और तुम्हारा क्या होगा ?'

'तो क्या मैं अपना खेत मिटवा दूं ? क्या मैं मर जाऊँ ?'

थोड़ी सी बातचीत के बाद कुछ लोगों ने बिक्रम के मड़वे पर से चारपाई खोली और उस पर लिटाकर ले गये। कुछ बटोले को उसके घर पहुँचा आये। खटिया पर ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

[२६]

उसी रात हरको की ससुराल में जो कुछ हुआ वह इससे कम न था—केवल किसी को कहीं खटिया पर ले जाने की ज़रूरत नहीं पड़ी।

मवेशियों के लिये हरको घास का गट्ठा लादकर सांझ बीते ले आई और आंगन मे पटक दिया।

'ऐसी डायन है कि ढङ्ग से तो काम करना जानती ही नहीं।' उसकी जिठानी ने कहा।

हरको ने घूंघट में से आग बरसाती आँखों जिठानी को देखा, नथने फुलाये, पर बोली कुछ नहीं। हाथ पैर धोने लगी, मानो कुछ खाने पीने के लिये उतावली हो।

जिठानी ने चेताया,—'घर में है क्या अभी जो हाथ मुंह पखारकर चौके में घुस पड़ने के लिये तैयार हो रही है।'

'तुमने खा पीकर सांवटा कर दिया होगा!'

'है कैसी? पीसा किसने है जो मैं बना खाती?'

'क्यों नहीं पीसा? कौन सी हकूमत करती रहीं दिन भर?'

'दारी, झोंटा पकड़कर कंस-कड़ोरन करूँगी बहुत मुंह चलाया तो। पीस जल्दी से अनाज। वे सब आ रहे होंगे। न पीसेगी तो खायेंगे क्या? तुझे चबायेंगे?'

इतने में हरको की चाची सास आ गई। जिठानी ने घूंघट ज़रा लम्बा किया। फफक फफक कर रो पड़ी। सास को विश्वास हो गया, बिचारी को बहुत सताया है।

जिठानी ने गले को खूब कँपाकर कहा, 'जब चाहे तब गालियाँ देती हैं, मुन्स पूत को कोसने में नहीं लजाती। पीसने के लिये कहा तो गालियाँ दीं और मुझे थप्पड़ मार दिये।'

'क्यों झूठ बोलती हो? मैंने तो कुछ नहीं कहा। उल्टे गालियां दे उठीं।'

'मैंने इनसे कहा कि बाई थोड़ा पीस लो, मैं हारी थकी आई हूँ तो सब लोगों को कोसने लगीं और मुझे हुकम दिया कि तुम्हीं पीसो। फिर मेरे भाइयों और बाप को गालियाँ दीं।'

सास गरम हो गई—

'हाड़ जल जावें इसके भाई मंटुआ के जिसने इसको सिर पर चढ़ाया है, और भवानी माता उठा ले जावें उस गांव भर को जहाँ से रोम रोम में मस्ती भर लाई है! पीस दो पंसेरी अनाज, नहीं तो अभी टपकवाती हूँ तेरी खाल।'

हरको एक कोने में जा बैठी और रोती रोती बोली, 'मेरे हाथ नहीं चलते, बहुत थकी माँदी आई हूँ।'

'खाने को खाती है एक भैंस के बराबर और काम के नाम पर एक तिनका भी इधर का उधर नहीं टालती।' सास तड़की।

हरको भी भभकी—

'तो मार क्यों नहीं डालतीं? मेरी विपदा टले और तुम सब का बोझ उतर जाय।'

जिठानी ने सास को उसकाया,—'ओ भगवान! हम सब इसके लिये आफ़त और बोझ हो उठे हैं। हमीं खिला खिलाकर मोटा करें और हमीं इसके लिये पहाड़ का बोझ! बूढ़ी सास के लिये ज़बान निकाली तो छाती पर चढ़कर जीभ खींच लूंगी।'

'मार डाल! मार डाल!! हत्यारी!!!' हरको से न रहा गया।

जिठानी उस पर चढ़ बैठी। चित कर के उसकी छाती पर तो सवार न हो सकी, पर उसने घूंसे थप्पड़ लगाये और बाल भी खींचे। हरको ने भी आत्म-रक्षा में अपनी उँगलियों को कठोर किया और जिठानी को कई जगह नोच डाला। खून निकल आया। जिठानी अलग हो गई, हरको की माँस पेशियाँ जिठानी के लिये भारी पड़ गईं।

'अरे रे रे ! मुझे तो कतर डाला डायन ने !! खून के पनाले बह उठे हैं !!! अङ्ग अङ्ग छलनी कर डाले हैं !!!!' और वह चिल्लाते चिल्लाते गिर पड़ी, पर गिरी सधकर।

अब आ गये घर के पुरुष। सास जिठानी ने पूरा अपराध हरको के सिर थोपा। जिठानी के कुछ अङ्गों का खून दिखलाया गया—था थोड़ा थोड़ा सा ही, पर था तो खून।

हरको रो रही थी। प्रश्नों और भर्त्सना का उत्तर केवल उसकी बिलख।

फिर पति और देवर ने मिलकर उसे बेभाव पीटा। लाठी कुछ पतली थी जिससे वह पीटी गई थी। यदि अधिक मोटी होती तो उसके हाथ पांव टूटे बिना न रहते। केवल सिर बचाया गया, बाक़ी अङ्गों को लाठी का शिकार होना पड़ा। वह कमर तक नङ्गी हो गई थी। अचेत होकर वैसी ही आँगन की कठोर भूमि पर पड़ गई।

'ढोंग करती है, ढोंग !' पति ने हाँफते हाँफते कहा।

'लगा दो चार लातें और ! कितनी बेशरम है जो अपने मस्ताये हुए अङ्ग भी नहीं ढाँकती।' सास ने कहा।

पड़ोसी सोचते थे यह तो नित्य का किस्सा है, पर जब असाधारण ध्वनियाँ कान में पड़ीं, तब आ गये।

समझा बुझा कर और यह समझ कर कि बखेड़ा ठंडा हो गया है चले गये, क्योंकि दिन भर के थके माँदे थे।

हरको की सास और जिठानी को पिसान पीसना पड़ा।

घर की पंचायत ने तै किया, 'आज इसके मुंह में रोटी का एक कौर भी न पड़ने पावे, तब अकल ठिकाने लगेगी। देखें कब तक इस तरह साँड़िनी की तरह पड़ी रहती है।'

इस निर्णय के समय हरको चेत में आ गई थी, पर उसे इतनी सुध न थी कि उसके कौन से अंग उघड़े हुये हैं और कौन से ढके हुये। नस नस दूख रही थी। घिसटते हुये हाथों उसने धोती समेटी और

अङ्ग ढक लिये। वहीं पड़ी हुई करवट बदलती रही। घरके स्त्री पुरुषों और बालकों ने खाना खाया और उपेक्षा के साथ जा लेटे। सास ने चौके में रोटियां ढक कर रख दीं; 'मनाओ मत, अपने आप उठकर खा पी लेगी।' थोड़ी देर में सब सो गये।

रात जब तीसरे पहर में जाने को हुई हरको उठी और उसने आहट ली। झींगुरों की झंकार और घरके चूहों की दौड़-धूप के सिवाय और कुछ नहीं सुनाई पड़ा। हरको चुपचाप घर के बाहर हो गई।

अङ्ग अङ्ग में चोटों की कसक थी, परन्तु चोटें उसकी दृढ़ता को परास्त नहीं कर पा रही थीं। वह सावधानी के साथ बाँगुर्दन की दिशा में पैर बढ़ाये चली जा रही थी। तारे झिल-मिला रहे थे। एक तारा आधे आकाश से पश्चिम की ओर जा कर मार्ग के अन्धकार को चिनौती सी दे रहा था। हवा की साँय-साँय पत्तों की खड़बड़ाहट को गम्भीर कर रही थी। पेड़ों के नीचे से जब हरको निकलती तब चिड़ियाँ चौंक कर एक पेड़ से फड़फड़ा कर दूसरे पर जा बैठतीं। वह उस फड़फड़ाहट में किसी भय का अनुमान करके घबरा जाती, चोटों में होकर बिजली सी कौंध जाती, हाथ पैर ढीले पड़ जाते, पीछे मुड़कर देखती और निश्शङ्क होकर फिर चल पड़ती। जब कई बार ऐसा हुआ तब अभ्यास के कारण भय का भूत भी कम डरावना होता चला गया। उस तारे का प्रकाश अखर रहा था, किसी वैरी का जासूस सा लग उठता था; चाहती थी कि बादल होते तो अन्धकार बहुत गहरा होता।

तीसरा पहर समाप्त हुआ और चौथा अन्तिम घड़ियों पर आ गया। पूर्व की ओर क्षितिज पर सीधी सफ़ेद रेखाओं का एक पुञ्ज खिचा। भोर होने को है; हे भगवान, अभी कुछ देर और न हो! हरको ने डगें बढ़ाईं। प्रातःकाल की ठण्ड नहीं आंस रही थी और न अब चोटों की उतनी कसक। हरको पांच छः कोस निकल आई थी।

दो कोस और कि फिर बाँगुर्दन, अपना घर। हरको में और अधिक स्फूर्ति आई।

सवेरा होने पर ससुराल में पहले जिठानी ने उसकी खोज में इधर उधर आँख पसारी। सोचा, दिशा मैदान के लिये बाहर गई होगी। सूर्योदय हुआ। दिन चढ़ आया, पर हरको का कोई पता नहीं। ससुराल वालों को डर लगा कहीं कुयें में न जा समाई हो। कुयें ढूंढ़े गये; जब वहाँ से अभय होकर लौटे तो वे अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुँचे — मायके भाग गई है। ओफ़! कितनी पाजी है!! और बेहया भी। अङ्ग उघाड़े सबके सामने पड़ी रही, जब हम सब सो गये तो निकल भागी!

उन लोगों ने तै किया--पड़ी रहने दो मायके में कुछ दिनों। जायगी कहां? आवेगी तो अन्त में इसी घर। फिर भी सन्देह मिटाने के लिये एक आदमी को बांगुर्दन भेजा--चुपचाप देख आवे कि पहुँच गई है या किसी खाई खड्ड में खो गई है।

[२७]

सूर्योदय के दो तीन घड़ी पीछे डाक्टर सनेहीलाल के घर जमघट लग गया। कुछ तो मरीज और कुछ तमाशा देखने वाले। चारपाई पर लेटा हुआ बिक्रम आया। साथ में देशराज के दल के लोग। बिक्रम कराह रहा था। था चेत में। कूलते कोखते कुछ तो बिक्रम ने, बाकी पक्ष वालों ने रात की मारपीट का हाल सुनाया--बटोले ने उसका खेत अपने पशुओं से चरवा लिया और हड्डियां तोड़ दीं। सीधे सादे वस्त्र और कलाहिओं में केवल कांच की चूड़ियाँ पहिने राजदुलारी भीतर से आई, जैसा प्रभात काल का नक्षत्र। तमाशा देखने वालों ने गांव की और गांव बाहर की राजनीतिक चर्चा शुरू कर दी। डाक्टर सनेही घायल के घाव देखता जाता था और उन लोगों से हाँ हूँ करता जाता था। वह मरहम पट्टी करने लगा, पर घाव देख लेने के बाद भी उनकी गले बाजो बन्दी न हुई।

राजदुलारी ने प्रतिकार किया,--'उनको अपना काम करने दो, शोर मत करो।' और वह स्वय सनेही की सहायता करने लगी।

सनेही मुस्कराया--

'मुझे केवल दिखलाई पड़ रहा है, सुन कुछ भी नहीं रहा हूँ।'

वे लोग बाहर चले गए और बैठ कर बातें करने लगे। जब मरहम पट्टी कर चुका, सनेही ने बिक्रम से कहा, 'पांच छः दिन हमारे यहां ही रहो। जब ठीक हो जाओ, घर चले जाना।'

उसकी पत्नि आ गई, रोने किलपने लगी।

राजदुलारी ने शान्त किया,—'बहिन घबराओ मत। जल्दी अच्छे हो जायेंगे। मैं इनकी देख भाल करूँगी। तुम भी बनी रहना।'

बिक्रम कराहा,—'मेरी गायें भैंसें और खेती कौन देखेगा! हे राम!'

राजदुलारी ने उसकी पत्नी से कहा, 'तुम घर का काम देखो। मैं खिलाई पिलाई सेवा सुश्रूषा सब करती रहूँगी। फिकर मत करो।'

वह सिसक कर बोली, 'बच तो जायेंगे ?'

डॉक्टर ने उत्तर दिया, 'अरे बिलकुल। शरीर की सूजन दो दिन में ही पटा जायगी। एक हाथ की हड्डी टूट गई है, उसके बिठलाने की भी क्रिया करूँगा। वसे और कोई सङ्कट नहीं। हाथ के ठीक करने में ही कुछ देर लगेगी।

पत्नी ने बटोले को गालियां दीं और बिक्रम ने एक उद्‌गार प्रकट किया,—'अच्छा हो पाऊँ तो बटोला के मांस और हड्डियों का चूरा कर के ललिता नदी में बहा दूंगा।'

सनेही 'हुँ' करके दूसरे कमरे में चला गया, जहाँ अन्य मरीज़ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

राजदुलारी ने बिक्रम के सिर पर हाथ फेरकर कहा, 'बस, बस। गुस्से की बात न करो नहीं तो अच्छे होने में देर लग जायगी।'

उसकी घरवाली बोली, 'बटोला ने तो हमें मार मिटाने में कसर लगाई नहीं। यह कहो कि भगवान सीधे थे। अब आप दोनों का बल भरोसा है।'

बिक्रम ने घरवाली से अनुरोध किया,—'तुम जाकर घर का काम देखो, नहीं तो बैरी ढोरों और खेती का नुकसान कर डालेंगे। मैं अच्छे होने तक यहीं बना रहूँगा। घर का समाचार दे जाया करो, बस।'

इसके बाद उसने अपने कुछ हितुओं के नाम गिनाये जो उसकी अनुपस्थिति में सहायता करते रहेंगे।

अन्त में कहा, 'डॉक्टर साहब के लिये कुछ रुपयों का बन्दोबस्त कर लाओ।' फिर कराहा,—'न हुये आज हमारे मालिक राजा देशराज नहीं तो बटोला को और उसके हिमायतियों को गोली से उड़वा देते। खैर, देखूंगा।'

राजदुलारी ने फिर शान्त करने का प्रयत्न किया और फ़ीस के प्रसङ्ग पर बोली, 'डॉक्टर साहब घर आये मरीज़ की फ़ीस नहीं लेते। मरहम पट्टी और दवादारू का ही दाम लेते हैं।'

बिक्रम की घरवाली को विश्वास नहीं हुआ।

बिक्रम ने कहा, 'जो कुछ बनेगा अभी दे दूँगा। रह जायगा उसे राजा साहब लौटने पर दे देंगे।'

राजदुलारी मुस्कराई जिसमें न मादकता थी, न कोई रसीलापन, पर उस मुस्कान में जो कुछ था उससे बिक्रम को लगा जैसे उसकी पीड़ा यकायक कम हो गई हो।

राजदुलारी बोली, 'अरे भाई, रुपये के मोह में हम लोग गांव में नहीं आये हैं। देखो न कितने गहने कपड़े हैं मेरे पास ?'

बिक्रम की घरवाली चांदी के कुछ गहने पहिने हुये थी। अपने से उसकी तुलना की। जी को थोड़ी सी ठंडक मिली।

'तो भी आपको कुछ तो लेना ही पड़ेगा।' बिक्रम ने हठ किया। इसलिये और भी कि राजदुलारी से सस्ते में पट जाय तो डॉक्टर से क्यों बात करें!

राजदुलारी ने कहा, 'सब मिलाकर दस बारह रुपये से ज़्यादा खर्च नहीं पड़ेगा। जो कुछ अभी देना चाहो दे जाओ, नहीं तो पीछे सही। इस समय तो हमें चङ्गा कर देने की इच्छा अधिक है।'

बिक्रम ने चैन की साँस ली।

उसी समय बाहर से टहल का स्वर कान में पड़ा।

बिक्रम फिर कांखा,—'यह पापी टहल यहाँ भी आ गया! पीछा नहीं छोड़ता। धरती सिर पर उठा रक्खी है इसने। यही तो बहकाता बरगलाता रहता है सबको।'

'चुप, चुप',—राजदुलारी ने रोका,—'अपने काम से आये होंगे। सभी आते हैं यहाँ तो। कई बार कह चुकी हूँ कि आपे से बाहर होंगे तो चङ्गे होने में देर लग जायगी।'

बाहर से कुछ गरम बातचीत की ध्वनि आई जो किसी के कूल्हने कांखने से लिपटी हुई थी।

राजदुलारी कह कर चली गई,—'बिलकुल चुपचाप पड़े रहना। आपस में भी कोई बात न करना। इनको घर का काम काज देखने भालने के लिये भेज दो।'

उसके चले जाने पर बिक्रम ने पत्नी से कहा, 'तुम जाओ। ढोर-ढङ्गर देखो और खेती को संभालो। नेक सुनती जाना टहल कौन सा बिस बोने इस घड़ी यहाँ आया है।'

वह भी चली गई।

दूसरे कमरे में डॉक्टर, टहल और बटोले थे।

कमरा बहुत बड़ा न था। थोड़ी सी अलमारियाँ जिनमें दवाओं की शीशियाँ थीं। सारे कमरे का सामान एक साधारण डॉक्टर के छोटे से अस्पताल का नमूना था। पर स्वच्छता वहां यथासाध्य काफी थी। मकान पक्का था, कोई भाग खपरैल का और कोई छतदार। सनेही इसे देशराज से रियायती किराये पर लिये था।

सनेही बटोले की चोटों का निरीक्षण कर रहा था और वह कांखते कांखते चिल्लाकर बिक्रम की शिकायत कर रहा था। उसकी कांखों में बनावट थी, पर शिकायत में सचाई। टहल ने व्यक्ति की थोड़ी सी ही बुराई की; वह उस आर्थिक संयोजन की निन्दा कर रहा था जिसकी उत्पत्ति यह समाज और इस प्रकार की दुर्घटनायें हैं।

सनेही ने संकेत से उन दोनों को रोका। राजदुलारी आ गई। टहल ने नमस्ते की। थोड़ी देर सब चुप रहे। राजदुलारी के पीछे दूसरे कमरे में दीवार से सटकर बिक्रम की घरवाली आ खड़ी हुई।

सनेही ने बतलाया,—'चोटें हैं तो बहुत सीं, परन्तु गहरी कोई नहीं हैं। बटोले दो तीन दिन में बिलकुल अच्छे हो जायेंगे। ज़रा सी भी चिन्ता की बात नहीं।'

बिक्रम की घरवाली को सूल सा गड़ गया।

राजदुलारी बोली, 'बिक्रम के बहुत गहरी हैं। एक हाथ तो टूट ही गया है।'

टहल ने टीका की,—'देवी जी, लड़ाई में किसी को कम, किसी को अधिक चोटें लगती ही हैं। इन्हें चोटें अपनी रक्षा करते भी बहुत आ गई हैं। ये सावधान रहे इसलिये हाथ पाँव बचा ले गये। बिक्रम गुस्से में पागल हो गये, इसलिये हाथ तुड़वा बैठे। मैं यह नहीं सोच रहा हूँ कि बिक्रम ने इनका खेत चरवा डाला, बल्कि यह सोच रहा हूँ कि वे बटोले का खेत चराने गये ही क्यों ? समाज में ऐसे कौन और क्यों हैं जो—'

बिक्रम की घरवाली ने तड़ाक से टोका,—'तुम्हीं ने सब ऊधम करवा रक्खा है ! तुम्हीं सब पापों की जड़ हो !! तुम्हारी ठठरी बँधे !!! तुम्हारा—'

राजदुलारी झपटकर भीतर हुई और उसे लिवा ले गई।

टहल को बिक्रम की घरवाली की बात आँस गई। डॉक्टर पर बुखार उतारा,—'आपका भी क्या पेशा है, डॉक्टर साहब ! उस नरक के कीड़े का भी इलाज कर रहे हैं !!'

सनेही ने अपनी उठती हुई हँसी को मुस्कान में पलट लिया—

'मैं नरक और स्वर्ग —दोनों—के कीड़ों का, यदि उन्हें मेरी ज़रूरत पड़ जाय तो, समान भाव से इलाज करता हूँ। मेरे लिये व्यक्ति पहले है और समूह पीछे।'

बटोले ने देखा बहस बढ़ेगी,—इनके हाथ इस समय कोई मरीज़ नहीं और उनके स्कूल का घंटा अभी दूर है।

बोला, 'डाक्टरसाहब, मुझे दवा दे दीजिये। बोटी-बोटी दुख रही है।'

'अभी लो।' डॉक्टर ने कहा और थोड़े ही समय में उसकी चोटों पर दवा लगा दी। खाने की भी दवा दी।

'फिर कब आऊँ ?' बटोले ने पूछा।

'कल सवेरे। दो तीन दिन ही आना पड़ेगा। बस फिर बिलकुल अच्छे। अवस्था तो बिक्रम की ज्यादा खराब है।' डॉक्टर ने उत्तर दिया।

'अपने किये का पाया और आगे इससे भी ज्यादा पावेगा,' बटोले ने दाँत पीसकर भविष्य की भी बात कह डाली।

'तुम जाओ,'—टहल ने उससे कहा,—'मैं डॉक्टर साहब से जरा बातचीत करके आऊँगा। डरना मत। तुम्हें घर लिवा जाने के लिये कई साथी बाहर होंगे।'

बटोले ने फुफकारा,—'डरना किससे और कैसा ? मैं तो अपने हक के लिये जमराज से भी भिड़ जाने की दम रखता हूं।'

बटोले चला गया।

चुटीला हो जाने पर भी वह सीधा तना था। टहल अभिमान भरी दृष्टि से उसकी ओर, जब तक ओझल नहीं हुआ, देखता रहा।'

मुड़कर उसने कहा, 'आप अहिंसा और सत्याग्रह की साधना से विक्रम सरीखे लोगों को समाज के इस तरह के राजनीतिक और आर्थिक संयोजन के होते हुये भी सुधारने की धारणा और कामना किये हैं!'

'कौन सी अहिंसा और किस सत्याग्रह की साधना से ? उससे तो नहीं जिसका प्रयोग मशीनों का काम बन्द करने के लिये किया गया था।' सनेही मुस्कराया।

'परिभाषाओं की आप जाने, मेरा तो उनमें कतई विश्वास नहीं। समाज पर जो कूड़ा कचड़ा घास-फूस छा गया है उसको खाक किये बिना समाज के नये अंकुर और किसलय नहीं पनप सकेंगे। एक दूसरे के साथ सच्चा और प्यार से कसा हुआ गठबन्धन पुरानी गांठों, फांसों और गुत्थियों के काट फेकने के बिना न हो सकेगा।'

शब्दों के लिये सब से बड़ी मुश्किल यह है कि उनका उपयोग भिन्न भिन्न परिस्थितियों की चूल में सही नहीं बिठलाया जाता। आप खूनी क्रान्ति का संकेत कर रहे हैं, परन्तु क्या कभी सोचा कि आजकल कोई ऐसी रसायनिक क्रिया नहीं खोजी जा सकी है जिसके द्वारा व्यापक घृणा में से सार्वभौम स्नेह की गांठें तैयार की जा सकें ? घृणा हिंसा की जननी है। व्यक्ति की घृणा की अपेक्षा समूह की घृणा कहीं

अधिक हानिकारक और स्थायी होती है। केवल कानून और क़ानून के आधार पर रची हुई सरकार, घृणा या हिंसा का उपयोग व्यक्तियों और समाज के हित के लिये कर सकती है--'

'समाज के वृक्ष को तरह तरह की अमरबेलें डँसे जा रही हैं। वृक्ष अपने नये जीवन के लिये इन अमरबेलों के मारे क़ानून बना कहां पाता है ? अमरबेलें तो शोषण के अपने मतलब का क़ानून बनाती हैं।

'वृक्षों की अमरबेलें दिखलाई पड़ती हैं। उनका काट फेकना सहज है, पर समाज और व्यक्ति की अनेक अमरबेलें दिखलाई ही नहीं पड़तीं। इन अमरबेलों को नष्ट करने के साथ ही कहीं ऐसा न हो कि व्यक्ति और समाज भी काटकर गिरा दिये जायें।'

'तो नया जीवन आवे कैसे ?'

'रक्त से सने हुये गन्दे हाथों नये जीवन का स्वागत नहीं किया जा सकता।'

'हमारे देश में हुआ है और बाहर अनेक देशों में भी। मुश्किल यह है कि आप और आप सरीखे कुछ लोग यह नहीं सोचते कि अहिंसामात्र से अङ्गरेज़ यहाँ से नहीं हटाये गये। खूनी क्रान्ति का लाल हाथ ज़रूर राष्ट्रीय आन्दोलन के पीछे था। राष्ट्रीयता उसी के चेताने पर जागकर खड़ी हुई। उसी ने विदेशी शासन को निकाला और उसी की आज ज़रूरत है।'

सनेही हँस पड़ा।

शब्दों की वही मुश्किल फिर ! गुलामी की बेड़ियाँ काटने के लिये राष्ट्रीयता अनिवार्य है, परन्तु बेड़ियाँ टूट जाने के बाद यह भावना मानव प्रेम में बदल दी जानी चाहिये; अन्यथा, वह प्रचण्ड वासना बन कर दूसरों को गुलाम बनाने के लिये बेड़ियाँ तैयार करेगी।'

'यानी अब उन अमरबेलों की पूजा-अर्चा की जाय। लोकतन्त्र और समाजवाद का मेल हो ही नहीं सकता।'

'हाँ कुछ मनीषियों ने यही लिखा है। परन्तु एक ही आकार प्रकार के नश्तर से सब क़िस्म के फोड़े नहीं चीरे जा सकते। यह उपमा सोलह आने ठीक न उतरे, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकतन्त्र के सक्रिय सिद्धान्त—स्वाधीनता, और समाजवाद के सक्रिय सिद्धान्त—समता, का समन्वय किया जा सकता है। और इस देश में होगा। राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध के देश वाला इस बात को बिना अहंकार के कह सकता है।'

प्रतिवाद करने के लिये टहल ने कुछ सोचकर एक बात निकाली।

टहल उन लोगों में से था जिनकी धारणा होती है कि या तो मेरी बात से सहमत हो जाओ,नहीं तो मैं तुम सरीसे लोगों की सारी दुनियां से असहमत हूँ और रहूँगा।

'इतिहास का निर्माण भौतिकतत्वों से होता है। व्यक्ति इतिहास नहीं बनाते।'

'मैं भी विकासवादी हूँ परन्तु विकासवाद केवल भौतिकवाद नहीं है। विकास की धारा को विशेष प्रकार के व्यक्तियों ने हर एक देश में मोड़ा है और मोड़ते रहेंगे। उनकी क्रिया कभी कभी दिखलाई पड़ जाती है और पहिचान में आ जाती है परन्तु बहुधा अदृष्ट रहती है।'

उसी समय बाहर थोड़ासा शोरगुल हुआ। टहल ने निकल कर देखा—हरकुँअरि को उसका भाई मंटू साथे लिये आ रहा है। साथ में छोटी सी भीड़। हरको थकी हुई, अधमरी सी।

'क्या हुआ ?' टहल ने पूछा।

मंटू कांपते हुये कंठ से बोला, 'मार डाला उन हत्यारों ने !'

सनेही भी बाहर आ गया।

मंटू ने संक्षेप में हरको की दुर्गति का हाल बतलाया। सनेही ने भीतर ले जाकर उसकी चोटों का निरीक्षण किया। राजदुलारी सहायता के लिये आ गई।

हरको के हाथ, पैर, पीठ और पेट लम्बे नीले निशानों के तिकोनों और चौकोनों से खिचे हुये थे। इनमें से कई पर सूजन भी थी। सनेही दवा लगाने लगा।

'वे सब पिशाच हैं।' राजदुलारी ने कहा। सनेही अपने काम में चुपचाप लगा रहा। राजदुलारी की कल्पना भारतीय नारी की दुरवस्था पर दौड़ी। मैं यदि किसी दुष्ट के साथ ब्याही गई होती तो लाख पढ़ी लिखी, बी० ए० होने पर भी कुछ इसी तरह का व्यवहार मेरे साथ भी होता। तब क्या करती ? भोजन और कपड़े के लिये उसी दुष्ट का मुंह ताकना पड़ता, क्योंकि स्त्री की निजी सम्पत्ति होती ही क्या और कितनी है ? आत्म-वध कर लेती या कहीं नौकरी कर लेती पर उस दुष्ट से पीछा कैसे छुटाती ? हरको अपने पेट भरने लायक मजूरी कर सकती है, यहां करती ही थी, फिर भी दुष्ट पति के अत्याचार से नहीं बचाई जा सकती। स्त्री के पास अपनी निज की सम्पत्ति का साधन अवश्य होना चाहिये। मेरे पास कितना है ?

उसने सनेही से यकायक कहा,—'तुम बहुत भले हो।'

'कर्तव्य पालन ही तो कर रहा हूँ,—' सनेही हरको के एक पैर की चोट पर पट्टी बाँधते हुये बोला,—'जिसमें तुम मेरी सदा सहायता करती रहती हो। दवा दारू की शिक्षा बिना पाये हुये भी तुम इतनी बढ़िया नर्स हो गई हो कि वाह !'

'मैं कुछ और कह रही हूँ।'

'हुँ।'

डॉक्टर ने थोड़ी देर बाद अपना काम समाप्त किया। मंटू को बुला कर कहा, 'इसे घर ले जाओ। मैं नित्य एक बार देखने आया करूँगा। फीस नहीं लूंगा, केवल दवा के दाम।'

वहाँ टहल भी था। स्कूल जाने का समय आ रहा था, पर कुछ कहना चाहता था। रुक गया। मंटू उसके साथ जाने के लिये खड़ा रहा। हरको एक कोने में बैठ कर कराहने लगी।

'क्या आप उस तरह की पंचायत को भी बनाये रखने के पक्ष में हैं जिसके अन्याय के कारण इस बिचारी की यह कुगति हुई ?' टहल ने कहा।

'नहीं हूँ पक्ष में। उसके बदलने का प्रयत्न निरन्तर जारी रखना चाहिये। बतलाइये उन पञ्चों को आप ही कितना प्रभावित कर सके ?'

'अबकी बार आवें गाँव में जोधा बगैरह तो मार मार के चटनी पिसवा दूंगा।'

'और अपने ही गाँव के उनका क्या करियेगा जिनके विरोध के कारण आप अपने मन की छोटी सी सहकारी कृषि समिति भी न बनवा सके ?'

टहल तिलमिला गया।

'अपने साथियों का मन रखना पड़ा।' राजदुलारी ने कहा।

सनेही बोला, 'कठिनाई यह है कि ये आगे के एक पूरे समूचे युग को, जिसकी निश्चित रूपरेखा का ध्यान में आना दुस्साध्य है, आज के ही थोड़े से क्षणों में भर लेने के लिये अधीर हैं।'

'भाई रामटहल, यदि अपने अपने गांव की सहकारी समिति में उन पञ्चों को भी शामिल कर लिया होता तो आप जात-पांत सम्बन्धी विषयों में भी उन पर कुछ न कुछ प्रभाव तो डाल ही लेते; जब हरको की बिदा का निर्णय हुआ तब आप कुछ शर्तें रखवा लेते तो वे लोग डरके मारे इतना बुरा बर्ताव न कर पाते।' राजदुलारी ने मिठास के साथ सुझाया।

हरको की कराह में होकर फूट पड़ा—'सत्यानास जाय उन सबका!'

राजदुलारी ने दुलार के साथ हरको के सिर पर हाथ फेरा। टहल को अवगत हुआ—राजदुलारी का व्यक्तित्व सनेही से बड़ा है।

बोला, 'एक बार प्रयत्न करूँगा उन सबको सहकारी समिति में लाने का।'

राजदुलारी ने प्रोत्साहन दिया,—'देश के चौमुखी विकास के लिये सहकारी प्रयत्न ही अचूक साधन हैं।'

हरकों की कराहें अधिक तीव्र हुईं।

'मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा, बहिन जी।' टहल ने आश्वासन दिया।

मंटू घर जाने के लिये अधीर दिखलाई पड़ा।

टहल जाते जाते कह गया,—'आपसे बात करने में मन लगता है, डॉक्टर साहब। फिर कभी समय लूँगा।'

सनेही ने 'हां' का सिर हिलाया।

जब दोनों अकेले रह गये, राजदुलारी बोली, 'तुम इतने भले न होते तो मेरा क्या होता!'

'गहनों से लदीं रहतीं; और, तुम कुछ और होतीं तो मेरी पिटाई कुटाई होती रहती।' सनेही हँसा।

राजदुलारी ने भोंह सिकोड़ी—

'कितने टेढ़े बोलते हो! कितने बातूनी!!'

'अभी तक तो नम्बर एक का भला था। बड़ा डॉक्टर!'

राजदुलारी हँस पड़ी।

'तुम बड़े डॉक्टर और मैं बड़ी नर्स। ज़बान न चलाओ तो कहूँगी तुम बड़े मानव भी हो।' वह यकायक गम्भीर हो गई।

'यानी भूख लगे तो भी जबान पर लगाम चढ़ाये रहूँ। आज की दवा दारू में हम दोनों इतने उलझे रहे कि रसोई स्थगित हुई सी दिखती है।'

'जैसे तुम्हारी बातें चलती रहती हैं वैसे ही मेरी रसोई का काम भी। दाल पकाली, साग बना लिया और आटा गूंद कर रख आई हूँ, पर तुम्हें बहस से अवकाश मिले तब तो।'

'जानती हो काम करने वाले सिद्धांतों की बहस नहीं करते और सिद्धांतों की बहस करने वाले काम नहीं करते। इसलिये मैंने रसोई बनाना नहीं सीखा।'

राजदुलारी के होठों पर मुस्कान आई। भीतर जाने के लिये पीठ फेरी, और बोली, 'खाना खालो, नहीं तो कोई आकर फिर बातों में लगा लेगा।' दो कदम चल कर मुड़ी। होठों पर मुस्कान थी, आंखें तरल। उसकी रूपरेखा में उस मुस्कान और आँसू के भीतर सनेही ने जो सौन्दर्य देखा उससे पुलकित हो गया। सोचता था आँखें क्यों छलक आईं ?

[२८]

उन दिनों उन छोटे से गाँवों तक में ब्याह बरातों की बाढ़ सी आ गई। रस्मी बाजों का रिवाजी शोर, अक्षय दरिद्रता में आतिशबाजी फुलवाद, दुर्लभ भोज्य पदार्थ, इत्यादि, सीमित आय पर बेभाव खर्च। छाती से छाती मिलाते मिलाते मुक्के तानने की नौबत। पैसे वालों की बड़ी रहन सहन का अनुकरण करने की परम्परा का गला घोटूपन। बीमार और घायल उस शोर के मारे परेशान होते रहे – कितने निर्दयी हैं ये गाने बजाने वाले लोग ! एक कुढ़न और—गेहूँ की रोटी और पूड़ी तक खाये जा रहे हैं ये सब ! इधर एक हम जिन्हें साबूदाना और दाल का पानी भी नसीब नहीं !! बरातें चली गईं, ब्याहों का वह मुहूर्त निकल गया और घायल अच्छे हो गये। इन्हें और उन बीमारों को भी जो कुछ स्वस्थ हो गये थे, मज़दूरी खोजनी और करनी पड़ी। नहीं तो गुज़र कैसे हो ? मज़दूरी न मिले तो क़र्ज़ा, भीख, चोरी—जो साधन भी काम कर जायें !! कठिनाई उनके सामने और भी अधिक जिन्होंने ऋण लेकर ब्याह बरातें की थीं। समधियों में हँसते मुस्कराते लड़ाई हो पड़ी, मारपीट तक की नौबत आई और पैसे से हाथ धो बैठे। रंग के छपके भर फटे कपड़ों पर रह गये जो उस लड़ाई और व्यर्थ व्यय का स्मरण दिलाते थे।

छदामी इन सब में अधिक दुखी था। फ़सल कटते ही बीज, लगान और धरनीधर का रुपया चुकाना है। फिर अगली फ़सल के लिये क्या बचेगा ? नङ्गा क्या नहावे और क्या निचोड़े ? साहूकार कोई ऐसा था नहीं जिससे कुछ और ले खाते। घनमाली से सिवाय बातों के और कुछ मिलना नहीं। देशराज दे सकते थे। पर एक तो यहाँ हैं नहीं, दूसरे उनसे बिगाड़ इतना कर लिया है कि मुंह दिखाने लायक भी न रहे। टहल और धरनी के भड़कावे में नाहक आ गये, सब अपना अपना स्वार्थ बनाने में लगे हैं। घाटीवाली को आसामी चाहिये, टहल को स्कूल की

फ़ीस, बनमाली को पञ्चायत में घुसने के लिये हमारा वोट; आन पड़े पर हमारी सहायता करने वाला कोई नहीं। शायद बनमाली कुछ लच जाये। ज़िमीन का झगड़ा मच जाने पर भी बोलते तो अच्छी तरह हैं। वह ज़िमीन अबतो कापटी (सहकारी) समिति में लगादी है, मेरी रही तो अच्छी ही है, न भी रहे तो भी उससे कुछ फ़ायदा तो होता ही रहेगा। जाने में क्या हर्ज़ है ? हमारे वोट की मदद चाहेंगे तो हमको भी उन्हें कुछ तो देना पड़ेगा। न मिला तो हम भले और वे भले। हमसे बांध हीं क्या लेंगे ? छदामी बनमाली के घर गया। बनमाली का सलूक देखकर उसे ढांढ़स बँधी। बनमाली को ज़िमीन का झगड़ा गड़ रहा था, परन्तु उसकी महत्वाकांक्षा में एक और उद्देश्य का महत्व अधिक था, इसलिये मीठा वर्ताव किया।

छदामी बोला, 'मालिक, थोड़ी सी मदद कर दो।'

'कितना समझाता हूँ कि किसी को मालिक मत कहो। अरे मालिक तो तुम हो जिनके वोट से यह सब चल रहा है। किसान मज़दूर का राज है, भाई।' बनमाली ने कहा।

'नहीं, मैं तो मालिक ही कहा करूँगा। छोटे बड़े का भेद सदा से चला आया है और रहेगा। वोट तो कोई चीज़ नहीं। वोट लेना आपका हक़ है और देना हमारा काम। हमारा ले लेना और हमारे सब लोगों का।'

बनमाली के मन में ज़िमीन की समस्या हलकी पड़ गई और उसकी गड़न बिखर गई। इसकी ही हो जाये तो पञ्चायत में समझ लूंगा।

'शाबाश ! तुम पहिचानते हो सच्चे काम करने वालों को। हमारा काम तो भाई सेवा करने का है। कुछ ऐसे हैं जो काम में टांग अड़ाते हैं, जैसे टहलराम बांगुर्दन में और धरनीधर सुहाना में। वे तुम्हारे साहूकार हैं, पर तुम डरना नहीं। इन दोनों गांवों की एक ही पंचायत बनेगी। बात तब है जब इधर धरनीधर और उधर टहल पञ्चायत में चुने जा सकें।'

'मालिक की निगाह बनी रहे, भगवान ने चाहा तो ऐसा ही होगा। धरनीधर का दबाव ज़रूर पड़ेगा। उनका देना है सो फ़सल पर गिना दूंगा।'

बनमाली प्रसन्नता के मारे फूलने लगा।

छदामी ने सावधानी के साथ बात चढ़ाई,—डॉक्टर साहब कैसे हैं?'

'भले हैं। फ़ीस तो लेते है, पर काम भी कर देते हैं। बड़ी बात यह कि किसी की बुराई भलाई में नहीं पड़ते।' बनमाली ने उत्तर दिया।

छदामी ने पूछा, 'राजा साहब कब तक लौट आयेंगे? कोई समाचार आया?'

बनमाली कुछ नहीं जानता था।

बोला, 'बड़े आदमी हैं। देस बिदेस घूमते रहते हैं। न मालूम कहां होंगे और कबतक आवेंगे। मस्त मौजी जीव ठहरे, तभी समाचार देते हैं जब यहाँ आने को होते हैं। शायद चुनाव के समय तक आ जायें। मन चाहे तो उन्हें वोट दे देना नहीं तो जैसा अच्छा लगे वैसा करना। हमें तो अपनी कहनी थी सो कहली। और यह जानकर बहुत अच्छा लगा कि तुम फिर हमारे हो गये।'

छदामी को अपनी कहनी थी—

'हम गरीब पढ़े न लिखे। उन लोगों के बहकावे में आ गये और राजा साहब का मन अपनी ओर से फिरा दिया। अब पछताते हैं। अपने अपने ही हैं, हम लोग तो उन्हें भी वोट देंगे। आप और उन सरीखों से तो हमारी गुज़र ही होती है।'

बनमाली मगन हुआ।

पूछा, 'कैसे आये? क्या किसी ने तङ्ग किया है?' उसने बतलाया,—'हमारे भाग ने तङ्ग किया है। ब्याह में सब फूंक देना पड़ा। सबको करना पड़ता है। कलके लिये खाने को गांठ में नहीं। फ़सल के आने में

देर है। धरनीधर के नीचे और ज़्यादा हाथ फँसाना नही चाहता। टहल की माँ के पास जाऊँगा नही। आपके सिवाय और किससे अपना दुख रोऊँ ? पच्चीस रुपये दे दो बड़ी मदद मिल जाये। अनाज ले लूँगा, घर का काम चलता जायगा। सब बाल-बच्चे मिहनत मजूरी से फ़सल तक समय काट ले जायँगे।'

बनमाली का हर्ष समाप्त हो गया। पच्चीस रुपया न दे पाने के मीठे बहाने बनाये। अन्त में उसे पन्द्रह रुपये देने ही पड़े। वोट मिल जावें और ज़िमीन को अपनी तरफ़ करालूँ तो सस्ते ही निबटे। पर इस प्रसङ्ग पर अभी कुछ नही कहना चाहिये। लिखा-पढ़ी नही करवाई, क्योंकि सलूक में बट्टा लगता—आगे की योजना का रग बिगड़ जाता।

छदामी ने सोचा जो मिल गया उससे काम चलाऊँगा और साल दो साल तो रुपया लौटाना नही है।

[२९]

थोड़े दिन चढ़े बरेली की ओर से रेलगाड़ी लखनऊ चारबाग स्टेशन पर आई और ऊँचे दर्जे के एक डिब्बे से अञ्जना और देशराज उतरे। उनकी आगवानी के लिये दो तीन लोग खड़े थे। इनमें से एक आबकारी पुलिस का अफ़सर सादे वेश में। वह इधर-उधर टहलता हुआ बना रहा, जैसे किसी आगन्तुक की खोज में हो। अञ्जना ने भाँप लिया। मजदूर सामान उतारने लगे। देशराज अपने उन दो परिचितों से हँस-हँस कर बात करने लगा। अञ्जना सामान इकट्ठा करवा कर इनके निकट आ गई। सामान में चार पेटियां हरे बक्सों की थीं। उनमें फल दिखलाई पड़ रहे थे। आवकारी पुलिस का अफ़सर धीरे-धीरे बात सुनाई पड़ने वाली दूरी पर आ गया।

अञ्जना हँस कर ऊँचे स्वर में बोली, 'मुझे तो आप लोगों की ज़िमींदार सभा से केवल इतना सरोकार हो सकता है कि यदि उन्हें संगीत का उत्साह हो तो घंटे पौन घंटे का प्रदर्शन कर दूँ, अन्यथा मैं तो कॉलेजों के लड़के लड़कियों का समारोह करूँगी जिसमें यदि कोई सुपात्र दिखलाई पड़े तो फ़िल्म के लिये दो तीन को चुन लूँगी। प्लेटफार्म पर भीड़ की घेराघारी से बचना चाहती हूं इसलिये जल्दी निकल चलना चाहिये।'

स्वागत कर्ताओं और उस अफ़सर ने एक क्षण में बारीक दृष्टि से देख लिया कि अञ्जना की सजधज ऐसी है जैसे किसी फ़िल्म निर्माण गृह में जाने ही को हो।

देशराज ने कहा, 'मुझे डर लग रहा था कि सभा की बैठक के लिये कहीं विलम्ब न हो गया हो; सोचता था कि अधिवेशन नौ दस बजे होगा। अब मालूम हुआ कि तीन बजे से है। और साहब भी आने को थे क्या इस गाड़ी से ?'

'सब आ चुके हैं। विषय निर्वाचिनी समिति की बैठक भी हो चुकी है। आप ही का इंतजार था। तार मिलने पर हम सबको हर्ष हुआ। वहां के ज़मींदारों के प्रतिनिधि आप ही हैं।' उनमें से एक ने बतलाया।

मज़दूर ने सामान अपने ठेले पर चढ़ा लिया था। अञ्जना ने मुड़ कर ज़रा ज़ोर से कहा, 'फल वाली पेटियों को सँभाल कर रक्खो। दूर से लाये हैं; कहीं पिस न जायँ।'

मजदूर ने पेटियों को फिर से संजोया। स्वागत कर्ताओं की आंख उन पेटियों पर गड़ी और पुलिस वाला तो उन्हीं पर ध्यान दिये था।

अञ्जना फिर हँसी।

'आज ही संध्या समय इन पेटियों के बोझ को उतार दूंगी। आखिर उन लड़के लड़कियों के लिये चाय पानी का भी तो कुछ आयोजन चाहिये।'

'फिर कल वे लोग आपका स्वागत समारोह करेंगे; और न जाने आपको कहाँ कहां भटकना पड़ेगा; पर देखिये अपने कार्य-क्रम को ज्यादा पसारा न दीजियेगा।' देशराज ने मुस्करा कर कहा।

मजदूर बोला, 'साहब चलिये। मैं दूसरी मज़दूरी देखूंगा।'

अञ्जना ने उपेक्षा के साथ कहा,'ले चलो किसी अच्छी मोटर पर। हम लोग आते हैं।'

मज़दूर ढकेल कर चला। पुलिस अफ़सर दायें बायें उसके साथ। थोड़ी दूरी पर पीछे पीछे देशराज, अञ्जना और वे दोनों स्वागतकर्ता चले आ रहे थे।

अञ्जना कह रही थी,—'जिमींदारी उन्मूलन का कानून पास हो गया,, आगे कुछ होने का नहीं, आप लोग व्यर्थ ही दिमाग़ पच्ची कर रहे हैं।'

एक ने नम्रता के साथ प्रतिवाद किया,—'देवी जी, यह अपने हक़ों की लड़ाई है। साँस रहते जारी रक्खेंगे।'

देशराज ने कोई सम्मति प्रकट नहीं की।

अबकी बार अञ्जना की तिरछी चितवन और मदीली मुस्कान पुलिस अफ़सर ने देखी, और सुना—'जैसे मैंने प्रण किया है कि आजीवन फ़िल्म की कला और सङ्गीत समारोहों द्वारा जनता की सेवा करती रहूँगी।'

यात्रियों के इधर से उधर और उधर से इधर आने जाने के कारण वे सब एक साथ न रह सके। टिकिट देकर बाहर आये और किराये की एक मोटर के पास सामान समेत खड़े हो गये। मोटर वाले को होटल का पता दे ही रहे थे कि चुङ्गी का मुन्शी आ गया। अञ्जना ने देख लिया कि उस सफ़ेद पोश के इशारे पर आया है।

मुन्शी ने हरी पेटी की जांच का आग्रह किया।

स्वागत कर्ता बिगड़ पड़े—'जानते हो कौन है ये ?'

मुन्शी थोड़ा सा झिझका।

देशराज ने तुरन्त एक पेटी की ओर हाथ बढ़ाया और हँस कर बोला, 'आजकल कोई किसी की इज्जत की परवाह नहीं करता।'

उसने पेटी खोल कर दिखलानी शुरू कर दी। उसमें फल ही फल निकले। जरा तीव्र स्वर में कहा, 'और दिखलाऊँ ? अपनी और अपनी म्यूनिस्पैलिटी की खैर मनाये रखना।'

'अब नहीं देखना है। चारों पेटियों के फलों की चुङ्गी चुका कर तशरीफ़ ले जाइये। माफ़ कीजियेगा,' फ़र्ज़ निभाना पड़ा,—मुन्शी ने अपनी झेंप साफ़ की, चुङ्गी का कर लिया और तीखे नेत्रों पुलिस अफ़सर को देखता चला गया। शेष पेटियों के खुलवाने की आवश्यकता पुलिस अफ़सर ने भी अवगत नहीं की।

अञ्जना एक कॉलेज के कुछ व्यक्तियों को पहले से जानती थी। उनके द्वारा उसने तीसरे पहर एक समारोह किया। विद्यार्थी प्रचुर संख्या में आये। उन्हीं के यहाँ की एक लड़की फ़िल्म जगत में पहुंच गई और अब किसी फ़िल्म निर्माण की योजना में मग्न है ! किसी न किसी रूप

में फिल्म इन सबके मन में बसा हुआ था। अध्ययन और अध्यापक के प्रति उपेक्षा, फ़िल्म तथा फ़िल्म परी के प्रति निष्ठा उन सब में थी ही, कुछ ऐसे थे जो रात भर में फ़िल्म के चांद बन जाना चाहते थे और खूब शृङ्गार करके आये—कुछ लड़के और थोड़ी सी लड़कियाँ भी।

इधर से फलों की पेटियां खाली हुईं, उधर से मन की मौजें और आकांक्षायें। उस दिन के समारोह में कोई भी नहीं चुना गया!

अञ्जना ने आशा दिलाई—'यह समारोह अन्तिम नहीं है। फ़िर भी कभी आऊँगी; फ़िल्म निर्माण बड़े दायित्व और व्यय का काम है। सम्भव है आप लोगों में से ही एक दिन कुछको चुन लूँ परन्तु क्षेत्र को अभी थोड़ा सा और टटोलना है।'

वह पुलिस अफ़सर इस समारोह में भी उपस्थित था। उसने देख लिया कि पेटियों में से फलों के सिवाय और कुछ नहीं निकला; बिल-कुल रीत गई थी।

उसी समय लखनऊ की एक पुरानी बारहदरी में ज़मीदारों का अधिवेशन हो रहा था। ऐसा लगता था जैसे किसी टूटे हुये अनाथालय के लोगों का जमाव हो। युगों की परम्पराओं में पले हुये हमारे हक़ लूटे जा रहे हैं! परिश्रम, बुद्धि और पराक्रम से कमाई हुई हमारी सम्पत्ति उजाड़ी जा रही है!! अब हमारा क्या होगा? हमारे असंख्य आश्रित किसके होकर जीवन बितायेंगे? समाज के स्थायित्व और गौरव के स्तम्भ हमीं रहे हैं; हमको गिरा देने से समाज अब कहाँ टिकेगा? देश में साम्यवाद, समूहवाद के प्रवाह को रोकने वाली मोटी पुख्ता दीवार हम ही रहे हैं; उस दीवार को ज़मींदोज़ करके सरकार समूहवाद के प्रवाह को प्रगति दे रही है! बातचीत और व्याख्यानों का यही सार था। विख्यात समाचार पत्रों के सम्वाददाता एक विशिष्ट स्थान पर बैठे काररवाई को आँकते जा रहे थे। देशराज का ध्यान उन पर अधिक गया। बोलने का अनुरोध किया गया तो उसने सभा प्रधान को थोड़ा सा और पत्रों के सम्वाददाताओं को विशेषकर सम्बोधन किया।

वह जो कुछ बोला उसमें एक अङ्गरेज़ की लिखी हुई पुस्तक की एक बात का, जो उसने कालेज में पढ़ी थी, अपने मुहाविरे में उपयोग किया—

'ज़िमींदारी प्रथा प्राचीन नहीं है। जब शकों ने हमारे देश में अपना राज्य जमा लिया तब गाँव के मुखिया और पटेल को लगान वसूली के लिये अपना नम्बरदार बना लिया और वसूली पर उन्हें कमीशन के रूप में ज़िमीनें दे दीं। उनके पहले गाँव की सारी भूमि उसके जोतने वाले किसानों की होती थी, कोई बेदखल नहीं हो सकता था। शकों के राज्य काल में भूमि किसानों की न रहकर राजा की हो गई। जब एक राजा की जगह कई सामन्त, सरदार, राव जी और रावसाहब हो गये, तब भूमि के मालिक वे बन गये। फिर आये यहाँ मुसलमान। उन्होंने अपने राज्य काल में इसी प्रथा को जारी रक्खा। उनके बाद अङ्गरेज़ों ने अपने स्वार्थ के लिये इसे पाला पोसा। अधिकांश ज़िमींदारियों का इतिहास ज़बरदस्ती, लूटमार और साहूकारी के दाव पेचों से बना है। आप लोग नाहक़ की चिल्लपों करते हैं कि अब हमारा क्या होगा? करने की ठान लो तो बहुत से काम हैं। मैं खुद बराबर कुछ न कुछ किया करता हूँ। कारखाने खोलिये, फ़िल्म कम्पनियाँ बनाइये; साथ ही खेती करते रहिये। मुझे तो सहकारी कृषि समितियों में विश्वास है। उन्हें अपनाइये। ये न रुचे तो मशीनों से खेती करिये। सहकारी समितियों से बड़ी बड़ी सीरों खुदकाश्तों को अलग रखने का एक मात्र औचित्य उन्हें वैज्ञानिक साधनों द्वारा आदर्श फ़ार्म बनाने में है। प्राचीन काल में ज़िमींदारों ने सङ्गीत, चित्र और अन्य ललित कलाओं की ज़रूर बहुत रक्षा की, परन्तु अङ्गरेज़ों के काल में—'

सभा प्रधान की घण्टी बजी। श्रोता तो बीच बीच में ठोकते ही जाते थे, अब क्षुब्ध हो गये।

'बैठ जाओ! बैठ जाओ!!'

'सरकार का ख़ुशामदी!'

'सरकार का भांड़!'

'आवारा !'

'नेताओं का पिट्ठू !'

समाचार पत्रों के सम्वाददाताओं ने किसी व्याख्याता के भाषण के इतने नोट नहीं लिये जितने देशराज के भाषण के लिये। वह उनकी ओर मुस्कान के साथ देखता हुआ जा बैठा। उन आवाज़ों पर उसे जरा भी खिन्नता नहीं थी। केवल एक उत्सुकता थी—यदि किसी प्रकार इन सम्वाददाताओं को अपना नाम और भाषण का सार मोटे शीर्षक और बड़े अक्षरों में छपवाने के लिये राजी कर सकूं तो काम बन जाय। दूसरा व्याख्याता जब तक मञ्च पर आवे, कोई ज़ोर से कोई धीमे स्वर में कहते रहे—

'गुण्डा है ! यहीं की एक वेश्या को लिये बाप की कमाई उड़ाता फिरता है !'

'कहीं से एक खूबसूरत लड़की को भगा लाया है। बिलकुल आवारा है।'

'नेता बनने की फ़िक्र में है जिससे सरकारी खजाने में से रक़म हाथ लग जाय !'

'आवारागर्दी छिपाने के लिये बका है कमबख्त ने यह सब !'

'इतना कन्जूस है कि चन्दे में एक कौड़ी नहीं दी। उसी से बचने के लिये विरोध किया है नालायक़ ने !'

'ज़िमींदारों का कलंक !'

जैसे ही दूसरे व्याख्याता का भाषण शुरू हुआ, देशराज बैठक को छोड़कर चला आया। सम्वाददाताओं ने नोट कर लिया कि ज़िमींदारों के रोष को अंगूठा दिखलाते हुये देशराज जी बाहर चले गये !

जब अञ्जना से मिला उसने अधिवेशन का हाल विस्तार के साथ सुनाया। अञ्जना मोदमग्न हो गई—

'तुमने कमाल किया ! ज़िमींदारों और उनकी सभा से हमें मिलना क्या ? तुम्हारा भाषण पत्रों में छपेगा ही। अधिकारी पढ़ेंगे—'

देशराज ने वाक्य की पूर्ति की,--'और उनकी आबकारी-पुलिस को भी कुछ सोचना पड़ेगा। इसी उद्देश्य से तो मैं बोला था। बात बन गई और चन्दा देने से बचे। पर आगे भी हम लोगों को अपने व्यवसाय की उन्नति के लिये काफ़ी सावधानी बर्तने की ज़रूरत है।'

अञ्जना ने अपने समारोह का हाल सुनाया।

देशराज ने बड़े हर्ष के साथ टीका की,--'तुम्हारा काम क्या कम रहा। शायद मेरे से अधिक लाभदायक। वह पुलिस अफ़सर अपने बड़ों को रिपोर्ट देगा--फ़िल्म वाली या गायिका हैं। पेटियों में फल भर कर लड़के लड़कियों में बांटती फिरती हैं।'

दोनों एक दूसरे की सराहना करते करते नहीं अघा रहे थे।

देशराज उन सम्वाददाताओं से नहीं मिल पाया। पर हुआ वही जो उसकी चाह थी। दूसरे दिन कई समाचार पत्रों के विशेष स्थानों में मोटे मोटे शीर्षक और बड़े बड़े अक्षरों में उसके भाषण का सार प्रकाशित हुआ। दूसरे स्तम्भ में अञ्जना के समारोह का समाचार छपा। उसने उन सब पत्रों को अच्छी तरह रख लिया।

दो तीन दिन लखनऊ रहकर वे दोनों अन्यत्र चले गये।

[३०]

अञ्जना और देशराज उत्तर प्रदेश के एक ऐसे क्षेत्र से बाहर हुये जहां सरकारी देखरेख में अफ़ीम की खेती होती है। अबकी बार उन्होंने नाव से यात्रा की। नाव बड़ी थी, ऊपर के खण्ड में दो छोटे छोटे, परन्तु हवादार, कमरे भी थे। एक में बैठने उठने और सामान रखने की काफी गुञ्जाइश थी। साथ में वे चार हरी पेटियां। दोनों मज़े में जा बैठे। नांव छूटने में अभी थोड़ी देर थी। कमरे में दोनों अकेले थे। नाव पर माझियों और यात्रियों की चहल पहल थी। वे धीरे धीरे बातें कर रहे थे।

'क्यों जी इसकी खेती नाहरगढ़ में क्यों न करवाई जाय? टोह लगाने वालों से दूर, निराला स्थान और ज़िमीन उपयुक्त।' अञ्जना ने कहा।

देशराज चौकन्ना होकर बोला, 'मुश्किल है।'

'क्या मुश्किल है?' अञ्जना ने एक ज़िले के ऐसे गांव का नाम लिया जहां चोरा चोरी अफ़ीम की खेती की जा रही थी।

'वहां तो गुलाब के बड़े भारी बाग़ में बड़ी हिकमत के साथ खेती हो रही है। थाना, पुलिस, रेलवे स्टेशन सब सिर के ऊपर, फिर भी बराबर काम चलाया जा रहा है। नाहरगढ़ में तो कोई दिक्कत ही नहीं। वहां होने लगे तो इधर उधर का यह भटकना और बहुत सी जोखिम समाप्त हो जाय।'

'यहां की यात्राओं में मुझे जो मज़े तुमसे मिलते हैं और सब तरह के लोगों की जो ललचाई निगाहें हम लोग यों ही बटोर लेते हैं सो उस पहाड़ी जङ्गली इलाक़े में कहां?'

'तुम तो मज़ाक करते हो। बतलाओ वहां क्यों सम्भव नहीं?'

'मेरी प्यारी—अमर—'

इस सम्बोधन पर तुरन्त अञ्जना ने आंखें तरेरीं। देशराज गम्भीर हो गया।

बोला, 'नाहरगढ़ निराला होने पर भी इस काम के लिये अरक्षित है। कोई न कोई बड़ा आदमी उनके यहां आता रहता है। जैसे ही उन्होंने नई तर्ज का बाग बगीचा लगाया कि उस पर आँखें दौड़ेंगी। राजा साहब स्वयं देखभाल कर नहीं सकते। नौकर रहस्य को छिपा नहीं सकेंगे। बात फैलते समय नहीं लगेगा। जहाँ का तुमने नाम लिया वहाँ तो कई चतुर खिलाड़ी उस काम को कर रहे हैं। यहां वहां में बड़ा अन्तर है।'

किसी के आने की आहट पाकर अञ्जना ने कहा, 'हाँ सम्भव है, संभव है। यात्रा तीन चार घंटे की तो है ही।'

अन्तिम शब्दों के पूरे होने के पहले ही एक सज्जन वेशधारी ने कमरे में पैर रक्खा। बिस्तरों का बंडल हाथ में लिये था। छरेरी देह, आंखें पैनी।

बड़ी नम्रता के साथ बोला, 'क्षमा कीजियेगा, दूसरे कमरे में स्थान नहीं। आवश्यक काम और दूर की यात्रा। आपको कष्ट तो होगा, पर एक कोने में पड़ा रहूँगा।'

वे इनकार नही कर सके। साथ में खपाना पड़ा। उसने अपना जो निर्दिष्ट स्थान बतलाया वह इनकी यात्रा से लम्बा पड़ता था।

माघ के महीने की ठंड कड़ी पड़ उठी थी। ऋतु की चर्चा हुई। फिर परस्पर परिचय की बात आई। फ़िल्म निर्माण के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के अनुभव संचित करने का यात्रा-प्रयोजन बतलाते ही आगन्तुक खिल उठा। देशराज ने उन समाचार पत्रों की प्रतियाँ उसे पढ़ने को दीं जिनमें उनके भाषण का सार और अञ्जना के समारोह का समाचार छपा था। वह पढ़ने लगा। नाव चल पड़ी। आगन्तुक पढ़ते पढ़ते प्रसन्न हो रहा था, उसने एकाधबार बाहर के शोर से खिन्न-सा होकर आँख हटाई और आतुरता के साथ पेटियों पर गड़ाई--मानो गिन रहा हो, और, 'कितना चीखते हैं ये लोग!' कहकर फिर पत्र पढ़ने लगा। अञ्जना और देशराज ने एक दूसरे से चितवन जोड़ी। देशराज एक क्षण विचार-

मग्न रहा, नाक के अग्रभाग पर उँगली फेरी और बोला, 'देवी जी, बाहर चलो ना। घंटे आध घंटे शोर करने वालों की बातें सुनें, उनमें से भी कुछ न कुछ निकाल कर रहेंगे और धूप मुफ़्त में।'

अञ्जना ने कहा, 'बहुत अच्छा विचार है। चलिये।' और खड़ी हो गई।

देशराज ने आगन्तुक से पूछा, 'आप भी धूप में चलेंगे ? नदी की नीली धार, किनारों का हरा भरापन, यात्रियों के शोर का प्रसङ्ग— सभी में रंगत है। है इच्छा बाहर आने की ?'

'मुझे तो ये पत्र बड़े अच्छे लग रहे हैं। यहीं बैठ कर पढ़ना चाहता हूँ।' उसने उत्तर दिया।

देशराज ने कहा, 'यदि आप आवें तो किवाड़ बन्द कर आइयेगा। वैसे तो हमारे पास कोई क़ीमती सामान नहीं, पर शायद कोई आ जाय और कपड़े लेकर चम्पत हो जाये तो ज़रा परेशानी हो जायेगी, क्योंकि हम लोग कम से कम एक घंटे तो बाहर रहेंगे ही।'

उसने रस घोला,'मैं यहीं हूँ। आप इत्मीनान से सैर करें।' वे दोनों बाहर चले गये और ऐसे ठौर पर जा खड़े हुए जहाँ से उस कमरे की खिड़की में होकर भीतर की कुछ झाँकी ले सकते थे। नदी के विस्तृत पाट में नीले जल की चौड़ी धार दोनों किनारों की हरी वृक्ष कुञ्जे वे इतने ध्यान के साथ नहीं देख रहे थे और न यात्रियों के शोर मे से किसी पदार्थ का संचय कर रहे थे जितने ध्यान के साथ जब तब आँख की कोरों उस खिड़की में होकर कुछ खोज रहे थे। एक बार वह बहुत झुका हुआ दिखाई पड़ा, फिर बहुत कम।

इनके बाहर आने के कुछ ही मिनिट पीछे आगन्तुक ने समाचार पत्र रख दिये। उझक कर खिड़की में से देखा। एक जेब में रिवाल्वर सँभाला और दूसरी में से चाभियों का गुच्छा निकाला, झटपट हरी पेटियों को एक एक करके खोला। उनके फल अलग रख दिये और भीतरी खंड की जांच में संलग्न हो गया।

बीस पच्चीस मिनिट हुये होंगे कि देशराज ने अञ्जना को आंख का संकेत किया। अञ्जना आगे आगे और देशराज पीछे ऐसे कोण से कमरे की ओर बढ़े कि कमरे की खिड़की में से दिखलाई न पड़ सकें।

कमरे के दरवाज़े पर अञ्जना पहले पहुँची। एक पेटी के फल बिखरे पड़े थे, दो के ढक्कन खुले और तीसरी बन्द।

वह सकपका गया, परन्तु क्षण भर के लिये ही। जेब में रिवाल्वर पर हाथ गया, लेकिन उसे निकाला नहीं। खड़ा हो गया।

अञ्जना के पीछे देशराज आ खड़ा हुआ।

अञ्जना के होठों पर व्यङ्ग की मुस्कान आई।

तीखे स्वर में बोली, 'क्या भूख बहुत लगी है जो फलों पर टूट पड़े ?'

आगन्तुक का चेहरा फक।

देशराज ने कहा,—'मैं पहले ही कह गया था कि हमारे पास कोई क़ीमती सामान नहीं है। फिर भी आप न माने ! अरे भाई, वैसे ही मांग लेते। एक दो रुपया तो हम यों ही दे देते।'

अञ्जना के चेहरे पर तमतमाहट आई।

'जो कुछ गहना पत्ता हमारे पास है उसे पहने रहती हूँ। उन पेटियों में से तो कुछ निकला न होगा। या कुछ हाथ पड़ गया ? पुलिस के सिपाही को बुलाऊँ ? नाव पर है।'

अपरिचित ने गले को साफ किया।

धीमें किन्तु अकम्पित स्वर में बोला 'क्षमा चाहता हूँ। आप मेरी जगह होते तो आप भी यही करते।'

देशराज ने व्यङ्ग किया,—'पर मैंने तो जेबकटी विद्यालय या ताला तोड़ कला मन्दिर के कभी दर्शन तक नहीं किये, वहां शिक्षा पाने का सौभाग्य तो बहुत दूर की बात है।'

'सुनिये,'—अब अपरिचित का कंठ कुछ तीखा पड़ा।

वे दोनों भीतर आ गये। पर खड़े इस तरह हुये जैसे उसके निकल भागने का निरोध करने के लिये तुल गये हों।

'कहिये, कुछ बाकी है ?' अञ्जना कूकी।

'पहली बात तो यह कि मैं हृदय से आप लोगों का क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं ग़लत लीक पर चला।'

'यानी आपके गिरोह वालों ने आपको ग़लत बतलाया कि हमारे साथ ढेरों सा सोना चांदी और रुपया है, क्योंकि ये एक बड़े ज़मींदार हैं और मैं फ़िल्मों में काम करती हूँ।' अञ्जना ने फिर व्यङ्ग्य किया।

'दूसरी बात यह कि,'—उसने जारी रक्खा,—'मैं भुक्खड़, चोर या गिरहकट नहीं हूँ। इन पेटियों में अफ़ीम होने का सन्देह था, इसलिये खोलकर जांच की, क्योंकि मेरी ड्यूटी है—मैं आबकारी पुलिस का अफ़सर हूँ।'

'ओह !'

'ओह !!'

उन दोनों ने आश्चर्य प्रकट किया।

'तो आपको उन समाचार पत्रों में छपी हुई बात का विश्वास नहीं हुआ जो आपको बड़ी अच्छी लग रही थी !' देशराज बोला। उसका स्वर भर्रा गया था।

'क्षमा कीजियेगा,'—पुलिस अफ़सर ने कहा,—'हम लोग पत्रों में छपी हुई दुर्घटनाओं में तो कुछ विश्वास कर लेते हैं, परंतु अन्य समाचारों को बहुत महत्व नहीं देते।'

'इसका क्या प्रमाण है कि आप पुलिस अफ़सर हैं ?' अंजना ने प्रश्न किया।

'प्रमाण मेरी जेब में है। तसदीक़ कर लीजिये पुलिस के उस सिपाही से जिसको आप रिपोर्ट करने जा रहे थे।' उसने उत्तर दिया, और जेब से सीटी निकाल कर बजाई।

अविलम्ब वर्दीवाला पुलिस का सिपाही और बहुत से यात्री आ गये। नमें सादा कपड़े पहिने आबकारी पुलिस के भी कुछ आदमी थे। वर्दीवाले सिपाही ने अपरिचित को सैनिक प्रणाम दिया।

अपरिचित ने आदेश के स्वर में कहा, 'जाओ, कुछ नहीं निकला। हम भ्रम में पड़ गये।'

वे सब चले गये—अन्य यात्रियों की भीड़ को भी हटना पड़ा।

देशराज को सहमा हुआ ताव था। बोला, 'तो क्या आपको किसी भी भले आदमी की नङ्गा-झोली लेने का अधिकार है?'

'मैं भी यही पूछना चाहती थी।'

पुलिस अफसर ने विनय के साथ उत्तर दिया,—'मैं आप से पहले ही क्षमा माँग चुका हूँ। मेरे जीवन में यह ग़लती पहली बार हुई है। फिर भी मैंने सब के सामने आपकी खाना-तलाशी नहीं ली जिसका मुझे क़ानून ने अधिकार दे रक्खा है। आप लोग यकायक न आ जाते तो आपको या किसी को भी न मालूम पड़ता कि क्या हुआ। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे मन में आपके सम्बन्ध में केवल भ्रम ही था।'

देशराज को धन्यवाद देना पड़ा। अञ्जना मुंह बनाये बैठी रही। नाव का पहला घाट आ गया था और वह किनारे लग गई। पुलिस अफ़सर अपने सिपाहियों के साथ उतर गया। जाते समय उसने शिष्टाचार किया।

जब अकेले रह गये, वे दोनों प्रसन्न थे।

विजय-गर्व में देशराज बोला, 'अपनी योजना कभी असफल नहीं हो सकती। मैं जानता था कि हम लोग पछियाये जा रहे हैं, इसलिये—भई, ख़ूब रहा!'

अञ्जना हँस पड़ी।

'इसलिये पेटियों में फल ही फल भर लिये! क्या सूझ है तुम्हारी!!

'मुझे वहीं से शङ्का हो गई थी, बस माल का भरना मुल्तवी कर दिया। अब चैन के साथ मनचाहा काम करो। एक को गधा बना लिया इसलिये दूसरे पीछा नहीं करेंगे।'

'तभी तो मेरा रोम रोम तुम्हारे लिये उमगता रहता है।'

'इस इलाक़े में फिर से आने के लिये कोई नया कारण होना चाहिये।'

'अबकी एक केमरा लेकर आयेंगे। जिन अनुभवों का संग्रह किया है उनकी पृष्ठभूमि के लिये सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र भी तो लेने चाहिये। फ़िल्म वैसे ही तो बन नहीं जाते!'

[३१]

एक पखवारे के बाद अञ्जना और देशराज लखनऊ स्टेशन से बनारस के लिये सन्ध्या की गाड़ी में—ऊँचे दर्जे के डिब्बों में—अलग अलग जा बैठे। देशराज ऐसे में जहां कुछ यात्री पहले से आ गये थे, अञ्जना ऐसे छोटे से में, जो खाली था। सामान अञ्जना के साथ था; अञ्जना ने फलों की भरी उन पेटियों को डिब्बे में ऐसी जगह रखवा लिया था, जहाँ वे बहुत स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे थे। सामान ज़रा फैलाकर रक्खा था।

गाड़ी चलने को ही थी कि एक टोप सूटधारी अञ्जना के डिब्बे में आ गया। उसके पास बिस्तरों के बंडल के सिवाय और कोई सामान नहीं था।

टोपधारी ने अपना बिस्तर रखवाने के पहले अञ्जना के सामान को आँख गड़ाकर देखा।

बोला, 'देवी जी क्षमा करें तो आपका सामान एक तरफ़ रखवा दूं, दूर जाना है, रात में सोने के लिये थोड़ीसी जगह कर लूं?'

'कोई हर्ज नहीं। आप कहां जा रहे हैं?'

'बनारस, और आप?'

'मैं भी बनारस जा रही हूँ।'

वह अपने हाथों अञ्जना का सामान उठाकर एक क्रम से रखने लगा। पहले वे पेटियां उठाईं। अञ्जना सास साधे देखने लगी।

'आप कष्ट न करें, मज़दूर तो है।' अञ्जना ने कहा। मज़दूर आगे बढ़ा।

टोपधारी बोला, 'कोई बात नहीं। सामान रख दिया गया। मज़दूर पैसे लेकर चला गया। गाड़ी चल दी।

अञ्जना ने देखा यात्री खिड़की की ओर मुंह किये हुये भी तिरछी आँखों उसे देखता जाता है। पेटियाँ उसके सामने रक्खी थीं। अञ्जना विचारमग्न हो गई।

यात्री ने जेब से सिगरिट निकाला।

'अनुमति दें तो मैं सिगरिट पी लूँ ?' उसने पूछा।

अञ्जना के होठों पर मदभरी मुस्कान आ गई, चितवन भी वैसी हो गई।

'मैं पीती नहीं हूँ परन्तु उसके धुये से मुझे कोई परहेज़ नहीं है।' अञ्जना ने कहा।

'बहुत बहुत धन्यवाद।'

उसने सिगरिट जलाया और पीने लगा।

फिर परिचय की बात चली। उसने अपना नाम और काम बतलाया—नहर विभाग में अफ़सर है। अञ्जना ने अपना व्यवसाय फ़िल्म।

नहर वाले की रीझ विकसित हुई।

बोला, 'तभी आप इतनी असाधारण हैं। मुझे अचम्भा हो रहा था कि ज़नाने डिब्बे में न बैठकर आप यहाँ अकेली यात्रा कर रही हैं!'

'अब तो अकेली नहीं हूँ। जानती थी कोई न कोई आयगा। जनाना डिब्बा भरा हुआ देखा तो यहाँ चली आई।'

'निवास स्थान क्या बनारस में है ?'

'नहीं, लखनऊ में है। इलाहाबाद, बनारस फ़िल्म के काम से जा रही हूँ।'

'अभी तो सीधी बनारस ही जा रही हैं न ?'

'और आप ?'

'सीधा बनारस, ज़रूरी काम है कल।'

'इलाहाबाद में छेड़ न ली गई तो सीधी बनारस मैं भी।'

'यही तो आप लोगों की कठिनाई है। बनारस में कहां ठहरियेगा?' अञ्जना ने एक होटल का नाम बतलाया।

नहर अफ़सर के मन में बेतकल्लुफ़ी जागी। हरी पेटियों की ओर संकेत करके बोला, 'लखनऊ की क्या कहना। सब तरह के फल जब चाहो तब मिल जाते हैं। आपने तो ढेर के ढेर खरीद लिये! वैसे बनारस में भी मिल जाते हैं।'

अञ्जना का माथा ठनका, पर वह संयत रहना जानती थी।

'भले लगे तो इतने ले लिये। वैसे मैं जानती हूँ कि इलाहाबाद, बनारस में भी बढ़िया मिल जाते हैं।' नहर अफ़सर ने पेटियों पर आंख गड़ाई।

'आपने सजाये बड़ी खूबसूरती के साथ है!'

अञ्जना ने अपनी मुस्कान का फन्दा फैलाया।

'सौन्दर्य का सृजन हमारा काम जो ठहरा।'

वह मुस्कराया।

थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

नहर वाला सिगरिट पीता रहा।

'आपने किस किस फ़िल्म में काम किया है?' उसने प्रश्न किया। अञ्जना उत्तर के लिये तैयार थी।

'मैंने कई फ़िल्मों में काम किया। प्रधान भूमिका अभी तक नहीं मिली है। फ़िल्मी दुनियाँ में भी सिफ़ारिश इत्यादि चाहिये। मैं बी० ए० पास हूँ। कुछ रुपया इकट्ठा कर लिया है, अब अपना ही एक फ़िल्म बनाने जा रही हूँ जिसमें मेरी प्रधान भूमिका होगी। अधिक रुपया इकट्ठा करने और कुछ पात्रों की खोज में निकल पड़ी हूँ।'

अञ्जना ने अपनी मुस्कान, चितवन और बात रस में घोली। अफ़सर भी रस में आ गया।

'आप स्वयं गाती हैं फ़िल्म में या दूसरों के गले पर चलती हैं?'

'मैं स्वयं गाती हूँ और तरह तरह के नाच भी जानती हूँ। नये फ़िल्म में काम देखियेगा मेरा।'

'क्या नाम होगा आपके फ़िल्म का?'

'गोरी की चोरी।'

'ओफ़ हो ! नाम तो आपने ग़ज़ब का रक्खा है !!

'इस तरह के नामों बिना अच्छे अच्छे फ़िल्म तक पिछड़ जाते हैं। मेरा यह पहला प्रयत्न होगा; चाहती हूँ कि बण्डल गोल न हो जाया।'

नहर अफ़सर ने देखा भाषा भाव सब उस विलक्षण संसार के हैं जिसे फ़िल्म-जगत् कहा जाता है।

'कहानी क्या है 'गोरी की चोरी' की ?'

'यह लीजिये ! कहानी बतला दी तो फ़िल्म का सारा रहस्य गांठ में से निकल गया। अभी तो इतना ही बतला सकूंगी कि फ़िल्म की नायिका गोरी का अभिनय मैं ही करूँगी।'

'नायक का अभिनय कौन करेगा ?'

'किसी नये पुलिस की तलाश में हूँ। छकाने वाली एक स्त्री की भूमिका और है। उसकी खोज में हूँ। नये चेहरे लाना चाहती हूँ गोरी की चोरी में।'

फिर अञ्जना ने यकायक प्रश्न किया,—'आपने कभी नाटक में पार्ट किया है ?'

नहर अफ़सर एक क्षण के लिये असमञ्जस में पड़ गया। थोड़ी सी झेंप आई। फिर सँभल कर बोला, 'किया है।'

'मेरा यह प्रयोजन नहीं कि आपको नहर से खींच कर बम्बई के समुद्र किनारे ले जाऊँ पर आप में अच्छे एक्टर के लक्षण हैं इतना तो बिना हिचक के कह सकती हूँ। बनारस में मिलने की कृपा करेंगे ? आपके फ़ोटो लूंगी।'

'आपके साथ कोई फ़ोटो-ग्राफ़र है ? न हो तो बनारस में कई बहुत अच्छे हैं।'

'उनसे काम नहीं चलेगा। फ़िल्म के लिये चेहरों का भिन्न भिन्न कोणों से परीक्षण होता है उसकी कला अलग है। मेरे साथी करेंगे यह काम।'

'कहां हैं ?'

'दूसरे डिब्बे में।'

बातों ही बातों में एक स्टेशन आया जहाँ गाड़ी ठहरी। देशराज आया। उसके आते ही अञ्जना ने नहर अफ़सर को बतलाया,—'ये हैं हमारे कैमरामैन। बड़े ज़िमीदार और ऊँची शिक्षा पाये हुये। हमारे कुछ साथी इलाहाबाद आ गये होंगे। सम्भव है स्टेशन पर मिलें।'

फिर उसने नहर अफ़सर का परिचय दिया। सामान्य शिष्टाचार के उपरान्त देशराज ने अञ्जना से कहा, 'कोई तकलीफ़ तो नहीं है ?'

'बिलकुल नहीं। यात्रा मज़े में कट रही है।' होटल वाला आया। उसने भोजन की बात पूछी। अञ्जना और देशराज ने इन्कार कर दिया। नहर अफ़सर ने अपने लिये मंगवाया। देशराज चला गया। अञ्जना ने एक पेटी के ऊपर से फल निकाल कर नहर अफ़सर को दिये।

अँगड़ाई लेकर बोली, 'मैं लेटना चाहती हूँ। आप भोजन कर चुकें तो भीतर की चिटकनियाँ चढ़ा लीजियेगा।'

'ज़रूर' उसने आश्वासन दिया।

अञ्जना लेट गई। गाड़ी चल पड़ी। अञ्जना आँखें मूंदे भी देख रही थी। नहर वाला भोजन से निवृत्त होकर सिगरिट पीते-पीते अञ्जना की रूपरेखा को निरख रहा था। अञ्जना कनखियों परख रही थी। नहर अफ़सर लेटा नहीं—बैठा रहा।

कुछ समय उपरान्त अञ्जना उठ बैठी।

'नींद नहीं आ रही है, कुछ पढ़ूँगी। आप लेटे नहीं।'

'अब लेटता हूँ।'

अञ्जना ने अपने एक बक्स में से अंग्रेज़ी की पुस्तक उठाई और पढ़ने लगी। नहर अफ़सर ने बिस्तर लगाये और पड़ गया और थोड़ी देर में सो गया।

गाड़ी अपने समय पर इलाहाबाद जा पहुँची। अञ्जना सजग थी। उसने फाटक खोला, ज़रा सा झांकी थी कि देशराज आ गया। सामान उतरवाया और चल दी। नहर अफ़सर मोटे कम्मल में लिपटा सोता रहा।

गाड़ी देर तक ठहरी। जब नहर अफ़सर की आंख खुली डिब्बे में किसी को न पाकर हड़बड़ाया। बाहर जाकर एक पुलिस वाले को बुलाया। खुसफुस में कुछ बातचीत की। पुलिस वाले ने नाहीं का सिर हिलाया और प्रणाम करके चला गया। नहर अफ़सर ने सोचा, जैसे वे लोग ऊपर से दिखलाई पड़े संभव है हों भी वैसे ही, बनारस तो आवेंगे ही। गाड़ी चली गई और वह उसी डिब्बे में। अञ्जना और देशराज बम्बई जाने वाली गाड़ी में जा बैठे और मानिकपुर पर उतर पड़े। वहां से सुहाना की दिशा में जाने वाली गाड़ी बदली। घर के पास वाले स्टेशन पर जगनू को पहले ही तार देकर मोटर मंगा ली थी। स्टेशन वालों का चाय पानी लेकर और कुछ फल देकर वे दोनों सुहाना पहुँच गये।

'तुमने कमाल पर कमाल किये!' देशराज ने एकान्त में कहा।

अञ्जना बोली, 'मैं समझती हूँ कि वह वास्तव में नहर विभाग का ही कोई अफ़सर था।'

'तुमने विस्तार के साथ जो कुछ सुनाया उससे मैं दूसरे ही निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ।'

'सोच रहा हूँ कि पेटियों का रङ्ग बदल दिया जाय तो कैसा रहे?'

'अरे नहीं। जैसा है वैसा ही चलने दो, नहीं तो सन्देह बढ़ेगा।

'पर यह रङ्ग नाम बहुत पा गया होगा।'

'जो लोग हमें पहिचानते हैं, यानि जिन्होंने तुम्हारा रूप देख लिया है और मेरे अभिनय पर मुग्ध हो गये हैं वे रङ्ग के परिवर्तन से कहीं कुछ और न सोचने लगें। अभी तो ऐसा ही चलने दो।'

देशराज की शङ्का का समाधान नहीं हुआ, परन्तु उसने बात जहां की तहां रहने दी।

माल खपाने की चर्चा होने लगी। अन्त में निश्चय किया कि बाघराज के हाथ में सब की सब पेटियां नहीं देनी चाहिये, एक एक करके दी जावें और दाम जहां तक हो सके, पेशगी ले लिया जावे मुनाफ़े का हिसाब अन्त में; बाघराज को सूचना दे दी जावे और फ़सल कट जाने के बाद सावधानी के साथ काम किया जावे, भले ही कुछ देर हो जाय।'

'गांव के पहलू को भी सँभाले रहना है, बहुत दिन बाहर रहे।' देशराज ने कहा।

अञ्जना ने असलाये स्वर में समर्थन किया,—'हाँ, कुछ दिनों थोड़ा सा विश्राम भी कर लें।'

[३२]

फागुन का महीना समाप्त हो गया। होली भी हो ली। दिन के दूसरे तीसरे पहर गरमी पड़ने लगी। सन्ध्या भीनी भीनी सुगन्धियों से भर उठी—नीम और करोंदी के फूल डाल डाल में फूट पड़े। आम भी वहाँ थोड़े से थे। मौर से छा गये और कोयलों को बुलाने लगे। बँधी वाले खेतों के चने हरी पीली घेंटियों और छोटे छोटे लाल फूलों से लद गये। अलसी, भरे दानों पर भी, नीले फूलों में इतरा रही थी। जहाँ बन्धी नहीं थी वहां के चनों के पत्ते सूखकर झड़ उठे, उनकी घेंटियों की फुकली पीली साँवली पड़ गई। गेहूँ सुनहली बालों से लदकर झुक गये। दोपहर की गरमी में जब नीम करोंदी के फूलों और आम के मौर की महक मन्द पड़ जाती, तब गेहूँ, चने और अलसी के खेतों की सोंध किसान को संदेसा सा दे उठती।

ये सब खेत दूर से लक्ष्मी जी के क्षीरसागर से लहराते दिखते थे, परन्तु उनमें भीतर जाकर देखो तो वह सागर बिलकुल उथला। गेहूँ और चने के पौधे दूर दूर; या तो बहुत सा बीज मारा गया था, या जमने के बाद सूख गया था। अलसी में कुछ जान दिखलाई पड़ती थी, लेकिन जितने दाने पड़ने की आशा की गई थी, उतने नहीं थे। खेतों के भीतर, ठोर ठोर, पौधों के ठूँठ खड़े थे—इनको गांव या जंगल के जानवरों ने चर लिया था। जाड़ों में महाबट पड़ी नहीं इसलिये न तो ये पौधे फिर उठ पाये और न उनमें प्राण पड़ पाये जो अब कटने पर आ गये थे।

खेत खेत में भी अन्तर था। सहकारी समिति के लगभग सब के सब निकृष्ट। इनसे अच्छे निजी परिश्रम वाले। सब से अच्छे सरकारी फ़ार्म वाले थे। उनसे कुछ ही कम देशराज के जो उसने सहकारी समिति में शामिल नहीं किय थ।

गांवटी और जंगली जानवरों के चरने से जो कुछ बचा था उसे अब चिड़ियाँ चुगने के लिये उमड़ पड़ीं। इनको भी सहकारी खेतों पर अधिक अवसर मिला।

पहले थोड़े से खेतों की कटाई आरम्भ हुई, जिनकी फ़सल पक गई थी और अब कटने पर आ रही थी। फिर एक दो दिन जो गरम पछाहीं हवा चली तो हरे खेत भी पीले लगने लगे। कटाई तेज़ी पर आ गई। आस पास के गाँवों से जहां या तो रबी की फ़सल होती नहीं थी कट चुकी थी चैतुये—दूसरे गाँवों में कटाई के लिये चैत में निकल पड़ने वाले नरनारी—भीड़ की भीड़ में इधर से उधर दौड़ धूप करने लगे। चैतुओं के समूहों में बैलगाड़ियां भी थीं जिन पर आटा पीसने की चक्कियाँ, रोटी पानी के लिये तसले, बाल्टियाँ, थालियां, ओढ़ने बिछौने के बिस्तर थे और ढोलकियां थी,—रात को खा पीकर थोड़ा गा बजा कर पेड़ की छांह में बहुत से ऐसे भी थे जो अपना सारा सामान एक ही पोटली में सिर पर रक्खे थे।

× × ×

सुहाना के एक सहकारी खेत की कटाई हो रही थी। मज़दूर जुटे हुये थे। जवान और बूढ़े फटे साफ़े बाँधे और फटी मैली कुचैली धोतियां पहने, नङ्गी देह हँसियों पर हँसिये चलाने में व्यग्र थे। जवानों की नसें और बूढ़ों की हड्डियां धूप में फड़क फड़क जा रही थीं। स्त्रियाँ कंछोटे लगाये चैत के गीत गा गा कर, कटाई पर चिपटी हुई थीं। उनकी काँच की चूड़ियां और क़ांसे के पटेले खड़क खड़क जा रहे थे, मानो गीत की लय को ताल देरहे हों। आठ आठ दस दस बरस के बालक तक काम पर पिले थे। मज़दूरों में छदामी और उसके परिवार के लोग भी थे। मजूरी में इनको पैसे नहीं मिलने थे, अन्न मिलना था जिसका पड़ता पैसों की सामान्य मजूरी से ढाई गुना तिगुना बैठता था। जितना काट लें उसके अनुपात में उतना कटा हुआ अन्न ले जायं। निगरानी बनमाली

कर रहा था; इस खेत के निकट ही उसका एक निजी खेत था जिसकी कटाई इसके बाद ही होनी थी।

खेत कट गया और भोजन का समय हुआ। मज़दूरों ने निमक मिर्च की चटनी; किसी को भाग्य से कैथ मिल गया तो उसकी खटाई– और गेहूँ चने की सूखी रोटी बड़े स्वाद के साथ खाई। बनमाली का भोजन डिब्बे में था। वह मज़दूरों को अविलम्ब अपने खेत पर ले जाना चाहता था। दोनों खेतों की कटाई की मजूरी संध्या समय एक साथ बटनी थी।

खाने के बाद ही मज़दूरों को बनमाली अपने खेत पर ले गया। मज़दूरों के साथ उनके छोटे छोटे बच्चे भी दौड़ गये। कोई सूखी रोटी का टुकड़ा अब भी चबा रहा था, कोई उसे मुंह में डाले चूस रहा था। बनमाली की निगरानी में यहां अधिक तत्परता थी। डांट, फटकार, बढ़ावा, पुचकार सभी काम में लाये जाये जा रहे थे। मज़दूर वैसे भी सन्नद्ध थे, ज़्यादा अन्न मिलने के लोभ में और भी झपट कर काम करने लगे।

बनमाली ने छदामी से अनुरोध किया,—'ज़रा तुम देखे रहना; मजूरी तो काफ़ी देंगे ही, काम भी अच्छा होना चाहिये।'

छदामी को निगरानी मिल गई तो उसने और उसके परिवार वालों ने अपना काम ढीला कर दिया, सभी हुकुम चढ़ाने लगे। बनमाली ने भोजन किया और निगरानी पर आ गया। छदामी पर मुखियाई सवार हो चुकी थी, इसलिये उसने हँसिया तो कम चलाया ज़बान ज़्यादा, चलाई। साँझ के समय जब मज़दूरी बँटी बनमाली ने पहले सहकारी समिति से आधे से अधिक दिन की मजूरी दे दी। चौथाई या तिहाई जो रह गई थी अपने खेत के अन्न से चुकाई।

छदामी ने कुछ अधिक माँगी।

'तुमने और तुम्हारे घर के लोगों ने सबसे कम काम किया, फिर भी मजूरी भरपूर दी। और, मेरे खेत पर काम भी बहुत हुआ, क्योंकि

दिन ही कितना रह गया था ? खाने पीने में घड़ियाँ गुज़ार दीं, फिर तुमने मज़दूरों से झंझट किया सो हमको क़सर लग गई।

छदामी ने मुंह डाल लिया।

बोला, 'जैसी आप जानो, पर हमने काम भी तो करवाया। नहीं तो आपका पूरा खेत इतनी जल्दी कैसे कट जाता ?'

छदामी सुहाना की सहकारी समिति का पञ्च था। बनमाली ने बात बना ली—

'अरे भाई, तुमको दुखी नहीं करना चाहता, कुछ और ले जाओ। मेरे घर रहा या तुम्हारे घर पहुँचा, एक ही बात है।'बनमाली ने फिर भी थोड़ा सा ही अपने खेत से दिया, बाकी सहकारी अन्न के ढेर से !

कटी हुई फ़सल गाडियों में भरवा के बनमाली ने खलियानों में पहुँचा दी।

× × ×

बाँगुर्दन में टहलराम सहकारी समिति के खेत कटवा रहा था जिनमें उसी का चक सबसे बड़ा था। मजदूर उसी मुस्तैदी के साथ काम कर रहे थे। उनमें एक हरको थी, दूसरा दमरू। हरको की मुस्तैदी में कुछ चपलता थी। वह हँसते मुस्कराते काम कर रही थी। जबसे वह ससुराल से कुटपिट कर आई, तभी से उसमें यह लक्षण अधिक दिखलाई पड़ने लगा था। कोई कहता—तभी ससुराल में नहीं निभ सकी। कोई कहता जवानी में मस्ता गई है। स्त्रियाँ अपना मत प्रगट करतीं—दूसरा घर बसाने की फ़िकर में है, सयम्वर करने वाली है। कोई कहतीं—चाल-चलन बिगड़ गया है। कोई कुछ, कोई कुछ।

हरको के कान में यह सब पड़ चुका था परन्तु उसने प्रतिवाद करने के लिये सिर नहीं उठाया। लोगों को अपने अपने मत में विश्वास होने लगा।

कभी इधर कभी उधर, हरको काम करते करते उछल सी रही थी। हँसिया खूब चला रही थी, पर टहल को यह अच्छा नहीं लग रहा था

उसने हरको को चेताया। वह दमरू के निकट काम करने लगी। स्त्रियां उससे कुछ दूर थीं, पर गाने में वह उसका साथ दे रही थी।

'तुम्हारा गला बड़ा मीठा है, हरको।' दमरू ने कहा।

'और गीत के बोल ?' हरको ने पूछा।

'बहुत प्यारे।'

'तुम्हें अच्छे लगे ?'

'बहुत।'

'काम तो ठीक कर रहीं हूँ न ?'

'बिलकुल'

'फिर भी टहल बाबू ने टोकाटाकी कर ही दी !'

'अपने ही हैं। उनका बुरा न मानो।'

'मैं तो किसी का बुरा नहीं मानती।'

'मैं कुछ कहूँ तो शायद बुरा मान जाओ।'

हरको मुस्करा कर गाना गाने लगी। जब अपनी कड़ी पूरी कर ली, बोली,—'बुरा क्यों मान जाऊँगी ?' तुम तो बहुत भले हो।'

'घर बसाओगी ?' दमरू ने बेधड़क कहा।

'कहां ?' हरको ने हँसिया चलाते चलाते पूछा।

'इसी गांव में।'

'मायके में ! गांव वाले क्या कहेंगे ?'

'क्या कहेंगे, गांव वाले गुपचुप जो कुछ किया करते हैं उससे तो तुम्हारा अपने गांव में ही घर बसा लेना अच्छा।'

'किसके साथ।'

दमरू हिचक गया। अधिक दत्तचित्त होकर हँसिया चलाने लगा। दूसरी ओर मुंह कर लिया। थोड़ी देर में दोनों फिर निकट आ गये।

हरको ने मुस्कराकर कहा, 'बतलाया नहीं ?'

'बतलाऊँगा। कटाई के लिये कल यहीं आओगी न ?'

'कल दिन भर घर पर काम है, परसों बटोले के खेत पर जाऊँगी।'

'मैं भी पहुँचूंगा। और कहीं तो न जाओगी ?'

'जैसे ?'

'जैसे देशराज के खेतों पर। न जाने तुम कहाँ होगी और मैं कहां।'

'वहां नहीं जाऊँगी। बटोले के खेत पर जाऊँगी।'

'बटोले के किस खेत पर ?'

हरको ने खेत का नाम बतलाया।

× × ×

बटोले ने अपने जो खेत बांगुर्दन समिति मे लगाये थे, उनमें से एक दूर और अलग था। दमरू के जिम्में उसकी कटाई और ढुलाई की गई। कटाई के लिये उसने अपने साथ कुछ मजदूर लगा लिये और ठीक समय पर काम समाप्त कर लिया। ढुलाई उसी की गाड़ी से होनी थी जिसपर बैठकर वह सवेरे आया था। बैलों के लिये घास के आठ दस पूले ले आया था जिन्हें वे कभी के चर चुके थे।

कटाई हो जाने पर खेत से अनाज इकट्ठा करके गाड़ी में भर दिया गया। इसके बाद मजूरी चुकाई। दमरू ने अपने लिये उतनी ही ली जितनी दूसरों को बांटी थी।

जब मजदूर चलने को हुये एक ने उससे कहा, 'जोत लो गाड़ी और चलो। थका हुआ हूँ, मैं भी उस पर कहीं लटक जाऊँगा।'

दमरू ने नाहीं कर दी,—'अनाज का बोझ ही मेरे दुबले बैलों के लिये बहुत है, पैदल चले जाओ, घर दूर नहीं है।'

दूसरों के साथ वह मजदूर भी चला गया।

दमरू ने बैलों की तरफ़ देखा। वे भूख के मारे होठ चाट रहे थे; आंखों में निहोरा था। दमरू ने इधर उधर देखा और गेहूँ चने की कटान का एक बड़ा बोझ गाड़ी में से खींचकर बैलों के सामने डाल दिया। जब तक बैलों ने अन्तिम तृण तक नहीं चर लिया, दमरू चौकस बना रहा।

× × ×

सरकारी फार्म की कटाई का काम मज़दूरों से बहुत कम, मशीनों से कहीं अधिक लिया जा रहा था। फ़सल मशीनों द्वारा काटे जाने योग्य रक़बे में नहीं थी। मजदूर ज्यादा सस्ते पड़ते परन्तु मशीनों की कटाई का प्रदर्शन करना था, इसलिये चलाई जा रही थीं। तमाशा देखने वाले आये और बहुत थोड़ी देर ठहर कर चले गये। केवल बच्चे देखते रहे। इनमें स्कूल के विद्यार्थी अधिक थे। फ़सल कटाई की छुट्टी होने के कारण स्कूल बन्द थे। दूसरों को अवकाश ही कहाँ था? आने जाने वाले चैतुये अवश्य मशीनों के आश्चर्य को देखने के लिये कुछ अधिक समय तक रम जाते थे।

एक समूह में हरको का पति जोधा था। मशीनों की सर्र सर्र कटाई का काम देखकर प्रफुलता के साथ अपने एक सङ्गी से बोला, 'इधर सपाटे के साथ काटती जाती हैं, उधर ढेर के ढेर करती जाती हैं, जैसे कोई देवी देवता हों!'

सङ्गी ने कहा, 'जैसे कोई बड़ा बैल इधर चरता जाता हो, 'उधर गोबर करता जाता हो।'

'खेती के लिये यहीं भूमि मिल जाय तो हम सब आ बसें,' जोधा ने इच्छा प्रकट की।

'और वह—तुम्हारी बहुरिया हाथ न आई तो लौटकर फिर गाँव के गांव।'

'पड़ेगी कैसे नहीं?'

'फिर भाग खड़ी होगी।'

'अबकी बार उसका धड़ भाग कर आयेगा।'

× × ×

बटोले के खेतों में दो दिन की कटाई का काम रह गया था। कुछ चैतुये काम पर लगे थे, कुछ गाँव के लोग। मंटू था, हरको, दमरू। बटोले देखभाल पर था। हरको कटाई करते करते दमरू के निकट आ गई। पहले जहाँ थी वहाँ मुस्कान और बातें, इसके पास आई तो यहाँ।

दमरू अवसर निकाल कर बोला, 'तुम्हारा हाथ तो थकता ही नहीं।'

'बालों का काटते चले जाना बहुत अच्छा लगता है।'

'अब कहूँ वह बात ?'

'कौन सी ?'

'अरे ! इतनी जल्दी भूल गई !!'

'कहो न, कौन सी ?'

'घर बसाने वाली बात।'

'हाँ—आँ। कहो।'

बग़ल से बटोले आ गया। उसको भी देखकर हरको मुस्कराई।

बटोले ने कहा, 'उधर एक माँग खाली पड़ी है। वहां चलो हरको। तुम उसे जल्दी निबटा लोगी।'

हरको तुरन्त खड़ी हो गई।

दमरू बोला, 'मैं भी चलूं ?'

बटोले ने उत्तर दिया, 'नहीं, तुम यहीं बने रहो।'

हरको बटोले के साथ चली गई। दमरू उसकी ओर देखता रहा—शायद लौटकर एक बार देखे ! हरको नहीं मुड़ी। बटोले उसे मांग पर लगा कर पास बैठ गया।

थोड़ी देर बाद बटोले ने कहा, 'तुम जैसी निडर हो वैसी ही फुर्तीली और अच्छे स्वभाव वाली।'

'हूँ—ऊँ।' हरको हँसी। दांतों के बीच की खाली जगह बटोले को कुरूप नहीं लगी।

'मुझे तो बहुत अच्छी लगती हो।'

'सबकी भली बनकर चलना चाहती हूँ, नहीं तो जैसे वहाँ डायन बनाई गई, यहाँ चुड़ैल कर दी जाऊँगी।'

'अरी नहीं, तुम सबको प्यारी हो।'

'वे लोग आ जायें तो फिर वहीं के लिये ठेल दोगे।'

'मैं अपने बस तो कभी नहीं होने दूंगा ऐसा।'

'और पञ्चों ने हठ पकड़ा तो ?'

'तब की बात और थी, अबकी नहीं होने पावेगा। देखूंगा मैं।'

× × ×

जिन खेतों की कटाई कुछ विलम्ब से हुई उनमें देशराज के भी थे। उसके खेतों पर चैतुओं और गांव के भी मजदूरों की बड़ी भीड़ थी। कारिन्दा कुञ्जीलाल और जगनू डटकर काम करवा रहे थे। दोपहर के खाने पीने की भी छुट्टी एक साथ नहीं दी गई। मजदूर टोलियों में रोटी खाने जा सकें। खाने में किसी भी टोली को जरा सी देर हुई कि वे दोनों गालियाँ दे उठे। किसी किसी के ऊपर हाथ भी चला दिया।

'कमबख्त कामचोर कहीं के। काम के नाम पर बगलें झांकते हैं, मजूरी लेंगे बाहों भर भर बालें !'

उस टोली में उस दिन जोधा और दमरू का साथ पड़ गया था। दमरू खा पीकर पहले आ गया, जोधा जरा पीछे आया। जोधा को गाली अखरी। सहजकोपी था ही, उखड़ पड़ा।

बोला, 'ओ हो ! जैसे कहीं के राजा हो !! बड़ा सोना चांदी तो भर देते हो न हमारी बाहों में !!!' और काम पर लग गया।

कुञ्जीलाल का भी पारा गरम हो गया, परन्तु वह उस गरम पारे में से अपने लाभ की बात निकालने की हिकमत पहले सोचता था—शाम को इसकी मजूरी के पूलों में से अपने लिये कुछ कटती न की तो बात काहे की।

दमरू को अचम्भा हुआ कि एक साधारण चैतुए की बात को कारिन्दा पी कैसे गया। उसने पूछताँछ की, कहाँ का है यह। गाँव, नाम और बांगुर्दन में नातेदारी की बात सुनकर उसने सोचा, 'अच्छा तो यह है हरको का घरवाला ! जिसने बिचारी के हाथ पैर तोड़ डाले थे। बड़ा पाजी है।

जोधा रोगी तो था ही। सवेरे से काम करते करते, रोटी खाने के उपरान्त, काम पर तुरन्त आ लगने के कारण, दो घड़ी पीछे ही ढीले ढीले हाथ चलाने लगा। कुञ्जीलाल की आंख उस पर बल खाये बैठी थी।

चिल्लाया,—'क्यों रे पाजी ! सोना चाँदी ऐसे ही समेट लेगा बाहों में ?'

जोधा ने अपने से धीमे स्वर में कहा,—'पाजी होगे तुम।' ज़ोर से बोला, 'क्या दिखलाई नहीं पड़ता ? जैसे और सब हँसिया चला रहे हैं वैसे ही मैं भी चला रहा हूँ।' उसने दमरू की ओर देखा जो उसकी बग़ल में काम कर रहा था।

दमरू को बुरा लगा—मुझे अपनी पांत में बिठला रहा है !

कुञ्जीलाल जोधा की ओर थोड़ा सा बढ़कर थम गया। गरज पड़ा—'शाम को मजूरी काटूंगा तब रोओगे बाप को।'

'काटोगे तो—बड़े आये काटने वाले !'

'अरे तो क्यों वैसे ही बकबक किये जा रहे हो ? किये जाओ अपना काम।' दमरू ने कहा।

'यह आया इनका वकील ! मत बोल हमारे बीच में।' जोधा ने दमरू को डाटा।

'कैसा है रे, कैसा नहीं है ?' दमरू कड़का।

कुञ्जीलाल को एक तगड़ा समर्थक मिल गया।

'देखा भैया दमरू, कितना उजड्ड है यह !' कुञ्जीलाल ने दमरू को उभाड़ा।

'तुम होगे उजड्ड।' जोधा के मुंह से सहसा निकल पड़ा।

काम करने वालों के हँसिये रुक गये।

'जाओ मुनीम जी, अपना काम देखो। यह तो गँवार है।' दमरू ने क्षुब्ध स्वर में कहा।

जोधा न माना—

'तू गँवार, तेरा बाप गँवार !' जोधा खड़ा हो गया। दमरू को भी देर नहीं लगी। तड़क गया—

'एक थप्पड़ का तो है नहीं, बातें मारता है जैसे नाहर हो। लगाऊँ एक तो छठी की याद आ जायगी।'

'मैं एक लात में तेरी सब मुटाई बाहर निकाल दूंगा।' जोधा क्रोधान्ध होकर बोला।

कुञ्जीलाल उन दोनों के बीच में आ गया। इतने ताव में था कि उसने जोधा को एक चांटा मार दिया। जोधा ने उसकी छाती पर हँसिये की पीठठोक दी। कारिन्दा पीछे हटा। दमरू जोधा का हाथ पकड़ने के लिये झपटा, जोधा ने उस पर धार की तरफ से हँसिये का वार किया। लोग बीचबिचाव के लिये हल्ला करते हुये इधर-उधर से दौड़ पड़े। जोधा और दमरू गुथ पड़े थे। कुछ ही क्षणों में दमरू के हँसिये की कई करारी चोटें जोधा के सिर पर पड़ीं और वह चीखकर गिर पड़ा। दमरू भी थोड़ा सा घायल हो गया था परन्तु बहुत थोड़ा। तो भी सिर और पीठ से उसके खून निकल रहा था।

जोधा के सिर मे रक्त की धार बह पड़ी। सारा काम बन्द हो गया। रौरा मच गया। इतना शोर कि दूर-दूर तक सुनाई पड़ा होगा। जगनू देशराज के पास हवेली दौड़ा गया।

जगनू ने सूचना दी,—'मालिक, बलवा हो गया है। कुछ मजदूर कुञ्जीलाल जी को मारे डाल रहे हैं।'

देशराज ने बहुत थोड़े से प्रश्न करने के बाद बन्दूक उठाई और जगनू के साथ चल दिया।

जोधा के साथी भी ताव में आ गये थे, पर वे थोड़े थे। अन्य मजदूर बखेड़े से दूर रहना चाहते थे, केवल हल्ला मचाकर घटना की आलोचना अपने अपने दृष्टिकोण से कर रहे थे। कोई कुञ्जीलाल को बुरा कह रहा था, कोई दमरू को और कोई जोधा को।

'कोई तो धीरज धरता, ज़रासी बात पर लड़ बैठे !' उन सबकी आलोचना का सार था।

शोरगुल बांगुर्दन में भी सुनाई पड़ा और थोड़े ही समय उपरान्त किसी ने सूचना दी,—'कुञ्जी कारिन्दे ने दमरू को बहुत पीटा है !'

दूसरे ने समाचार दिया,—'मंटू के बहिनोई जोधा, दमरू और कुँजीलाल की लड़ाई हो रही है।'

टहलराम और बटोले साथ साथ गये। मंटू ज़रा पीछे।

घटनास्थल पर टहल और बटोले पहले पहुँचे। मज़दूर भिन्न-भिन्न दिशाओं में हाथ हिला-हिलाकर चिल्ला रहे थे। कुछ कुञ्जीलाल को घेरे थे, कुछ दमरू को, थोड़े से अचेत जोधा को। बटोले और टहल को बाँगुर्दन की दिशा से आते देख कर ये चीख पड़े—'कुञ्जी मुनीम ने मरवा डाला ! कुञ्जी मुनीम ने मरवा डाला !!'

मुसीबत आती देखकर कुञ्जी तेज़ी के साथ हटा।

'मुझे इस गँवार ने मारा ! मेरी बेइज़्ज़ती की !!' चिल्लाता जा रहा था।

दमरू का क्रोध काफ़ूर हो चुका था, परन्तु वह घबराहट या अनिश्चय में डांवाडोल न था। हँसिया कमर में खोंस लिया, टहल और बटोले की ओर दो तीन कदम बढ़कर बोला, 'भले आ गये !'

उन दोनों ने अचेत जोधा को नहीं देख पाया था, दमरू के खून को देख कर लाल पड़ गये।

'पकड़ लो मुनीम को ! भागने न पावे !!' टहल ने ज़ोर से कहा।

बटोले दौड़ा। मुनीम भी सरपट हुआ।

'ज़रा सुनो !' दमरू के बैठे गले से निकला। टहलने नहीं सुना। वह भी बटोले के पीछे पीछे गया।

जोधा की दम टूटने लगी।

उधर से बन्दूक लिये देशराज जगनू के साथ आ गया।

मुनीम ने हाहाकार किया,–'बचाना मालिक ! मुझे बचाना !!'

देशराज चिल्लाया,—'खबरदार जो आगे बढ़े ! छाती फोड़ दूंगा !!'

बटोले और रामटहल ठम-ठमा गये। देशराज के निकट आते ही मुनीम हांफता हुआ उसके पीछे जा खड़ा हुआ।

देशराज ने बन्दूक सुधिया ली।

बोला,—'खबरदार !'

बटोले रुक गया। टहल धीरे धीरे बढ़ा।

'बन्दूक मेरी छाती भले ही फोड़ दे, पर सारे समाज की छाती नहीं फोड़ सकती। मुनीम ने दमरू के मरवा डालने में कसर नहीं लगाई है। वह खूनाखून हो गया है।' टहल ने कहा।

देशराज ने बन्दूक नीची कर ली।

मुनीम ने हाँफते हाँफते सफ़ाई दी,—'दमरू को मैंने नहीं, एक मजूर ने घायल किया है जिसको दमरू ने बेतरह मारा है। वहीं पड़ा सिसक रहा है वह !'

मंटू और उसके साथ बांगुर्दन का एक मज़दूर दौड़ते हुये आये।

मण्टू जल्दी जल्दी पुकार रहा था,—'अरे यहां आओ, यहां आओ ! मेरे बहिनोई जोधा को मार डाला है किसीने !! उसकी दम टूट रही है !!!'

देशराज, बटोले, टहलराम—सबका दिमाग़ चक्कर खा गया। समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है। मुनीम का कण्ठ तो सूख ही चुका था, कलेजा भी काँपने लगा। वह सिर पकड़ कर बैठ गया।

मंटू पास आ गया। बटोले ने पूछा, 'क्या बात है ?' कांपते फफकते स्वर में मण्टू बोला, 'डॉक्टर साहब को बुला लो, मेरा बहिनोई मर रहा है !'

'किसने मारा ?' टहल ने प्रश्न किया।

'किसने ? किसने ?' देशराज ने पूछा।

मण्टू बोला, 'मुझे नहीं मालूम। मैं तो उसकी बुरी हालत देखकर सीधा टहलबाबू के लिये चला आया।'

बैठे धीमे स्वर में मुनीम ने बतलाया, 'दमरू ने हँसियों से मारा है, दमरू ने।'

'दमरू ने !' बटोले और टहल ने एक साथ आश्चर्य प्रकट किया।

'तब फिर दमरू को किसने मारा ?'

जगनू ने उत्तर दिया, 'मैंने तो दूर से देखा दमरू को उसने मारा जिसे फिर दमरू ने मार गिराया।'

'क्यों झूठ बोलते हो ? दमरू की हिम्मत थी ?' टहलराम ने जगनू की भर्त्सना की परन्तु उसका क्रोध गड़बड़ में कहीं चक्कर खा रहा था, स्वर में तीखापन न था।

देशराज बोला, 'वहीं चलकर देखूं क्या बात है।'

'डॉक्टर साहब को बुलवा लीजिये,' मंटू ने अभ्यर्थना की।

देशराज ने जगनू को नहीं भेजा। मंटू से कहा, 'दौड़ जाओ उनके पास। कहना जल्दी चलिये।'

मंटू चला गया।

देशराज जगनू के साथ घटनास्थल की ओर बढ़ा।

बटोले बोला, 'मुनीम न भागने पावे।'

देशराज ने डाँटा,—'ओ हो तुम भी !'

'ठीक तो कहते हैं बटोले। मुनीम जी फ़रार हो गये तो फिर इन्हें कहाँ ढूंढ़ते फिरेंगे ?' टहल ने कहा।

देशराज उपेक्षा के साथ चल पड़ा। मुनीम से कहा, 'आओ जी मेरे साथ। तुम्हारा बाल बांका न हो सकेगा।'

वे सब घटनास्थल की ओर बढ़े।

सुहाना और बांगुर्दन में समाचार नाना प्रकार के पंख लगाकर पहुँचा।

'देशराज बन्दूक़ लेकर गये हैं टहल को मार डालने के लिये ! बटोले और मंटू को तो उनके आदमियों ने लाठियों से ढेर कर ही दिया है !'

'जोधा को मुनीम ने मरवा डाला ! !'

'मुनीम बेभाव पिटा है । देशराज बन्दूक लेकर गये, तो उनकी बन्दूक़ छीन ली गई है और उनका अब रोम रोम तोड़ा जा रहा है ।'

सुहाना में बन्दूकों के तीन लाइसैन्स और थे—एक बनमाली के पास। बांगुर्दन में दो थे । ये सब टोपीदार बन्दूक़ों के थे । सुहाना और बांगुर्दन के सभी बन्दूकवाले बन्दूकें लिये झगड़े की जगह जा पहुँचे,केवल बनमाली बन्दूक नहीं ले गया ।

देशराज, टहल, बटोले इत्यादि जोधा के पास पहुँच गये थे जब दोनों गाँव के बन्दूक़ वाले झपटते हुये आये ।

'क्या है ? क्या हुआ ?' सामान्य प्रश्न था । ठीक ठिकाने की बात कोई नहीं कह पा रहा था । कोई मुनीम को दोष दे रहा था, कोई दमरू को, कोई जोधा को ।

जोधा के दो एक नातेदार जो चैतुओं के समूह में उसके साथ आये थे, रो रहे थे । दमरू नीचा सिर किये सन्न बैठा था ।

मुनीम से सवाल अधिक किये जा रहे थे । वह अब रोया, या रोता मालूम पड़ा ।

उसने बतलाया,—'मुझे जोधा ने गाली दी, और जोर से तमाचा मारा । मेरा गाल देख लो, अब तक सूजा हुआ है ।'

उसका गाल थप्पड़ से हो, अथवा मलने के कारण हो, लाल जरूर था ।

मुनीम उसी तरह कहता गया,—'दमरू ने बीच बिचाव किया तो उस पर टूट पड़ा । फिर दोनों में चल पड़ी ।'

'नहीं, पहले मुनीम जी ने इसे चांटा मारा । फिर—' दमरू धीरे धीरे अपनी बात कहना चाहता था कि मंटू सनेही को लिये आता

दिखलाई पड़ा। लोग उसी ओर देखने लगे। बनमाली पूरी बात सुनना चाहता था। उसने पूछा, 'फिर ? फिर क्या हुआ ?'

'फिर उसने मुनीम जी को मारा। मुनीम जी ने बचाने के लिये मुझे टेरा, तो जोधा मेरे ऊपर बदल पड़ा—' दमरू इतना कह पाया था कि बटोले बोला, 'और मुनीम ने किसी का हँसिया छीन कर उसे घायल कर डाला।'

'तुम बीच में मत बोलो जी।' बनमाली गरम हो गया।

'इसको झूठी बनाये बिना चैन कहां !' देशराज चिल्लाया।

'झूठ की रचना तो आपके यहाँ होती है—' टहल भी उतने ही जोर के साथ बोला कि सनेही आया। दोषारोपण की झड़ी सी फिर लग गई। सनेही भीड़ को एक तरफ़ करता हुआ जोधा को देखने के लिये झुका और फिर सीधा खड़ा होकर पैने स्वर में बोला, 'थोड़ी सी देर के लिये चुप रहिये तो मैं इसे देख लूं।'

लोग आगे की बात जानने के लिये चुप हो गये। सनेही ने अच्छी तरह देख भाल करके निश्वास छोड़ कर कहा, 'भेजा फट गया है। मरने में क्षणों की ही देर है।'

फिर दोषारोपण का तूफ़ान सा आया। दमरू के काटो तो खून नहीं ! सिर पकड़ कर कराहने लगा। लोगों को शङ्का हुई क्या, यह भी जा रहा है ?

'डॉक्टर साहब, इसको भी देख लीजिये। बुरी हालत मालूम होती है !' टहल ने अनुनय की।

सनेही ने उसकी भी जांच की।

'चोटें साधारण हैं, चिन्ता की कोई बात नहीं।'

जोधा ने अन्तिम हिचकी ली और समाप्त हो गया। व्याख्या, आलोचना, बहस—सब खतम हो गई।

सनेही ने कहा, 'पुलिस को तुरन्त चौकीदार के द्वारा समाचार देना चाहिये।'

मजदूरों ने देखा मजूरी खटाई में पड़ने वाली है। उन्होंने तक़ाज़ा किया—'हमारी जितनी बैठे दे दो। अब काम नहीं हो सकेगा, दिन भी थोड़ा ही रह गया है।'

मुनीम उदार हो गया,—'अरे भाई आज की पूरी ले जाओ। कल फिर आ जाना।'

'कल की कल से लगी।'

टहल और उसके पक्ष के लोग मुनीम पर आँख गड़ाये रहे—कहीं खिसक न जाय। देशराज ने दमरू को अपने आदमियों से घिरवा लिया। बन्दूकवाले वहां थे ही।

खेत से अनाज इकट्ठा करवा लिया गया और मजूरी बँटने के उपरांत गाड़ियों से खलियान में भिजवा दिया गया। जोधा की लाश गांव की अथाई पर भेज दी गई। मंटू उसके साथ गया। देशराज, सनेही, टहल बटोले और मुनीम, दमरू को घेरे धीरे धीरे चले। बन्दूक वाले साथ में।

संध्या होने के पहले बिक्रम अपने घर का काम निबटा कर डगें मारता उनके पास आ गया और साथ हो गया। उस समय उन लोगों में उसी प्रसंग पर बात चल रही थी।

बिक्रम बोला, 'बटोले ने मेरा हाथ तोड़ डाला सो इन लोगों ने मामला न चलने दिया, अब इसको भी पचा जायँगे।'

'तुमने ज़्यादती की थी; बटोले ने अपनी रक्षा में लाठी चलाई। दोष तुम्हारा था, इसलिये मामला यहीं का यहीं ठप हो गया।' टहल ने कहा।

देशराज ने व्यङ्ग किया—'यह भी ठप हो जायगा। मुनीम ने हँसिया चलाया, एक को मार डाला, दूसरे को घायल कर दिया!' मुनीम में अब उतनी अधीरता नहीं रही थी—'

'टहल और बटोले जो कुछ न करवा डालें, थोड़ा है। इन्हीं की गिरोहबन्दी के कारण तो जो चाहे धरती को सिर पर उठाये फिरता है।'

टहल को क्रोध आ गया—

'मिहनतकशों के खून सोखने की आप लोगों की बापोती को नष्ट करने के लिये ये लोग तारों तक को तोड़ लायेंगे।'

सनेही ने देखा, दूसरा झगड़ा खड़ा होने वाला है। बीच में पड़ गया—

'झगड़े की जड़ अवश्य मुनीम जी की ज़बान ने डाली, पर हाथ और हँसिया चला जोधा के आपे से बाहर हो जाने के कारण। जो कुछ मैंने सुना है उससे तो मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूँ।'

टहल को यह व्याख्या अच्छी लगी और देशराज को बुरी।

बटोले और बिक्रम कुछ कहने को उकता रहे थे। डूबते हुये सूर्य की किरणों में उनकी आंखों के डोरे भयानक हो गये थे।

सनेही बोला, 'जो कुछ अभी अभी हो चुका है, वह इन दोनों गांवों के कलङ्क के लिये कम नहीं है।'

टहल ने कहा, 'गांव सब ऐसे ही हैं। कारण झगड़ों की वह सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था है जो झगड़े उत्पन्न करती है। इसका सुधार करने के लिये—'

सनेही उसके कन्धे पर हाथ धर के मिठास के साथ बोला, 'मैंने कहा था न कि मेरी आपकी बातें इस विषय पर होंगी और हम सब मिल कर काम कर सकेंगे। समय आ गया, मानव प्रकृति जैसी है, उसके सुधार की जरूरत है।'

ये सब गांव के पास पहुँच रहे थे। गांव के नर-नारी सकपकाये से घूम रहे थे। इन लोगों की बात-चीत बन्द हो गई यद्यपि टहलराम कुछ कह डालने के लिये आतुर था।

× + ×

पुलिस आई। कानूनी काररवाई हुई। दमरू पकड़ लिया गया। मुनीम की ज़मानत हो गई। सदर में चीड़-फाड़ के बाद जोधा की लाश उसके घर वालों को दे दी गई। ज़िला मजिस्ट्रेट ने दोनों गांवों

को झगड़ालू निर्धारित करके सिवाय बनमाली के सबके हथियार माल-खाने में रखवा लिये—देशराज के भी। बटोले, टहलराम, देशराज और बिक्रम के विरुद्ध शांति बनाये रखने के हित में ज़मानत मुचलके की आज्ञा निकाल दी।

जोधा के देहान्त पर हरको केवल एक दिन के लिये ससुराल गई और बाँगुर्दन लौट आई। मन्टू की जाति के पञ्चों में इस पर खुसफुस हुई और हरको तथा मंटू को जात-ब्योहार से तब तक के लिये बन्द कर दिया जब तक कि वे पङ्गत न दे दें। टहल ने मंटू का पक्ष लिया, पञ्चों को समझाया पर वे न माने—'जात की बात है बाबू, हरको ससुराल में तेरहवीं करके नहीं आई!' मंटू की बिरादरी में दो दल हो गये। एक दल को बनमाली ने उकसाया।

बनमाली का आत्मविश्वास बढ़ा। उसने एक दिन छदामी से कहा, 'देखते हो बड़े बड़े अफ़सर तक मुझे कितना मानते हैं!'

गांव वालों के मन पर उसके आतङ्क की मात्रा में वृद्धि हो गई थी।

छदामी बोला, 'सो तो है ही।'

छदामी का भूमि सम्बन्धी मामला अभी नहीं निबटा था।

[३३]

खलिहानों में अनाज पहुँच गया। सूखने में देर थी। किसी किसी का चना सूख गया, उसकी दांय शुरू हो गई।

सुहाना और बांगुर्दन पर जोधा वाली दुर्घटना की काली छाया सी छाई हुई थी। अञ्जना और देशराज चिन्ताग्रस्त थे, कारिन्दा परेशान। बांगुर्दन समिति का काम लँगड़ा रहा था। दमरू जेल में, टहल और बटोले पर ज़मानत मुचलके की कारवाई, मंटू दुखी। हरको के होठों की मुस्कान चली गई। दुर्घटना के पहले हरको जिस पुरुष के भी सम्पर्क में आई उसने समझा कि मेरी ओर आकृष्ट है। यह किसी ने न सोचा कि ससुराल और पंचों के अत्याचार से बचने के लिये मुस्कान और मीठे बोल को उसने सहानुभूति संग्रह का हथियार बनाया था—न मालूम कौन किस दिन आड़े आकर काम दे जाय।

बटोले ने, शायद अपने उचटे हुये मन को सहलाने थपथपाने के लिये, एक दिन हरको की मुस्कान के लौटाने का प्रयत्न किया।

'हरको, तुम उदास न रहा करो। उस दिन जब मेरा खेत कट रहा था, मेरी तुम्हारी कुछ बात हुई थी। ससुराल में तुम्हें कोई सुख नहीं था। काँटा था सो निकल गया। वैसे ही फिर हँसा खेला करो। मेरी तुम्हारी ख़ूब पट सकती है।'

'तुम सरीखे बेशर्मों से मेरी कभी नहीं पट सकती। औरतों में राजदुलारी और घाटीवाली, मर्दों में मेरा भाई, डाक्टर और टहल बाबू के सिवाय मुझे ऐसा कोई और नहीं दिखता जिससे मेरी पट सके।'

बटोले तिलमिला गया। उसको ऐसे चुटीले उत्तर की आशा नहीं थी।

'अरी बाई, मैंने कहा ही क्या है? उदास न रहो, खेत खलिहान का ख़ूब काम करो, बस।'

'सो तो कर ही रही हूँ, कुछ और भी करूँगी।'

बटोले को भय हुआ—कहीं मंटू या किसी और से कुछ कहती न फिरे। मन में बहुत पछताया और उसे समझाता बुझाता रहा।

× × ×

दोनों गांवों के मुख्य दलों का वैमनस्य दूर करने के लिये सनेहीलाल ने प्रयत्न किया। देशराज को लाइसेंन्स ज़ब्ती और शान्ति बनाये रखने के लिये ज़मानत मुचलके की कारर्वाई बहुत अखर रही थी। सारी शान मिट्टी में मिलती दिखलाई पड़ रही थी—गाँव में बदरोबी हुई, अफ़सरों में मान घटा और उस व्यवसाय को भी धक्का लगने की आशंका।

टहल ने देखा गांव की जनता उससे किनारा काटने लगी है। यदि मुचलके की कारर्वाई किसी राजनीतिक हलचल में हुई होती तो बात ही और थी। प्रभाव बढ़ता, मन पसन्द काम करने का मार्ग प्रशस्त होता, लेकिन यह ? यह तो गाँव के साधारण फ़सादियों की श्रेणी में बिठला देगी ! स्कूल का चलाना, विद्यार्थियों को अपने बनाये ढांचे में ढालना, नये जीवन का स्फुरण, कैसे हो सकेगा ? कैसे मुंह दिखलाऊंगा ?

सनेही का प्रयत्न असफल नहीं हुआ। उन चारों ने अदालत में राज़ीनामे का काराज़ पेश कर दिया। ज़मानत मुचलके की कारर्वाई उठा ली गई। इसमें लगभग एक महीना लग गया। सनेही को प्रतीति हो गई कि अब बखटके काम होगा। हथियारों की वापिसी के लिये भी प्रयास किया गया परन्तु विफल रहा।

× × × ×

अधिकांश खलियानों का चना, अलसी, गेहूँ सूख गया। दायँ होने लगी। सुहाना और बांगुर्दन के जो लोग बाहर चैत काटने चले गये थे, लौट आये; कोई दो पंसेरी अनाज बचा लाया, कोई चार और कोई कुछ अधिक। यहाँ की दायँ करने में इनको भी कुछ मज़दूरी मिल गई।

सरकारी फ़ार्म की खेती का रक़बा जितना ट्रैक्टरों से जुत सका था उतने की फ़सल खलियानों में सूख जाने पर मशीनों द्वारा बहुत थोड़े समय में दायें करके साफ़ कर ली गई। मशीनों और नौकरों पर जितना खर्च हुआ था उससे बहुत कम अन्न हाथ लगा। सरकारी फ़ार्म को सन्तोष था कि मशीनों के प्रदर्शन से जनता में मशीनी खेती के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया है, इसलिये लाभ ही लाभ रहा! अधिकांश जनता सोचती थी—तमाशा अच्छा रहा, हम इसे देख तो सकते हैं, परन्तु अपना नहीं सकते।

देशराज की फ़सल का पुञ्ज सबसे बड़ा था। मद्दीदारों और मजदूरों ने उसे यथासमय लौटा पलटा था इसलिये जल्दी सूख गया। उस पर खर्च भी काफ़ी हुआ था। साफ़ होने के बाद जब अन्न के ढेर लगाये गये तब रिवाजी लोग झोली पसार कर आ गये। चौकीदार, बसोंड़, लुहार, बढ़ई, मन्दिर का पुजारी, जोशी—ज्योतिष द्वारा आने वाली फ़सल का फलाफल बताने वाला—इत्यादि। कारिन्दे ने मजूरों को तो तङ्ग नहीं किया, पर इस फौज को यथारीति देने में हाथ सिकोड़ने लगा।

पुजारी ने कहा,—'आपकी मुकद्दमे में विजय हो, और किसी को चाहे कम दो, पर हमारा जो बन्धान बंधा है वह तो उतना ही मिलना चाहिये; फिर अबकी बार फ़सल भी अधिक आई है।'

जोशी बोला, 'असाढ़ और कुवार में हम पत्रा न खोलें तो किसान मुंह बाए फिरता रहे। मैंने पत्रे में देखा है कि आप मुकद्दमे में बरी होंगे। जय हो काली माई की!'

चौकीदार क्यों पीछे रहता?—'मुनीम जी, थाने में पहली रपट अगर सुधार कर न की जाय तो सब बंटा ढार हो सकता है।'

बिचारे बसोड़ ने विनय की,—'हमारा बन्धान तो थोड़ा सा ही है। असाढ़ और कुंवार में देवी-देवताओं को रमतूला से जगाना सतयुग से चलाआया है। राजा हो हमें न मारो देखो।'

कारिन्दे ने पहले लुहार और बढ़ई को निबटाया—गत वर्ष की अपेक्षा तिहाई के लगभग दिया। कहा, 'मशीनें चल उठीं हैं और कारखाना बन गया है। इस साल इतना दिये देते हैं; अगली फ़सल पर यह भी बन्दं।'

बिचारे चुपचाप लेकर चले गये।

पुजारी, जोशी और बसोड़ को पूरा दिया क्योंकि उनका सम्पर्क देवी देवता या ग्रह नक्षत्रों से था! और कुञ्जीलाल पर वह मुकद्मा अभी छाया हुआ था।

जब देना-दिवाना काट कर पड़ता लगाया गया, तब बहुत थोड़ा गांठ में पड़ा। देशराज ने सोचा, अगले साल पूर्ति हो जायगी; बंधी के भीतर पानी रमेगा, भूमि की शक्ति बह कर बाहर नहीं जायगी और कुछ काम मशीनों से लिया जायगा।

× × ×

सुहाना के अन्य निजी खेती करने वालों से अन्न का संग्रह करके मंगते सहकारी समिति के खलियान पर पहुंचे। वहाँ लुहार और बढ़ई को यथारीति मिल गया, परन्तु दूसरे कोरे टरका दिये गये। समिति का मन्त्री बनमाली वहां था।

उसने अपनी बला टाली,—'यह अन्न पंचायत का है, आज सांझ मेम्बरों की बैठक समिति भवन में होगी। वहाँ आ जाना। पर आशा बहुत कम है, क्योंकि कुछ लोग, जैसे टहल खिलाफ़ रहें।'

वे लोग हठ न कर सके। समझ गये कि यहां से कुछ नहीं मिलेगा, बैठक में जाना व्यर्थ समझा। और कोसते चले गये—'सत्यानाश हो जाय इस कापटी सोंटी का!'

समिति भवन बन गया था। सांझ के उपरान्त सहकारी समिति की बैठक उसी में हुई।

धरनीधर लगभग अपना सारा उधार वसूल कर चुका था; इसलिये उसने समिति से पदत्याग कर दिया। सनेहीलाल उसकी जगह

ख़ज़ान्ची चुन लिया गया था। धरनीधर बैठक में नहीं आया। शेष सभी सदस्य और पदाधिकारी उपस्थित हुये।

बाँगुर्दन समिति के मुखियों को आमन्त्रित किया गया था। वे दर्शकों की हैसियत से सम्मिलित हुये। सहकारी विभाग का एक निम्न-कर्मचारी भी जो समिति का काम चलाने के लिए वहाँ रक्खा गया था, उपस्थित था।

सबसे पहले उपज में से ख़र्चा काटा गया। बीज की सवाई निकाली गई।

समिति-भवन बनाने के लिये ज़िला बैंक से रुपया लिया गया था। उसकी पहली किस्त, बैंक से अन्य कार्यों के लिये जो ऋण लिया गया था उसका चुकावरा, सरकारी लगान और जिनके बैल काम में लाये गये थे उनका किराया। मज़दूरों को मजूरी पहले ही दे दी गई थी। बाक़ी रहे का एक अंश रक्षित कोष में डाला गया। इससे जो बचा था वह था सदस्यों में बांटे जाने योग्य मुनाफ़ा। जिन्होंने समिति में अपनी भूमि लगाई थी उनको मुनाफ़े का पचहत्तर प्रतिशत बहुमत से तै किया गया—बहुमत इसलिये कि जो भूमि-हीन मज़दूर सदस्य थे उन्होंने सोचा न हमारी भूमि है और न पैदावार में हमारा कोई हक़, इसलिये उन्होंने न हां की और न नाहीं, केवल सनेही ने आक्षेप किया—

'इसको सहकारिता नहीं कह सकते। किसानों से भूमि का लगान जितना मिलता उससे यह मुनाफ़ा कहीं ज्यादा बैठेगा।'

टहल बोल उठा,—'दूसरों के निजी खेतों पर मज़दूर खेती करे तो वे उसके हो सकते हैं, परन्तु सहकारी समिति में चाहे कोई कितनी भी करे उसे मुनाफ़े में से कुछ न मिले! यह अन्धेर है!!'

देशराज समिति का प्रधान था। उसने व्यङ्ग्य किया,—'डॉक्टर साहब के पास कोई ज़मीन नहीं इसलिये उन्होंने समिति के जो हिस्से ख़रीदे थे उन पर बहुत कम मुनाफा मिलेगा। आपकी सारी भूमि बांगुर्दन समिति में लगी हुई है, देखें आप कितना छोड़ देते हैं।'

सनेही हँसा,—'मैंने समिति में लगाया ही कितना रुपया है। सिद्धान्त की एक बात कही।'

बनमाली बोला, 'धरती ही वो अन्न देती है; समिति को जितनी ज़मींन लगावे उतनी पैदावार पावे।'

टहल ने कहा, 'उस पसीने का मूल्य कुछ नहीं, जिसके पराक्रम से धरती अन्न देने के लिये मजबूर होती है?'

सनेही नहीं चाहता था कि इस विवाद का मूल्य उसका कोई स्वार्थ समझा जाय।

उसने सुझाव दिया,—'यदि गुञ्जाइश हो तो मज़दूर मैम्बरों को कुछ बोनस अवश्य दीजिये, नहीं तो वह शरीर के लिये भोजन अपने रक्त से ही खींचेगा और घुल जायगा।'

सहकारी विभाग के कर्मचारी ने बतलाया,—'कायदों में है, बोनस दिया जा सकता है।'

हिसाब लगाया गया तो उनके लिये पांच रुपया प्रतिशत बैठा। इसी का देना तै हुआ।

टहल ने हँसकर कहा,—'यह बोनस नहीं बोगस, बल्कि बोंगस है!'

मज़दूर इसे नहीं समझे। जो मिल जाय वही बहुत।

देशराज ने पूछा, 'आपकी समिति का अधिवेशन कब है?'

टहल ने तारीख और समय बतलाया क्यों कि लांक अभी सूखी न थी।

आप लोगों को आमन्त्रित करूँगा। डॉक्टर साहब, ज़रूर आइयेगा। आपने उस दिन वचन दिया था।'

सनेही ने आश्वासन दिया।

इसके बाद भूसा बांटा गया। जिस अनुपात में अनाज बँटा उसी में भूसा भी।

बनमाली ने कहा, 'कुछ प्रसङ्ग और हैं, अब उनको ले लिया जावे।'

पहला प्रसङ्ग था सदस्यों की संख्या बढ़ाने का, क्यों कि जितने अधिक सदस्य हों बैंक उनकी संख्या और हैसियत के अनुपात में उतना ही अधिक रुपया उधार देगा। चूंकि भूमि पर पचहत्तर प्रतिशत मुनाफ़ा बांटा गया इसलिये आशा हो गई कि भूमि-स्वामी श्रेणी के लोग समिति में काफ़ी संख्या में आवेंगे। मज़दूर तो आने के ही ठहरे; मजूरी मिले और मजूरी पर बोनस !

देशराज से आग्रह किया गया कि समिति को वह कुछ और अच्छी भूमि लगा दे। मुनाफ़े के आकर्षण ने उसे थोड़ा सा फुसलाया। एक खासे रक़बे की अच्छी भूमि समिति को और लगा दी। खर्च और निगरानी से बचे, पचहत्तर फ़ी सदी का मुनाफ़ा, यदि बराबर मिलता रहे, तो वाह !

बोला, 'काम ठीक ठीक चल उठे तो अगले साल बढ़िया ज़मीन का एक बहुत बड़ा रक़बा सहकारी समिति में शामिल कर दूंगा।'

सनेही ने कहा,—'अभी प्रारम्भिक अवस्था है, आगे काम अच्छा चलेगा।'

देशराज ने जारी रक्खा,—'जैसे सरकारी फ़ार्म नमूना बनने की कोशिश कर रहा है वैसे ही मैं भी अपने निजी फ़ार्म को आदर्श बनाने की धुन में हूँ। निजी बड़े फ़ार्मों का केवल इसीलिये बना रहना बहुत ज़रूरी है। बड़े फ़ार्म वाले भूमि स्वामियों पर आँख न उठाकर पहले इखरी-बिखरी जोतों को एक चक कर देना चाहिये। यदि बड़े बड़े खेत वाले अपनी ज़मीनें सहकारी समिति को दे दें तो इखरी-बिखरी जोतों वाले चकबन्दी करने की सोचेंगे ही नहीं। इसीलिये मैंने अपना सब से बड़ा रक़बा समिति में न लगाकर निजी खेती के लिये रख छोड़ा है।'

सनेही मुस्कराया। उसकी मुस्कान में टहल को कुछ ऐसा मिला जो उसकी ज़बान में न मिला था।

सनेही ने कहा,—'आपको अपने फ़ार्म पर परेशानी और ख़र्च बहुत उठाना पड़ता है—सब का सब लगा दीजिये न समिति को। पचहत्तर फ़ी सदी का बराबरी का तो वहाँ से मिला न होगा। रह गईं इखरी-बिखरी जोतें सो उनकी तो एक दिन चकबन्दी होकर ही रहेगी।'

देशराज यह प्रकट नहीं होने देना चाहता था कि सनेही ने कुढ़न पैदा करने वाली कोई बात कही। बोला, 'मेरे यहां से जितनी मजूरी दी जाती है मज़दूरों को उतनी कहीं नहीं मिलती।'

एक मजदूर सदस्य ने समर्थन किया, 'हां, साहब।'

देशराज ने कहा, 'और फिर हमारे यहां आराम कितना!' इस आराम के सिलसिले में उस दिन जो दुर्घटना हो गई थी वह उन सबकी कल्पना में घूम गई।

बनमाली ने विषय बदला,—

'कहने में भूमि स्वामियों को पचहत्तर प्रतिशत मिला, पर वास्तव में वह बहुत ही थोड़ा है। पैदावार हुई भी कितनी? मजूरी में बहुत ख़र्च हो गया। मजदूरों को हम बोनस देते हैं, आसानी के साथ तेल, निमक, कपड़ा और ज़रूरी चीजें उन्हें मिल जाती हैं जो ग़ैर मैम्बरों को दुर्लभ हैं और भाव भी ठिकाने का। उस पर लगातार काम; किसी को बेकार नहीं बैठना पड़ता, इसलिये मजूरी की दर कम करनी पड़ेगी। बारह आने रोज और काम के घंटे कम। दर दस आने रोज की करनी पड़ेगी जो कम नहीं है।'

भूमि स्वामियों ने एक साथ समर्थन किया—दो दो हाथ उठाकर।

मजदूर मैम्बर चौंके।

एक बोला, 'हमारा पेट भर जायगा इतने में?'

'यह समिति है ही तुम सब का पेट पालने के लिये।'

'जैसा जानो' उसने धीमे स्वर में कहा।

अन्य मजदूर मैम्बर कुड़बुड़ा कर रह गये।

देशराज हँसा,--'जिनका मन यहाँ न मानेगा वे मेरे फ़ार्म पर पहुँचेंगे।'

और अपनी खाल तुड़वायगे--सनेही के मन में उठा।

छदामी चुप बैठा था। उसकी भूमि समिति में थी और बैलों का किराया, अपनी मजदूरी, काम के घंटों में से समय निकाल कर अपनी निजी खेती की देखभाल--यह सब ऊपर से।

बनमाली ने उसे अपनी ओर खींच लेने के लिये कहा, 'छदामी, बोलो भाई, ठीक है न? ये और तो चुप हैं।'

छदामी ने उसके मन की की,--'ठीक तो कहते हैं आप। बांगुर्दन में तो दस आना रोज की दर है।'

टहल झल्ला गया परन्तु प्रतिवाद न कर सका, क्योंकि बात सच थी।

बनमाली का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया--केवल सनेही ने वोट नहीं दिया।

आगे की फ़सल की योजना पर चर्चा चली और वहीं रुक गई, क्योंकि फ़सल की योजना उनके हाथ में नहीं थी, वरञ्च इन्द्र देवता के हाथ में रहती आई थी!

खाद की बात पहले उठी। सब लोग अपने अपने खाद का ढेर अपने अपने बेड़ों में, घरों के सामने या पीछे जमा करते थे। सनेही ने सुझाया कि समिति के सदस्यों का एक बड़ा गड्ढा गांव से बाहर हो, उसी में सब लोग खाद इकट्ठा करें, अनुमान लगा लिया जाय कि किसका कितना पड़ा, उसी के आधार पर या तो नकद दाम दिये जायें या फ़सल आने पर दाम के बदले उतना अनाज दिया जाय। गांव बाहर ऐसी ज़मीन देशराज की ही थी। वह सार्वजनिक खाद के गड्ढे के लिये ज़मीन देने को तैयार हो गया तो और लोग नहीं माने। परम्परा के धूरों से गांव के स्वास्थ्य को जो हानि पहुँचती रही है उसकी बहुमत ने उपेक्षा की--डॉक्टर तो ऐसा कहते ही रहते हैं। तली में कारण दूसरा था--एक

गड्ढे में सबका गोबर कूड़ा चला गया तो व्यक्तिगत खेतों में खाद कहां से देंगे ? फिर कहेंगे कि गांव भर का कूड़ा कचड़ा साफ़ करो, घर के गन्दे पानी के सोखने के लिये गड्ढे खोदो इत्यादि ! जैसा बाहर कुछ गाँवों में होता सुना है ।

टहल ने कहा चीन के किसान इतने चतुर हैं कि खुरपी साथ ले जाकर टट्टी फिरने जाते हैं और खुरपी से खेत की मिट्टी खोद कर मैले को उससे ढक देते हैं जो समय पाने पर बढ़िया खाद का काम देता है ।

इस पर सब हँस पड़े—केवल सनेही गम्भीर बना रहा ।

जब हँसी थम गई सनेही ने कहा, 'चीन में तो और भी बहुत कुछ होता है—'

'सुनता हूँ वहां कुछ लोग मेढक का अचार खाते हैं,' अब की बार देशराज ने हँसी फैलाई ।

टहल ने चोट की,—'आप इस तरह की, बेतुकी बातों के सिवाय और सुना ही क्या सकते हैं ?'

'तुम ही बड़े जानकार दुनिया भर के !' बिक्रम ने जो एक कोने में गुमसुम बैठा था, चिमटी सी काटी ।

'बात सुनो, बात सुनो,'—सनेही ने झगड़े के प्रारम्भ को रोका,—'हर एक देश में, अपनी अपनी परस्थिति के अनुसार, जीवन बनता और चलता है । किसी को बुरा नहीं कहना चाहिये । हमारे देश में भी वही होगा जो हमारे स्वभाव के अनुकूल बैठेगा । अच्छी नई बातों को अपने स्वभाव का अङ्ग कैसे बनावें, बस इसी को सोचते करते रहना चाहिये ।'

'एक प्रसङ्ग और ह'—बनमाली ने अपनी बात छेड़ी,—'अभी तक अवैतनिक कार्यकर्ताओं को, जैसे डॉक्टर साहब हैं, मैं हूँ, प्रधान देशराज जी हैं, कुछ नहीं दिया गया है । हर काम करने वाले को कुछ न कुछ मिलना चाहिये ।'

देशराज झट से बोला, 'मुझे कुछ नहीं चाहिये; मैं करता ही क्या और कितना हूँ ?'

डॉक्टर सनेही ने कहा,—'परोपकार त्याग और सेवा सब अलग अलग भाव हैं। सेवा शब्द का जितना बुरा उपयोग हुआ है उतना शायद ही किसी दूसरे शब्द का हुआ हो। त्यागी, परोपकारी और हज़ारों रुपया मासिक वेतन पाने वाले सभी सेवक ! मेरे ख्याल में मुफ़्त सेवा, थोड़ी सी, कुछ ही समय तक, की जा सकती है। इसके बाद वह भार हो कर असह्य हो जाती है और कन्धों से उतार कर फेक दी जाती है—'

देशराज ने छिपा व्यङ्ग किया,—'डॉक्टर साहब तो अपने पेशे में ही फ़ीस बहुत कम लेते हैं, समिति के कार्य का भी थोड़ा सा ही लेंगे, देना चाहिये।'

सनेही ने झुंझलाहट को दबाकर कहा, 'मैं भी कुछ नहीं लूंगा यानी जब तक कि मज़दूरों को भर पेट देने के बाद समिति को काफ़ी लाभ नहीं होता, तब तक; क्योंकि मैं मुफ़्त सेवा में विश्वास नहीं करता। मेरी राय में मन्त्री को अगली साल से कुछ दिया जाना चाहिये। इस साल तो देने के लिये एक दाना भी नहीं।'

टहल हँस कर बोला, 'वह पचत्तर फ़ी सदी सब समेट ले गया।'

इस पर चुप्पे मज़दूर मैम्बर भी नीचा सिर किये हँसने लगे।

'आपकी समिति यहां से कुछ दूर नहीं है। देखें आप कितना दान-पुन्न करते हैं।' देशराज ने कहा।

बिक्रम से फिर न रह गया,—'इनकी समिति में हैं बड़े बड़े धर्मात्मा !'

टहल और उसके साथी भन्ना कर चुप रहे।

फिर पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। देशराज प्रधान, बनमाली मन्त्री और सनेहीलाल खजाञ्ची चुन लिये गये।

बैठक की समाप्ति।

थोड़ी देर बाद अञ्जना और देशराज मिले। देशराज ने बैठक का हाल संक्षेप में सुना कर कहा,—'सहकारी समिति क्या है चों-चों का मुरब्बा है! अब अपने उस काम को हाथ में लेना है जिससे रक़म पल्ले पड़ेगी।

अञ्जना बोली मैं चली जाऊँ बाघराज को रक़म समेत पकड़ लाने के लिये ?'

'तुम मत जाओ, बुलवा लूँगा।'

× × × ×

घाटीवाली से जिन लोगों ने बीज और खवाई के लिये अनाज लिया था वे मजूरी और खेती से प्राप्त अन्न लेकर आये। टहल वहां नहीं था।

घाटीवाली ने चेताया, 'मैंने कहा था कि सवाई नहीं लूँगी, सो मूल का मूल दे जाओ परन्तु आगे एक दाना भी नहीं दूँगी।'

'तो हमारा काम कैसे चलेगा ?'

'और मैं ही अपना काम कैसे चलाऊँगी ?'

'तुम्हीं ने कहा था कि सवाई नहीं लूँगी, हम तो देने को तैयार थे।'

'मैं आज की और आगे की बात कर रही हूँ।'

हमें तो अपना आगे का काम चलाना है। साफ़ कह दो हम सवाई देने को तैयार हैं।'

'देखो, टहल की बात और है। वे जितनी सेवा कर रहे हैं तुम सब की, वही बहुत है। पर घर-गिरस्ती तो मुझे चलानी पड़ती है, इसलिये ब्योहार बनाये रखना चाहते हो तो सवाई देनी पड़ेगी; वैसे मैं छोड़ने को तैयार हूँ, पर आगे नहीं दे सकूँगी।'

उन सबने सवाई समेत अनाज लौटाया। जब दे आये तो आपस में कहते गये—

'अरे भाई, ब्याज, सवाई कोई नहीं छोड़ता। देशराज नहीं छोड़ता बल्कि उसका कारिन्दा तौल मारता है, और तरह तरह से ग़रीबों के पेट काटता है। धरनीधर उससे उन्नीस बीस ही है। यह धरम की सवाई तो लेती हैं, बस इतना ही अन्तर है।'

'यही क्या कम है ?'

× × ×

प्रातःकाल पौ फटने के साथ ही बादल के टुकड़े दिखलाई पड़े, दिन में फैल गये और रात होते ही छा गये। फिर हुई चमक तड़क। जिनके खलिहान अभी रक्खे हुये थे उन्होंने लांकें ढकीं, जिनका भूसा बाहर रक्खा था उन्होंने भोजन ब्यालू छोड़कर भीतर उठा लिया।

बांगुर्दन समिति की एक लाँक ऐसी थी जो अभी तक नहीं सूख पाई थी। इसको उठाने ढकने के लिये टहल ने पुकारे लगाई। खाना खाकर एक दो उसके पास आये, पर कर कुछ न सके। बटोले, मंटू इत्यादि अपना भूसा भीतर रखने पर चिपट गये। आंधी आई, उसके साथ हलकी बूंदें। फिर पड़े ओले। सब अपने अपने घरों में घुस गये। टहल छाता लगाये घूमता रहा, पर दूसरों के पास तो छाते थे नहीं, उस पर पञ्चायती काम ! कोई बाहर न निकला। ओलों का साथ बादल की कड़क दे रही थी। ओलों के बाद ज़ोरों का पानी बरसा। कहीं यह पानी जाड़ों में बरसता तो कैसी अनहोनी फ़सल आती ! घर घर कितना अनाज और भूसा न आ जाता !! जिन्होंने अपना अनाज और भूसा उठा लिया था, वे कह रहे थे।

एक घंटे पीछे बादल छट गये। आकाश में जहाँ तहाँ छोटे बड़े तारे छिटक आये। बटोले मंटू और कुछ अन्य लोगों को लेकर टहल सहकारी खलियान पर पहुँचा। सब तरफ़ कीचड़, गड्ढों में पानी और ऊँची जगह से नीचे की ओर बुद् बुद् करती हुई पनालियां—मानो इन लोगों को फटकार रही हों।

टहल के मुंह से आह निकली—'यह सब नष्ट हो जायगा।'

'क्या करते--ओला पानी ऐसा तड़ातड़ आया कि कलेजा ममोस कर रह गये। देवता के कोप को कौन संभाल सकता है ?'

'अपनी अपनी खेती में जूझते रहे; इसका यह हाल कर दिया !' टहल ने कहा।

बटोले बोला, 'उसे न देखते तो उसका भी यही हाल होता।'

टहल ने दाँत भीचे।

'अब क्या किया जाय ? लांक के नीचे पानी सिमट सिमट कर आ रहा है। इसको उठाकर ऊँची जगह रख लो तो बच जाय।'

मंटू ने समझाया,--'अरे ऐसा न करना बाबू। पानी लाँक के ऊपर से बह कर चला गया है, भीतर अच्छी होगी। उखाड़ी पछाड़ी तो अब गींली होकर सड़ जायगी।'

बटोले ने भी यही राय दी।

अन्त में लाँक को भाग्य के भरोसे छोड़कर सब को घर लौट आना पड़ा। दिन भर के थके थे। जा सोये।

सवेरे देखा तो लाँक में नीचे, ऊपर, भीतर—सब जगह पानी। कई दिन से लौट पलट नहीं की गई थी, इसलिये गरमी के कारण बालें, घेंटीं सब, भभक गई थीं। भीतर पानी जो पहुँचा तो सूरज की किरणों में भाप उड़ती हुई दिखलाई पड़ी। पूले के पूले उठवा कर छायादार स्थान पर रखे। सूख जाने की प्रतीक्षा में दाय को रोकना पड़ा। समिति की बैठक कुछ समय के लिये स्थगित हो गई।

× × ×

जात बिरादरी के नीति या न्याय शास्त्र ने जोधा के मारे जाने के बाद मंटू को बिरादरी से बन्द कर दिया था।

वह जात-ब्योहार में प्रवेश पा जाने की चेष्टा कर रहा था। टहल अपने साथियों की दलबन्दी को तोड़ने का आकांक्षी था। समिति की बैठक होने के पहले ही झंझट समाप्त हो जाय तो बहुत अच्छा रहे।

पंचों ने जमाव किया और उसमें एक पङ्गत के जुर्माने का दण्ड। दूसरे दिन मंटू ने किसी तरह पङ्गत का आयोजन कर दिया। सन्ध्या समय भोजन के लिये जाति के लोग आ गये। घर में इतना स्थान था नहीं कि सब लोग समा जाते, इसलिये बाहर पत्तलें पड़ीं। गाँव के कुछ कुत्ते आकर थोड़ी दूर आपस में भोंकते दरीते रहे।

दाल भाजी मंटू ने परोसी। रोटियाँ परोसने हरको आ गई। थोड़ी सी पत्तलों पर उसने आठ आठ रोटियाँ डाली थीं कि एक पञ्च ने उज़र किया—

'हरको परोस नहीं कर सकती। यह पहले ससुराल में शुद्ध हो आवे तब उसके हाथ का छुआ खाना खाया जा सकता है।'

'क्यों ? जैसा मैं वैसी मेरी बहिन।' मंटू ने कहा।

हरको आँखें फाड़ फाड़कर देखने लगी। रोटियों से भरी थाली दोनों हाथों साधे थी।

दूसरा पञ्च बोला, 'मंटू ठीक कहते हैं। दोनों को बिरादरी में मिलाने के लिये है यह पङ्गत। हरको में कोई दोष नहीं।'

'कैसे नहीं है ? पञ्चायत ने मंटू को जात में मिलाया है न कि हरको को ! उसका फ़ैसला उसकी ससुराल के पञ्च करेंगे !!' तीसरा चिल्लाया।

मंटू के एक पक्षपाती ने बतलाया,—'खाना तो हरको के ही हाथ का बनाया हुआ है। परोसने में क्यों व्यर्थ की मीनमेख निकालते हो ?'

'हमको मालूम नहीं था। मंटू ने दगा किया।' कहकर कुछ लोग खड़े हो गये। ये बनमाली के पक्ष के थे।

'क्या तुम्हारे माँ बहिनें नहीं हैं जो हमें सताते हो ?' हरको बिलखी।

मंटू बिगड़ा,—'कोई पुरानी कसर निकाल रहे हो। किसी दिन तुम पर भी बीतेगी।'

'आग लग जाय इनकी छाती में ! इनकी हो जाय ऐसी गति—' इसके आगे हरको ने जो कुछ कहा वह रौरे में डूब गया।

मंटू के पक्षपाती और विरोधी--सब--उठ खड़े हुये और चिल्ला-चिल्लाकर एक दूसरे को बुरा कहने लगे। हाथाबाही की नौबत आती देखकर हरको रोटियों की थाली लिये भीतर चली गई।

परन्तु हाथाबाही की नौबत आने नहीं पाई, क्योंकि कुत्ते झपटे और पत्तलों को रौंदते हुये रोटियाँ लेकर चलते बने !

झगड़ा शान्त हो गया। कुछ कुत्तों को मारने के लिये दौड़े, कुछ हँस पड़े। मंटू क्रोध और परिताप में खिन्न।

थोड़ी सी देर बाद वहां टहल आ गया।

'यह क्या गधापन है तुम लोगों का ?' उसने आते ही भर्त्सना की।

वे सब उसके आसपास आ गये। पल भर सोचकर टहल ने एक पुराना अस्त्र हाथ में लिया,—'तुम लोगों ने अन्न गुरू का अपमान किया ! बहुत बुरा किया ! !'

विरोधियों के आचरण में दुराग्रह या मूर्खता के सिवाय और कुछ था नहीं, उस पर अन्न गुरू का अपमान ! जो उन्हीं के उज़र उठाने के कारण हुआ। टहल ने समझाया तो अपनी भूलचूक सुधारने के लिये तैयार हो गये। अधिकांश दाल-भाजी नष्ट हो गई थी और काफ़ी रोटियां। पत्तलें मंटू के घर बहुत थोड़ी रह गई थीं। खिसयाया हुआ वह इतना था कि नाई के यहां से दूसरी पत्तलें लाना नहीं। बाहर की पत्तलों को हटा कर भीतर की बची हुई लाई गईं जितनी दाल-भाजी और रोटियां बची थीं उन्हीं से काम चलाया गया। एक एक पत्तल पर तीन तीन चार चार बैठ गये—मंटू के अभी अभी के विरोधी उसके पक्षपातियों के साथ! हरको ने प्रसन्नता के साथ परोसा। टहल खाने पीने की छुआछूत नहीं मानता था। भूख न होने पर भी एक रोटी मांग ली और रास्ते में खड़े खड़े खाने लगा।

खाते खाते एक पन्च, जिसने पहले उज्र उठाया था, बोला, 'टहल बाबू का भला हो, इन्होंने अच्छा निबटा दिया।' वह नहीं चाहता था कि मंटू के मन में चुभता रहूँ।

टहल ने सोचा, 'मैने नहीं निबटाया उन कुत्तों ने निबटाया!'

मंटू की गांठ में जितनी सामग्री थी उससे और ठंडे जल की पूरकता से पङ्गत समाप्त हो गई। टहल ने सरकारी समिति की तारीख और समय बतला कर सबको उसकी बैठक में आने के लिये बुलाया।

× × ×

टहलराम के घर निश्चित तारीख और समय पर बांगुर्दन समिति की बैठक हुई। बटोले प्रधान, टहल मन्त्री और सहकारी विभाग का वही कर्मचारी पदाधिकारियों में उपस्थित थे— खजांची दमरू जेल में था। सनेही, बनमाली और देशराज साथ साथ आये—छदामी पीछे। बिक्रम नहीं आया। पुरुष पौर में बैठे और स्त्रियां पौर के दरवाज़े से दिखलाई पड़ने वाले आंगन की छपरी में।

खर्चा और ज़रूरी मदों को काटने के बाद देखा तो बांटने के लिये मुनाफ़ा बहुत थोड़ा बचा। पैदावार टहल के खेतों के चक में अच्छी हुई थी, उससे कम बटोले की बिखरी जोत में और सबसे कम उस पड़ती में जो बटोले को अदालत से मिली थी और जिस पर ट्रेक्टर चलाया गया था।

बटोले और अन्य सदस्यों के निजी खेतों में कहीं अधिक पैदावार हुई थी।

सभी कुछ न कुछ कह रहे थे,—केवल सनेही और टहल चुप थे।

सबके कहने की तुक एक ही थी—फ़सल तो मज़े की थी, पर उस रात के पानी ने चौपट कर दिया!

'न पैदावार अच्छी हुई और न अकेले पानी ने चौपट मारा'—टहल बोला,—'यदि उसी मन से काम होता जिस मन से निजी खेतों पर किया गया तो पैदावार अच्छी होती और पानी बरसने के पहले खलियान उठ जाता।'

बटोले ने हँसी में बात दबाई,—'यह लो ! भगवान पर किसका काबू ? अगर पानी पहले बरस पड़ता तो भी यही होता। इसीलिये तो अपने तरफ़ की खेती को आकाशीवृत्ति कहते हैं।'

अर्थात ऐसी खेती जो मेह, धूप, आंधी, कीड़े मकोड़ों और जङ्गली जानवरों की सनक और मर्ज़ी पर निर्भर हो—विशेष कर, आकाश की बरसात और धूप की सनक पर।

जब यह चर्चा कुछ ठंडी पड़ी, सनेही ने कहा, 'पड़ती ज़िमीन में पैदावार सुहाना में भी कम हुई है। अधिकांश रक़बा समिति को पड़ती भूमि का ही मिला है, जैसा कि यहां की समिति को। मरी बछिया बाम्हन को ! उससे क्या होना था ?'

टहल बोला, 'मैने तो अपना पूरा समूचा चक लगा दिया यहां की समिति को।'

'तिल भर भूमि भी निजी खेती के लिये नहीं रक्खी', घाटीवाली ने आँगन से ही जोड़ा।

सनेही ने कहा, 'आपने बहुत अच्छा किया। देशराज जी ने भी उस दिन एक बढ़िया और बड़ा रकबा आगे के लिये लगा दिया है।'

देशराज ने हिसाब लगाया,—जो कि टहल बाबू के चक से कई गुना बड़ा है।

सब का सब लगा दीजिये, तब हो जायँगे हम और आप एक से।' टहलने काट किया।

'तब भी अन्तर रहेगा।' बनमाली हँसा।

बटोले ने इस चर्चा को आगे नही बढ़ने दिया। बोला, 'अब तो आगे की सोचना चाहिये। जो कुछ हुआ, सो हुआ। भाग्य पर किसी का बस नहीं।'

खर्चे में सब से बड़ी कलम ट्रैक्टर के खर्चे की थी, फिर मज़दूरों की मजूरी की। यह कैसे कम हो इस पर विचार होना था, खर्चे काटकर पहला महत्व मुनाफे की बांट को मिलना अनिवार्य हुआ।

बटोले ने कहा, 'जो सुहाना में हुआ वही यहां भी होना चाहिये।' आँगन की ओर मुंह करके पूछा, 'क्यों चाची, ठीक है न ?'

घाटीवाली ने उत्तर दिया, 'सबका सब दे दो तो भी पूरा नहीं पड़ेगा।'

बटोले पुरुषों के सम्मुख हुआ, 'पचहत्तर प्रतिशत ठीक है ?'

टहल ने कहा, 'मुनाफ़े के बाँट का यह सिद्धान्त ही ग़लत है। मेरी राय में तो जब तक सही सिद्धान्त नहीं अपनाया गया फ़ी एकड़ कुछ रुपये नियुक्त कर दिये जायं।'

'पच्चीस रुपये एकड़ और काम करने वालों को भत्ता' भीतर से घाटीवाली की आवाज आई।

समझी हो या न समझी हो हरको ने समर्थन किया,—'ठीक तो है।'

वह घाटीवाली के पास बैठी थी।

टहल हँसा।

'माता जी, इतने का तो कुल गल्ला ही नहीं बैठेगा।'

'तो मैं नहीं चाहती इस अमति समिति को। हम वैसे ही भले।' घाटीवाली झुंझला गई।

सनेही ने सलाह दी,—'काम अच्छा है। जब उसे हाथ में ले लिया तो चलाना ही चाहिये—'

घाटीवाली ने टोका,—'चाहे भूखों मरने की नौबत आ जाय ?'

सनेही कहता गया,—'नहीं माँ जी, ऐसा नहीं होगा। यह पहली साल है, किसानों ने जिस पड़ती को अन्न उपजाऊ भूमि समझकर बरसें हुई छोड़ दिया था, वह इस साल जोती-बोई गई। उसी पर ख़र्च बहुत हुआ और पैदावार हुई कम। अगले साल उसमें बहुत अच्छी फ़सल होगी, क्योंकि बन्धी पड़ चुकी है। लोग आप सरीखी लगन से काम करेंगे तो सभी को बहुत लाभ होगा। यह ज़रूर है कि लोग निजी खेती जितनी कम करें उतना ही अच्छा होगा।'

बटोले को निजी खेती से सन्तोषजनक लाभ नहीं हुआ। अगली साल उसी की पड़ती में, जिसके अब चौकोर खेत बन गये थे, फ़सलें

लहलहायेंगी। ख़र्चा कम होगा; फ़ायदा मिलेगा दूसरों को! इसमें निजी खेती हो तो वाह!

बोला, 'पचहत्तर फ़ी सदी ही रखिये। अगले साल की अगले साल से लगी। यदि अगले साल भाग्य से बढ़िया फ़सल आई तो सरकार को अन्न बेचकर रुपया बाँट लेंगे।'

सबको मानना पड़ा। देशराज के चेहरे पर ताने की मुस्कान आई। उसने आँख गड़ाकर टहल की ओर देखा। टहल का मुंह लाल हो गया। भूमिस्वामी हिस्सेदारों को हिस्सों के रुपयों पर भी प्रतिशत मिला, जैसा अन्य हिस्सेदारों के लिये तै हुआ।

ख़र्चे कम करने की बात उठी।

टहल ने कहा, 'ट्रैक्टर का उपयोग ज़रूरी है और मज़दूरों की दर कम नहीं की जा सकती—'

घाटीवाली ने टोका,—'आग लगाओ ट्रैक्टर में। पुराने काल में क्या उन्हीं से खेती थी?'

टहल प्रतिवाद करना चाहता था, सनेही बीच में बोल उठा, 'माँ जी ग़लत नहीं कह रही हैं। जब बहुत ज़रूरत पड़े और बिना ट्रैक्टर के काम चलता न दिखे तभी उसे काम में लाया जाय। पुराने चलन और नई तरकीबों के हेलमेल से ही अपना काम सफल होगा और कोई मार्ग व्यवहारिक और लाभदायक नहीं जान पड़ता।'

देशराज ने कहा, 'जब तक सिंचाई का साधन हाथ नहीं लगता तब तक नया पुराना सब यों ही रहना है।'

टहल बोला, 'ललिता नदी का बाँध पूरा होने को है। नहर जल्दी आयगी।'

मंटू ने कहा, 'मज़दूरों वाली बात फिर रही जाती है। दस आना रोज़ कम है. उसको भी कम कर दिया तो आफ़त आ जायगी। वैसे ही तो मज़दूर मिलते नहीं, फिर तो गाज ही टूटेगी।'

मज़दूर मेम्बरों ने तुरन्त हाँ की।

टहल की उमङ्ग जागी—'मैं तो कहता हूँ, बारह आना रोज़ से कम नहीं मिलना चाहिये जो दर सुहाना में चालू है।'

बनमाली ने सावधान किया,—'यहां बारह कर दिये तो सुहाना में चौदह आने कर देने पड़ेंगे ।'

'और मुझे एक रुपया रोज़ भुगतना पड़ेगा', देशराज ने सोचा।

बटोले ने प्रधान पद की निभाई,—'फिर यहाँ चौदह आने और वहां एक रुपया ! कोई हद भी तो हो। आखिर भूमि के मालिकों और जिन्होंने रुपये देकर समिति के हिस्से मोल लिये हैं उन्हें भी तो कुछ मिलना चाहिये, नहीं तो काम कैसे चलेगा ?'

'दस आना रोज़ ही ठीक है।' घाटीवाली बोली।

टहल ने कहा, 'मेरी समझ में यदि मज़दूर मेम्बरों को पैदावार में सोंझिया बना लिया जाय तो किसी को नहीं अखरेगा।'

इस पर भूमि-स्वामी राजी नहीं हुये।

मंटू ने सुझाया—'मैं एक छोटी सी बात कहता हूँ—मज़दूरों को ज़मीन के मालिक अपने अपने खेत में, जो उन्होंने कापटी-समिति को लगाई है मजूरी न दे कर, बटियारा बनालें; बटियारों के लिये अच्छा रहेगा और मालिकों को भी फ़ायदा रहेगा; मजूरी की दर कम बढ़ नहीं करनी पड़ेगी और समिति खर्च के भार से न दबने पायगी।'

बटोले ने तुरन्त समर्थन किया,—'यह ठीक है, बिलकुल ठीक। हम लोगों की मिल्कियत बची रहेगी और मज़दूरों का पेट भरेगा।'

मज़दूरों ने भी 'ठीक है, ठीक है' कहा।

टहल ने इस प्रणाली का दोष बतलाया,—'मजदूरी के दिनों में ये लोग खायेंगे क्या ? और इससे व्यक्तिगत खेती कम नहीं होगी, उससे बढ़ावा ही मिलेगा।'

'दोनों हाथ लड्डू नहीं खाये जा सकते।' बनमाली ने आलोचना की।

बटोले ने समस्या हल की,—'जैसे दूसरे बटियारे पेट भरते हैं, वैसे ही ये भी भर लेंगे। अटक पड़ने पर हम लोग खवाई के लिये अन्न देंगे।'

एक मजदूर बोला, 'हमारे पास तो गर्मियों के लिये ही खाने को अन्न नहीं है। मजदूरी भी कोई नहीं। हमारा क्या होगा?'

सनेही ने कहा, 'नहर खुदती आ रही है, उस पर काम मिलेगा, न मिले तो भू-स्वामियों को खवाई के लिये अन्न अवश्य देना चाहिये।'

टहल ने अपना दृष्टिकोण फिर प्रस्तुत किया, -'समिति की सारी भूमि का मालिक समिति को बना दिया जाय, सब कोई काम करे, घंटों के हिसाब से यथा-योग सबको दिया जाय, खर्चा काट कर जो कुछ बचे उसको, जिसका जैसा काम रहा हो उस हिसाब से, बाँट दिया जाय—'

उसने बात पूरी नहीं कर पाई कि बटोले बोला, 'यह तो फिर वही बात हुई! भूमि अन्धे की लाठी और लँगड़े की बैसाखी है। समिति को भूमि का मालिक बना देने के बाद भूमि-स्वामी, समिति से अलग होने पर, अपने साथ क्या लेता जायगा? क्या नीबू निमक चाटेगा?'

सनेही ने एक पुराना दोहा सुना कर बहस को शांत करना चाहा,—

राम झरोखा बैठ के सबका मुजरा लेंहि।
जाकी जैसी चाकरी ताकों तैसा देंहि॥

इस पर लोग प्रसन्न तो हुये परन्तु बहस नहीं रुकी। टहल को अपनी बात पूरी करनी थी—

'नियम बना दिया जाय कि स्तीफ़ा देने वाले समिति को त्यागने पर भूमि को वापिस न ले सकेंगे। भूमि का दाम कूत लिया जाय। जितना दाम बैठे उसे समिति के हिस्सों में परिवर्तित कर दिया जाय। इस्तीफ़ा देने वाले को उन हिस्सों के रुपये लौटा दिये जायें। बिरासत के झगड़े, आपसी बांट के मसले इत्यादि भी इस प्रथा से सुलझ.व पा जायेंगे—

रुपये बँट जायेंगे या समिति के हिस्से, यदि ऐसे लोग समिति से इस्तीफ़ा न देकर उसमें बने रहें।'

'बात तो सिद्धान्त की कही,'--सनेही बोला--'लेकिन व्यवहार की निगाह से डग उठाना ज़्यादा भला होगा। कोई भी बड़ा और व्यापक सिद्धान्त एक साथ लागू नहीं किया जा सकता। जब जैसा और जितना ठीक दिखलाई पड़ा उसके साथ कदम मिलाकर बढ़ते चले गये। अभी अभी जो हाल मंटू भाई ने सुझाया है, कुछ अंशों में कुरूप होते हुये भी अपनाने लायक है। अनुभव स्वावलम्बी बनाता है। इस योजना में आगे जैसे ही कोई खुटका पाया कि बदल दिया।'

मंटू की बात स्वीकृत करनी पड़ी। वह अपनी सूझ बूझ पर फूल गया। टहल को अपनी हार खटक गई।

'अब मज़दूरों को बोंगस ?' मंटू ने दूसरी सूझ पेश की।

देशराज, सनेही, और टहल भी, अंग्रेजी शब्द 'बोनस' के इस रूप पर, जिसको सुहाना की बैठक में उसी ने सिरजा था, मुस्करा पड़े।

मजदूरों को बोनस--भत्ता--उतना ही मिला जितना सुहाना समिति में घोषित किया गया था--अर्थात् पांच प्रतिशत !

देशराज ने व्यङ्ग्य किया,--'आपका शब्द बड़ी फुर्ती से प्रचार पा गया ! और हमारा अनुकरण भी !!'

टहल ऊपर से मुस्कराया, पर भीतर भीतर कुढ़ गया। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर भी उसने मजदूरों के प्रति उन्मुख होकर प्रश्न किया,--'तुम लोग पाँच रुपया सैकड़ा मुनाफ़े पर राज़ी हो ?'

मंटू जल्दबाज़ था, बोला,--'हाँ, हां क्यों नहीं ? कहो भाइयो, कहो।'

उनमें से किसी ने हामी का सिर हिलाया, किसी ने कहा, 'राज़ी क्यों न होंगे ? जो कुछ मिल जाय वही बहुत है।'

बटोले ने आदेश दिया, 'लिख लो कि पास हो गया और आगे बढ़ो। इधर उधर की बातों में देर होती ही जायगी।'

टहल को कारवाई की पुस्तक में दर्ज करना पड़ा।

लिखने के बाद तीखे स्वर में बोला,—'हमारा जीवन सहकारी संस्थाओं के बिना नहीं बढ़ सकेगा। उनमें भी मुख्य है सहकारी खेती किसानी। इसकी सबसे बड़ी दुश्मन है निजी खेती और बिखरी जोत। इसका बन्द करना बहुत ही बहुत जरूरी है। हम सुहाना के ज़िमींदारों की नकल नहीं करेंगे। हमको अपने गाँव में व्यक्तिगत खेती को समाप्त करके चकबन्दी करनी ही पड़ेगी।'

'मेरी तो सदा यही राय रही है। सुहाना में अपनी अलग खिचड़ी का पकाना बन्द नहीं किया जा सका तो यहाँ ज़रूर कर दिया जाना चाहिये।' सनेही ने कहा।

अपने छोटे छोटे बढ़िया खेतों का समूह यद्यपि बिखरा हुआ—पड़ती का वह लम्बा चौड़ा रकबा जिस पर बँधी पड़ चुकी थी और जो लोहे की नोकों और धारों से मुलायम कर डाला गया था, बटोले की आंखों के सामने घूम गया। जो पड़ती 'मरी बछिया' जैसी थी अब ब्रज की दुधार गाय होने वाली है! वह गई और गांठ की बढ़िया ज़िमीन और दे दो! किसी दिन इन लोगों ने बैठक जोड़ कर पास कर दिया कि समिति को छोड़ने पर भूमि वापिस नहीं ली जा सकेगी तो सब स्वाहा! किसी दिन न पटी तो मैं तो बँधी वाले उस बड़े खेत को निजी खेती में वापिस ले लूंगा, भले ही उन छोटे छोटे खेतों को समिति में लगा दूं।

बटोले ने विरोध किया,—टहल बाबू, यह पृथ्वी पलभर में स्वर्ग नहीं बन जायगी। और फिर देखा किसने है कि स्वर्ग है कैसा? सुनते ही आये हैं न? अगले साल को रख छोड़ो अपनी इस धुन को।'

'क्यों ? अभी क्या हो गया है ? अच्छा सो हमेशा अच्छा ।' टहल ने कहा !

देशराज ने टाँका लगाया,—'आज यहां कर लो, अगले साल हम लोग सोचेंगे ।'

सोचेंगे ! करेंगे नहीं !! यह मुझे डुबोना चाहता है । बटोले झल्ला गया—'हम नहीं करेंगे इसे पास ! अगर आप लोग नहीं मानते तो हम आज, अभी, समिति से अलग होते हैं । देते हैं स्तीफ़ा इसी पल !'

कोलाहल मच गया । मंटू बटोले की हाँ में हां कर रहा था ।

एक बोला, 'बटोले को ताव बड़ी जल्दी आ जाता है ।'

पौर के दरवाजे पर खड़ी होकर घाटीवाली चिल्लाई,—'बटोला समिति को छोड़ देगा तो हम मरे थोड़े जाते हैं !'

हरको उसके बग़ल में थी । उसने अपना गुबार निकाला,—'बड़े धरमेसुरी है न ? इन्हीं पर तो टिका है सारा संसार ।'

बटोले खड़ा हो गया । उसके पैर कांप रहे थे । 'इस्तीफ़ा नहीं लिखते हो तो घर से भेज दूंगा ।' बटोले बाहर जाने को हुआ ।

'ओ हो हो ! जैसे हम तुम्हारा रिन खाये हो !' घाटीवाली फिर चीखी ।

टहल ने हाथ जोड़ कर विनय की,—'माता जी, माता जी !' और बटोले का कन्धा पकड़ लिया । कहा, 'दादा, ज़रा सा बैठो, ऐसी जल्दी मत करो ।'

बटोले का कण्ठ भर्रा गया था । बोला,—'फिर कभी बात करूँगा अभी जाने दो ।'

देशराज मुस्करा रहा था । टहल के कलेजे में ज्वाला सी धधक गई, होंठ सूख गये ।

होंठों पर जीभ फेर कर टहल ने उससे अनुरोध किया,—'एक मिनिट ठहर जाओ । बाकी कारवाई को किसी अगली बैठक के लिये मुल्तवी किये देते हैं ।'

सनेही भी खड़ा हो गया,—'ठीक है, मुल्तवी कर दीजिये।'

बटोले ठहर गया। बाकी काररवाई मुल्तवी कर दी गई। तारीख और समय नियुक्त करते टहल ने सनेही की ओर देखा।

सनेही ने कहा, 'कल मुझे अवकाश नहीं, परसों सवेरे की गाड़ी से घर जा रहा हूँ। दवायें लानी हैं और थोड़ा सा काम है। एक हफ़्ते में लौटूंगा।'

सनेही की सुविधा और बटोले की इच्छा के अनुकूल तारीख और समय की नियुक्ति हो गई।

[३४]

बांगुर्दन समिति की बैठक के दूसरे दिन लगभग दूसरे पहर बाघराज मोटर से सुहाना आया। भोजन उपरांत देशराज, अञ्जना और बाघराज हवेली के एक भीतरी कमरे में जा बैठे। वह अफ़ीम की पेटियां लेने के लिये आया था। बुलाया ही इसीलिये गया था। रुपये साथ ले आने की सूचना भेज दी गई थी। बाघराज केवल एक पेटी 'माल' के भुगतान लायक रुपया ले आया था।

उसने कारण बतलाया, 'मैं तो पूरे रुपये लाना चाहता था, पर मिल न सके। पुराना सब बड़ी महारानी साहब—मेरी माता जी के पास है। आयु के साथ साथ उनका धनमोह भी बढता गया है। मजबूरी है। जैसे ही माल खपा, रुपया आ जायेगा और तभी हिसाब हो जायगा।'

अञ्जना की मदीली मुस्कानें और नशीली चितवनें बेकार गईं, देशराज को भासित हुआ।

अञ्जना ने पूछा, 'कालीसिंह जी कहाँ हैं इन दिनों ?' क्योंकि माल का जल्दी या देर से खपना उन्हीं के गिरोह पर निर्भर था।

'यहीं कहीं जङ्गल पहाड़ों में हैं। मेरे यहां आने की बात उन्हें मालूम है। काम में बिलम्ब नहीं होगा। अभी तक जितनी देर हुई है वह आप लोगों की तरफ़ से ही हुई है।'

'खैर, कुछ देर लगानी पड़ी। पूरा रुपया आ जाता तो हम लोग फिर बाहर निकल जाते।'

'बहुत बहुत मजबूरी है। जितना ले आया हूँ उतने से और बाक़ी अपने पास से, आपको काम चलाना पड़ेगा। पहले का होगा ही और फ़सल घर आ गई है—'

'लेकिन लगान तो नहीं मिलता जिसकी काफ़ी बड़ी रक़म होती थी', देशराज ने कहा, 'अनाज खाने खर्च के लिये चाहिये। उससे जो

बचे वह बहुत नहीं बैठेगा। पहले का रुपया बैंक में भेज दिया। बड़ी रक़म का वहाँ से निकालना असम्भव है, क्योंकि मियादी अमानत में जमा है, चलतू हिसाब में ज़्यादा नहीं। उधार खाते रुपया उठाऊँ, तो बैंक आनाकानी कर सकता है। इसके अलावा न जाने कितने प्रकार के सन्देह खड़े हो जायँ।'

थोड़ी देर दोनों ओर की विवशता की बात चलती रही। अन्त में तै हुआ कि बाघराज दो पेटियों का माल ले जाय, अञ्जना और देशराज बाघराज के लाये रुपये और कुछ अपनी गाँठ के लगाकर यथासम्भव अधिक माल लावें और बरसात आरम्भ होने के पहले खपा कर लेने देने का हिसाब साफ़ कर लें।

अब बाघराज ने अञ्जना के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त किया। 'आइये न नाहरगढ़ जल्दी, गरमियों में बहार रहती है। आपके गायन से बहुत दिन हुये जब कान शुद्ध किये थे।'

'अभी हो जाय ?' देशराज ने प्रस्ताव किया।

'मुझे दिन दिन में ही लौट जाना है—हाँ, दस-पाँच मिनट की कोई बात नहीं। इतनी देर तो ठहर सकता हूँ।' बाघराज ने कहा।

अञ्जना ने जमुहाई ली और अपनी असमर्थता प्रकट की,—'भोजन के उपरान्त आलस्य आ रहा है।'

आपने बक्स में अफ़ीम भरके बाघराज चलने को हुआ।

देशराज ने हँस कर सुझाया,—'राजा साहब, आप बड़ी महारानी साहब को किसी तरह रुपया देने के लिये राज़ी कर लें तो बड़ा काम बने।'

'कोशिश करूँगा, पर अभी कोई आशा नहीं दिखलाई पड़ती।'

जब बाघराज चला गया, तीसरा पहर समाप्त नहीं हुआ था।

देशराज सोचता था—कमबख्त बड़ा कन्जूस है।

[३५]

दिन में तीसरे पहर गरम हवा चल उठी थी। महुये पत्ते डाल चुके थे और उनमें अर्ध विकसित फूलों के गुच्छे लग चुके थे—सवेरे तक चू चू कर अपनी महक फैलाते रहते थे और दिन में रह रहकर टपकते रहते थे। आमों के पत्तों में होकर हरे हरे फल झांक उठे थे।

धूप से बचने के लिये साफ़े पर भी एक मैली कुचैली मोटी चादर लपेटे, जो कन्धों को भी छिपाये हुये थी, बिक्रम, बग़ल में चादर के नीचे एक हाथ से पोटली संभाले और दूसरे में लम्बी लाठी लिये जङ्गल में तेजी के साथ घुसता चला जा रहा था। लगभग दो मील भीतर गया होगा कि घनी झुरमुटों में से छाया में बैठे चीतल और चौसिंगे आहट लेते ही इधर उधर भागे। उनके यकायक निकल पड़ने पर वह चौकन्ना हुआ। फिर आगे बढ़ा। एक मील और गया होगा कि साल, सेजा और सागोन की सघन ऊँची कुञ्जों में होकर एक गहरा नाला मिला। थोड़ी ही दूर एक पहाड़ी थी। नाले में उतरने के लिये पगडण्डी। वह किनारे पर खड़े होकर इधर उधर देखने लगा।

नाले की दूसरी ढीं से आवाज आई—

'बिक्रम!'

'मैं ही हूँ।' बिक्रम ने कहा।

फिर आवाज़ आई—'चले आओ। सब ठीक है न?'

'बिलकुल ठीक', बिक्रम ने उत्तर दिया और नाले में चला गया। उधर एक पेड़ पर से एक व्यक्ति उतरा। पीठ पर बन्दूक़ और कारतूस कसे था। बिक्रम को बन्दूक़वाला नाले के किनारे किनारे, जो टेढ़ा-मेढा जाकर पहाड़ी को चीरकर निकल गया था, ले जाकर पहाड़ी के छोर पर ठहर गया। नाले की तली में वहां एक दह सा बन गया था। बन्दूक वाले ने दह की कगर पर खड़े होकर कूका लगाया।

पेड़ों की एक घनी कुञ्ज में से बारह तेरह हथियार बन्द निकल पड़े—जैसे कुञ्ज ने उगल दिये हों। जो सबसे आगे था उसको बिक्रम ने दूर से ही जुहार किया। यह कालीसिंह था।

बिक्रम ने बग़ल में से पोटली निकाली और उन लोगों के सामने रख दी। पोटली में से कम से कम दस सेर पूड़ियां निकलीं और पलाश के दोने में आम की चटनी।

कालीसिंह ने खाने के लिये आग्रह किया।

उसने थोड़ी सी पूड़ियाँ और चटनी ले ली। बोला, 'अब मैं अपने ढोरों को देखूं और सांझ के पहले घर पहुँच जाऊँ। आज रात—'

कालीसिंह ने खाते खाते कहा, 'याद है। तुम जाओ।'

बिक्रम चला गया। ढोरों के खोजने में उसे समय नहीं लगा और न इकट्ठे करके हाँक ले आने में कठिनाई हुई। ढोर उसके इशारों पर चलते थे, उन्होंने भी गिरोह सा बना रक्खा था।

सन्ध्या होते होते बिक्रम गांव में आ गया। मार्ग में सनेही का मकान पड़ता था। सनेही दरवाजे पर था। उसने वैसे ही कहा, 'बड़ी जल्दी गये और आये!'

बिक्रम थोड़ा सा अकचका गया।

सवेरे रोटी नहीं बांध ले गया था। खाने आया और लौट पड़ा। ढोरों के ढूंढ़ने में थोड़ी देर लग गई।'

'अजी तुम्हारे ढोर तो बहुत सधे हुये हैं।'

सनेही जरा हँसा। बिक्रम चला गया।

दो घंटे पीछे गांव में सन्नाटा खिचने लगा। महुये वाले टपकते फूलों की रखवाली के लिये, महुओं के नीचे जा पहुँचे। वहीं के सूखे पत्ते इकट्ठे करके आग लगाई और रात भर के लिये जङ्गली जानवरों से फूलों की रक्षा का बीमा करके सो गये।

गाँवों में गर्मियों में चहल पहल कुछ अधिक देर तक रहती है, पर आधी रात होते होते वृक्ष-पल्लवों की खरभराहट और कुत्तों के भोंकने के सिवाय और कोई शोर नहीं रहता।

बांगुर्दन में कुत्ते यकायक बहुत भोंके, भागे और एक ने कायं कायं की जैसे किसी ने पत्थर मारा हो।

नाकेबन्दी करने के बाद कुछ हथियार बन्द टहलराम के मकान पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगे और कुछ बटोले के मकान पर।

घाटीवाली को आहट मि॰ गई। वह चिल्लाई—'कौन ?'

कुछ क्षण आहट बन्द रही। घाटीवाली ने चुपचाप टहल को जगाया और जलघरे से आंगन की छपरी पर, छपरी पर से पौर की पलानी पर जा पहुँची। सावधानी से झुककर उसने जो कुछ देखा उससे एक क्षण के लिये उसके हाथ पैर ढीले हो गये। टहल उसके पीछे आया। घाटीवाली का साहस इकट्ठा हुआ। समझने में देर नहीं लगी कि कुछ चोर चढ़ आने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसने उनके हथियार नहीं देख पाये।

घाटीवाली ने खपड़ों की दनादन मार शुरू कर दी। बिना निशाना के निशाने बैठे। जिनके माथे, नाक, कन्धे या पीठ पर पड़े उनके मुंह से चीख और कराह निकली और भद भद गिरने या भागने का शब्द हुआ। टहल ने अपनी माँ का अनुसरण किया और उससे भी अधिक खपड़े बरसाये। वे दोनों खपरैल पर से उतर कर आंगन में आ गये और इतने चिल्लाये पुकारे कि बांगुर्दन में तो क्या सुहाना तक में आवाजें पहुँची। उधर बटोले और उसके घर के लोग चिल्ला रहे थे। फिर बाँगुर्दन में घर घर से चिल्लाने की आवाज़ आने लगी। कुत्ते तो भोंक ही रहे थे।

घाटीवाली के मना करने पर भी टहलराम घर से बाहर निकल पड़ा। उसके पुकारने पर और लोग भी लाठियां, कुल्हाड़ियाँ लेकर दौड़ पड़े। बटोले किवाड़ बन्द किये रहा।

हथियार बन्द चोर—या डाकू—भागे। गाँव वालों ने उन पर पत्थर फेंके। उन्होंने बन्दूकें चलाईं—दायें, बायें, ऊपर, पीछे। और तो

किसी को नहीं लगी, पर टहल घायल होकर गिर पड़ा। बन्दूकों के दागे जाने पर पीछा करने वाले झिझके और रुक गये। हथियार बन्द भाग गये। कुत्ते उन्हें पछियाते हुये बेतहाशा भोंकते रहे।

कुछ ही क्षण उपरान्त जब गाँव वाले झुण्ड बांध बांध कर इकट्ठे होने लगे, टहल की कराहों का शब्द उनके कान में पड़ा। वह बटोले के द्वार के सामने रास्ते में पड़ा हुआ था। लोग चिल्लाये। बटोले लालटैन लेकर बाहर आ गया।

टहल धूल और खून में लतपत था। जांघ से रक्त का सोता बह रहा था। अभी चेत नहीं हुआ था।

'घर--मां के पास।' उसके मुंह से धीमे स्वर में निकला।

बटोले ने तुरन्त चारपाई निकाली। लिटा कर लोग ले गये। घाटी वाली देखते ही मूछित होने को हुई। टहल के मुंह पर मुस्कान आई--जैसे मुर्झाई हुई घास पर ओस की बूंद।

बोला, 'मां! मां!! मैं अच्छा हूँ। डाकुओं का मुक़ाबला किया--डॉक्टर--'

डॉक्टर सनेहीलाल को बुला लाने के लिये तुरन्त बहुत से लोग दौड़े, बटोले भी गया।

सनेही जाग रहा था। इतना हल्ला हुआ था कि शायद ही कोई सो रहा हो--बच्चे तक जागकर रो रहे थे।

लोगों के पुकारते ही सनेही बाहर आ गया। उन्होंने संक्षेप में समाचार सुनाया। डॉक्टर ने दवा और रुई पट्टी ली।

राजदुलारी ने कहा, 'मैं चलूं?'

'नहीं, तुम यहीं रहो।'

सनेही उन लोगों के साथ चला गया। जब टहल के घर पहुँचा तब उसे चेत में पाया। घाव का निरीक्षण किया। गोली जांघ के मांसल भाग को फोड़कर निकल गई थी। दोनों छेदों से खून बह रहा था। बिसूरती हुई मां को सनेही ने वहाँ से हटा दिया।

घाव का उपचार करने के बाद बोला, 'तुरन्त मेरे घर ले चलो। वहाँ एक से दो हो जायेंगे हम। न मालूम किस दवा की कब ज़रूरत पड़ जाय, मैं यहाँ सब की सब नहीं लाया हूँ। ला भी नहीं सकता था।'

घाटीवाली एक कोने में से सिसकी,--'मैं भी चलूंगी— मेरा लाल–'

अर्द्धस्फुट स्वर में टहल ने कहा, 'घर—पर—'.

'हम सब अभी मरे नहीं हैं। हम रहेंगे घर पर,' गाँव वाले बोले।

सनेही के साथ गांव वाले टहल को चारपाई पर लिटाकर धीरे-धीरे ले गये। घाटीवाली भी गई।

डॉक्टर और राजदुलारी ने बड़ी ममता के साथ देखभाल की। रक्त का स्राव तो बन्द हो गया--पट्टियों के कारण दिखलाई नहीं पड़ता था--परन्तु टहल अचेत हो गया।

घाटीवाली बार बार कहती थी,--'मेरा रक्त कहीं से भी निकाल कर भरदो मेरे लाल के शरीर में। बचालो डॉक्टर बेटा मेरे लाल को।'

अञ्जना और देशराज भी जाग पड़े थे।

अञ्जना ने कहा, 'वे ही होंगे ये। या और कोई गिरोह आ गया?'

'नहीं, वे ही होंगे,' देशराज बोला।

'आज किस पर?'

'सवेरे देखा जायगा।'

'यदि वे ही हैं तो अच्छा नहीं हुआ। आज ही राजासाहब आये और लौटे,--और यह हो गया!'

'सबरे देखा जायगा।'

देशराज बाहर नहीं निकला।

सनेही, राजदुलारी और घाटीवाली का सबेरा ज्यों त्यों करके हुआ। पौ फटते ही डाकुओं के आक्रमण और टहल के घायल होने का समाचार फैल गया। किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि टहल मर रहा है।

बड़े सवेरे सनेही के मकान के सामने भीड़ लग उठी। देशराज, बनमाली--बिक्रम भी आये। विद्यार्थी बहुत संख्या में। टहल के स्कूल

के कई रो रहे थे। सबसे अधिक दुखी जनक था। सनेही ने किसी को टहल के पास नहीं जाने दिया।

टहल की अवस्था खराब हो रही थी।

चौकीदार द्वारा थाने में सूचना भेज दी गई।

सनेही ने देशराज से कहा, 'पुलिस के आने और फिर उसके द्वारा टहल को सदर के अस्पताल भेजने तक बहुत समय लग जायगा। मेरे पास एक्सरे नहीं, और भी कुछ ऐसा सामान है जो सदर अस्पताल में सहज ही मिल जायगा। यदि किसी तरह इन्हें इसी समय वहां भेज दिया जाय तो बहुत अच्छा रहेगा। मैं साथ जाने को तैयार हूँ।'

'वैसे बच तो जायेंगे ?' देशराज ने चिन्ता प्रकट की।

डॉक्टर ने उत्तर दिया, 'कह नहीं सकता। खून बहुत बह गया है। हालत खराब है। प्रयत्न करना चाहिये।'

'मैं अपनी मोटर से लिये चलता हूँ।'

'बहुत बहुत धन्यवाद। थाने पर होते हुये चले चलेंगे।'

'ठीक है।'

देशराज मोटर लेने के लिये चला गया।

राजदुलारी ने सनेही से पूछा, 'कब तक लौट आओगे ?'

'इनके निस्सङ्कट हो जाने के बाद। संभव है दो सप्ताह लग जायें।' सनेही ने उत्तर दिया।

'मैं भी चलूंगी। डॉक्टर के साथ नर्स का रहना अनिवार्य है।'

'अस्पताल में नर्सों की कमी नहीं है।'

'और न डॉक्टरों की !'

उस खिन्नता में भी सनेही के होठों पर आनन्द की कुछ रेखायें खिल गईं।

बोला, 'चलो, जरूर चलो।'

साथ चलने और अस्पताल में बने रहने का घाटीवाली का हठ स्वाभाविक था। सनेही ने उसे भी तैयार होने के लिये कह दिया।

वह बोली, 'घर से थोड़ा सा आटा बांध लाऊँ, वहां सबका काम चलेगा।'

'नहीं मां जी', राजदुलारी ने समझाया,—'थोड़े से कपड़ों के सिवाय रुपया पैसा आटा-वाटा कुछ मत ले चलो। वहां हम लोग तो हैं और हमारा घर। क्या मैं आपकी नहीं हूँ ?'

रोते रोते घाटीवाली की आंखें सूझ गईं थी और रात भर में चेहरे पर मकर जाले सी झुर्रियां छा गईं थी। फिर रो पड़ी।

थोड़ी देर में तैयार होकर वे सब देशराज की मोटर से सदर के लिये चल दिये। मोटर बड़ी थी। थोड़ा सा कष्ट सहकर निर्वाह कर लिया।

चौकीदार के पहुँचने के पहले ही ये लोग थाने में पहुँच गये। रिपोर्ट लिख ली गई। थानेदार ने अचेत टहल और उसके घाव को ऊपर से देख लिया। ये लोग सदर चले गये और पुलिस बांगुर्दन।

दो पहर के पहले टहल सदर अस्पताल में प्रवेश पा गया। अविलम्ब एक्सरे हुआ। हड्डी बच गई थी, कुछ मान्सपेशियां और नसें कट गई थीं। उपचार होने के बाद भी वह अचेत रहा। घाटीवाली को अस्पताल में ही डेरा मिल गया। उसके खाने पीने की व्यवस्था सनेही ने अपने घर से कर दी। ठहरे तो सनेही और राजदुलारी अपने घर परन्तु टहल की निरन्तर देख-भाल का उन्होंने व्रत कर लिया और जुट गये।

सिविल सर्जन ने बतलाया कि टहल की हालत बहुत नाजुक है। देशराज घाटीवाली को कुछ रुपये देना चाहता था परन्तु उसने नहीं लिये। देशराज लौट पड़ा। दूसरे दिन कुशल समाचार लेने राघवन आया। उस समय टहल अचेत था।

[३६]

पुलिस ने बांगुर्दन आते ही घटना स्थल का निरीक्षण किया। बटोले के घर के सामने गली की धूल टहल के रक्त से अब भी गीली थी, जहां सूख गई थी वहां गांठें पड़ गई थी। फिर टहल के घर तक धार-सी चली गई थी। खपरैल का निरीक्षण किया तो कई खपड़ों पर रक्त की काली बूंदें पाईं। ये डाकुओं की हैं जिन पर घाटीवाली और टहल ने खपड़ों की वर्षा की थी। पुलिस ने उल्लास के साथ कहा और जनता आल्हादमय हो गई। डाकू किस दिशा में गये इसका पता लगाते लगाते पुलिस गाँव के बाहर आई। मार्ग में चले हुये कारतूसों की खोलियां पड़ी मिलीं। एक पगडण्डी पर फिर वैसे ही रक्त की बूंदें दिखलाई पड़ीं। पुलिस ने परिणाम निकाला,—कई डाकू घायल हो गये हैं और एकाध कुछ अधिक। पता लगाते लगाते मालूम हो गया कि डाकू जंगल की ओर गये हैं। पुलिस थोड़ी संख्या में थी इसलिये जङ्गल मे ज़्यादा दूर नहीं घुसी। जनता में धस पड़ने की वाञ्छा थी। घाटीवाली और टहल ने बन्दूक वालों के सिर खपड़ों से फोड़े और हमने लाठियों से मार भगाया! पुलिस कच्ची पड़ गई, नहीं तो जङ्गल पहाड़ों में ही डाकुओं का भुर्ता कर डालते!! उनकी निर्भीक उमङ्ग के ठडे होने में ज़रा देर लगी।

'डाकू शायद बदला लेने के लिये फिर आवें, जब आवें तब फिर जौहर दिखलाना। अभी मुक़ाबला करने में उनकी सिरे पर रहेगी, क्योंकि वे आड़ ओट लेकर कारतूसी बन्दूकें चलायेंगे और तुम सबका ढेर कर देंगे।' थानेदार ने समझाया।

बटोले बोला, 'ठीक कहते हैं आप। आगे हम लोग इन उत्पातियों से अपनी रक्षा कैसे करें, सवाल अब यह है।'

थानेदार ने बतलाया,—'पुलिस की एक चौकी इन दोनों गांवों के लिये रहेगी। तुम लोग एक रक्षक दल बनाओ जिसकी टोलियां रात में फेरियां लगाया करें। फिर चोर डाकुओं की हिम्मत नहीं पड़ेगी।'

लोगों में उत्साह था, इस सुझाव को स्वीकार किया। जनक ने सबसे पहले भर्ती होने की बात कही—उसी समय देशराज मोटर लिये आ गया। सदर से लौटा था कि उसे मालूम हो गया पुलिस अभी गांव में है। तुरन्त थानेदार के पास आया।

बटोले ने टहल की बाबत पूछा।

टहल के अस्पताल-प्रवेश, एक्सरे और उपचार इत्यादि की बात बतलाने के बाद उसने कहा,—'डॉक्टर लोग कहते हैं कि हालत बहुत नाजुक है।'

'बच तो जायेंगे ?' जनक ने पूछा जो मोटर के पीछे पीछे भागता आया था।

देशराज ने उत्तर दिया, 'कह नहीं सकते, आशा तो करनी ही चाहिये।'

जनता में विषाद छा गया।

थानेदार ने टहल की प्रशंसा की,—'बड़ा बहादुर है। उसने न केवल डाकुओं की मरम्मत की, बल्कि खदेड़ भी डाला। गांव के लोग भी जवांमर्द हैं जो जान हथेली पर रख कर बदमाशों के पीछे पड़ गये।'

फिर उसने रक्षक दल के संगठन की चर्चा की और शीघ्र पुलिस चौकी बिठलाने की।

देशराज ने कहा, 'दोनों गांवों के हथियार रखवा लिये गये ! मेरे तक !! जब हो-हल्ला हुआ, मैं जाग पड़ा था। हथियार गाँठ में होते तो सुहाना के हम सब और यहां के बन्दूक वाले भी दौड़ पड़ते। फिर क्या मजाल थी कि डाकू इस तरह निकल जाते। दो चार की लाशें बिछ जातीं और कुछ पकड़ लिये जाते। सब लोग जानते हैं कि जब उस रात धरनीधर पर डाका पड़ा, मैं और बनमाली दौड़े आये थे। डाकुओं को भागते गैल नहीं मिली।'

बहुत से लोग हथियारों के लिये चिल्ला पड़े। थानेदार बोला, 'ज़िला मैजिस्ट्रेट ने इन दोनों गाँवों को झगड़ालू घोषित करके हथियार रखवा लिये हैं। अब रात की जवाँ-मर्दी को देख कर शायद वापिस कर दें। कोशिश कीजिये।'

'हम लोग कोशिश करें! जब रक्षक दल बन गया तो कोशिश करेंगे ही, पर आप भी तो हम सबकी सहायता करिये।' जनक बोल उठा, 'कम से कम बांगुर्दन वालों को तो हथियार मिलना ही चाहिये।'

'हाँ हाँ' बहुत से बाँगुर्दन वासियों के कण्ठों से निकला।

थानेदार के मन में उठा—रात में महुए के फूलों की रखवाली की, सवेरे बीन कर लाये और घरके आंगन में सूखने के लियेफैला दिये; दिन में स्त्रियाँ रखवाली और बीनने के लिये चल दीं। जब फूल सूख गये, भून कर या उबाल कर खा लिये। ऐसे लोग बन्दूकें खरीदेंगे कहां से? और कहीं डाकुओं ने घेर लिया तो बन्दूकों से हाथ धो बैठेंगे। पर—पर, इतने दुबले पतले होने पर भी हैं हिम्मती!!

थानेदार ने कहा, 'जो कुछ मेरे बस का है, मैं कसर नहीं लगाऊँगा। गांव में कोई झगड़ा भी नहीं रहा दिखता, इसलिये ज़िला अफ़सर को बदूक़ें लौटाने में शायद बाधा न जान पड़े।'

'नये लाइसैन्स भी मिलने चाहिये' जनक बोला।

'खरीदोगे कहां से?'

'जान बचाने के लिये अपने पेट काट कर।'

थानेदार हँस पड़ा, पर जनता को जनक की बात बहुत अच्छी लगी।

थानेदार ने कहा, 'तुम तो नाबालिग़ हो, लाइसैन्स तुम्हें तो मिलने से रहा।'

जनक तपाक से बोला, 'सेना में हमारे ही गांव के एक मेरी आयु से कम में भर्ती हो गये थे जो पैन्शन लेकर आने वाले हैं। उन्होंने क्या बिना हथियार के निशाना लगाना सीखा होगा? मैं अट्ठारह साल का

होने वाला हूँ। तब तक दूसरों के हाथियार से सीखूंगा और मौक़ा आने पर एक नहीं दस डाकुओं का सामना कर डालूंगा।'

थानेदार की जिज्ञासा पर देशराज ने बतलाया कि टहल के स्कूल का एक ग़रीब विद्यार्थी है।

जनक ने फिर कहा, 'मुझे न मिले, पर ये तो बहुत से हैं जो नाबालिग़ नहीं हैं और जिन्होंने हमारे मास्टर साहब के नेतृत्व में डाकुओं के छक्के छुटा दिये। इन्हें तो मिलना चाहिये।'

थानेदार ने देखा विद्यार्थी वाचाल है, देशराज से बात करने लगा।

'मुझे विश्वास है कि अबकी बार डाका माल ले जाने की नियत से नहीं पड़ा, बल्कि किसी बदले की भावना से डाला या डलवाया गया था।

देशराज का रङ्ग फीका नहीं पड़ा।

'मालूम तो ऐसा ही पड़ता है; परन्तु इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना उचित नहीं जान पड़ता। बटोले घरबार वाले हैं और टहल भी साधन सम्पन्न हैं।'

'हो सकता है, क्योंकि इस दरिद्र ज़िले के प्रचण्ड डाकू कभी कभी अनाज और रोटियों तक के लिये डाका डालते सुने गये हैं। पुलिस हरएक पहलू पर विचार करेगी और सावधान रहेगी। यह लगभग तै समझिये कि पुलिस चौकी स्थापित होगी और दोनों गांवों का एक रक्षक दल बनेगा।'

'बन तो गया,' जनक बोला।

थानेदार ने कहा, 'हाँ भाई, और तुमने उसमें सबसे पहले भर्ती कराई; नहीं भूलूंगा।'

बटोले ने पूछा, 'पुलिस चौकी कहाँ रक्खी जायगी?'

थानेदार ने उत्तर दिया, 'सुहाना में।'

'हमारे गांव में क्यों नहीं?'

'सुहाना दूर नहीं है। देशराज जी अपना एकाध मकान रहने के लिये दे देंगे। जरूरत पड़ने पर समिति-भवन भी काम में लाया जा सकता है। इस गांव में कोई ऐसा मकान नहीं है।'

पुलिस चौकी के लिये देशराज को अपना एक कच्चा मकान देने पर राज़ी होना पड़ा।

उसने अपने हथियारों की वापिसी की बात उठाई।

थानेदार ने कहा, 'आपको बड़े अफ़सरों से कहना पड़ेगा। मुझसे पूछा जायगा तो यथाशक्ति सहायता कर दूंगा।'

पुलिस चली गई।

दो तीन दिन के बाद ही सुहाना में पुलिस चौकी आ गई और रक्षक दल का संगठन आरम्भ हो गया। देशराज और अञ्जना को बाहर जाने का संकल्प कुछ समय के लिये स्थगित करना पड़ा।

[३७]

टहल को पांचवें दिन चेत आया। आंखें खोलते ही पहले राजदुलारी को देखा। मुंह से पहला शब्द जो निकला वह था—'मां।'

'मेरे लाल ! मेरे लाल !! मुझसे बढ़कर तुम्हारी मां वह है !!!' बाहें फैलाकर घाटीवाली दौड़ी।

राजदुलारी ने रोक लिया, 'धीरज—माता जी—धीरज से काम लो। बात मत करना, भला।'

घाटीवाली रुक गई, जैसे किसी नदी का प्रवाह पहाड़ के सामने थम जाय।

सनेही ने टहल के सिर पर हाथ फेरा। उसने अपने दुबले हाथों सनेही का हाथ पकड़ लिया।

'डॉक्टर साहब—'

'बात मत करो।'

'डाकू भाग गये ?'

'चुप चुप !'

'मां—'

राजदुलारी ने घाटीवाली को सामने कर दिया। वह रो रही थी। टहल की आंखें छलछला आईं।

'बस, हटो मां जी यहां से नहीं तो नुक़सान हो जायगा।' सनेही ने कहा।

घाटीवाली तुरन्त पीछे हट गई। राजदुलारी ने टहल के आंसू अपनी साड़ी के छोर से पोंछ दिये।

'शान्त पड़े रहना भला।' राजदुलारी ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

सनेही ने सर्जन को सूचना दी। उसने आकर निरीक्षण किया।

प्रसन्न होकर बोला, 'अब कोई खतरा नहीं। दो तीन हफ़्ते में चलने फिरने योग्य हो जायेंगे।'

घाटीवाली उसके पैरों पर गिरने को हुई। सर्जन ने निषेध किया,—'डॉक्टर सनेहीलाल और श्रीमती जी को धन्यवाद दीजिये। इन्होंने बहुत सेवा की है। मैं कहूँगा कि दिन और रात एक कर दिये।'

घाटीवाली सनेही के पैरों की तरफ़ झुकी। सनेही ने तुरन्त पकड़ लिया। बोला,—'हमको नरक में न ठेलो मां जी, मैं तुम्हारा बड़ा लड़का हूँ और टहल छोटा।'

'मरीज़ को बातचीत न करने दीजियेगा,' सर्जन सावधान करके चला गया।

राजदुलारी टहल के सिरहने कुर्सी पर बैठ गई।

'मैं हूँ यहां; मां जी, तुम अपना काम देखो—हमारे लिये खाना पकाओ।'

घाटीवाली ने गद्गद् होकर कहा, 'घर का आटा लाने दिया होता तो उसी में से पका कर खिलाती।'

मुश्किल से हँसी रोककर राजदुलारी ने 'हूँ' की।

टहल के कम्पित कण्ठ से निकला,—'भावी मां!'

'सो तो ठीक है, पर चुपचाप पड़े रहो।'

फिर टहल ने बातचीत नहीं की।

सर्जन ने मैजिस्ट्रेट को सूचना दी। मैजिस्ट्रेट ने आकर पूछा, 'यदि बयान देने योग्य शक्ति उसमें हो तो अन्तकाल का बयान लिख लूं?'

सर्जन ने बतलाया, 'बच गया है, पर बयान नहीं दे सकेगा और न अभी लेना चाहिये। उसकी मां का बयान हो ही चुका है।'

मैजिस्ट्रेट चला गया।

एक सप्ताह में टहल अच्छी तरह बोलने लगा। उस समय सरकारी समाचार मिला कि कालीसिंह के मारने या पकड़वा देने वाले को पाँच हज़ार रुपया इनाम दिया जायगा; टहल को एक बन्दूक़ भेंट करने की भी सूचना आई।

[३८]

पश्चिमी हवा कई दिन तक लगातार चली। गरमी तीखेपन पर आई और उसके साथ लू। पहाड़ और जङ्गल तक दिनमें भभक उगलने लगे। रातें ज़रूर ठंडी थीं।

रात के नौ दस बजे होंगे। गांव में थोड़ी बहुत चहल पहल थी। बनमाली अभी सोया न था। पौर का दरवाज़ा बन्द करके आँगन में लेट गया। ठंडी हवा का झोंका आया और उसे झीम आई थी कि चौंक पड़ा। ऐसा लगा जैसे किसी ने पौर के भीतर से किवाड़ों की सांकल खोली हो। पौर के एक सिरे पर कोठा था जिसमें उसका भूसा भरा हुआ था। वहां से सर्रसर्र और खसखस की ध्वनि सुनाई पड़ी। उहँ, चूहों के पकड़ने में बिल्ली लगी होगी। आँखें बन्द की और सोने के लिये करवट बदला था कि वह सर्रसर्र खसखस और बढ़ी। कहीं डाकू आज मेरे ऊपर तो नहीं आ टूटने वाले हैं। ओफ़! वह अपनी बन्दूक़ को भूल गया। खपरैल की तरफ़ देखा। वहाँ कुछ नहीं था और न वहाँ से आवाज़ आ रही थी। फिर उसी कोठे से सर्रसर्र। यह चूहे बिल्ली की पैंतरेबाज़ी का शब्द नहीं है। लाठी उठाकर पौर के आँगन वाले दरवाज़े से जा चिपका। अभी तो गांव में चहल-पहल है। यदि कोई गड़बड़ हुई तो बहुत से लोग दौड़ पड़ेंगे, चौकी से पुलिस आ जायगी। कहीं डाकू न हों! नहीं डाकू नहीं हो सकते। यह तो पौर में ही कोई है। फिर खपरैल की ओर दृष्टि दौड़ाई। तारे छिटके हुये थे। एक बड़ा तारा आकाश की कोर को छोड़ कर ऊपर उठ आया था। पर उसकी झिलमिल से पौर के अन्धेरे में कुछ नहीं टटोला जा सकता था। अबकी बार और ज़ोर की सर्रसर्र। कान लगा कर सुना तो जान पड़ा जैसे कोई भूसा बांध रहा हो।

एक दम चिल्लाया,—'कौन?'

आहट तुरन्त बन्द हो गई और लगा जैसे कोई भाग रहा हो।

'दौड़ियो ! बचाइयो !! चोर हैं !!! बदमाश हैं !!!!'

भागने वाला पौर में ठिठक गया ।

बाहर से कई आवाजें आईं—'क्या है भैया बनमाली ? क्या है ?'

'अरे कोई चोर है, जल्दी आओ ।' बनमाली चीखा ।

पौर में से कातर स्वर में कोई बोला, 'हा हा भैया ! हा हा !! मुझे पकड़वाना मत । तुम्हारे पैर पड़ता हूँ ।'

'कौन हो ?'

'मैं हूँ छदामी । तुम्हारे हा हा खाता हूँ ।'

'अच्छा ! यह कहो कि भूसा चुराने आये थे !!' बनमाली बोला ।

'भैया, गाय भूखों मर रही थी, सो लेने आ मरा । चाहे जो डाँड़ करलो पर पकड़वाओ मत ।' उसने कहा ।

'और कोई साथ है ?'

'नहीं कोई नहीं । मैं ही अकेला आया था ।'

'घर के भूसे का क्या किया ?'

'कुछ गाय बैलों ने खा लिया, कुछ हमने बेच खाया ।'

'आँगन में आओ ।'

छदामी काँपता हुआ आंगन में आ गया ।

'यहीं बैठ जाओ ।'

'मालिक पकड़वाना मत'

'चुपचाप बैठे रहो, नहीं तो पकड़वाऊँगा । आये कैसे थे ?'

'साँझ के बाद ही आ छिपा था पौर के कौने में । सांकल खोल कर भूसा भरा और जाने को ही था कि—'

'कि मैं आ धमका । तुमने समझा होगा कि कोई क्या लेगा । जानते नहीं कि मैं अकेला दस पांच को तो यों ही मार भगाने की दम रखता हूँ ?'

दरवाजे पर कुछ लोगों के आने की आहट मिली ।

'मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ' छदामी ने फिर कहा ।

'चुपचाप बैठे रहना, मैं अभी आता हूँ।'

बनमाली गया, किवाड़ खोले और मुहल्ला वालों के पूछने पर बोला, 'खपरैल पर खड़बड़ हुई तो मैंने सोचा डाकू न आ गये हों, इसीलिये चिल्लाया। जान पड़ता है कि बनबिलाव था।'

मुहल्ले वाले लौट गये। बनमाली सांकल चढ़ा कर आँगन में आ गया।

छदामी को डाँड़ भुगतना पड़ा—

उसने जो पन्द्रह रुपये लिये थे उनके पच्चीस लिखने पड़े और एक अलग काग़ज़ पर, भूसे की चोरी का इकबाल, तीसरे काग़ज़ पर अँगूठे का निशान बनाना पड़ा आने वाले चुनाव में अपना और अपने प्रभाव के सब लोगों का वोट देने के वचन का!

'यदि ज़रा भी गड़बड़ की तो ये तीन हथियार हैं मेरे पास।'

'नहीं करूँगा, भैया।'

[३९]

बनमाली की पुकारों पर देशराज अपने फाटक पर आ गया था। जब उसका निपट भ्रम मालूम हुआ तो उपहास करके लौट आया।

'कालीसिंह का गिरोह तो कहीं बहुत दूर होगा ?' अञ्जना ने कहा।

देशराज बोला, 'उसका डर तो सिर पर छाया रहता है इन लोगों के।'

'उधर का काम करा लिया हो उसने तो हिमालय की ओर हो आवें; कोई समाचार नहीं आया ! ब्योपार के दिन हैं, फिर बरसात आ जायगी। कब तक ठहरे रहोगे ?'

'मुझे तो यहां रुकना ही पड़ेगा। कुंजीलाल के मुक़द्दमे की तारीख आ रही है; इधर नहर की खुदाई का काम भी बढ़ता चला आ रहा है। अपने खेतों के लिये नक़शे में रेखायें तो खिचवादी थीं, पर मेरे यहां न रहने पर अदला बदली हो सकती है, इसलिये अभी यहां बना रहना जरूरी मालूम पड़ता है।'

'तो फिर मुझे अकेली चली जाने दो। अपने कार्यकर्ता तो उस ओर हैं ही, काम चलाती रहूँगी। एक दो सप्ताह पहाड़ पर भी रह लूंगी। तुम साथ होते तो सभी परस्थितियों में मन खूब रमता, पर तुम्हारे लिये बेबसी है।'

'कब जाना चाहती हो ?'

'कल ही जा सकती हूँ। काम चलाने के लिये रुपये हैं ही।'

'जी बहुत चाहता है तुम्हारे साथ चल पड़ूँ, नहर के नक्शे की भी इतनी परवाह न करता, लेकिन कुञ्जीलाल की पेरवी के लिये रह जाना पड़ेगा। चल दिया तो वह सोचेगा कि मालिक मझधार में छोड़ गये !'

'गांव में अब भी कोई आशङ्का है तुम्हारे लिये ?'

'दिखलाई तो नहीं पड़ती। टहल अच्छा हो रहा है। उसके आने पर शायद कोई आन्दोलन उठे। रक्षक दल ज़ोर पकड़ेगा। उस पर भी निगाह रखनी है।'

अञ्जना का कोई भाव जैसे यकायक जाग पड़ा हो—बोली,'मैंने भी बहुत सी स्त्रियां देखी, परन्तु यह राजदुलारी बड़ी विलक्षण लगी। उस दिन सङ्गीत समारोह के लिये मैं स्वयं बुलाने गई, ऐसी पर्दे वाली बनी कि नहीं आई! अब देखो तो फिरती होगी वहां सदर अस्पताल में डायन की तरह मारी मारी!! और यह सनेही भी क्या है—ऐसा चेहरा मोहरा बनाता है जैसे कोई करोड़पति हो।'

'मैंने अपने मकान से कभी का हटा दिया होता, पर अपना और नौकरों महींदारों का इलाज सस्ते में कर देता है, इसलिये बनाये हूँ।'

अञ्जना दूसरे दिन लखनऊ की ओर चली गई।

× × × ×

नाहरगढ़ के राजभवन की एक खुली छत पर बाघराज,संध्या के दो तीन घड़ी पीछे, बैठा हुक्का पी रहा था। तारों की छाया के नीचे ठंडी वायु लहरें ले रही थी। नीचे की तरफ़ एक दिशा से मन्द जन-रव सुनाई पड़ रहा था। दूसरी दिशा से जङ्गली जानवरों की बोलियां उस रव को बेध बेध देती थीं।

ड्राइवर आया। वह बाघराज का विश्वासपात्र प्रियजन था।

ड्राइवर ने सूचना दी,—'सरकार, कालीसिंह जी पधारे हैं।'

'भेज दो,' बाघराज ने कहा।

कालीसिंह आ गया। बाघराज ने टॉर्च का उजियाला किया। कालीसिंह सिर पर पट्टी बाँधे था। मुजरा करके बैठ गया।

'कैसी तबियत है?' बाघराज ने पूछा।

उसने उत्तर दिया, 'ठीक नहीं हुआ हूँ। घाव से पीब जारी है। वैसे पुरता जा रहा है। जङ्गली बूटी से कोई लाभ नहीं हुआ, आपने जो दवा दी थी, उससे हुआ है।'

'कुछ समय और लगेगा। आँख बहुत बच गई।'

'लाल बनी रहती है, और तब तक बनी रहेगी जब तक टहलुआ के टुकड़े टुकड़े नहीं कर डाले।'

'देखा जायगा। अभी तो इलाज पर ध्यान दो।'

'सो तो है ही सरकार, पर मैंने दुनियां भर के देवी देवताओं की क़सम खाली है कि जब तक ब्याज-त्याज समेत बदला नहीं चुका लिया, चैन न लूंगा। मेरे कई साथी घायल हो गये। इस घाव के कारण कोई काम नहीं कर पा रहा हूँ।'

'सुहाना में पुलिस चौकी क़ायम हो गई है सो तुम्हें मालूम ही है। पुलिस अब अधिक तत्परता दिखला रही है। उस ओर आंखें बन्द करके मत जाना।'

'इन दिनों कुछ नहीं करूँगा। एक दो महीने घाव के बिलकुल अच्छे होने में लग जायेंगे। तब तक बरसात आ जायगी। बरसात के बाद देखूंगा।'

'बरसात के बाद उसे नहीं, अपने काम को देखना। उन दिनों माल पर माल आयगा जिसके खपाने के उपाय सावधानी के साथ लगातार जारी रखने पड़ेंगे। अब तो अगली गर्मी तक ऐसे गुमसुम हो आओ कि पुलिस और दुनियां समझे—कालीसिंह अपने गिरोह समेत या तो समाप्त हो गया है या किसी दूसरे देश में चला गया है।'

कालीसिंह सोचने लगा।

'सोचते क्या हो ?'—बाघराज ने कहा,—'मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी उतनी बड़ी क़सम को गङ्गा जी में बहा आओ, लेकिन यह चाहता हूं कि गाँठ में पूंजी काफ़ी करके फिर क़सम को निभाओ।'

'जो हुकुम।'

'हाँ, यही ठीक है।'

राजा ने कालीसिंह को हुक्का दिया। वह थोड़ा सा हट कर पीठ करके पीता रहा। जब पी चुका बाघराज ने पूछा, 'बन्दरगाह की तरफ़ से कोई समाचार आया?'

उसने उत्तर दिया,—'इस चोट के कारण काम ठिकाने से न हो सका। पुराने आदमी इधर के उधर हो गये। नयों को बनाना साधना पड़ा। दो चार दिन में समाचार आता ही होगा।'

'उधर वे दोनो सुहाना में पड़े हुये हैं। किसी न किसी कारणवश बाहर नहीं जा सके। खैर!'

'इधर के समाचार के लिये तो उन्हें नहीं रुकना चाहिये था।'

'नहीं, कुछ मुकद्दमे लग गये हैं।'

× × ×

छः सात दिन पीछे देशराज को बाघराज के एक निजी आदमी द्वारा समाचार मिला कि उन दोनों पेटियों का माल बन्दरगाह से विदेश भेजे जाने के पहले पकड़ लिया गया है; बड़ी बात यह हुई कि वह आदमी बच निकला जिसके क़ब्ज़े में माल था।

देशराज सन्न रह गया। सुरूप मुख की रेखायें विकृत हो गईं। अञ्जना देखती तो शायद सोचती—बड़ा बद-शकल है। वह बिलकुल अकेला था। कोई पास नहीं जिसे जी की व्यथा सुनाता। यह माल पकड़ा गया तो आगे का भी खतरे में है। कहीं हरी पेटियों में माल दे दिया होता तो उधर अञ्जना के लिये भी बड़ा भारी सङ्कट खड़ा हो जाता। इधर मैं भी न बचता। घर में माल रक्खा है, इसका क्या करूँ? हो सकता है कि यह सब झूठ हो। बाघराज या कालीसिंह ने माल पचा लिया हो। लेकिन पहले कभी नहीं किया। तो क्या हुआ? अब कर सकता है। शायद दोनों ने मिल कर हड़प कर लिया हो। क्या भरोसा? अब क्या किया जाय? कोई दूसरा साधन टटोलूं? कोई और दिखता भी तो नहीं। शायद धोखा न दिया हो। मैं जाऊँ नाहर

गढ़ ? लेकिन फ़ायदा ? पत्र तो बाघराज के हाथ का ही लिखा हुआ है। फाड़ डालूँ या अञ्जना के लौटने तक रक्खे रहूँ ? फाड़ ही डालना चाहिये। ओफ़ ! हज़ारों का माल एक पल में हाथ से गायब हो गया !! और भविष्य अन्धकारमय दिखता है। परन्तु साहस बनाये रखना चाहिये।

साहस बाँधते बाँधते भी देशराज को कमरे की बत्ती का प्रकाश नहीं दिखलाई पड़ रहा था।

[४०]

जैसे जैसे टहल स्वस्थ होता गया सनेही सुहाना आने जाने लगा। राजदुलारी एक बार उसके साथ आ कर फिर अस्पताल चली गई और घाटीवाली के साथ टहल की सुश्रूषा के लिये बनी रही।

सनेही उस दिन सुहाना में ही था जब सवेरे देशराज ने उसे बुला भेजा।

सुरूप चेहरे की आकर्षक आंखों के नीचे स्याही देख कर सनेही को आश्चर्य हुआ।

'क्या बात है ?' सनेही ने पूछा।

'डॉक्टर साहब, कुछ दिन से तबियत खराब रहती है। आप तो इन दिनों यहाँ रहे ही नहीं—'

'आपको तो मालूम ही है कि टहल की देख-भाल के लिये सदर अस्पताल में था।'

'हाँ हाँ, सो आपने बहुत अच्छा किया। मेरे जी में आपके लिये बहुत आदर है। डॉक्टर तो बहुत हैं, पर मानवीयता आप में जैसी देखी वैसी अन्यत्र नहीं पाई। आप मेरी बात में बनावट न समझे।'

'आपकी बहुत कृपा है। आपही ने तो इस गांव में पेट भरने और थोड़ी सी सेवा करने का अवसर मुझे दिया। बहुत कृतज्ञ हूँ। कैसे बुलाया ?'

'पेट में गड़बड़, सिर में दर्द, हाथ पैर में थकान—यह सब कई दिन से चल रहा है। आज रात नींद बिलकुल नहीं आई। हृदय में धडकन है। परेशान हूँ, इसलिये कष्ट दिया।

सनेही ने उसका बारीकी के साथ निरीक्षण किया, और कहा, धड़कन की चिन्ता मत करिये। कुपच और किसी चिन्ता के कारण हुई है। बहुत से लोग इसे हृद्‌रोग का प्रारम्भ कह देते हैं। मैं नहीं मानता।

'साधारण परहेज़ और थोड़े से नियम संयम से चलिये बहुत शीघ्र फ़िर ज्यों के त्यों।'

'कोई दवा ?'

'कोई भी नहीं।'

देशराज ने फ़ीस में दस रुपये के नोट देने चाहे। उसने एक भी नहीं लिया।

बोला, 'फ़ीस किस बात की ? वैसे भी आपके पास आना चाहता था। आ ही रहा था कि बुलावा पहुँचा।'

'यह तो ज्यादती है, डॉक्टर साहब।'

'बिलकुल नहीं। यदि लूंगा तो ज़रूर अपने साथ ज्यादती करूँगा।' सनेही मुस्कराया।

देशराज ज़रा सा हिला।

'आप सरीखा मित्र जिसे मिल जाय वह धन्य है' देशराज ने कहा। कुछ और भी कहना चाहता था कि सनेही की भाव भङ्गी, आँखों की वह रेखा याद आ गई जिस पर अञ्जना ने कटाक्ष किया था—ऐसा चेहरा मोहरा बनाता है जैसे कोई करोड़पति हो ! इस समय भी उसके चेहरे पर कुछ उसी तरह की झलक थी। परन्तु उसने घमंड की तो कोई बात नहीं कही। फिर वैसा चेहरा मोहरा क्यों ? मुझे संयम से काम लेना चाहिये, अधिक प्रशंसा की पात्रता का उसने अभी काम भी ऐसा क्या किया है ? में मकान का किराया नहीं लेता, वह इलाज सस्ता करता है। परन्तु आज फ़ीस बिलकुल नहीं ली !

बोला, 'आप कोई बात कहने वाले थे न, डॉक्टर साहब ?'

'जी हां,'—सनेही ने मिठास के साथ कहा,—'नहर आ रही है, परन्तु यहां सब खेतों को पानी मिलने की सुविधा अप्राप्य हो रही है।'

'नक़शे में मेरे और बहुत से लोगों के खेतों के लिये कुलिया आने की रेखायें तो खिच गई हैं।'

'उन रेखाओं वाली कुलियों से बहुत थोड़े रक़बे की सिचाई हो सकेगी। सहकारी समिति के ही कई खेत रह जायेंगे। सरकारी बजट में जितनी गुञ्जायश है उसी के भीतर, स्वभावतः काम होगा। सभी खेतों में पानी पहुँचाने के लिये ज़रूरत है कि या तो हम आपस में चन्दा करके नहर विभाग को रुपया दें, या अपना परिश्रम दें।'

'फिर चन्दा! वह भी जब घाटे टोटे के बादल सिर पर मंडला रहे हैं!!

'अपने गांव में चन्दा देने वाले हैं कितने? और रुपया भी बहुत सा चाहिये। जिसे नहर वाले बेभाव खर्च करेंगे।' देशराज ने असमर्थता व्यक्त की।

सनेही ने विकल्प दिया,—'परिश्रम तो है गाँव वालों के हाथ में।'

'यह ठीक रहा, पर मुझसे मतलब?—'

देशराज ने कहा, 'हां सो तो है। लेकिन लोग तो इतने निकम्मे हैं कि दिन रात तमाखू फूकते रहेंगे, परिश्रम के नाम पर कूल्हने कांखने लगेंगे।'

'कई जगह लोगों ने श्रमधन की लागत लगाई है। यहां भी सम्भव है।'

'जहां लगाई है वहां अफ़सरों के दबाव से। यहाँ कैसे?'

'हम सब कुदाली फावड़ा पकड़ें,—अर्थात् मैं और आप—निकल पड़ें और चिपट जावें तो पीछे नहीं रहेंगे।'

'आप!'

'सब से पहले मैं।'

'मजदूर सेंतमेंत काम कैसे कर पायेंगे?'

'सेंतमेंत नहीं। महुये चने खाने वाले को इन दिनों छः आना रोज भी छः सात घंटे काम करने का मिल जाय तो वह काम करेगा।'

देशराज ने भोहें चढ़ाईं।

सनेही कहता गया,—'पर वास्तव में मिलेगा उसे चार आना छः आना और भी। इन आनों को उसके हिसाब में जमा किया जायगा। इकट्ठा हो जाने पर इससे सहकारी समिति के हिस्से उसे खरीद कर दे दिये जायेंगे जिन पर उसे मुनाफ़ा मिला करेगा। व्यक्तिगत खेती करने वाले और सहकारी समिति के सदस्य—सब—इससे लाभ उठा सकते हैं।'

'है तो अच्छा। सफल हो जाय तो क्या कहने। पर दिखती कठिनाइयां हैं सफलता में।'

'कठिनाइयां न हों तो जीवन ही क्या? कठिनाइयों के सामने झुक जाना असली कठिनाई और बाधा है।'

देशराज की आंखों में उसकी कठिनाइयों का चित्र घूम गया। उत्साह की कोंध सी आई।

बोला, 'आप ठीक कहते हैं।' कुछ सोचने लगा। मन में एक चाह उठी—कहीं यह आदमी मेरे अधिक निकट होता, इसके हृदय में मेरे लिये कुछ स्थान होता।

सनेही ने उसके उत्साह के स्वर में अपनी उमङ्ग की झांई पा कर कहा, 'आप सोचते होंगे कि मजदूरों के लिये छः आने आठ आने भी कहाँ से आयेंगे? सो मैंने उसका प्रबन्ध कर लिया है।'

'क्या?'

'जितने ग़ैर मेम्बर मजदूर होंगे उन सबको सहकारी समिति का बना लिया जावेगा। दस रुपये का एक हिस्सा; पहली क़िस्त के लिये ढाई रुपया भर चाहिये। इस पर ज़िला बैंक आठ गुना तक देगा। एक मजदूर की चालीस पैंतालीस दिन की मजदूरी निकल आई। उस पर काम उन्हीं का, दूसरों का नहीं। ओज़ार नहर विभाग दे देगा। सौ व्यक्ति भी कन्धा दे गये तो महीने सवा महीने में काम हो जायगा।'

'काम शुरू करिये, मैं साथ दूंगा; पर कुदाली फावड़ा तो एकाध दिन ही चला सकूंगा।'

'प्रारम्भ के लिये ही अनिवार्य है। जहाँ संवेग की लहर उत्पन्न हुई कि फिर अबाध-गति से चलती रहेगी।'

देशराज ने समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि मन्त्री भी दो चार मिनिट के लिये फावड़ा खुरपी चला देते हैं, मैं आधे घन्टे चला दूंगा। लोग हँसेंगे तो मैं भी उनके साथ हँस दूंगा।'

'मजदूरों का स्वभाव काम चोरी का हो गया है, निगरानी की बहुत जरूरत पड़ेगी।'

'निगरानी करने वाले कुछ अपने होंगे, कुछ नहर विभाग के। आप देखेंगे मजदूर कितने उत्साह के साथ काम करते हैं, काम चोरी नहीं होगी।'

फ़ाटक के बाहर मोटर की भर्र भर्र सुनाई पड़ी। उतर कर सहकारी अफ़सर राघवन आया।

थोड़ी देर तक उसी प्रसङ्ग पर चर्चा चली। 'मुझे बड़ा हर्ष है, राजा साहब। आप लोगों के साथ कुदाली फावड़ा चलाने में भी आ जाऊँगा। कब आरम्भ करेंगे ?'

सनेही ने उत्तर दिया, 'टहलराम के घर आते ही। तब तक योजना का रंग रूप ठीक किये लेते हैं।'

'कब तक आने की आशा है ?' राघवन ने पूछा।

'दस बाहर दिन से अधिक नहीं लगेंगे।'

सनेही चला गया। राघवन बैठा रहा।

जब दोनों अकेले रह गये, राघवन उसकी ओर झुका और बोला, 'आपके व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हूँ। सदर में एक बात सुन आया हूँ। प्रार्थना है कि आपके कानों तक ही रहे।'

देशराज चौंका। हृदय भड़का। गला सूख गया।

'ऐसी क्या बात है, राघवन साहब ?'

'पुलिस आपकी निगरानी करेगी—'

देशराज का चेहरा और भी फीका पड़ गया। माथे की नसें तड़ग गईं।

'क्यों? मैंने लखनऊ में उस दिन जो भाषण दिया था, क्या उसे ज़िला अफ़सरों में से किसी ने नहीं पढ़ा? अन्य ज़िमींदार सरकार के विरुद्ध चाहे जो कर रहे हों, मैं तो साथ ही दे रहा हूँ।'

'यह मुझे नहीं मालूम।'

'और किसी की निगरानी की बात सुनी आपने?'

धड़कन और बढ़ी। उसे भासा—राघवन अञ्जना और बाघराज का नाम लेगा।

राघवन ने कहा, 'और किसी की नहीं सुनी।'

देशराज संभालने का पूरा प्रयास करके बोला, 'ये जो गांव में लड़ाई झगड़े हुये उन्हीं का परिणाम होगा। कारिन्दे पर मुक़द्दमा चल रहा है। उस बिचारे की पैरवी तो करनी ही पड़ेगी।'

'अवश्य करनी चाहिये, आपका अनुचर है। और जहाँ तक मैंने सुना है, उसका कोई अपराध भी नहीं।'

राघवन जलपान करके अपने काम से चला गया।

निगरानी क्या अफ़ीम-व्यवसाय के सिलसिले में है? या—या इन डकैतियों के कारण? अञ्जना और बाघराज को सावधान कर दूं। पर अफ़ीम-व्यवसाय के सिलसिले में नहीं हो सकती। माल पकड़ा गया, किन्तु मालवाला बच निकला। तो फिर दूसरी बात होगी। मेरा वास्ता था कितना टहल वाली घटना से? इन्सपैक्टर मिले तो पता चले। अब तो सनेही को कुछ अधिक निकट लाने की ज़रूरत है—देशराज ने सोचा।

तीसरे दिन उसने सुना कि इन्सपैक्टर का तबादला हो गया है और वह चला भी गया।

[४१]

जैसे जैसे टहल स्वस्थता की ओर बढ़ा कुशल समाचार लेने के लिये सदर के कई लोग आये—बन्दूकधारी डाकुओं को खपड़ों से मार भगाया इसने और इसकी बुड्ढी मां ने। परन्तु उसे देखने के लिये भीतर कोई नहीं आने पाये। बनमाली आया और समाचार लेकर लौट गया। फिर गांव का एक जत्था आया—बटोले, मंटू, जनक और उसके कुछ सहपाठी। टहल बिस्तरों में बैठने लगा था और चोट वाली जाँघ को सिकोड़ने-फैलाने भी लगा था। जब उसने सुना तो उन लोगों के बुला लेने का हठ किया।

सर्जन ने निषेध किया, 'कदापि नहीं।'

सनेही ने अनुमोदन किया।

'क्यों ?'

'क्योंकि हमारा नियम है, जिसका आधार स्वास्थ्य के वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। आप तो पढ़े लिखे हैं।' सर्जन ने कहा।

टहल खिन्न होकर रह गया। घाटीवाली उनसे मिलने चली गई। जैसे कोई देवी देवता की पूजा करता है उस प्रकार उन लोगों ने उसके पैर छुये। घाटीवाली ने उनके आँसुओं को अपने आंसुओं का आशीर्वाद दिया।

जब भावना स्थिर हुई घाटीवाली ने कहा, 'रोटी बनाये देती हूँ, आटा बहुत रक्खा है।'

वे लोग हँस पड़े।

'मां जी, हमतो घर से इतना बांध लाये हैं कि खा लें और लौटा ले जायं।' जनक ने कहा।

मंटू बोला, 'मां जी, भुने हुये महुये, चने, गुड़ और चिरोंजी का ऐसा बढ़िया कूटा लाया हूँ कि थोड़ा सा तुम भी खा लो।'

'जरूर खाऊँगी, एक मुट्ठी भर, बस।'

'और एक मुट्ठी मेरा भी,' बटोले ने आग्रह किया। फिर उसका गला भर आया,—

'तुमने और भैया ने उस रात अपने प्राण गदेली पर रखकर न बचाया होता तो बटोला और उसका घर भर आज मसान की राख में होता।'

घाटीवाली ने जैसे ही उन लोगों का दो मुट्ठी कूटा ग्रहण किया जनक ने अपनी पोटली खोली और हठ करने लगा,—'थोड़े से खुरमे मेरे; बेभरे के हैं—नमक मिर्च मशाले वाले।'

घाटीवाली को खुरमे लेने पड़े। कूटा और खुरमे अंचल के छोर में बाँध लिये। फिर गाँव की बातें हो उठीं।

उन लोगों ने घाटीवाली को सनेहीलाल की वह योजना सुनाई जो उसने देशराज को बतलाई थी।

घाटीवाली ने गद्गद् होकर कहा, 'सनेही और राजदुलारी की सराहना हज़ार मुंह भी नहीं की जा सकती। मेरे तो अब दो लड़के हो गये। सनेही जो कुछ कहेंगे हम सब होड़ लगाकर करेंगे। नहर के लिये खुदाई तो क्या पहाड़ खोदने को भी कहेंगे तो उसे भी खोद डालेंगे।'

'ज़रूर ज़रूर' वे सब उत्साह में भर गये।

बटोले बोला, 'वे जो कुछ करते हैं हम सब के हित के लिये करते हैं। उनके कहने में चलना अपना धर्म है।'

जनक ने पूछा, 'मास्टर साहब घर कब तक आयेंगे ?'

'पन्द्रह दिन की देर और है,' घाटीवाली ने बतलाया।

जनक ने रक्षकदल के संगठन और उसमें सबसे पहले अपने भर्ती होने की बात सुनाई।

घाटीवाली ने मुस्करा कर कहा, 'तुम्हें तो उछलने-कूदने के लिये चाहिये न कुछ।'

जनक की उमङ्ग बढ़ी।

'माँ जी कवायद परेड भी होगी। अपने गांव के लटोरेसिंह फ़ौज से पेन्शन लेकर हाल में ही आये हैं। बड़े भले हैं। वे सिखलायेंगे। किसी दिन बन्दूक भी मिलेगी।'

घाटीवाली बोली, 'टहल को बन्दूक़ सरकार देगी ऐसा सुना है। उससे तुम सब सीख लेना।'

वे सब हर्ष से फड़क गये।

घाटीवाली ने असीसा, 'सुखी रहो। सदा हरियाते रहो।'

बटोले ने कहा, 'मां जी, गांव भर आप सबके दर्शनों के लिये ललक रहा है।'

'आयंगे बेटा, हम सब जल्दी आयंगे। बुरे दिन निकल गये।' घाटीवाली ने आश्वासन दिया।

'और भी अच्छे दिन लाने के लिये जब मास्टर साहब घर आकर हम लोगों से काम करायंगे तब माँ जी की और भी अधिक असीसें कमायेंगे।'

उन लोगों के चले जाने पर घाटीवाली टहल के पास आई। उससे गाँव वालों की बातों और सनेही की योजना की सूचना को सुनकर टहल खिल गया।

'दादा,'—अब वह सनेही को इसी तरह सम्बोधित करने लगा था,—'दादा, आप यह सब कर आये और मुझे एक फूटे अक्षर में भी न सुनाया!'

सनेही हँस पड़ा।

'अभी हुआ ही क्या है। वहां पहुँच कर जब दौड़-दौड़ कर काम चलाओगे तब वह काम ही बोल उठेगा बड़े समूचे शब्दों में।'

'क्या एक दिन ऐसा आयगा जब मैं दौड़ सकूंगा।'

'अरे भाई दौड़ना क्या, छलांगें भरोगे, कबड्डी खेलोगे!'

'कब तक?'

'दो तीन दिन तुम्हें खड़ा नहीं होने देंगे। उसके बाद चलना फिरना दौड़ना, सब।'

टहल को लगा उसके भीतर की शक्ति यकायक सजग हो गई है।

घाटीवाली एक कोने में खड़ी होकर अञ्चल से आंखें पोछने लगी।

सनेही ने देशराज को भी अपनी योजना में संजो लेने की बात बतलाई।

टहल गम्भीर हो गया।

बोला, 'दादा, कुछ ऐसे मनुष्य हैं जो सुधर ही नहीं सकते, कुछ ऐसे हैं जो बिगड़ ही नहीं सकते और कुछ ऐसे हैं जो सुधारे या बिगाड़े जा सकते हैं। देशराज को पहली असाध्य श्रेणी में समझिये।'

सनेही फिर हँसा,--

'अच्छा भाई, तुम्हारा वर्गीकरण ही ठीक सही, पर अपनी हानि ही क्या है यदि देशराज मजदूरों के साथ कुदाली फावड़ा पकड़ ले ?'

टहल मुस्करा गया--

'तमाशा तो अच्छा रहेगा।'

घाटीवाली ने कहा, 'हाथ में फफोले पड़ आयेंगे।'

टहल की मुस्कान और भी विकसित हुई,--

'दादा जो कुछ भी न करा डालें, थोड़ा है।'

राजादुलारी आ गई। कहा, 'भोजन तैयार है, मां जी।'

'मुझे न दोगी उसमें से कुछ, भावी ?'

'न तुम्हारे डॉक्टरी पदार्थ में लूंगी, न तुम्हें अपने दूंगी।'

घाटीवाली ने अपने अञ्चल की गांठ खोलकर कहा, 'गांव के ये पदार्थ तो लोगी बहू ?'

'ऐं ! ये सब कहां से ले आई, मां जी ?' राजदुलारी को आश्चर्य हुआ।

घाटीवाली ने गांव वालों के आने और इस भेंट के देने का समाचार सुनाया।

'इसमें से थोड़ा सा प्रसाद मुझे भी।' राजदुलारी ने कहा।

'और मैं क्या छोड़ दिया जाऊंगा ?' सनेही ने हाथ पसारा।

टहल बोला, 'भावी, रत्ती भर ही सही, पर मुझे भी दिलवा दो।'

राजदुलारी ने हँसकर धृतकारा--

'अरे हिष्ट ! अपने दादा से तो पूछो।'

सनेही ने घाटीवाली से कहा, 'मां जी इस अमूल्य भेंट को जहां का तहां बांध लीजिये। सर्जन आ जायगा तो मुझ पर नाराज़ होगा, और आपकी यह भेंट ज़ब्त हो जायगी।'

घाटीवाली ने जल्दी से गांठ बाँध ली।

वे तीनों भोजन करने के लिये जाने लगे।

सनेही बोला, 'मैं तुम्हें एक और भोजन दिये जाता हूँ, टहल।'

'क्या ?'

'एक उपन्यास। लेटे लेटे पढ़ना।'

'अच्छा।'

घाटीवाली और राजदुलारी के साथ सनेही चला गया। कुछ पल बाद एक पुस्तक ले आया।

कह गया,— मन लगे तो पढ़ते रहना। नहीं तो भोजन करने के उपरान्त संक्षेप में कहानी सुना दूंगा। फिर उस पर चर्चा करेंगे।'

टहल ने थोड़ी देर पुस्तक पढ़ी और रख कर करवट ले ली।

सनेही भोजन से निवृत्त हो कर आया।

'पुस्तक अच्छी नहीं लगी या आंखें पथराने लगीं थीं ?'

'आंखें तो नहीं पथराईं, आप लोगों ने पढ़ने की अनुमति न दी होती तो छूता भी नहीं। पुस्तक में सामन्तवाद की उपासना देखते ही मन उचट गया। वर्ग-संघर्ष, मज़दूर-क्रांति या विकासोन्मुखता की कहानी होती तो अवश्य पढ़ डालता।'

'संक्षेप में कहानी सुनाता हूँ। फिर उस पर चर्चा करेंगे। सुनने में भी मन न लगा तो तुम्हें नींद आ जायगी। है न ?' सनेही हँसा।

टहल भी हँसा। बोला, 'सुनाइये, सुनाइये, दादा। कहानी तो जो कुछ होगी सो होगी ही—आपकी व्याख्या जिसके द्वारा आप नूतनता का बढ़िया रंग देते हैं, बड़ी रोचक होगी।'

सनेही ने कहानी सुनाई जिसका सार यह है—भारतीय इतिहास के मध्ययुग के पिछले भाग में एक पराक्रमी राजा हुआ था। उसने अपने समय की धर्म परम्परा, संस्कृति और ललित कलाओं की रक्षा की। बहुत प्रजा-वत्सल था। धर्म, कला और प्रजा की रक्षा करने में मारा गया। स्त्रियों तक ने मरते मरते उस रक्षा में राजा का साथ दिया था। विस्तार के साथ कहानी सुनाने में सनेही को आधे घंटे से ऊपर लग गया।

टहल ने मुस्करा कर कहा,—'है न इसमें सामन्तवाद की उपासना और पुनरोद्धार की भावना ?'

'तुम्हें कुछ रोचक लगी या नहीं ?'

'रोचक तो है। उस जमाने का चित्र खींच दिया गया है जिसमें मन लौट कर भुलावे में पड़ जाता है। इसी को, दूसरे शब्दों में पलायनवाद भी कह सकते हैं।'

'मैंने अपनी व्याख्या का कोई रङ्ग चढ़ाया ?'

'अब चढ़ायेंगे ?'

'नहीं चढ़ाऊँगा। एक बात पूछता हूँ : तुम उस काल में उस राजा की जगह होते तो क्या करते ?'

उसे डाकुओं पर खपड़े फेंकने की बात भूल ही कैसे सकती थी ? बोला,—'वही करता जो उसने किया; शायद कुछ और अधिक मेटने मिटाने की सोचता।'

'और उस घटना का हाल अपनी कल्पना द्वारा वर्तमान का कोई लेखक लिखता तो आज तुम्हें कैसा लगता ?'

'तो वर्तमान का लेखक उस हाल को लिखे ही क्यों ? आज कल की समस्यायें क्या कम हैं उसकी कलम के लिए ? पछाहियों के पीछे दौड़ने की ज़रूरत ?'

'आज कल की समस्याओं के हल करने योग्य प्रचुर मात्रा में स्फूर्ति और शक्ति देने के लिये उसे परछाहीं के पीछे दौड़ना नहीं कह सकते। एक बड़ा आकर्षक ढङ्ग वह भी है।'

'हां शक्ति तो मिलेगी, लेकिन पुराने को फिर से खड़ा कर देने की।'

'थक तो नहीं गये हो ?'

'बिलकुल नहीं दादा। बात करने में मन लग रहा है।'

'तुम्हें बाँगुर्दन की खंडित मूर्तियाँ, प्राचीन खण्डहल, क्यों अच्छे लगते हैं ? उनकी यदि कोई लेखक कहानी रच कर खड़ी कर दे तो क्या वह बुरी लगेगी ?'

टहल हँस पड़ा।

'वह सब अच्छा लगता है, पर उन मूर्तियों को फिर से खड़ा कर देने या उसकी कहानी लिखने या पढ़ने के पहले अपने लोगों के रोटी-कपड़े की फिकर करूँगा।'

एक दिन वह बड़े भोर उन्हीं मूर्तियों और खण्डहलों के पास से टहलता हुआ निकला था, तब क्या सोचा था ? उसे स्मरण हो आया।

सनेही ने कहा, 'भरपूर रोटी कपड़े का प्रबन्ध हो जाने के बाद ?'

'फिर वह, और, और भी कुछ।'

'उन मूर्तियों ने कभी कोई भाव मन में जगाया ? जगा कर ऊपर उठाया ?'

टहल मुस्कराया।

'हूँ ऊँ, आप तो मुझे हराना चाहते हैं।'

टहल के चेहरे पर बच्चों का जैसा भोलापन छा गया।

'छोटे भाई से हार जाना ज़्यादा पसन्द करूँगा। बातें ही तो कर रहे हैं। थोड़ी देर में मां जी और तुम्हारी भावी आई जाती हैं, फिर कुछ और चर्चा होगी; तब तक मन लगे तो थोड़ी सी और सही,' सनेही ने कहा।

'ज़रूर दादा, ज़रूर।'

'कल कारख़ानों से घोर और अधिक घोर उत्पादन को खपाने की प्रतिस्पर्द्धा एक दूसरे से घृणा, डाह, भय और हिंसा—ये ही सब आज अपने सामने हैं। विज्ञान और हिंसा की जोड़ी बन गई है। सब देशों में परिणाम—नये नये विनाशकारी हथियारों का सृजन, युद्ध पर युद्ध। विज्ञान और हिंसा की जोड़ी को तोड़े बिना मानव को चैन नहीं मिलने का। इस जोड़ी के तोड़ने की समर्थता रखने वाला साहित्य—उपन्यास, नाटक, गीत, कविता, कुछ भी हो वही—हितकर है।'

'तो आपकी सुनाई उस कहानी में यह कहां है? उस कहानी में अपनी बान पर मर मिटने की बात है न? हां, राजा के राज्य-विस्तार की ही कथा होती तो तुम्हारा कहना ठीक बैठता। इसको तो सामन्त-को उपासना या पुनरोत्थानवाद नहीं कह सकते। वह तो अहिंसा का एक रूप है।'

'अब आ गये न आप अपनी व्याख्या के रंग पर?'

'अरे भाई, मैं किसी व्याख्या पर नहीं आया हूँ। मान लो, विज्ञान और हिंसा की जोड़ी तोड़ डाली गई और विज्ञान तथा अहिंसा की शान्ति की जोड़ी गठ गई। तो उस भविष्य के काल में यदि तब का लेखक आज के किसी क्रांतिकारी की त्याग-तपस्या का कोई हाल आकर्षक ढंग से लिखे और उससे पाठक को शक्ति और स्फूर्ति मिले, तो क्या उस कहानी को पुनरोत्थानवाद कहा जायगा?'

'आप धीरे धीरे अहिंसावाद पर आ रहे हैं जो मेरे मन में सदा खुटका पैदा करता है।'

अबकी बार सनेही को हँसी आई। बोला, 'जिस तरह सेवा शब्द का व्यापक दुरुपयोग हुआ है उसी तरह इस शब्द का भी ग़लत उपयोग हुआ है। एक शराब बेचने वाले का क़िस्सा सुनाहै ? दस पन्द्रह दिन हुये जब पत्रों में छपा था।'

'मैंने नहीं सुना, आप सुनाइये।'

समाचार ऐसे प्रदेश के एक नगर का था जहां नशा-बन्दी हो गई है। एक शराब बेचने वाले ने शराब बना कर दिनदहाड़े पियक्कड़ों को मुफ़्त पिलाना शुरू कर दी कि जिसमें उसे पुलिस आ कर पकड़ ले और वह बोतल—बिरादरी का आदर सम्मान पा जाय। शराब पिलाने वाले ने अपने इस कर्म को सत्याग्रह का नाम दिया !

सनेही ने कहा, 'वह शराब बेचने वाला भी कहता था कि मैं तो अहिंसावादी हूँ।'

दोनो हँस पड़े।

जब हँसी थमी, सनेही बोला, 'मैंने जो बात उठाई थी अब उसका एक उदाहरण देता हूँ। मान लो, कोई अच्छा काम करते करते मैं मार डाला जाऊँ और मेरे ऊपर कोई लेखक घटा-बढ़ा कर कहानी लिख डाले तो क्या उसे किसी वादविवाद की उपासना कहा जायगा ?'

टहल बिस्तरों में बैठ गया। कुछ क्षण चुप रहा।

'मैं अब लड़ पड़ूंगा, दादा' उसने कुछ तीखे स्वर में कहा।

'किससे लड़ेगा रे ? अपने दादा से ?' घाटीवाली बाहर से बोली। राजदुलारी उसके पीछे पीछे आ रही थी।

सनेही ने मुस्करा कर बात पाटी—'और किससे लड़ेंगे ? महुये चने ले कर तुम चल दीं उधर, इधर ये मेरे सिर आ गये।'

राजदुलारी ने आकर कहा, 'तुम्हारा आद-वाद चल रहा होगा कोई। न चैन लेते हो, न चैन लेने देते हो। यहां अस्पताल में भी वही सब !'

घाटीवाली ने समझा कोई झंझट हुआ है। विषाद की एक रेखा चेहरे पर आई।

टहलने तुरन्त सनेही का साथ दिया,—'नहीं भावी, वाद-विवाद कुछ नहीं था। ये एक उपन्यास पढ़ने को देकर खाना खाने चले गये। मेरा मन नहीं लगा। जब लौटे तो उस पर बातचीत हुई। मैंने कहा, कोई दूसरा हलका-फुलका सा ला दीजिये तो बोले, इसी को पढ़ना पड़ेगा। न तो तुम गांव का वह प्रसाद मुझे दोगी और न दादा कोई आसूसी-जासूसी वाला उपन्यास पढ़ने को देंगे। इसीलिये मैंने कह दिया कि लड़ पड़ूंगा। इतने में तुम आ गईं और लड़ाई बन्द हो गई।'

टहल लेट गया। घाटीवाली के मन को समाधान मिल गया। लड़का है, कमजोर हो गया है, इसलिये जरासी बात पर चिढ़ गया। उसने सोचा।

राजदुलारी के चित्त में उन दोनों में से किसी की भी बात नहीं जमी, पर उसने कोई प्रश्न नहीं किया।

घाटीवाली ने कहा, 'घर चलकर खा लेना कितने महुये चने खाने हो। अगर अपने दादा से किसी बात पर कभी लड़े तो इतनी मार लगाऊँगी कि हां।'

टहल हँस पड़ा, बोला, 'तो मैं भावी के पास न दौड़ जाऊँगा, फिर कैसे मारोगी ?'

'मैं भी चांटे लगाना जानती हूँ। माता जी का साथ दूंगी जैसे तुम अपने दादा का साथ देते हो।'

राजदुलारी ने कहा और निमिषमात्र तरेरी दृष्टि द्वारा सनेही की भर्त्सना की जैसे कह रही हो—यह समय किसी तरह की भी बहस उठाने का नहीं है। सनेही समझ गया परन्तु उसकी मुस्कान ज्यों की त्यों बनी रही।

राजदुलारी सिरहने बैठकर टहल के सिर पर हाथ फेरने लगी।

टहल बोला, 'मां जी, इस चोट से एक बड़ा भारी लाभ यह हुआ है कि मुझे डॉक्टर साहब सरीखे बड़े भाई और भावी सरीखी मां मिल गईं। जब चलने फिरने योग्य हो जाऊँगा, दौड़ दौड़कर दादा के साथ काम करूँगा।'

'और मुझसे यदि कोई काम बिगड़ गया तो दो ठौ खपड़े मार देना, फिर मैं रख दूंगा तुम्हारा नाम खपड़ा बहादुर!'

वे सब हँस पड़े।

'आपको मालूम है भावी, दादा गांव जाकर क्या रचना रच आये हैं?'

'मैं तो आज रसोई रचने में लग गई थी, मुझे महुये चने के समाचार के सिवाय और कुछ नहीं मालूम।'

टहल ने संक्षेप में सनेही की योजना सुनाई और कहा, 'देशराज के भी हाथ में दादा कुदाली फावड़ा पकड़ायेंगे। वादा ले आये हैं।'

'और वह फ़िल्म परियों की जैसी वेशभूषा वाली क्या करेगी? कुदाली फावड़े की ध्वनि के साथ क्या कोई गत गायगी बजायगी?' राजदुलारी ने व्यङ्ग किया।

सनेही बोला, 'अच्छी चीज़ को ज़रा कुढंगपने से पेश करती है अञ्जना। आजकल सुहाना में है भी नहीं।'

'होगी, क्या करना है।' घाटीवाली ने कहा।

'ज़िकर छोड़ो,' राजदुलारी बोली।

[४२]

धूप धरती को सेंकने लगी और लू ऐसी, जैसे जलते अवे से लौ छूट रही हो। छोटे नालों का पानी कभी का सूख गया था और किनारों पर घास नाम को न रही। ललिता नदी में पानी था, पर धार पतली पड़ गई थी। सरकारी जङ्गल के नाले में पानी था लेकिन ढोर पानी पीने वहां नहीं जा सकते थे। ललिता नदी के किनारे दुबले पतले पशुओं के झुण्ड के झुण्ड छूटे फिर रहे थे। दिन में वहां दूबा के डण्ठल चबाते रहते और रात में गांव के बाहर सूखे पत्ते चाटकर वहीं बैठ जाते। अधिकांश गायों में दूध निकलता नहीं था कि उन्हें कोई बाँधे छोड़े। खेती के बैलों को अवश्य पानी और कुछ चारा उनके मालिक दे देते थे। चारा था जङ्गल के बड़, पीपल इत्यादि के पत्ते। ये हर किसान को निरन्तर नहीं मिल सकते थे।

मैदानों के पलाश के फूल झड़ चुके थे। अब वे चमकीले हरे पत्तों से छा गये। ललिता नदी के किनारे इन पेड़ों के बिखरे पुञ्ज अब भी बड़े बड़े लाल फूल टपका रहे थे कि जिनकी राशि नीचे फैली हुई थी, मानो अपने ब्याह की बारात सजा रहे हों। महुओं से फूल टपक चुके थे। अब वे धूप और लू को चिनौती सी देते हुये नये जीवन की दमकदार पत्तियों से लहलहा उठे थे। उधर पहाड़ों की करधई का सूखा कत्थई रङ्ग, इधर ऊँचे पूरे महुओं और दिग्गज पाखरों के बेंगनी रङ्ग के किसलय—मानो प्रकृति की नई लहर के अपनाने में होड़ लगा रहे हों। और इनके नीचे करोंदी के छोटे छोटे झाड़ जिनकी हरे पत्तों से ढकी हुई कटीली टहनियों में घुंघची के आकार वाले छोटे छोटे फल चिपके हुये से थे।

गाँव के मजदूरों के लिये काम नहर खुदाई का मिल गया था। नहर दोनों गाँवों की ऊँची भूमि पर से निकल कर आगे के गांवों में दूर तक जानी थी। खुदाई ऐसे स्थान पर पहुँच गई जो अन्य गाँव में

पड़ता था और सुहाना बांगुर्दन से दूर था। अब इन मज़दूरों के लिये खुदाई का काम न रहा।

नाला उस ऊँची भूमि के नीचे से पौरे की आकृति में निकल धीरे-धीरे कर चौड़ा होता हुआ उन दोनों गाँवों के बीचों बीच जन्म के स्थान से ही टेढ़ा तिरछा चला था और वहीं से इसने छोटे छोटे भरके काट डाले थे। नाले के आसपास के विस्तृत क्षेत्रफल में नहर नहीं आ सकती थी। एक खेत भरके के इस तरफ़ तो दूसरा उस तरफ़। एक विशेष स्थल पर पुलिया बांधी जाय उस क्षेत्र में तो छोटी छोटी कुलियों द्वारा नहर का पानी पहुँचे। परन्तु इन कुलियों के खोदने का काम सुहाना और बांगुर्दन के निवासियों का था न कि नहर विभाग का। क्योंकि नकशे के अनुसार नहर को आगे चलते जाने की पड़ी थी, और, नहर के नक़शे या बजट में कई वर्ष तक उस पुलिया या उन कुलियों के लिये गुञ्जाइश हो ही नहीं सकती थी।

सनेहीलाल ने कुछ दिन पहले इन्हीं कुलियों की खुदाई और पुलिया के बनाने की योजना तैयार की थी। मज़दूरों को नहर खुदाई में मजूरी खासी मिलती रहती थी। काम था पराया! उस गरमी में शरीर ने मन का और मन ने शरीर का जितना साथ दिया उतना मज़दूरों ने कर दिया। अब तन मन दोनों, थके से लगते थे, क्योंकि कुछ पैसे पल्ले में भी तो पड़ गये थे। कुछ दिनों तक सनेही वाली योजना के कार्य का आरम्भ न भी हो तो कोई बात नहीं। और फिर उसमें 'कापटी समिति' की कुछ पेचपाच भी है! सामने आयगी तब देखा जायगा। मज़दूर सोचते थे।

एक दिन गाँव में खबर आई कि टहल बिलकुल चङ्गा हो गया है और कल आ जायगा। विद्यार्थियों, बटोले, मन्टू और उनके साथियों में एक लहर सी छहर गई। इन लोगों ने टहल का स्वागत करने के लिये हरे पत्तों से प्रवेश द्वार सजाने और घर-घर वन्दनवार लगाने की

बात उठाई। बिक्रम ने कानाफूसी की—कौन सा बड़ा रन जीत कर आ रहे हैं!

दूसरे दिन टहल के मुहल्ले में बन्दनवार टंग गये—बटोले और मन्टू ने अपने घर से आरम्भ किया और अन्य स्थानों में विद्यार्थियों ने टाँग डाले।

जनक और उसके साथियों ने एक खंडहल वाले घूरे पर छोटा सा द्वार बनाया और उस पर बन्दनवार लटकाया। बन्दनवार के ऊपर अखवार की रद्दी के काग़ज पर हाथ से मोटे अक्षरों में लिख दिया,—'इसको सुधारना बनाना है। गाँव के पटवारी ने देखा तो, कहा,—'कितने मूरख हैं ये लड़के! इनको अब यही सब तो सिखलाया जा रहा है!'

सुहाना में देशराज, बनमाली और सनेही के मकानों पर और आस-पास थोड़ी सी सजावट हो गई। देशराज ने उन लोगों को स्टेशन से लाने के लिये अपनी मोटर भेज दी।

वे सब चौथे पहर की गाड़ी से आकर सन्ध्या के पहले बाँगुर्दन पहुँच गये। स्वागत करने के लिये वहाँ देशराज और बनमाली भी आ गये थे। नरनारियों और बच्चों की भीड़ लग गई। कुछ में आल्हाद था और सभी में गोली का घाव देखने की उत्सुकता। जनक को आग्रह के साथ घूरे वाला बन्दनवार दिखलाता गया।

टहल को फुरेरू आ गई—यह लड़का भी क्या अजीब है! और हँसा। सनेही ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा—'चिन्ता न करो, आ रहा है दिन जब तुम्हारे ही हाथों सुधारें बनायेंगे।'

भीड़ में से उतरती अवस्था का एक तगड़ा फ़ौजी आया। पुरानी ख़ाकी वर्दी पर चिप्पियाँ और तमगे लगाये था।

बोला, 'इसको और इसके साथियों को कवायद परेड सिखला रहा है। हमारा गाँव वाला किसान-मज़दूर न जाने क्यों शरमाते हैं।'

मन्टू ने फ़ौजी का परिचय दिया—'अपने ही गांव के लटौरे—लटोरेसिंह हैं। फ़ौज से लौट आये हैं।'

लटौरेसिंह ने मिलाने के लिये हाथ बढ़ाया। टहल, सनेही इत्यादि ने हाथ मिलाया।

'हम बहुत सी लड़ाइयां लड़ा है, घायल हुआ हैं.'—उसने लड़ाइयों के नाम देने आरम्भ किये थे कि बटोले ने कहा, 'अभी तो घर चल रहे हैं, पैर में कमज़ोरी है, बातों के लिये दिन पड़े हैं।' घर आने पर घाव दिखाते दिखाते और डाके वाली घटना के सम्बन्ध में प्रश्नों का उत्तर देते देते टहल थक गया।

सनेही ने पूछा, 'उस योजना के सम्बन्ध में कब इकट्ठे हों?'

'जितनी जल्दी हो सके,'—देशराज ने आतुरता प्रकट की,—'क्योंकि कुन्जीलाल के मुक़द्दमे की तारीख पास आ रही है। सदर में मुझे कई दिन लग जायंगे।'

बातचीत के लिये दूसरे दिन की संध्या का समय रक्खा गया। स्थान टहल के घर के सामने का मैदान।

राजदुलारी टहल की मां के पास थी।

'मां जी, अब खाऊँगी उस आटे की रोटी जो उस दिन दे रही थीं।' राजदुलारी हँसी।

घाटीवाली ने उसे गले लगा लिया,—'बेटी तुम्हारी ही दी हुई रोटी है।'

राजदुलारी सनेही के साथ देशराज की मोटर से घर चली गई। देशराज और बनमाली पैदल गये।

मार्ग में बनमाली ने कहा, 'चुनाव भी कमबख़्त इन दिनों होने को हुआ! मारे तपन के घर से निकला नहीं जाता।'

'दिन भर पङ्खा टट्टी में रहता हूँ तो भी पसीना आता रहता है। इस समय तो शरीर भुना जा रहा है।' देशराज ने ऋतु की शिकायत की।

'कुछ भी हो चुनाव में आपको थोड़ा सा परिश्रम करना ही पड़ेगा। टहल और बटोले तो गांव में समाज और पञ्चायत में चुन लिये जायेंगे, पर अंडबण्ड आदमी न आने पावें।'

'करना ही पड़ेगा भाई कुछ न कुछ' देशराज ने बिना उत्साह के समर्थन किया।

अन्य लोग टहल के घर बहुत देर तक बैठे रहे। सबने उसकी पूछते पूछते अपनी अपनी कहानी अधिक सुनाई।

उदेता गढ़रिया बोला, 'भैया, छदामी की जनी तो बड़ी चुड़ैल है। मेरा नन्हा पड़ा बीमार। झड़वाने के लिये उसे बुला ले आया। काली-माई पर चढ़ाने के लिये मेरी एक बकरी ले गई। चार दिन बाद देखूं तो उसके घर! मौका पाते ही मैं उसे ले आया। फिर आई वह मेरे ऊपर। बोली—बकरी तो मैया की हो गई है। मैंने उससे कहा मेरे बगर में मैया की हो कर ही तो रहेगी; जैसी तुम्हारे यहां, वैसी मेरे यहां—कोई दूसरी बात है? तो गालां देती चली गई!!' टहल ने अपनी हँसी दबा ली।

दूसरे ने अपनी कहानी सुनाई—'अरे वह चिटलुआ है न हमारे घर के पीछे, उसने मेरे चबूतरे वाले नीम की आधी डालें काट कर अपने बैलों को डाल दीं और कहीं जा छिपा। झूठी नहीं कहूँगा, मैंने एक एक लाठी उन दोनों बैलों को मारी। तो उसने एक दिन मेरे बैलों को इतना पीटा, इतना पीटा कि वह लँगड़ाने लगा है।'

टहल ने पूछा, 'टांग टूट तो नहीं गई?'

'नहीं, टूटी तो नहीं है। इमलौसे की जड़ बांध दी है।'

तीसरा अपनी कहने को उकता रहा था—'इन नाईयों की तो देखो भैया,—पञ्चायत कर ली है कि हमारी जात वालों की हजामत नहीं बनायेंगे तो हमने भी तै कर दिया है कि बाल-बच्चा जनाने के लिये हमारे यहां से कोई उनके यहां नहीं जायगा, ब्याह-बरात में उनके यहां

हम लोग बाजे नहीं बजायंगे, जब वे देवता पूजने जायेंगे तब हम रमतूला नहीं फूँकेंगे।'

'इन सब झंझटों को दूर करने की कोशिश करेंगे हम तुम सब,' टहलने अलसाये स्वर में कहा।

जब सब चले गये, तब टहल सोने के लिये लेट पाया।

नींद जल्दी नहीं आई। अस्पताल में सब काम ठीक समय पर होता था। माता, सनेही और राजदुलारी का इकट्ठा स्नेह भरा बर्ताव और कहां यहां का वही मुर्झाया हुआ सा वातावरण! हां उसमें कुछ सजीव रेखायें भी थीं—जनक, बटोले, मंटू—। देशराज में वह उत्साह तो नहीं दिखा जिसकी प्रतीति सनेही दादा की बात-चीत से उत्पन्न हुई थी। मजदूर अच्छी तरह से बोले। हरको की आंखों में आंसू क्यों आगये थे? सद्भावना—यदि यह लड़की कुछ पढ़ लिख जाय तो बहुत काम करे। मां जी पढ़ा सकती हैं। भावी तो हैं! अन्य स्त्रियों को भी पढ़ी लिखी बना देंगी। भावी क्या हैं जैसे दुर्गा देवी, यानी ऐसी ऊँची नारियों को हमारे यहां जैसा कहा जाता है वैसी। बड़ी धूल उड़ रही थी। लोग जिन मुस्कानों के साथ आये थे उनके साथ लौटे नहीं, इनके चेहरों पर मुस्कानें कैसे खेलती रहें? कल इस समय अस्पताल में था—क्या कर रहा था मैं?—

घाटीवाली स्त्रियों को बिदा करके आई।

'बेटा, अभी सोये नहीं?'

'नींद नहीं आई। अब सो जाऊँगा।'

'अभी आती है नींद।'

घाटीवाली ने सिरहने बैठ कर उसके सिर पर हाथ फेरा कि नींद आने लगी।

[४३]

टहल तड़के ही उठ बैठा और घूमने के लिये धीरे धीरे तालाब पर गया जहाँ प्राचीन मूर्तियाँ और खंडहल थे। तालाब के बीच में और किनारे के नीचे दो गड्ढों में ही थोड़ा सा पानी भरा हुआ था, उन गड्ढों के आस पास कीड़ों से बिलबिलाता कीचड़ था। उस स्थान पर बहुत दिनों उपरान्त आया था इसलिये ममता दुगुने वेग के साथ लौटी। उन पर से आंख सूख हुये तालाब पर फिरी। इनके फूटे हुये बांध की मरम्मत हो सकती है। हम लोग करेंगे। निश्चय ही करेंगे। सनेही की बात याद आई। क्या इन मूर्तियों ने भीतर की शक्ति को फिर से सजग कर दिया है और मुझे उठा दिया है? मूर्तियां बहुत ,सुन्दर हैं। बनाने वालों की परम श्रद्धा और कुशलता की प्रतीक। पर मेरे सिद्धान्त के लिये शक्ति इन्होंने नहीं इस सूखे तालाब के फूटे हुये बांधने दी है। उन मूर्तियों पर फिर दृष्टि गई। क्या कारीगर थे! कैसे हाथ थे उनके!! और आज वह दिन है जब मोटे झोटे हल बखर तक भद्दे बनाये जाते हैं। करघे तो यहाँ बढ़िया बना ही नहीं पाते।

लौट कर घर होते हुये सनेही के यहाँ गया। वहाँ मरीज़ों की भीड़ थी।

सनेही ने ज़्यादा चलने फिरने से मना किया, क्यों कि एक पैर में अभी कुछ लङ्ग थी।

'वाह दादा, आप तो उस दिन कहते थे कि घर पहुँचने पर दौड़ने उछलने लगोगे!'

'तो मैंने यह कहां कहा था कि तुम आज भोर से ही कूँद फांद शुरू कर देना?' सनेही हँस पड़ा।

वही स्वच्छ हँसी! वैसा ही गाढ़ा स्नेह जैसा अस्पताल में इससे मिलता था।

जो वहां थे उन्होंने देख लिया कि दोनों एक दूसरे के अधिक निकट हो गये हैं।

राजदुलारी के पास भी बहुत थोड़ी देर ठहरा, क्योंकि वह सनेही की सहायता में संलग्न थी; फिर रसोई पकानी थी।

राजदुलारी ने डांटा—'उन्होंने कहा होगा कि घर पहुँच कर दौड़ते फिरना, मैं कहती हूं कि धीरेधीरे परिश्रम बढ़ाओ, नहीं तो याद रखना—'

टहल को चाटों वाली बात याद आ गई।

'अच्छा भावी, अच्छा।' और हँसकर चला गया। बहुत से लोग दोपहर के पहले तक टहल के पास आ गये। किसी ने कोई दुःख रोया, किसी ने कोई।

बिक्रम की शिकायत कई लोगों को थी। उस पर उनका सन्देह था—डाका इसी ने डलवाया, क्योंकि बटोले और टहल—दोनों—को वह अपना परम शत्रु समझता रहा है। उनके कान तक वह कानाफूसी भी पहुंच गई—कौनसा बड़ा रन जीत कर आ रहे हैं! टहल ने ऊपर से उपेक्षा की परन्तु भीतर बात गड़ गई।

बिक्रम से कुछ लोग दो कारणों से अप्रसन्न थे—एक तो इनके खेतों में उसने कभी न कभी पसर चराई थी, दूसरे उसके पास अन्य लोगों की अपेक्षा ढोर अधिक संख्या में थे! डाह की जलन!!

[४४]

सांझ होने में देर थी। लू सपाटे के साथ चल रही थी। सनेही छतरी लगाये टहल के घर आया।

'अरे, इतनी धूप में दादा।'

'छतरी जो साथ थी। सोचा कुछ बातें कर लें। इसके पहले आने का अवकाश नहीं मिला। लोगों के जमा होने पर कोई कुछ कहेगा, कोई कुछ। हम दोनों काररवाई का निर्धार और निखार कर लें, तो काम सुगम हो जायगा।'

'ज़रूर! मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया?'

'इसलिये कि बैठे बैठे कहीं खुद लँगड़ाने लगूं।'

दोनों हँस पड़े।

सनेही ने कहा,'—'पहली बात तो यह कि देशराज को आज की बैठक का प्रधान बनायेंगे।'

'जी नहीं, आप को बनना पड़ेगा। बहुत से लोगों का सन्देह है कि कालीसिंह डाकू से देशराज और बिक्रम मिले हुये हैं।'

'कोई प्रमाण तो है नहीं।'

'जनता की बुद्धि को प्रमाण की ज़रूरत नहीं पड़ती, वह बिना प्रमाण के भांप लेने की शक्ति रखती है।'

'फिर भी उसके साथ इसी जनता का बहुत सा अंश है। बिना प्रमाण के, कम से कम हम लोगों को, ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। पुलिस उसकी निगरानी कर उठी है, जनता के सन्देह का आधार शायद यही हो। हम लोगों की शंका के लिये यह पर्याप्त नहीं है। पहले तो हर मनुष्य को शुद्ध समझो फिर सावधानी बर्तते हुये जाँचते रहो, और जैसा उसे पाते जाओ वैसी राय बनाते जाओ। और फिर, मैं उससे अभी अभी कह कर आया हूँ कि तुम्हें प्रधान बनायेंगे।'

टहल खिलखिला पड़ा,—'वाह दादा ! धन्य हो !! बहस खतम। आगे चलिये।' सनेही ने भी उसकी हँसी का साथ दिया।

'भाई, बात यह है कि एक हिस्से की पहली क़िस्त का रुपया अधिकांश मज़दूर दे तो सकते हैं, क्योंकि नहर खुदाई में उन्होंने कुछ जोड़ लिया है, परन्तु मुझे शंका है, —और इस शंका के लिये मेरे पास प्रमाण है,—कि वे देंगे नहीं। दे भी दिया तो बैंक से रुपया देर में मिलेगा। बैंक के कुछ डायरैक्टर दकियानूसी हैं। पहली क़िस्त के दिये गये रुपये पर अठ गुना नहीं देंगे, परसों मैंने सदर में बात की थी। कम रुपया और वह भी देर में मिलेगा तो काम को शुरू कब और कैसे कर पायंगे ? तुम्हारे वीरत्व और त्याग की छाप अभी बनी हुई है—ठहरो, टोको मत,—इसका उपयोग अविलम्ब होना चाहिये। मज़दूर मुफ्त सेवा का काम एकाध दिन ही मन लगा कर कर सकेंगे, फिर उसका नाम न लेंगे। चाहिये है काफ़ी रुपया तुरन्त। यदि मज़दूरों ने हिस्से की चौथाई का रुपया न दिया तो अपने किसी कोष से जमा करके धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा उनसे वसूल कर लेंगे। मज़ूरी उन्हें रोज मिलनी चाहिये, भले ही वह नकदी में कम हो। इस कोष के लिये देशराज को साधना है।'

'क्या वह चन्दे में इतनी बड़ी रक़म दे देगा ?'

'वह क्या, कोई भी न देगा। हलके ब्याज पर उधार ले लेंगे। जैसे ही बैंक से रुपया आया कि उसका वापिस कर दिया। मैं उससे बात कर आया हूँ। नहर वालों से बात हो ही चुकी है। औज़ार उनसे मिल जायंगे।'

'देशराज कुदाली फावड़ा तो चलायगा न ?'

'बिलकुल तै है। मज़दूरों को पराक्रम की उत्तेजना चाहे उससे न मिले, पर हँसी ज़रूर मिलेगी।'

'दादा, कहीं ऐसा न हो कि मज़दूर पूंजीवाद की ओर घिसट जायं जोकि सामन्तवाद का उत्तराधिकारी है, क्योंकि हमारा साधारण जन

युगों की अज्ञानता जड़ता और शिथिलता में जकड़ा हुआ है। उसका यह कुलक्षण सामन्तयुग की ही तो देन है।'

'इस कुलक्षण के उत्पन्न करने में सामन्त युग या सामन्ती का थोड़ा सा ही अपराध है। और भी कई कारण हैं। जैसे धर्म की विकृतियां—पर इनकी चर्चा इस समय व्यर्थ होगी। अब तो परछाहीं की तरफ़ न देखकर अब तो—।'

सनेही मुस्कराया और टहल हँसा।

सनेही कहता गया,—'अब तो हम लोगों को प्रण करना है कि अपने भीतर ऐसा स्वभाव उत्पन्न करें जो कठिनाइयों पर हँस दे और हाथ में लिये कार्यों को समाप्त करके ही दम ले।'

'तभी दादा इस धूप और लू में निकल पड़े! देशराज के यहां कितनी देर रहना पड़ा?'

'लगभग दो घंटे।'

'बनमाली के यहां भी गये होंगे?'

'नहीं गया।' देशराज से काम था, वह है भी कुछ अधिक सहज-गम्य। बनमाली सक्रिय होते हुये भी नकारात्मक भावना वाला आदमी है। सहकारी समिति का मन्त्री होने पर भी सहयोगहीन। समाज के ऐसे सक्रिय और बुद्धिजीवी जन जो विनाश-सङ्कलन की ओर अधिक झुके रहते है, साधारण जनता की जड़ता और शिथिलता के वातावरण में हमारे तुम्हारे मार्ग के सब से बड़े विघ्न हैं। और अपनी गति सांप छछूँदर की जैसी हो रही है। सहना निभाना पड़ेगा।'

'क्या बनमाली को और भी कोई पद देना है?'

'पद देंगे भी तो वह न लेगा, क्योंकि छाया में बैठकर भी अफ़सरी करेगा तो लू के तमाचे खाने पड़ेंगे। अब जो भी पदाधिकारी होंगे उन्हें भी मजूरी देने की व्यवस्था करेंगे! इस लोभ में आकर काम कर जाय तो कर जाय।'

'रक्षकदल के पदाधिकारियों को भी !'

'नहीं, क्योंकि वह काम मजूरी नहीं है। वह तो वीरता का शिक्षालय है और वीरता की कीमत कूतने वाले खपड़ों से डाकुओं को मार भगाने वाले ही हो सकते हैं, न कि डॉक्टर !'

फिर हँसी।

'वाह दादा ! उसका जिकर न किया करो। वह सब कुछ न था। किसी धुन में कर गया।'

'तो मां जी से पूछूंगा, क्योंकि वीरता की जननी उन खपड़ों की क़ीमत जरूर जानती होंगी जो उन्होंने फोड़े और फुड़वाये थे। तीन-चार आने पैसे लेकर मन मना लेना बस।'

'दादा दादा !' टहल सनेही से लिपट गया। दोनों भावमग्न हो गये।

जब शान्त हुये, सनेही ने कहा,—'अब दूसरी प्रकार की सूरबीरी का क्षेत्र सामने है। वह समय और शक्ति से सीमित नहीं है। डग डग पर सत्र की सँभाल, उखड़ती हुई दम का साधना, टूटती हुई आशा का जोड़ना, विरोध को अपने रस में पचाना, अकस्मात् निराशा का कड़वा घूंट पी लेना, सुनसान वीरान की अकेली यात्रा में थके मांदे पैरों का बढ़ाते जाना—यह सब शायद रोज रोज का अनुभव हो जाये, इन अनुभवों पर भी बने रहना है अपनी धुन के नशे में मस्त, ऐसी मस्ती जो कभी उतरे नहीं।'

टहल ने सनेही को उत्साह की इतनी तेजी में कभी नहीं देखा था।

'आप जहाँ ले चलेंगे, चलूंगा।' उसने कहा।

'नहीं जी, सोच समझ कर काम करते रहना है। बुद्धिजीवी कहलाने वाले लोगों तक में सम्पत्ति संग्रह, आपा-पंथी, परम्परानुगमन, दूसरों की आवाज का बिना सोचे विचारे अनुकरण का आज के घण्टे तथा वर्तमान युग की मांगों और कानून की मजबूरियों का, परस्पर निस्तब्ध संघर्ष चल रहा है। इसीलिये मैंने सहकारी मार्ग का सहारा पकड़ा है। यह

दोनों ओर के खाई-खड्डों से बचता हुआ चलता है। जहां वह ले जाय वहाँ चलना है।'

'पर उसमें दोष भी बहुत से हैं।'

'हैं—मैं मानता हूँ; जैसे सरकारी अफ़सरों का लगातार दखल जिससे अपने यहां का जन मन ही बहुत छड़कता है और दूर रहना चाहता है परन्तु जैसे ही श्रम धन की पूंजी इकट्ठी हुई कि स्वावलम्ब की मात्रा बढ़ जायगी और सरकारी दखल घट जायगा; फ़िर वह दखल हमारी मन चाही सहायता का रूप पकड़ लेगा।'

'यह तो हो जायगा, पर सहकारी योजना में निजी खेती, मेम्बरों को भूमि वापिस लेने का अधिकार और इस्तीफ़ा देकर रही सही भूमि को अपने साथ उठा ले भागने का हक़—'

'इनके सिवाय और भी कई दोष राहु-केतु की तरह सहकारी, खेती को ग्रसे हुए हैं और श्रमधन को सनीचर लगने का भय है।'

'फिर, हम तुम काहे के लिये हैं जो इन कुग्रहों से मुक्ति न दिलावें? है वही बात—डग डग पर धैर्य की सँभाल—'

घाटीवाली ने आकर टोका,—'जहां तुम दोनों बातूनी इकट्ठे हुये कि गरमी और लू तुम्हारे हाथ जोड़ने लगी।'

सनेही ने कहा, 'तो गरमी और लू का कैसा अच्छा इलाज ढूंढ़ निकाला है हम दोनों ने!'

घाटीवाली ने एक और इलाज बतलाया,—'मैंने कुछ तैयार किया है उसे खा लो तो गरमी और लू भाग खड़ी होगी। साँझ होते ही बातों की हाट सी लगनी है; उसमें खाना-पीना सब भूल जाओगे। उठो, धोओ हाथ मुंह।'

[४५]

सांझ होते ही देशराज के घर से दो बड़े-बड़े फ़र्श आ गये और टहल के घर के सामने वाले मैदान में बिछा दिये गये। फिर एक मेज़ और चार पांच कुर्सियां आईं। मेज़ पर देशराज की गैस बत्ती प्रकाश के लिये रख दी गई। सब से पहले बच्चे आकर फ़र्श पर धमा चौकड़ी मचाने लगे।

एक बोला, 'रामलीला होगी।'

दूसरे ने कहा, 'नहीं, सीता, राम, लछमन तो हैं ही नहीं; रामलीला नहीं होगी, नाच होगा सुहाना वाली का।'

कुछ बच्चे एक दूसरे पर धूल फेक-फेक कर रामलीला के किसी अङ्ग पर खेल चलाने लगे।

सनेही और टहल ने आकर लड़कों को फ़र्श पर से हटा दिया।

'चारपाइयां निकलवा लो, उन पर बैठेंगे। मेज़ कुर्सी का तमाशा अपनी बात का साथ नहीं दे सकेगा।'

टहल ने चारपाइयों का प्रबन्ध किया। बच्चे उनका कोई उपयोग करने वाले ही थे कि देशराज, बनमाली और सुहाना के बहुत से लोग आ गये। उन्हीं की भीड़ के साथ बटोले, मन्टू और बांगुर्दन की जनता आ मिली। कोई फ़र्श पर बैठ गया, कोई खड़ा रहा। स्त्रियां भी आईं और गैस बत्ती के तेज़ प्रकाश की यात्रा से काफ़ी दूर एक मकान के पास खड़ी हो गईं।

चारपाइयों की तरफ़ संकेत करके देशराज ने पूछा, 'ये किसके वास्ते हैं? सोना तो किसी को है नहीं?'

'नहीं, जागते जगाते रहने के लिये। आप प्रधान होंगे इसलिये आप कुर्सी पर। हम लोग बैठेंगे चारपाइयों पर।'

भीड़ में से लटोरेसिंह आया, उसी पुरानी वर्दी में—मेले ठेलों के लिये वह उसके जीवन का अङ्ग बन गई थी।

बोला, 'राजा साहब बैठेंगे कुर्सी पर और डॉक्टर साहब।'

टहल के मन में उठा—'बिचारा सिपाही है न—राजनीति से दूर—इसलिये देशराज को आज भी राजा कहता है।

सनेही ने कहा, 'मैं नहीं बैठूंगा कुर्सी पर।'

'जब आप सब चारपाइयों पर बैठेंगे तो मैं भी किसी चारपाई को पकड़ लूंगा,' देशराज बोला।

निदान कुर्सियाँ खाली पड़ी रहीं। वे सब चारपाइयों पर बैठ गये। अधिकांश लोग फ़र्श पर बैठकर बातें करने लगे, कुछ खड़े खड़े शोर करते रहे। स्त्रियाँ चुप थीं—कम से कम उनकी आवाज़ नहीं सुनाई पड़ रही थी।

सनेही ने देशराज से कहा, 'सभा समितियों की बैठकों की एक प्रथा है कि कुछ लोग भाषण दें, उन पर श्रोताओं की सम्मति ली जाय, फ़िर थोड़ा सा गाँठ में बाँधकर और बहुत सा वहीं खोकर, घर चल दें। यहाँ के लिये यह प्रणाली उपयुक्त नहीं जान पड़ती। अपने सामने आज एक ही प्रसङ्ग है। उस पर कोई थोड़ा सा बोले। फिर जिसके मन में जो आवे बातचीत और सवाल जवाब करे।'

'बड़ा हल्ला मचेगा,डाक्टर साहब। व्यवस्था बिगड़ जायगी।'

'इससे डरना नहीं चाहिये। इस प्रणाली के द्वारा आगे का कार्यक्रम बनाने में सुविधा मिलेगी और बहुत से सङ्गी साथी सहज ही साथ लग जायगे।'

टहल को यह सुझाव पसन्द आया।

बनमाली भाषण देने के लिये आया था। उसने प्रतिवाद किया,—'मीटिंग क्या होगी,कुंजड़ियाना बन जायगा।'

'जी हां,ऐसा कुंजड़ियाना कि जिसमें आपको सब तरह के साग, मेवे इत्यादि भी मिल जायेंगे। आपका भाषण होगा इसका इत्मीनान दिलाता हूँ।' सनेही मुस्कराया।

बनमाली अपने साफ़ सुथरे कुर्ते की अस्तीन पर उँगली फेरने लगा।

सनेही ने कहा, 'काररवाई आरम्भ कर देनी चाहिये,' और उसने तुरन्त गुल गपाड़े को कम किया। फिर देशराज को प्रधान बनाने का प्रस्ताव किया। टहलराम ने समर्थन।

देशराज को आश्चर्य हुआ, टहल ने समर्थन किया!

सनेही ने अपने छोटे से भाषण में सहकारी सिद्धान्त का लाभ समझाया और अपनी योजना बतलाई। देशराज और टहल को विशेषतौर पर सम्बोधित करके उसने कहा,—'अकेली भूमि, अकेली पूंजी और अकेले श्रम से कुछनहीं होता। इन तीनों की खटपट नहीं होनी चाहिये, नका समन्वय होना चाहिये।'

इसी समय धरनीधर और बिक्रम आकर पीछे खड़े हो गये। इनको बुला लिया गया और वे एक चारपाई पर आ बैठे। लोगों में खुसफुस होने लगी।

बनमाली व्याख्यान देने के लिये छटपटा रहा था, खड़ा हो गया और बोल बैठा,—'प्रधान महाशय, देवियो और भाइयो।' सनेही की योजना के सम्बन्ध में तो उसने कहा ही, वोट के महत्व और चुनाव के विषय पर भी बोला। उधर जैसे ही उसने 'देवियो और भाइयो' कहा स्त्रियों के कान परस्पर बातचीत की ओर फिर गये।

'अरी तू कौन सी देवी है री?—काली, चण्डी, मुण्डी, कौन सी?'

'तू होगी—चुड़ैल कहीं की!'

'अरी तुझे तो किसी मन्दिर में थाप दें तो बनमाली तेरी आरती उतारता फिरेगा।'

'वह निपूता इतना चालाक है कि उल्टी मेरी हँसुली पटेली उतार ले जायगा।'

मंटू ने बटोले के कान में कहा,—'इसको अपने गाँव के वोट न मिलें तब बात है।'

प्रधान की ओर मुंह किये हुये ही बटोले धीमे स्वर में बोला,—'चाहे जहाँ दाल भात में मूसलचन्द बन जाता है। लेकिन गुट्ट बनाने में एक नम्बर है।'

बनमाली ने अपना व्याख्यान समाप्त किया,—'इसलिये देवियो, और भाइयो सब मिल कर काम करो। एकाध दिन बाद ही हम सब कुदाली फावड़ा पकड़ेंगे और श्रमधन की ऐसी पूंजी इकट्ठी करेंगे कि उसके सामने अन्य सब पूंजियाँ कमज़ोर पड़ जायेंगी।'

देशराज ने रिवाजी ताली बजाई। कुछ तालियाँ और बजीं। फिर जो बच्चे एक जगह खड़े खड़े चुप्पी के कारण परेशान हो रहे थे देर तक तालियाँ पीटते रहे।

बनमाली धरनीधर के पास जा बैठा।

'ठीक रहा न ?'

'हाँ हाँ, वाह।' बिना किसी रस के धरनीधर ने कहा।

सनेही ने श्रोताओं को बात-चीत और प्रश्न करने के लिये उकसाया। पहले तो लोग कुछ झिझके, फिर जैसे तूफ़ान आ गया हो।

एक ने बात उठाई,—

'नहर वाले बारह आने से लेकर एक रुपया रोज़ तक, जो जैसा काम करे, देते थे; गाँव में जो दर चालू है कम से कम वह तो दी जाय। छः आने रोज में पेट नहीं पल सकता।'

दूसरे ने कहा, 'मिट्टी का तेल, नमक, गुड़, दियासलाई भी तो नहीं आयेगी इतने थोड़े पैसों में।'

तीसरा बोला, 'एक आना तो तमाखू के लिये चाहिये। बहुत महँगी हो गई है।'

सनेही ने समझाया,—'मैं पहले कह चुका हूँ और अभी अभी बतलाया कि छः आने रोज़ नहीं हैं बल्कि अखीर में बारह आने का पड़ता बैठेगा।'

एक ने पूछा,—

'कैसे ? हमें तो बतलाओ; हमने तो ये सब बातें आज ही सुनी हैं।'

टहल ने उत्तर दिया,—'सहकारी खेती समिति का कम से कम एक हिस्सा सबको खरीदना होगा। जिनके पास ज़मीन है उनके लिये हिसाब है फ़ी एकड़ पर एक हिस्से का दस रुपया, जिनके पास नहीं है उनका एक हिस्सा भी उतने ही का। पहली क़िस्त ढाई रुपये की। फिर हर साल ढाई रुपया, जब तक दस रुपये पूरे न हो जायें। ये ढाई रुपया पहले ले लिया जायेगा। जो न दे सकें उनकी मजूरी में से छः आने रोज़ काट कर पहली क़िस्त का रुपया जमा कर लिया जावेगा। समिति के मेम्बर हो जाने के कारण उन्हें साल साल अपने हिस्से की रक़म के अनुसार मुनाफ़ा मिलता रहेगा और समिति के काम का प्रबंध करने में उन्हे हक़ रहेगा।'

वह नहीं समझा।

'घर में एक कमाने वाला और चार खाने वाले, काम कैसे चलेगा ?'

मंटू बोला, 'बात अच्छी है। हम तुम्हें सब समझा देंगे। यहां कुछ लोग कह रहे हैं कि छः आना रोज़ न काटा जाय। बल्कि चार आना काटा जाय। आठ आने मिल जाये तो घर का काम चलता जायेगा।'

सनेही ने कहा,—'दो दरें हैं—एक दस आना रोज़, दूसरी बारह आना; जो जितना करे उतना पावे। चार आने ही काटने की बात माने लेते हैं। जिनकी दर दस आने की होगी, उन्हें छः आना ही मिलेंगे।'

इस पर मर्मराहट हुई। एक स्त्री ने वहीं से पूछा, 'हमको क्या मिलेगा ?'

'जो जैसा करेगी वैसा पायगी। किसी को पुरुष के बराबर, किसी को उससे कम,' उत्तर मिला।

मर्मराहट बढ़ी।

एक चिल्लाया, 'तो कोई भूखों मरेगा और किसी को मौज पटेगी। उधर तो आप लोग कहते फिरते हैं कि सब एक समान हैं, सबको एक सा दो, इधर ये बातें !'

दूसरा—'भगवान भले, जो सबका पेट भरते है। कुदाली तो आज चलानी पड़ेगी, कल की किसने जानी !'

सनेही बोला, 'ठीक है भाई, ठीक है, काम करे या न करे भाग्य के भरोसे बैठा रहे, भगवान परोसते रहेंगे ! कहा भी है—

अजगर करें न चाकरी, पन्छी करें न काम;
दास मलूका कह गये, सबके दाताराम !

सो मौज करते रहो पट्ठ !'

इस पर लोग हँस पड़े। तर्क और युक्ति का जो प्रभाव न पड़ता वह इस असङ्गत पाठ का पड़ गया।

एक ने कहा, 'खाना मिल जाता है तो कपड़े की कमी। दोनों मिल गये तो नमक, तेल, तमाखू के लिये तरसते रहते हैं। यह कष्ट मिट जाय किसी तरह हमारा। हम काम करने और समिति के काम को आगे बढ़ाने के लिये तैयार है।'

'तो जिसको जब जैसी ज़रूरत पड़े बतलाते रहो, उस जरूरत को पूरा किया जायगा—नमक, तेल, तमाखू, दियासलाई, गुड़ वगैरह में मजूरी चुकाई जायगी।' सनेही ने एक ढङ्ग निकाला।

'ठीक है, ठीक है; कई कण्ठों से निकला।

सनेही ने एक दोहा कहा—

'जाको जब जैसी अटक सो तब तैसो पाय,
राज काज ऐसे चले तो सुराज कहाय।'

टहल की स्मृति में उसके प्रिय सिद्धांत का एक वाक्य उभर कर समा गया—हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना ही चाहिये। सोचा—उस सिद्धांत का आरम्भ हुआ, उसके मुंह से यकायक निकल पड़ा—'वाह दादा !'

लोग इस पर चौके नहीं, क्योंकि सभी कह उठे थे—'बहुत ठीक, बिलकुल ठीक।'

टहल ने पूरा ज़ोर लगा कर आग्रह किया,—'तो बढ़ो आगे और लिखाओ दादा की श्रम धन—पल्टन में नाम।'

लटोरेसिंह सबसे आगे आया,—'हमारा नाम लिखेगा दादा जो हमसे उमर में छोटा है, पर जब सब दादा कहता है तो हम भी दादा कहेगा।'

'इसको क्या हो गया हे, राम।' घाटीवाली ने हरको से कहा जो उसके निकट दरवाज़े परचिपकी सी बैठी थी।

'सिपाही है कहीं का।' हरको बोली।

'अरे इसी गांव का है; मुझसे कम उमर का है। मजदूरी किया करता था। बोलना भी नहीं जानता था। फिर फ़ौज में भर्ती हो गया, बरसों से नहीं आया। अब तो ठाठ ही दूसरे हैं। पैसा पास में हो गया है और बोली भी कैसी अजूबी हो गई है इसकी।'

सनेही ने उसका नाम लिखने के बाद डेढ़ सौ के लगभग नाम और लिखे। मटू ने हरको का नाम लिखवाया और ज़ोर से बोला, 'हरको का नाम लिख लिया गया है और जनी भी लिखवावें।'

कई स्त्रियों के नाम लिखे गये।

सनेही बोला, 'आगे जिस किसी को नाम लिखवाना हो टहल भाई के पास चले आना।'

देशराज और बनमाली के नाम उनके कहते हुये भी कि कर ही क्या सकेंगे, सनेही ने दर्ज कर लिये।

अन्त में बात आई एक हिस्से के ख़रीदने की पहली क़िस्त के रुपये की, तो मंटू बटोले और अन्य थोड़ों के सिवाय सब ने हाथ खींच लिया। बनमाली को बुरा नहीं लगा—बनते ही टूट जाय यह घोटाला तो अच्छा रहे!

'आपसे प्रार्थना है कि हमारी आर्थिक सहायता करे,'—सनेही ने देशराज से अनुरोध किया।

देशराज को स्मरण नहीं रहा, बोला,—'चन्दा देने से मजबूर हूँ डॉक्टर साहब।'

'चन्दा नहीं राजासाहब, उधार दीजिये पाँच हज़ार रुपये, उधार। समिति के कोष में आपकी अमानत जमा रहेगी। उस पर ब्याज मिलेगा,'—सनेही ने हँसकर कहा। उसके मुंह से 'राजा' शब्द का सम्बोधन पाकर देशराज की बांछें खिल गईं। सनेही ने थोड़ा जोर और लगाया,—

'देखिये, यदि उधार पर नहीं देते तो लोग कहेंगे ये तो समाज-शोषक हैं और जाने किन बातों पर रुपया फूंकते रहते हैं। जब आप सब से पहले कुदाली फावड़ा पकड़ेंगे तब उस काम के जारी रखने की लाज भी तो आपके ही हाथ है।'

देशराज ने थोड़ा सा सोचा और पांच हज़ार रुपये उधार देने का वचन दे दिया। सनेही ने हर्ष मग्न होकर घोषणा कर दी। लोगों ने समझा दान किया है।

'अबकी बार देखें किस पर डाका पड़ता है।' धरनीधर की कल्पना में आया।

बटोले बोला, 'कुछ मुझे भी कहना है।'

देशराज ने कहा, 'अवश्य।'

नाम लिखाने वाले खड़े, बैठे, चलते फिरते बातें कर रहे थे।

बटोले चिल्लाया—'भाइयो हमारी भी एक बात सुनो।'

भीड़ को शान्त किया गया लोग जहां तहां बैठ गये।

बटोले ने कहा, 'खेती मैं भी करता हूँ और तुम सब करते हो, पर हम थोड़े से लोग कुछ उद्यम भी करते हैं: लुहार, बढ़ई, कुम्हार अपना अपना करते हैं और हम कपड़े का काम। पेट भर रोटी मिल जाय तो बहुत समझो, पद इससे काम नहीं चलता। खेती किसानी के बढ़ाने की

बातें तो तै हो गईं, हम लोगों के रोज़गार बढ़ाने के लिये भी कुछ होना चाहिये।

'हो रहा है और सामने आयगा। तुम्हें नये कल पुज दिये जायेंगे जिनकी सहायता से ज़्यादा माल तैयार कर सको और अच्छा भी ऐसा कि कल-कारखाने के मुक़ाबले का ठहरे। कुटीर-उद्योगों की सहायता के लिये सरकार पैसा देगी। हम उससे लेंगे। विश्वास करो। इन उद्योगों के सिवाय साबुन का बनाना, रस्से भांजना, शहद की मक्खियों का पालना, लुहारी का कारख़ाना स्थापित करना जिसमें अच्छे औज़ार तैयार हो सकें, तिलहन की पिलाई और गुड़ बनाने की घानियां इत्यादि और--और अच्छे मुर्गे मुर्गियों को बांटा जायगा जिनसे बड़े बड़े अण्डे हासिल होंगे--'

स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

'ओ भगवान ! अण्डे !! डॉक्टर है, बहुत खाता होगा।'

'देशराज, बनमाली, टहल-सब गुमसुम खाते होंगे !'

सनेही ने अपनी ग़लती सँभाली.--'यानी जिनको जो पसन्द हो उसे वह काम दिया जायगा। पर बनेगी सबकी एक सहकारी समिति। पञ्चायत को बढ़िया सांड़, अच्छे बकरे, भेड़ इत्यादि भी सुपुर्द किये जायेंगे जिनसे पशुओं की नसल सुधरे।'

उदेता गड़रिया बोला, 'इन्हीं बकरे बकरियों के खाने को तो चारा नहीं है, उनके लिये कहां से आयगा ?'

उसकी बात बहुतों को अच्छी लगी, पर एक ने हँस कर उसे उजागर किया,'--'अरे वैसे ही लगा है। सब ऐसे ही चलता रहता है।'

'अरे भाई, भगवान की जैसी मर्जी होगी वैसा होगा।'

'सब के दाता राम !' सनेही हँसा।

पर उदेता न माना,--'हमारी बात उड़ादी, कांस उखाड़ डाला गया, अब कहीं कुछ बचा नहीं। बताओ ढोर बकरीं क्या खायें ?'

बनमाली ने परिहास किया,—'ट्रैक्टर नाहक़ चलवाये। बकरे बकरियां जङ्गल की मशीनगनें हैं, इन्हें छोड़ देते कांस पर। ये बिचारी पलती रहती और किसान मगन हो जाते।' लोग हँस पड़े। उदेता दुबक गया। सोचने लगा—यह बनमाली भी क्या है! कभी कुछ कहता है, कभी कुछ!!

सनेही ने कहा, 'नहर के आते ही चारे—पानी का अटूट इन्तजाम हो जायगा, घबराओ मत।'

टहल ने अपनी कही 'सबको पढ़ा-लिखा बनाने की भी योजना है। हम लोग रात की पाठशाला खोलेंगे, मुफ्त शिक्षा देंगे।'

'सोयेंगे हम कब?' एक आवाज़ आई।

टहल बोला, 'गपशप और तमाखू की बैठकबाज़ी में से थोड़ा सा समय निकाल लेना।'

'अब एक बात और सुनो,—सनेही ने ध्यान आकृष्ट किया,—'हर शनिवार या मङ्गलवार की सांझ लोग जगह-जगह रामायण पाठ, रामधुन इत्यादि ढोलक मजीरे के साथ किया करेंगे क्योंकि अपने अच्छे काम बढ़ाने के लिये यह बहुत आयश्यक है।'

टहल नीचा सिर किये कुछ सोचने लगा।

बटोले ने कहा, 'कबीर साहब की बानी भी।'

'ज़रूर, ज़रूर, पर होना चाहिये बिना अन्तर के। वैसे तो लोग घर—घर रामायण, कबीर साहब की बानी इत्यादि का पाठ करते हैं, पर अब उसे मिलकर करना चाहिये। सब काम मिलकर करने का प्रश्न ही कुछ और है।'

'जीवन बहुमुखी है और अनेक तरह के रंगों से भरा हुआ। पूरे समूचे विकास के लिये ज़रूरी है कि लोक गीतों और लोक नाचों को भी बढ़ावा दिया जाय।' टहल ने कहा।

कई आदमियों ने एक साथ कहा,'हाँ हाँ ठीक है।' वे तमाखू पीने और घर जाने की उकताहट में थे।

स्त्रियों में हँसी का तूफ़ान सा आ गया।

'अरे ! ये तो सब बड़े रगीले हैं।'

'एक कहता है मुर्गियां पालकर बड़े बड़े अंडों का ढेर लगाओ। दूसरा कहता है गाओ बजाओ और नाच नाचो !!'

'डाक्टर रसिया है। उसने टहल से कहलवाया है। होड़ बदती हूँ जो बात उल्टी निकले। खुद तो रामायन और कबीर साहब की बात कहकर चुप हो गया; टहल से यह रंगीली बात कहलादी !'

'रङ्गे सियार है, रंगे सियार !'

स्त्रियों की बातें पुरुषों के कान मे नहीं पड़ीं। उनमें रस की झलक देखकर टहल अपने सुझाव की सामयिकता पर प्रसन्न हो गया।

'तो अब चले न ? लोग खिसकते जा रहे हैं। कारवाई सब हो ही चुकी है।' देशराज ने कहा

'रुपये देशराज जी रुपये. धरनीधर ने कहा जो अभी तक चुप बैठा हुआ था।

'और दो शब्द आपके मुंह से,' सनेही ने अनुरोध किया।

धरनीधर की बात पर देशराज की आंखें करारी पड़ गईं।

'हां साहब रुपये। आप सरीखा थोड़े ही हूँ जो ज़रा से झंझट पर समिति छोड़ कर भाग गये !' देशराज ने चुटकी काटी।

'फिर आजाऊँगा, धरनीधर ने उसकी उपेक्षा की।

'हम सब आपका स्वागत करेंगे।' सनेही बोला और देशराज से विनय की,—'बड़ी कृपा होगी यदि रुपये जल्दी दे दें।'

'कल दे दूँगा।'

'अब की बार चेंक दीजियेगा। डाक्टर साहब नक़दी की ज़ोखिम सिर पर न लेंगे। है न डाक्टर साहब ठीक ?' धरनीधर ने बदला लिया।

टहल ने दूसरी दिशा मे मुंह फेर लिया। देशराज लाल पड़ गया। कारिन्दे का मुकद्मा, पुलिस की निगरानी, उसके अफ़ीम धन्धे की गड़-बड़, सब एक साथ कल्पना में घूम गई।

सनेही ने साधा,—'चैक तो वे देंगे ही। नकद पांच हज़ार रखता कौन है देहात में अपने घर? हां लेन देन करने बालों की बात और है। उन्हें हर घड़ी रुपये की ज़रूरत जो पड़ती है।'

देशराज ने अपने रोष और विषाद का दमन किया। बोला, 'चैक कल दे दूंगा।'

'बहुत बहुत, धन्यवाद। हम सब आपके कृतज्ञ हैं। पूँजी वाले सहकारी कार्यों की यदि इसी तरह सहायता करते रहें तो किसी को भी शिकायत नहीं करनी चाहिये।' सनेही ने सराहना की। देशराज ने अपने दो शब्दों में सबको सहयोग का आश्वासन दिया, कुदाली फावड़ा चलाने की बात कही और कहा कि कारिन्दे वाला मुकद्मा समाप्त होते ही गाँव में रहकर अपने बस भर काम करेगा, 'आप सब की कृपा चाहिये।' इन शब्दों पर उसने कुछ अधिक बल दिया, क्योंकि वह मुकद्मा सामने था और विशेषतः इन्हीं दो गाँवों के गबाह बयान देने को थे!

लोगों के चलते चलते सनेही ने कहा, 'देशराज जी के चैक के रुपये जिला बैंक में जमा कर दिये जायँगे, वहां से, जब जैसी ज़रूरत पड़ी धीरे धीरे मँगाता जाऊँगा। पहले नये मेम्बरों के हिस्से की क़िस्त का रुपया ज़मा करवा दूँगा, फिर मजूरी बांटने के लिये मँगाता जाऊँगा।'

लटोरेसिंह ने लोगों को रोक लिया,—'हमने अभी तक कुछ नहीं कहा क्योंकि फौज का आदमी है जो कम बोलता है और काम बहुत करता है। रक्षकदल को सँभाले बिना यह सब कुछ नहीं होगा। सबको उसमें भर्ती मांगना होगा, कवायद परेड से कायदे का बर्तना आयगा,

कोई फैल फुट्ट नहीं होने पावेगा। सब लोग सब किसम का काम कदम मिला कर करेगा। बस।'

लोग जाते जाते रुक गये। जनक और उसके सब साथी।

रक्षकदल का काम नया था और लोगों के मन का। सनेही ने प्रस्ताव किया, 'टहल भाई को रक्षकदल का कप्तान और लटोरेसिंह जी को ड्रिल मास्टर बनाया जावे।'

टहल बोला, 'कप्तान दा—द—डाक्टर साहब को बनाया जाय। मैं तो उनकी नायबी करूंगा।'

यही तै हुआ।

बनमाली ने कहा, 'कार्यकर्ता सहकारी के और रक्षदल के अवैतनिक होंगे या उन्हें कुछ भत्ता दिया जायगा?'

सनेही और टहल की आंखें मिली और अलग हो गईं।

'सहकारी के पदाधिकारियों को उनके काम की नाप तौल के हिसाब से मजूरी मिलेगी। रक्षक दल के लोग स्वयं सेवक सिपाही हैं—' सनेही ने वाक्य पूरा नहीं कर पाया।

जनक चिल्लाया,—'हमको कुछ नहीं चाहिये—पैसा नहीं, केवल कुछ बन्दूकें चाहिये, जिनकी सहायता से हम चोर डाकुओं के छक्के छुटा सकें।'

लोगों का धीमा पड़ता हुआ उत्साह फिर सतेज हुआ। तमाखू पीने की वांछा न जाने किस कोने में चली गई। टहल की बांहें फड़क उठीं।

सनेही ने देशराज को अनुप्राणित करने के लिये कहा,—

'क्या अब भी घर जाने की जल्दी है?'

'नहीं डॉक्टर साहब, इसके लिये तो रात भर बैठा रह सकता हूँ।' देशराज ने संतुलित स्वर में उत्तर दिया।

लटोरेसिंह ने एक युद्धक्षेत्र का नाम लेकर कहा, 'हम घायल हो जाने पर भी सोलह घंटे मशीनगन चलाता रहा, जब दुश्मन को बिछा दिया, हम तब बेहोश हुआ। बस।'

विद्यार्थियों ने उमंग से भर कर तालियाँ पीटी। लटोरेसिंह का सीना फूल गया और बर्दी पर टँके हुये चिप्पे और पदक ऊँचे उठ गये।

टहल को फुरेरू आई जो चोट वाली जांघ पर जाकर रुक गई। टहल को लगा जैसे कुछ आंस रहा हो। उसे दबाने के लिये होठ कसे।

सनेही बोला, 'टहल भाई और मैं अपने लटोरेसिंहजी और विद्यार्थियों से आशा करते हैं कि वे हमारे सहकारी कार्यों में भाग लेंगे और उनका नेतृत्व करेंगे।' लटोरेसिंह की तरफ आंख घुमाकर कहा, 'आप सब हमारे काम को लैफ्टराईट ! लैफ्टराईट !! करायेंगे।'

लटोरेसिंह ने उसी क्षण करा दिया,—'सब जवान खड़ा हो जाओ।'

विद्यार्थी तपाक से और अन्य लोग लजाते शरमाते खड़े हो गये।

सनेही बोला, आलस, आपकी, आपस की शत्रुता, निन्दाचार, बेईमानी, दूसरे को नुकसान पहुँचाकर अपना भला करने की भावना इत्यादि बुरी बातों के छोड़ने के लिये त्याग इत्यादि अच्छे कामों की लैफ्टराईट करने और कराने का काम तुम लोगों के हवाले ज्यादा रहेगा। फिर सनेही ने भावमय ऊँचे पैने स्वर में गाते हुये से कहा,—

'धर्म चुपके से कहता है कि उठ कर डाल कुछ;
युवक बोला—'कमर कसली है मैंने देख लो !'

सनेही ने इस पद्य को दुहराया। लहर पर लहर दौड़ी। टहल को अवगत हुआ एक जांघ नहीं दोनों में चोट लगी होती तो भी परवाह न थी।

धरनीधर और बनमाली ने भी रक्षकदल में अपने नाम लिखाये।

बिक्रम से कहा गया।

'दिन भर ढोरों में रहता हूँ, सांझ होने पर घर लौट पाता हूँ। मेरे बस का नहीं, बिक्रम ने इनकार कर दिया।

'और न जाने डांग में इन्हें कितने काम लगे रहते हैं। इनकी गतमत भगवान ही जाने,' बटोले ने फबती कसी।

बिक्रम को अपने टूटे हाथ की कसक नहीं भूली थी—

'तुम्हें बहुत भरी हो तो निबट लो किसी दिन। तुम्हारे दोनों हाथ न तोडे तो मेरा नाम बिक्रम नहीं।'

लगता था जैसे दोनों भिड़ते ही हैं।

खटाक खटाक कदम रखता हुआ लटोरेसिंह बीच में आ गया—

'ए ! ए !! हम कहता है, खबरदार। हट जाओ, नहीं तो हम अपना जवान बुलायगा।'

बटोले की इतने ही में विजय हो गई, बिक्रम को घर चले जाना पडा। जनक और उसके साथियों की उघड़ी आस्तीनें फिर कलाही पर पहुँच गई।

देशराज ने सोचा—यह अच्छा नहीं हुआ, कस-मसाकर रह गया। टहल ने अपने भीतर के हर्ष को वहीं छिपा लिया। सनेही ने अपनी खटक मिटाई,—

'यज्ञ के आरम्भ में कोई न कोई विघ्न न आवे तो वह यज्ञ ही क्या ? हम सब एक दूसरे के साथ प्रीति का ब्योहार करते हुये चलेंगे, इसको हमें नही भूलना है।'

जमाव समाप्त हो गया। फर्श, मेज कुर्सियां, खटियां, जहाँ की तहाँ पहुँचा दी गईं। विद्यार्थियों के साथ कुछ लोगों ने उसी समय से संलग्नतापूर्वक काम करने की ठान ली।

घर पहुँचने पर देशराज के मन में एक विकल्प उठा और तुरन्त विलीन हो गया—'यदि कालीसिंह को किसी हिकमत से पकड़वा दूं तो पांच हज़ार रुपये हाथ लग जायें।'

यह विचार मेरे मन में क्यों उठा ! वह सोचता था ? वाहियात बात ! उसने विकल्प को वहीं मसल दिया।

[४६]

दूसरे दिन देशराज ने सनेही को पाँच हजार का चैक समिति में अपनी अमानत जमा करने के लिये भेज दिया और रुक्का लिखवा लिया। सनेही ने समिति की ओर से ज़िला बैंक में जमा करके मजूरी और नई भर्ती के मैम्बरों की पहली किस्त देने लायक रुपया वापिस लेकर रख लिया। चार दिन के बाद कुलियों की खुदाई ठाठ के साथ आरम्भ हो गई। शख, झालर और रमतूलों की ध्वनियों ने नरनारियों के उत्साह का घोष किया। पहले दिन लगभग दो सौ नरनारी आये। काम के घन्टे भोर के छः बजे से दस बजे तक और सांझ के चार से साढ़े छः तक—गरमियों के कारण केवल साढ़े छः घण्टे। मजदूरों को सहज लगा। हल्दी का टीका कलाही पर लगवा कर पहली कुदाली देशराज ने चलाई। बाहों की मान्सपेशियों की नसें जो भीतर ही रमी हुई थीं फड़क गईं और ऊपर उठने लगी। दस पांच हाथ चलाये कि माथे से पसीना चूने लगा और हांफ के मारे नथने फूल उठे। मजदूर हँस पड़े। देशराज ने हँसने के लिये हाथ थाम लिया। वह जितनी हँसी पाने और देने की आशा करके आया था उतनी नहीं ले दे सका।

हांफते हुये बोला,—'अब तो करो शुरू।'

सनेही ने कहा, 'आप घटे आध घंटे रोज इसी तरह हाथ पैर चलावें तो आपकी मान्सपेशियां नसों से जकड़ कर उभर आवें।'

देशराज की हँसी बढ़ी,—'माफ़ कीजिये, मेरे लिये तो यहां तक टहलते आने का व्यायाम ही काफ़ी है।'

फिर सनेही, टहल, बनमाली, लटोरेसिंह, बटोले इत्यादि ने भी कुदाली—फावड़ा चलाने का रिवाज निभाया और मजदूर जुट पड़े। रिवाजी कुदाली—फावड़े थोड़ी ही देर हाथ दे सके। सनेही ने टहल के औजार सबसे पहले रखवा दिये। वे सब एक जगह इकट्ठे होकर आगे काम चलवाने के विषय पर बात करने लगे। इनमें नहर विभाग के

कर्मचारी भी थे जिनको अपने औजारों की निगरानी और काम के निर्देशन के लिये भेजा गया था।

'मजदूरों से काम लेने के लिये तगड़े आदमी रक्खे जावें, नहीं तो वे घंटा गुजारो करेंगे और सांझ को मजूरी मांगेंगे उतनी ही जो तन-मन लगा कर काम करने वालों को दी जावेगी।' बटोले ने कहा।

नहर कर्मचारी ने समर्थन किया,—'ठीक कहते हैं ये। काम चोरों का हाथ हम कहाँ–कहाँ पकड़ते फिरेंगे ? दो सौ मजदूर जो हैं।'

मजदूरों की दुबली-पतली बाहों की मोटी नसें सवेरे की किरणों और पसीने की झलझलाती बूँदों में फूल–फूल कर चपल हो रही थीं।

'ये जितना परिश्रम करते है उतना तो नहीं पाते।' टहल के होठों तक आया, पर उसने बाहर निकलने नही दिया।

काम कराने वालों की पालियां बना ली गईं और उनके कार्य का क्रम नियुक्त कर लिया गया। विद्यार्थियों की पाली का नेता जनक रहा और सारे कार्य-संचालकों के ऊपर लटोरेसिंह। जो जितनी देर काम करावे, अनुपात में उसे साधारण दर से दुगुनी मजूरी।

लटोरेसिंह ने कहा, 'हम कवायद परेड से काम शुरू करेगा, पर उतने समय का कुछ नहीं लेगा। कवायद होगा भी थोड़ा ही देर।'

विद्यार्थियों को कुदाली फावड़े के काम में उतनी रुचि नहीं थी जितनी कवायद परेड में। लटोरेसिंह की बात पर प्रसन्न हुये।

टहल समान दर रखने के पक्ष में था, सनेही दुगुनी दर देने के पक्ष में। बहुमत ने उसी की बात मानी—योग्यता की असमानता को मान्यता दी गई।

दस बजे छुट्टी हुई। चार बजे से काम फिर लग गया। निरीक्षकों की पाली बदली। सनेही टहल इत्यादि चौथे पहर के काम के समय नहीं आये। विद्यार्थियों की जो पाली आई, उसमें उतनी रुचि नहीं थी जितनी पहले पहर दिखलाई पड़ी थी।

[४७]

महीने भर काम चलते चलते दो सौ मज़दूरों के सत्तर पचहत्तर के लगभग रह गये। दस दिन की मजूरी में से जहाँ हिस्से की पहली किस्त का ढाई रुपया कटा कि ढीले पड़ गये। काम भी दस बीस दिन का ही रह गया था।

गरमी इतनी पड़ रही थी कि दिन के पहले ही पहर लू चलने लगती थी। आकाश में धूल की चादरों के तन जाने से धूप कुछ हलकी लगने लगी थी। अब बादलों के टुकड़े मँडलाते हुये दिखलाई पड़ने लगे। आने वाली वर्षा के ये पहले चिह्न थे।

उस दिन प्रातःकाल सनेही और देशराज को पहली पाली का कार्यारम्भ कराने आना था। पहले सनेही आया। उसके आते ही विद्यार्थियों की टोली ने सैनिक प्रणाम किया। रोज़ का काम था। कुछ लोगों ने उसके पैर छुये। सनेही को यह सब अच्छा लगने लगा था। मज़दूर काम पर लगा दिये। अपना काम देशराज को सोंप कर सनेही चला गया। उसे चार-पांच मील दूरी के एक गाँव में कुछ मरीज़ों को देखने जल्दी जाना था।

देशराज ने कुछ दूरी से देखा कि जनक जिन छः सात मज़दूरों के पास खड़ा काम करा रहा था वे काम न करके किसी बहस में उलझे हुये हैं। उसने जनक को बुलाया। जनक ने आ कर उसे प्रणाम नहीं किया।

'तुम्हारे क़वायद–सारजेंट ने क्या तुम्हें यही सिखलाया है? प्रणाम का शिष्टाचार करना चाहिये था,' देशराज ने चेताया।

लटोरेसिंह ने यह सब सिखलाया था, पर लड़के उसकी बातों को उतना ही मानते थे जितनी से उन्हें खेल का आनन्द मिलता था।

'कर चुके कप्तान साहब को। कहिये क्यों बुलाया?' जनक ने उपेक्षा के साथ पूछा।

देशराज ने सह लिया।

'मज़दूर काम क्यों नहीं कर रहे हैं ?'

'लड़ पड़े थे, मैं समझा बुझा रहा था कि आपने बुला लिया।'

'क्या बात थी ?'

'एक मज़दूर ने एक चमारिन मज़दूरनी से हँसी दिल्लगी की। हरकों ने डांटा फटकारा। उस पर बहस हो पड़ी।'

'हँसी दिल्लगी या और कुछ ?'

'जब आ रहा था रास्ते में मज़दूर ने उसका हाथ पकड़ लिया था, यहां दिल्लगी करने लगा।'

'बात तो कुछ नहीं है—होता रहता है—'

'कैसे होता रहता है ? मैं उसे निकाल देने के लिये जा रहा हूँ। कुछ और सज़ा भी दूंगा।'

'हमारे बिना पूछे नहीं कर सकते।'

'कर सकता हूँ। मैं विद्यार्थियों की टोली का सरदार हूँ और टहलराम जी के नीचे काम करता हूँ। और कोई काम ?'

ऐसे बोलता है जैसे मैं इसका मातहत हूँ !—देशराज ने सोचा। ज़ारा दूर जगनू को जल्दी जल्दी आते देखा।

'मैं काम कराने जाता हूँ। यहां खड़ा खड़ा बातें कहता सुनता रहा तो वहाँ कोई बखेड़ा खड़ा हो जायगा' कह कर जनक चला गया।

जगनू ने एक ज़रूरी पत्र देशराज के हाथ में दिया। उसने खोल कर ज़ारासा देखा और चिल्ला कर जनक को बुलाया। वह लौट पड़ा। ताव में था।

'फिर किसी जवाब की तलबी है क्या ?' जनक झल्लाया।

क्रोध में फड़कते होठों देशराज ने कहा, 'ज़रूरी काम से घर जा रहा हूँ। यहां का किसी से सँभलवा लेना,' और वह जगनू के साथ चला गया।

जनक जब अपनी टोली के मज़दूरों के पास पहुँचा तो देखा कि एक मज़दूर हरको की कलाही पकड़े उसे मारने पर तुला हुआ है और हरको अपना बचाव करती हुई उसे पीटने के लिये हाथ चला रही है; दूसरे मज़दूर दो पक्षों में बँट गये हैं और कुछ दूरी पर काम करने वाले अन्य मज़दूर काम छोड़ कर तमाशा देख रहे हैं। जनक के पहुँचते ही मजदूर ने हरको का हाथ छोड़ दिया और लड़ाई गन्दी गालियों के आदान-प्रदान में बह उठी। इतने में मंटू दौड़ता आ गया। जैसे ही हाथा-बाहीं पर नौबत आई, लोग बीच में पड़ गये। पञ्चायत करना तै पाया—उसी समय, एक बड़े छायादार पेड़ के नीचे।

सब मज़दूर काम छोड़कर आ गये। नहर के कर्मचारियों का कर्तव्य केवल खुदाई के आकार प्रकार बतलाने का था, न कि काम लेने का। वे भी छाया में जा पहुँचे।

पञ्चायत शुरू हो गई और होती रही। पता लगा कि मज़दूर ने चमारिन मज़दूरनी के साथ रास्ते में छेड़छाड़ की और अब यहां हँसी दिल्लगी कर रहा था।

मंटू ने कहा, 'यह बिक्रम का आदमी है।'

वह मज़दूर भी दमंग था, उसके साथ कुछ और आदमी थे। बोला, 'झूठ बकते हो।'

पञ्चायत ने निर्णय किया कि चमारिन मज़दूरनी उस मज़दूर का काला मुंह करे—वहीं, उसी समय, और—

जनक ने आदेश दिया,—'हरको उसे गिनकर पांच जूते लगाये।'

हरको प्रसन्न हुई। हाथ में जूता लेकर आगे बढ़ी। जैसे ही वह मज़दूर और उसके साथी हरको के रोकने के लिये आगे आये, वह झिझक गई। मंटू ने उस मज़दूर को जूते लगाने शुरू कर दिये।

वह मज़दूर और उसके साथी थोड़े थे, इसलिये थोड़ी सी लड़ाई के बाद पस्त हो गये। जनक भी उस मजदूर की मारपीट करना चाहता था। चमारिन से कहा,—'लगा दो इसके मुंह पर स्याही।'

एक विद्यार्थी ने उसकी गदेली पर अपनी दावात से स्याही डाल दी जिसे वह मज़दूरों की हाज़िरी लिखने के लिये लाया था। मज़दूरनी अपमान करने वाले के मुंह पर थोड़ी सी ही स्याही लगा पाई। जनक ने स्वयं न पीटकर मज़दूरनी के भी हाथों दो जूते उसके अपमान करने वाले को लगवा दिये !

इसी इसी में छुट्टी का समय हो आया। घर जाते समय कुछ मज़दूर कह रहे थे कि बात बढ़ी नहीं सो अच्छा हुआ, नहीं तो एकआध कतल फिर हो जाता।

'जोधा के क़तल वाला मुक़द्दमा तो अभी तै नहीं हुआ है, एक और खड़ा हो जाता।'

'जूतों से क़तल नहीं होता—और हो जाता तो हो जाता। बिक्रम के पुछलग्गे की इतनी हिम्मत !'

साँझ के समय काम करने के लिये बहुत थोड़े मज़दूर गये।

× × × ×

कूट अर्थों और बँधे संकेतों की भाषा में अञ्जना की चिट्ठी हिमालय के एक ठंडे स्थान से आई थी। उसने लगभग मन भर अफ़ीम इकट्ठी कर ली थी जिसे वह बीच बरसात में सुहाना लाना चाहती थी, क्योंकि देशराज ने अपने ऊपर निगरानी होने वाली बात बतला रक्खी थी।

बाघराज के पास वह उस 'माल' को नहीं ले जाना चाहता था जो उसने हवेली में छिपा रक्खा था,—कहीं सन्देह में नङ्गा झोरी ली जाय। यहीं बाघराज को बुला लूं, पर उसने रुपये न दिये तोभी ठीक न रहा, क्योंकि माल देने से इनकार न कर सकूंगा। बाघराज शायद आवे ही नहीं। उसे निगरानी का हाल मालूम है। नाहरगढ़ से हिलना नहीं चाहता है। पूर्व-दक्षिण के बन्दरगाह के निकट से काफ़ी वज़न की अफ़ीम पकड़ी जा चुकी है। मध्यभारत के प्रदेशों की पुलिस बहुत चौकस है। जिन दो दो लाख रुपयों के जमा करने की आकांक्षा में

पड़कर यह रोजगार चलाया गया था वह तो दूर रहा, उल्टे, सारी सम्पत्ति, इज्जत और जान गड्ढे में पड़ने का भय सिर पर !

देशराज उस दिन बहुत परेशान रहा । कारिन्दे के मुक़द्दमे की पेशी का दिन पास आ रहा था। इन्हीं दो गांवों के अधिकांश गवाहों के बयान पर मुक़द्दमें का निर्णय होना था। वह सनेही और टहल का साथ देने का प्रयास करता रहता था। ये अहसान चुकायेंगे और जब पुलिस उनके सङ्ग साथ देखेगी जिनके ऊपर डाका पड़ा था, तब एक दिन उसे पीछा छोड़ना पड़ेगा। देशराज को भरोसा होने लगा।

उस रात कई स्थानों पर कहीं रामायण का और कहीं कबीर साहब की बानी का पाठ होना था। देशराज उस बैठक में गया जहाँ सनेही और टहल को आना था। टहल, जनक और मन्टू पहले आ गये सनेही ज़रा पीछे आया।

सनेही ने आते ही जनक को डांटा,—'तुम्हें अपने किये पर शरम आनी चाहिये। उसने जितना अपराध किया था उससे कहीं अधिक दण्ड दिया गया। दिन भर का काम चौपट करवा दिया। सन्ध्या तक के लिये ठहर जाते, यहां हम लोग न्याय करते। बन गये एक ही मिनिट के भीतर जज साहब।'

जनक के मुँह से कुछ का कुछ निकला,—'मैंने किया ही क्या है—ठीक तो किया।'

'ठीक किया ! बदतमीज़ कहीं का !!'

ऐसे कोप में सनेही को पहले कभी नहीं देखा गया था।

देशराज मन ही मन प्रसन्न हुआ।

टहल ने जनक के निर्णय और कार्य में ऐसी कोई बात नहीं पाई थी कि जिसके लिय जनक को इतनी डाँट फटकार का पात्र समझता।

क्या हो गया है इन्हें जो इतना बिगड़ रहे हैं ?' उसने मन ही मन प्रश्न किया और कहा, 'जाने दीजिये दादा, लड़के हैं।'

देशराज ने ऊपर से हां में हां मिलाई,—'हां डॉक्टर साहब, जो हो गया सो हो गया। लड़के हैं, अभी समझ की कमी है।'

रामायण इत्यादि के पाठ में आरम्भ की अपेक्षा अब कम लोग आने लगे थे। दिन भर के थके, रात में रोटी खाई, चिलम पी और सो गये। पाठ में आ गये तो झीमते-झीमते थोड़ा सा सुन लिया और फिर वहीं कहीं निद्रादेवी की गोदी में। पर उस समय खासी भीड़ थी।

सनेही ने कहा, 'इन लड़कों का तो दिमाग़ कुछ ऐसा खराब हो गया है कि आगे-पीछे की सोचते ही नहीं।'

मारे क्रोध के जनक भन्ना गया। सनेही ने बदतमीज़ और न जाने क्या-क्या कह डाला ! और इस देशराज ने सबेरे का बदला निकाला, नासमझ कह कर !! दांत पीसने लगा।

रामायण का पाठ आरम्भ हो गया। प्रसङ्ग था लङ्काकाण्ड का, वह स्थल जहां श्री रामचन्द्र रावण को समाप्त करने के लिये स्वयं आगे आते हैं, विभीषण उनके लिये रथ का आयोजन करता है और श्री रामचन्द्र कहते हैं कि—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम पर हित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजन, सारथी सुजाना, विरतिचर्म सन्तोष कृपाना।
दान पर सु बुधि सक्ति प्रचण्डा, बर विज्ञान कठिन को दण्डा।
अमल अचल मन त्रोन समाना, सम जम नियम सिली मुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा, एहि सम विजय उपाय न दूजा।

पाठ की समाप्ति पर सनेही ने उस प्रसङ्ग की बात श्रोताओं के मन में दृढ़ता के साथ बिठलाने के लिये चर्चा बढ़ाई। टहल असहमत हुआ।

'अन्त में रावण सरीखे दुष्ट पर रामचन्द्र जी को हथियार ही उठाना पड़ा। उस सिद्धान्त से काम न चल सका। वह सिद्धान्त तो उसके सामनें झुकने वाले ही के लिये काम में लाया जा सकता है।'

मंटू बोला, 'आज जो बदमाश सबरे पीटा गया उसे एक छोटा सा रावण ही समझना चाहिये।'

'क्या मूर्खता की बात करते हो!'—सनेही चिड़चिड़ाया,—'कहाँ तुलसीदास जी की रामायण और कहां तुम्हारे गाँवों के ये गन्दे पचड़े!'

टहल प्रतिवाद की कोई बात कहते-कहते रुक कर थोड़ा सा झूमने लगा। जनक ने समझ लिया कि 'मास्टर साहब' विरुद्ध है।

उसके मन की तली में जो बात भड़भड़ा रही थी वह उसने कह डाली,—'तुलसीदास सामन्तवादी है, पुनरोत्थानवादी—'

'चुप गधे,!'—सनेही कड़का—'टहल भाई, क्या यही सब सिखलाते रहते हो इन छिचोरे छोकरों को?'

टहल भड़क उठा। उसे लगा जैसे उसका सोया हुआ ज्वालामुखी विस्फोट करना चाहता हो। आँख से चिनगारी सी छूट पड़ीं, पर उसने अपना दमन कर लिया। नीचा सिर किये हुये उसने कहा,—नहीं दादा, ऐसा नहीं है। आपका भ्रम है।'

'भ्रम है! हूँ!!' सनेही एक क्षण चुप रहा। देशराज ने अपना अवसर पाया,—'मैं आप सबके हाथ जोड़ता हूँ, अपने धर्म के काम में बाधा नहीं पड़नी चाहिये। छोड़िये चर्चा। कल से फिर अपना वह सहकारी काज सँभालें जो अब थोड़ा सा ही बाक़ी रह गया है।'

और लोगों ने कहीं इसकी और कहीं उसकी विनती की। ठंडक आने में देर नहीं लगी। जनक उठ कर चला गया।

थोड़ी देर बाद सनेही उँगलियों से अपने माथे की मालिश करते करते भर्राये हुये स्वर में बोला, 'मुझे न मालूम आज क्या हो गया।'

टहल के होठों पर फीकी मुस्कान आई।

'होगा दादा। हम सब मानव ही तो हैं। चलिये, अब घर जा सोवें।'

सनेही टहल पर पहले जैसे स्नेह की अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता हुआ चला गया। सब लोग तितर बितर हो गये।

टहल को देर में नींद आई। दादा को अवश्य कुछ हो गया है। अधिकार का बर्ताव करते करते इन्हें दर्प आ गया है। ये और ग्रन्थ जिस चीज को अहङ्कार कहते हैं शायद यही इनमें समा रहा है। देशराज का अहङ्कार घटे और इनका बढ़े यही एक अचरज की बात है! उसने विश्लेषण किया।

× × ×

दूसरे दिन सनेही और टहल ने जनक को संभाल लिया और काम फिर चलने लगा।

टहल के पैर की लङ्ग नहीं के बराबर रह गई थी, कष्ट की स्मृति लुप्तप्राय हो गई थी। साथ ही सनेही और राजदुलारी के स्नेह के स्मरण भी क्षीण पड़ने लगे। उसे अपने सिद्धांतों के विश्वास से अधिक प्रेरणा मिलने लगी और अवगत होने लगा कि जो कुछ हुआ और होगा उसमें मेरा हाथ कम नहीं है।

पांच छः दिन पीछे जोधा के क़तल का मुकद्दमा हुआ। गवाहों के बयान से दमरू का जितना अपराध प्रमाणित हुआ उतने के अनुसार उसे छः महीने की कैद मिली। कारिंदा बरी हो गया। देशराज ने पैरवी की थी। कारिन्दा तो कृतज्ञ था ही, दमरू और उससे सहानुभूति रखने वालों को भी भासा कि देशराज ने कुछ न कुछ सहायता अवश्य की

है। सुहाना लौटने पर देशराज ने देखा कि उसका प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ गया है। उसने बिक्रम का सम्पर्क कम कर दिया। आशा बँधी कि अटक पड़ने पर दूसरे दल के लोग मंडलाये भले ही रहें, मेरे ऊपर कभी खुलकर गरजें बरसेंगे नहीं। पर निगरानी के सिलसिले में यह जो पुलिस का प्रेत छाया की तरह पीछे पीछे चलता है इससे पीछा कब छूटेगा ? निश्शङ्क हो कर काम नहीं कर सकते--तिल बराबर भी चूके कि अञ्जना और लगभग सारे सहयोगियों के साथ वहीं जाना पड़ेगा जहाँ दमरू भेजा गया है ! देशराज को यह कठिनाई बहुत खटकती थी।

[४८]

आंधी, धूल के बवण्डर, सूखे पत्ते और कटीली झाड़ियों के सूखे कांटे समेट समेट कर इधर उधर बरसाने बिखेरने वाले तूफ़ान, कम हो गये। भोर से सांझ तक आकाश में चढ़ी हुई धूल और फैले हुये बादलों के कारण किरण कम तीखी लगने लगीं और लू कान गरम करने वाली न रही।

असाढ़ का पहला पखवारा निकल गया। भूरे सांवले बादलों के पुञ्जों में बढ़ती हो गई। पहाड़ों की ढाल और चोटी पर खड़े लम्बे लम्बे पेड़ गड़े हुये बड़े बड़े खूँटों जैसे दिखलाई पड़ने लगे; छितराई हुई धूल और फैली हुई भाफ से ढके हुये ऐसे लगते थे जैसे त्राहि त्राहि कर रहे हों।

उतरते असाढ़ के तीन चार दिन ही निकले थे कि नहर से पानी लाने का कुलियों की खुदाई का काम समाप्त हो गया। थके हुये मज़दूर और कार्य-संचालक उन कुलियों को देख देखकर वैसे ही प्रसन्न हो रहे थे जैसे चित्रकार अपने किसी चित्र की सही रूपरेखा बनाकर सन्तोष पाता है; और वे उस घड़ी की कल्पना करके मोदमग्न थे जब उनकी खोदी हुई कुलियों में छलछल करता हुआ पानी बहेगा, जैसे चित्रकार निकट भविष्य के किसी दिन, अपनी बनाई उस रूपरेखा में भरे हुये विविध रंगों के देखने की आशा और प्रतीक्षा में स्पन्दित हो जाता है।

कार्य सञ्चालकों के मन में एक बात और समाई—हर एक की धारणा थी कि मैंने कराया यह काम, मैं न होता तो कुछ भी नहीं हो सकता था। सनेही के भी मन की गहराई में अहङ्कार जा बैठा।

सन्ध्या के पहले पश्चिम से उठते हुये ग़ुबार ने सूर्य के आकार को अस्पष्ट कर दिया। लगता था जैसे रात के अंधेरे का संचय पूर्व दिशा से न होकर इस दिशा से होगा।

साँझ के पहले ही सनेही ने सुहाना आकर टहल से कहा,—'कार्य की सफलता के लिये परमात्मा को धन्यवाद देने के लिये आज रात को रामायण पाठ होना चाहिये।'

टहल मुस्कराया।

'परमात्मा को धन्यवाद देने के लिये या अपने श्रम की सफलता को धन्यवाद देने के लिये ? किसी भी सफलता के उपलक्ष में जो धन्यवाद दिया जाता है वह जन–विनोद है और उसका असली नाम है सफलता को धन्यवाद देना।'

कुछ समय से उन दोनों में छोटी छोटी सी बात पर बहस हो पड़ती थी, परन्तु झंझट की दिशा में नहीं जाती थी। टहल को अपने सिद्धान्तों की बात ज़्यादा आने लगी थी।

'कुछ भी सही। जनता के मन को उससे शक्ति मिलेगी, सनेही ने टहल के वाद को पचा लिया।'

'हरएक स्वच्छ विनोद से जनमत सशक्त होता है। लोकनृत्य और लोकगान का आयोजन क्यों न किया जाय ?'

'इन दिनों ! किसी त्योहार के दिन देखा जायगा।'

'थोड़ा सा आयोजन आज भी हो सकता है।'

'अच्छी बात है। कह देखो लोगों से।'

रामायण पाठ के प्रबन्ध में देर नहीं लगी। लोकनृत्य और लोक–गान के लिये कोई राजी नहीं हुआ।

'हो कैसे ! आँधी के साथ पानी भी आता दिखता है। उसका स्वागत करने के लिये भगवान की कथा बाँची जानी चाहिये, नाचें गायेंगे सावन में जब सब तरफ़ हरियाली छा जायगी।'

टहल की योजना के असफल होने पर सनेही को बुरा नहीं लगा।

रामायण गान थोड़ी ही देर हुआ था कि ज़ोर की आँधी आई। गान बन्द कर देना पड़ा।

जनक ने कहा, 'भगवान को इस समय अपनी कथा पसन्द नहीं है।'

टहल के मन में आया—यदि नाच गान हुआ होता तो जनता लहरा उठती और आँधी के साथ नाचती हुई तन्मय हो जाती।

सनेही को जनक की उस दिन वाली झड़प याद आ गई।

टहल जो कुछ सिखलाता है वही तो बक देता है यह छोकरा, उसने सोचा।

बिजली की चमक के साथ कड़क हुई और मेह की बूंदें आईं।

सब लोग सिमट कर एक जगह हो गये।

सनेही ने कहा, 'भगवान ने काम को सफल करवाके आज अपनी बूंदों द्वारा हम सबको आशीर्वाद भी दिया है।'

टहल बोला, 'और धूल भरी आंधी के थपेड़ों के जरिये सचेत भी किया है कि जो जितना काम करे उसे उतना दो। अब ये सब समिति के मेम्बर हो गये हैं। हिस्से की रक़म पर इन्हें जो कुछ मिले उसके ऊपर भत्ता इतना जुड़ना चाहिये जो इनकी ज़रूरतों को पूरा करे।'

बादलों का गड़गड़ावा बढ़ा और आँधी भी इतनी तेज कि घरों के खपड़े उलटने पलटने लगे। लगता था कि वृक्ष उपट कर उड़ जायेंगे। बूंदें घनी हुईं और बौछार फ़िकने लगीं। बहस आगे न चल सकी। पानी मूसलाधार बरसने लगा। खपरैल में से इन सब पर टप टप हो उठी।

सनेही ने कहा, 'ऐसे ही बरसता रहा तो घर नहीं पहुँच पाऊँगा।'

टहल बोला, 'डाक्टर—दादा, यहाँ भी तो घर ही है।'

'हाँ हाँ सो तो है ही।' पर सनही के मन में टहल के घर रह जाने का अनुराग उत्पन्न न हुआ।

आधा घण्टा बरसने के बाद पानी बन्द हो गया और आँधी हलकी पड़ गई। हवा में बहुत ठंडक आ गई। वे सब एक नई उमङ्ग से भर गये।

'जानवर प्यासों मरने लगे थे, अब नाले में पानी जहाँ तहां हो जायगा और चरने के लिये कुछ हरियाली मिल जायगी।' एक ने कहा।

सनेही ने दूसरी बात छेड़ी,—'इस नाले ने खेतों की अच्छी मिट्टी को काट काट कर बहा दिया है और भरके कर दिये हैं। जैसे ही समय मिले अब की बार इन भरकों के मुंह बन्द करने का काम हाथ में लेंगे। ठीक है न ?'

टहल ने हामी भरी।

बटोले बोला, 'यह काम तो बरसात बाद जाड़ों में होगा। इन दिनों तो हल बखर और खरीफ़ की फ़सल की बोहनी पर जुटना पड़ेगा।'

मज़दूरों को अपनी थकान का स्मरण हो आया।

एक ने कहा,—'यह तो बहुत दूर की बात है। और फिर करेंगे क्या इन भरकों में ?'

'खेत खराब होने से बचेंगे और भरकों में पेड़ लगायेंगे।'

सनेही ने उत्तर दिया।

एक किसान बोला, 'ताल खुदा नहीं, मगर उतराने लगे !'

कुछ मज़दूर हँस पड़े,—'बिरछों की रखवाली कौन करेगा ? इतना बड़ा जङ्गल तो खड़ा है, भरकों में पेड़ लगाने से क्या होगा ?'

तारे छिटक आये, लोगों को अपने अपने घर जाने की पड़ी थी, इसलिये बात वहीं रह गई।

[४९]

आकाश में काले-पीले बादलों के छपके मंडला रहे थे और सूर्य के इर्द गिर्द भाप छाई हुई थी। पानी जो बरसा उसने धूल को बहाने वाले छोटे छोटे पौरे बना दिये और न जाने कहां विलीन हो गया। आंखों को जलाने वाली धूमरीं टौरियों पर से पानी थोड़ा थोड़ा रिस रहा था जो कह सा रहा था कि हम कभी बरसे थे।

सूखे हुये पोखरों की सूखी घास के रूखे चकत्तों में से नुकीले हरे हरे अंकुर निकल पड़ने के लिये उमगने लगे।

किसी किसी बादल के टुकड़े से पतली पतली बूंदें पड़ रही थीं। अधझुलसी प्यासी भूमि मुंह बाये सी, जैसे नन्हें नन्हे हाथ पैर फेंक कर रोते हुये बालक ने यकायक अपनी मां को देखा हो,—रोना बन्द, आंखों की बरोनियों पर आंसू की बूंद, रूखा चेहरा, उस पर मां की उत्सुक, मृदुल मुस्कान जो उस कमरे भर में छा गई हो जहां सिसकता हुआ बालक था और मुस्कानों वाली मां आतुरता के साथ आ गई थी।

खेतों की ऊपरी मिट्टी गीली हो गई थी और नाले के पथरीले गड्ढों में पानी बिलम गया। मिट्टी के ढेलों और पथरीले पोखरों से सोंधी-सोंधी गन्ध आ कर किसान को सचेत कर रही थी—हल बैल संभालो और बीज बोने की तैयारी करो! किसान के सामने 'अभी या कभी नहीं' वाली अनन्त समस्या थी। निज का बीज थोड़े से ही किसानों के पास था। पास नहीं था वे बीज और खवाई के लिये इधर उधर दौड़ पड़े। कुछ को घाटीवाले ने दिया—शर्त सवाई की। उसी शर्त पर बटोले और दो एक किसान-साहूकारों ने थोड़े से किसानों की आवश्यकता पूरी की। जिनको और कोई आसरा न मिला वे देशराज के अन्न गोदाम पहुँचे। कारिन्दा बिक्रम को रियायती-दर पर बीज दे चुका था। दूसरों ने भी कुछ रियायत चाही। देशराज के अधिकतर खेतों में रबी की फ़सल की जाती थी, खरीफ़ के लिये

अपर्याप्त बीज होने के कारण कारिन्दा तन गया। मुकद्दमे से बरी हुये एक पखवारे से ऊपर हो चुका था, इसलिये स्मृति पर से उसकी कुरेद झड़ चुकी थी।

'बिक्रम के साथ रियायत और हमारे साथ यह ओछापन !' एक उखड़ पड़ा। यह उनमें से था जिन्होंने नहर की नालियों की खुदाई के काम में सनेही और टहल का साथ पाया था। कारिन्दा के लिये यह भाषा नई थी।

'बदमाश कहीं का ! कैसे बोलता है रे ?' कारिन्दे को क्रोध आ गया।

'बदमाश तुम और तुम्हारे सात पुरखे ! जबान चलाई तो अच्छा न होगा।'

'डाका डालने आया है क्या यहां ?'

'डाका डालो और डलवाओ तुम और बिक्रम। न दो बीज तो क्या हम मर जायेंगे ?' मारपीट की नौबत आई थी कि कुछ लोग बीच में पड़ गये। बहुत शोर हुआ। देशराज आ गया।

'क्या बात है ?' उसने पूछा।

कारिन्दे ने अपना रङ्ग देकर बात सुनाई।

बिक्रम ने व्याख्या की,—'मालिक, आपने और आपके मित्रों ने इन उजड्डों को सिर पर चढ़ा लिया है, उसी का फल है कि ये लोग आते तो हैं रिन लेने और दिखलाते हैं लाल पीली आंखें। यह कहता है कि हम और आप डाके डलवाते हैं ! देखो तो इस बेईमान को।'

देशराज के चेहरे पर रङ्ग आया और गया। वह किसान अदम्य था। रिवाजी 'मालिक' का सम्बोधन करके उसने देशराज से कहा, 'कुंजीलाल के मामले में हम लोगों ने मदद न की होती तो इन्हें काला पानी होता। रह गये बिक्रम सो किसी दिन अंटे पर बिना चढ़े न रहेंगे।

इस फटियल किसान में इतना साहस ! यह सब इसमें कहां से आ गया ? देशराज के मन में द्वन्द्व मच गया। अपने को दमित करके उसने कुंजीलाल कारिन्दे द्वारा सबको रियायती दर पर अनाज दिलवाया।

जब सब चले गये, कुंजीलाल की आंखें डबडबा आईं, बोला,—'मालिक अब मुझसे काम नहीं होगा।'

देशराज ने सान्त्वना दी,—'ज़माना बदल गया है, भाई। फूंक फूंक कर क़दम रखना है।'

'तो या तो मुझे छुट्टी दीजिये, या लेनदेन का यह काम बन्द कर दीजिये। इस कोयले की दलाली में कुछ नहीं रक्खा है। क्यों व्यर्थ ही काला मुंह कराऊं ?'

'मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। बीज खदाई का काम बन्द करदो। अपने महीदारों और बिक्रम सरीखे लोगों के सिवाय और किसी को भी न दो।'

कुंजीलाल ने स्वीकार किया। मैं डाके डलवाता हूँ ! जब यह ज़रा सा आदमी इतनी बड़ी बात बेधड़क कह गया तो और न जाने कब क्या कह और कर बैठें !! इतना सब किया तो भी वह बात इन पर अब तक ऐसी छाई हुई है !!! मरे गले आदमियों में इतनी हिम्मत !!!! कैसे निभाव होगा ? यह सोच रहा था।

[५०]

फैली हुई भाप और बादलों के घने बिखरे टुकड़े आकाश में दिन भर, पर रात में सब साफ़ । मेह की बूंद का नाम नहीं। ज्वार, उड़द, मूँग और बाजरे की बोहनी हो गई। अंकुर निकल आये। कहीं उन्हें नज़र न लग जाये तो किसानों ने खेत के बीच में या पेड पर फुटी काली हंडियों के डिठोने लगा दिये। जिन्होंने यहाँ वहां आम की गुठलियां गाड़ दी थीं उन्होंने मुस्करा कर देखा कि गुठली की गोई में डंठुल ऊपर निकल आया है और उस पर धागों जैसी दो तीन लपेटें हैं। डंठुल लाल, डेढ़ अंगुल के लगभग ऊँचा। उसकी लालिमा वसन्त में निकलने वाले आम्र किसलय के रङ्ग वाली। एक दिन आयगा जब यह पौधा हो जायगा और एक दिन पेड़, जब इसमें से मंजरी फूट पड़ेगी और फल लगेंगे !

किसान पानी बरसने की प्रतीक्षा करने लगा। चुनाव स्थगित हो गया, इसलिये चुनाव में रुचि रखने वाले भी पानी की बाट जोहने लगे।

सावन लग गया। पानी का नाम नहीं। एक दिन सन्ध्या समय पश्चिमी क्षितिज पर बादलों की गहरी लाली दिखलाई पड़ी। सन्ध्या के समय यह लाली बढ़ी। इखरे-बिखरे बादलों की लम्बी बांहें नभ में फैल गईं। ऐसा जान पड़ा जैसे किसी बुड्ढे ने अपनी लम्बी खिर-बिरी दाढ़ी मेहदी से रचाई हो। अब पानी बरसेगा, लोग कह उठे। आधीरात के समय चांदनी का प्रकाश फैल गया—बादल का एक टुकड़ा भी नहीं। सुनसान रात की चांदनी में पवन के हिलोड़ों में शीशम और नीम की कोमल कोपलें सपने में झूम सी रही थीं। हे राम ! क्या पानी टल गया ? किसान चिन्तित था।

एक शुक्रवार के दिन कुछ घने बादल दिखलाई पड़े और शनिवार तक रहे। एक सयाने ने उत्साह के साथ कहा,—'शुक्रवार की बदरिया

रहे शनीचर छाय, ऐसा बोले भड्डरी कि बिन बरसे नहिं जाय ।' परन्तु रविवार के दिन फिर बादल का एक छिटका भी न रहा ।

आधा सावन निकल गया । पानी कहीं नहीं । ललिता नदी के बांध के भीतर प्रचुर भांडार । हवा के सर्राटों के नीचे चपल जल राशि । नहर खुदी पड़ी थी, परन्तु बांध के द्वार खुल नहीं सकते थे । इधर उधर के भूखे प्यासे ढोर इस बांध के आस-पास आकर रमने लगे—और मरने लगे । कोई ऐसी बीमारी फैली कि जिसने पशुओं का संहार कर डाला । गाँवों के आस-पास तो और भी दुर्गति थी । चील कउये मंडलाने लगे और जहां तहां गाय बैलों बछड़ों और भैंसों के ढाँचे दिखलाई पड़ उठे । पशु-चिकित्सक आये, पर कुछ न कर सके । ज्वार बाजरे के कोमल अंकुर, आमकी गुठली के पीक सब झुलस गये । किसान रो पड़ा ।

जोशी के पत्रे ने धोका दिया, सयानों की पुरानी कहावतें बेकार गईं । काली माई और अनेक देवी देवताओं, गोंड़ बाबा, ठाकुर बाबा, इत्यादि की पूजा शुरू हो गई । अनेक बकरे और मुर्गे बलिदान हुये । फिर भी पानी न बरसा !

तब बाँगुर्दन के तालाब पर स्थित एक देवी की मूर्ति की पूजा के लिये दोनों गांवों का जलूस निकालना निश्चित किया गया । सनेही, टहल इत्यादि से इस जलूस की अगुवानी के लिये कहा गया ।

सनेही ने इनकार कर दिया,—'इन जलूसों को मैं व्यर्थ समझता हूँ । घर में बैठकर परमात्मा से प्रार्थना करो और आगे के लिये पक्की छाती वाले बनो ।'

राजदुलारी ने फुसलाया,—'चले भी जाओ, घंटे दो घंटे की तो बात ही है । आखिर इन सबको अपने सङ्ग में लगाये रखना है न ।'

'मैंने यदि अपने भीतर वाले का सङ्ग छोड़ दिया तो फिर इनको अपने सङ्ग रखने के लिये मेरे हाथ में क्या रहा ?'

टहल एक कुयें के पास से निकला।। बीस-पच्चीस क़दम फ़ासले पर खाद कूड़े का ढेर लगा हुआ था। धूप की तेज़ी के कारण ढेर में से दुर्गन्धि और भाप निकल रही थी।

टहल ने कहा, 'कितनी गन्दगी फैला रक्खी है, यहां !

'सारी बीमारियों का खज़ाना तो यह है !! गांव के बाहर न जाने क्यों नहीं लगाते ?'

हरको और एक स्त्री कुयें पर पानी भर रही थीं।

हरको बोली, 'ना समझी जो भरी हुई है गांव में।'

वह स्त्री तड़पी,—'तुम हो बड़ी लच्छमी ! और ये बड़े लच्छमा!! जुगों से जो होता आया है उसे मिटादें !!!

'हो कैसी ! वे तो अच्छी बातें सिखलाते हैं, तुम यों ही बड़बड़ा पड़ीं !!' हरको की युद्ध कामना जाग्रत हुई।

'आय हाय ! बड़ी अच्छी बातें सिखलाते हैं !! जब देखो तब देवी-देवताओं की निन्दा। इसी कारन तो पानी नहीं बरसता, ढोर मर रहे हैं और अब आदमियों पर आने वाली है।'

टहल वहां से चुपचाप चला गया।

बटोले मिला तो उसने सुझाया,—'जलूस में ज़रूर चलना। बनमाली और धरनीधर, यहां तक कि देशराज और बिकरमा भी, जा रहे हैं।'

'और दादा—डॉक्टर साहब ?'

'उन्होंने नाहीं कर दी है। वे डॉक्डर हैं, उनकी पट जायगी। तुम न जाओगे तो लोगों के मन में तुम्हारे खिलाफ़ बहुत रिस जागेगी, कुयें पर किसी स्त्री से तुम्हारा बतबढ़ाव हो आया है ?'

'नहीं तो।'

'वह कहती फिर रही है कि टहल ने गलियारे पर खड़े होकर देवी देवताओं को गालियाँ दी हैं।'

'बिलकुल झूठ। मैंने तो किसी के लिये कुछ नहीं कहा है।'

'जलूस में शामिल होने के लिये क्या कहते हो ?'

टहल चक्कर में पड़ गया। जनता की अज्ञानता और जड़ता, अपने विज्ञानवाद की विश्वसनीयता और सिद्धान्त की दृढ़ता आपस में ज़ोर से जा टकराईं। परन्तु जनमन को हर हालत में अपनी गांठ में बांधे रखने की भावना ने आँखें तरेरीं। बनमाली, धरनीधर और देशराज जनता को अन्त में कहां ले जायेंगे ? और यह बिक्रम ! ओफ़ !!

टहल ने सिर झुका लिया—

'मैं साथ रहूँगा।' टहल के स्वर में उत्साह नहीं था।

सुहाना और बांगुर्दन के नरनारियों का जलूस बाजे गाजे के साथ निकल कर बांगुर्दन के तालाब पर गया और उसने देवी की पूजा यथा रीति की। क्या इन मूर्तियों ने इस तरह की पूजा और उस तरह के बलिदान की कभी अपेक्षा की होगी ? वे खंडित होने पर भी मुस्करा रही हैं ! अवश्य ही यह मुस्कान उपेक्षा और व्यङ्ग्य की है। दादा नहीं आये ! मैं भी न आता तो क्या हो जाता ? जनमन ! उन्होंने न सोचा होगा इस जनमन के सम्बन्ध में कुछ ? क्या मुझे छोटा कर देने के लिये नहीं आये हैं ? नहीं। तो क्यों नहीं आये ? कुछ उचाई पर से हैं। खैर। यहां आने का कुछ उपयोग तो कराऊँगा ही।

इस पूजा अर्चा के बाद भी दस बारह दिन तक पानी नहीं बरसा। सावन निकल गया। भादों लग गया। बंधी वाले खेतों में ज्वार के पौधे थे, और कहीं भी फ़सल का चिह्न तक न बचा था।

एक दिन टहल ने समाचार पत्र में ऋतु का भविष्य पढ़ा—पानी बहुत ज़ोर के साथ बरसने को आ रहा है। उसने गाँव में समाचार फैलाया।

एक बोला, 'क्यों नहीं बरसेगा ? देवी देवता की पूजा यों ही थोड़े चली जायगी।'

टहल न समझा सका।

तीन चार दिन बाद प्रातःकाल के समय पानी भरे बादल आ गये। टिमटिमाता उजेला जगमगा जगमगा जाता था और अँधेरा डिगमगा डिगमगा जा रहा था। हवा के झोंके में वहाँ की चीज़ें कभी छोटी और कभी बड़ी जान पड़ने लगती थीं—अँधेरा और उजेला अपने अपने को, मानो बढ़ाने के प्रयत्न में हाँफ रहे हों।

फिर पानी बरसा प्रचण्डता के साथ, और बरसता रहा। देवताओं ने कृपा की। हमारी आह कराह सुनली। जनता के मन में उठा।

इतना बरसा कि नदी नाले एक हो गये। बंधी वाले खेत इतने भर गये कि ज्वार के पौधों पर एक एक हाथ पानी। ट्रैक्टर की जुताई हुई थी। बोने वालों ने समझ लिया कि एक महीने तक पानी की भराई से पार नहीं पा सकेंगे और यह फ़सल चौपट हो जायगी।

अब बीज और खाने के लिये अन्न कहाँ से आवेगा? सनेही और टहल ने दौड़ धूप की। कुछ देशराज से मिल गया, परन्तु उतने से क्या होना था? राघवन ने सरकार को पुकारा। वहां से अन्न आया, तब पूरा पड़ा।

[५१]

भादों उतरते उतरते पानी बरसता रहा। कुवांर के पहले सप्ताह तक साधारण बूंदाबांदी रही, फिर आकाश स्वच्छ हो गया और धूप नरम लगने लगी। मेलेरिया और नाना प्रकार के ज्वरों का प्रकोप हुआ। सनेही और राजदुलारी ने लगातार सेवा करनी आरम्भ कर दी। वह अपने सिद्धान्त के अनुसार उस सेवा का थोड़ासा मूल्य लेता था— लोगों को वह मूल्य नहीं अखरता था। टहल पछताता था— मैंने डॉक्टरी क्यों न पढ़ी ? डॉक्टर होता तो इतना भी न लेता ! उसने देखा कि जनमन का उस प्रकार साथ न देते हुये भी सनेही सबसे अधिक जन-प्रिय हो रहा है !! और उस दिन उसे आश्चर्य हुआ जब सुना कि अंजना लौट कर बीमार आई और सनेही ने चिकित्सा का कोई मूल्य नहीं लिया ! क्या कारण हो सकता है ? सनेही से वह कुछ दूर पड़ गया था इसलिये कारण न पूछ सका।

हिमालय की श्रेणियों पर भी बहुत जोर की बर्षा हुई थी। वहाँ उस समय भी बरस रहा था जब कुवांर के आरम्भ में यहां बन्द हो गया। अञ्जना वहां से चली आई और यहां सनेही के इलाज से शीघ्र निरोग होने लगी। केवल दुर्बलता रह गई थी।

वह अपने साथ पेटियां नहीं लाई थी। जिस दिन आई, बहुत अस्वस्थ थी। पेटियों या माल के सम्बन्ध में देशराज ने उस समय कुछ नहीं पूछ पाया। सोचता था, कहीं सुरक्षित स्थान में रख आई होगी।

उसके स्वस्थ होते ही बात चली। देशराज बहुत उत्सुक था।

अञ्जना ने बड़े गद्देदार कोच पर लेटे लेटे दुख भरे स्वर में बतलाया,—'सारी की सारी चीज़ हाथ से निकल गई ! बड़ा नुक़सान हुआ !!'

'ऐं ! क्या हुआ ? कैसे हुआ ?'

'और इसी कारण मैं बीमार पड़ गई। चार पेटियों में माल था। पचास साठ हज़ार तो भी बनते, लेकिन क़िस्मत पलट गई।'

देशराज हक्का-बक्का रह गया। आँख में केवल प्रश्न था।

अञ्जना ने कहा, 'गरमी के मध्य में माल-संग्रह का काम करीब करीब निपट चुका था। इकट्ठा करके भिन्न भिन्न समय पर तरह तरह के ढँगों से चीज़ को मेरे पास ले आने का काम अपने प्रधान ऐजेन्ट को सौंप कर मैं पहाड़ पर चली आई। जिस होटल में ठहरी थी उसका मेनेजर कुछ अलग विलग सा रहने वाला व्यक्ति है। उसको साधने के लिये मैंने मित्रता स्थापित करने की कोशिश की। बरसात के पहले बहुत से बहानों से कुल मिला कर लगभग दो मन माल मेरे पास आ गया। मैं फूली नहीं समा रही थी—' अञ्जना का गला कांप गया और सिसकियां आ गईं। देशराज ने देखा, इसमें वह कोई सरूपता नहीं जो छः महीने पहले थी। गड़े पत्थर सा कुर्सी पर बैठा था—केवल आगे की बात जानने के लिये उत्सुक—नीचे सिर को एक हाथ से पकड़ लिया।

संयत होने पर अंजना ने आगे की बतलाई,—'होटल मेनेजर और मेरे बीच में बर्ताव साधारण अच्छा था। एक दिन उसे यकायक अपनी ओर खिचते हुये पाया। मैंने सोचा, हो न हो कई सप्ताहों की रंगीनियों का नतीजा है, मेनेजर को अपनाये रखना जरूरी था, क्योंकि पुलिस अफ़सरों के आने जाने की सूचना उससे सहज ही मिल सकती थी। मैंने बहुत जल्दी भांप लिया कि मेनेजर मेरे ऊपर इतना मुग्ध नहीं है जितना मेरे सामान की कपालक्रिया करने पर। तो मुझे उसके एक नोकर को सँभालना पड़ा। उसको सिनेमा जगत में काम देने का लोभ दिया और प्रेम भी दरसाया।'

अञ्जना दम लेने के लिये ठहरी। देशराज की आंखों के सामने होटल मेनेजर के साथ बर्ती गई 'रंगीनियों' के चित्र इतनी देर नहीं थमें जितनें देर मेनेजर के प्रयत्न का होने वाला परिणाम—

अञ्जना बोली, 'नौकर ने एक दिन बतलाया कि पुलिस को मेरे ऊपर अफ़ीम ब्योपारी होने का सन्देह है और मेनेजर को बारीक निगरानी करने और माल का पता देने के लिये नियुक्त किया गया है। मुझे मेनेजर का डर नहीं था। डर इस बात का था कि कहीं पुलिस न घुस पड़े और माल समेत पकड़ ली जाऊँ। तुम्हारी याद में बहुत तपड़ी। पुरानी तरकीबें काम नहीं दे सकती थीं, इसलिये उस नौकर के साथ प्रेम के ढोंग को बढ़ाया और एक रात उसे सामान सहित ले कर होटल से चल दी। वह नौकर रेलगाड़ी के ऊँचे दर्जे के एक छोटे डिब्बे में मेरे साथ अकेला रहना चाहता था, तो मैं होशियारी काम में ले आई: मामूली सामान के साथ मैं ज़नाने डिब्बे में जा बैठी और फलों से ढकी माल की पेटियां उस छोटे डिब्बे में नौकर के साथ रक्खी रहने दीं; जानती थी कि यह मेरी फांसों में इतना जकड़ा हुआ है कि सामान लेकर भगेगा नहीं,—और फिर उसको पता भी नहीं था कि पेटियों में फलों के सिवाय और क्या है।'

अञ्जना के हिलकियां आ गईं।

देशराज ने कहा—जैसे किसी मशीन का घिसा हुआ पुर्जा घरघिया हो,—'फिर ?'

अञ्जना कुछ क्षणों में अपने को सँयत करके बोली फिर, फिर जैसी ही सवेरे गाड़ी बरेली स्टेशन पर पहुँची, पुलिस आ गई। पानी की फुहार पड़ रही थी, मैं सोई हुई थी।'

किसी ने झटकासा देकर जगाया—

'उस डिब्बे में सामान आपका है ?'

मैंने आंखें मलते मलते धड़कते कलेजे को सँभाल कर कहा—'नहीं तो।' पुलिस कई यात्रियों की तलाशी ले कर नौकर के डिब्बे में पहुँची थी। उससे पूछा तो उसने सामान को अपना बतलाया। पेटियां खोली गईं। फलों से ढँकी अफ़ीम निकल पड़ी ! तब नौकर ने बतला दिया कि सामान मेरा है। नौकर गिरफ़्तार कर लिया गया। मुझे भी उतार

कर हवालात में करदिया गया। नौकर अपने बचाव केलिये मेरी चिरौरी कर रहा था, पर मैं तो कह चुकी थी कि समान मेरा नहीं है, मैंने दृढ़तापूर्वक बयान दिया कि मैं नौकर को पहिचानती तो हूँ, पर और कोई वास्ता नहीं। तब उस दो कोड़ी के आदमी ने मुझे बुरी बुरी गालियां दीं। खैर, सहनी पड़ीं। मुकद्दमा चला। मैं बरी हो गई; नौकर को सजा हुई। यह सब सह लिया, लेकिन वह नुकसान कलेजे के टूक टूक कर रहा है। बहुत बीमार पड़ गई थी; यहां तो कुछ स्वस्थ हो कर आई।'

देशराज पीला पड़ गया। अञ्जना ने उसे धीरज दिलाया,—'घबराना नहीं चाहिये, मुझे देखो, इतना सब भुगत लेने पर भी जीवित हूँ। दो चार महीने चुप बैठो—फिर निकल पड़ेंगे। हां, क्षेत्र कोई दूसरा चुनना पड़ेगा। बाघराज यदि अपने इलाक़े में कहीं इसकी गुप-चुप खेती कर उठे तो अपने कन्धे हमेशा हलके बने रहें।'

देशराज ने इसी सुझाव का एक बार विरोध किया था। दो पेटियां मध्यभारत के निकट वाले समुद्र तट पर से पकड़ी जा चुकी थीं। यहां पुलिस उसकी निगरानी कर रही थी। दो पेटियां हवेली में रख छोड़ी थीं! निगरानी बढ़ेगी, घटेगी नहीं। और फिर गाँव वालों का अब भी वह हाल है! देशराज के मन में ये सब बातें उथल-पुथल कर घूम रही थीं उसने नाहीं का सिर हिलाया था कि सनेहीलाल के आने का समाचार जगनू ने दिया।

सनेही ने आकर अञ्जना को देखा और देशराज को भी। देशराज का होश ठिकाने न था।

सनेही ने विश्लेषण किया,—'कोई बात नहीं। बदलती हुई ऋतु का प्रभाव है। देवी जी को आज सबेरे बहुत अच्छा छोड़ गया था। इस समय तापमान बढ़ गया है।'

सनेही बिना बुलाये आया था। साधारण शिष्टाचार की बातों के उपरान्त देशराज उसे लौटाना चाहता था। सनेही को फ़ीस नहीं लेनी थी, कुछ बात करनी थी।

बोला, 'देवी जी, आपको नहीं मालूम इन्होंने कड़ी गरमियों में यहां हम सबकी कितनी सहायता की।'

अञ्जना ने कुतूहल प्रकट नहीं किया। देशराज ने अपने होठों पर मुस्कान लाने का प्रयास किया, परन्तु फीकी बनी रही। वे दोनों चुप रहे।

सनेही उत्साह में था—'हम लोग अब सहकारी समिति को कुछ नया सा रूप देंगे, झगड़ों की एक जड़ खतम हो गई। छदामी, बटोले, बनमाली इत्यादि का झगडा जिन भूमिखंड़ों के सम्बन्ध में था, ज़मींदारी उन्मूलन की अन्तिम घोषणा के बाद समाप्त हो गया। वे सब रक़बे किसी के नहीं रहे। पड़ती होने के कारण गाँव पंचायत के हो गये और सहकारी समितियों में लगा दिये जाने के कारण अब वे सहकारी कृषि के हो जायेंगे।'

देशराज की अन्यमनस्कता कुछ कम हुई। सहकारी समिति का काम अब बढ़ेगा; मेरी निजी खेती को अब और अधिक उत्कर्ष मिलना चाहिये। और यह व्यवसाय ? यह तो गड्ढे में जाता दिखता है। ऐसे ही चला जायगा !

बोला,—'अच्छा है। आप सहकारी कार्य बढ़ाने में खूब लगे हुये हैं।' पिछली बात असङ्गत थी परन्तु सनेही उमङ्ग में था। उसे अच्छी लगी।

'आपकी रुचि भी सहकारी कार्य की दिशा में बढ़ती चली जा रही है। आपकी सहायता से नहर की नालियां खुद गईं। उससे भी बढ़कर कुछ काम और है।'

क्या ?'

'नाले के भरकों का मुंह बन्द करना है जिससे मिट्टी आगे धुलने-पुँछने और कटने से बच जाय। नये पुराने कुटीर उद्योगों की स्थापना और उन्नति; गांवों की सफ़ाई, शिक्षा, स्वरक्षा इत्यादि। टहल को जो बन्दूक़ इनाम में दी जानी थी वह आ रही है, उससे रक्षकदल को विनोद और उत्तेजन मिलेगा।

देशराज ज़रासा चौंका।

'समाचार तो बहुत दिन हुये तब मिल गया था, बन्दूक़ अब आ रही! किसी दफ़्तर में कागज़ दब गये होंगे। जब उखड़े तब बड़े लोगों को याद आई।'

'जो कुछ भी हुआ हो। मैं तो लम्बे धीरज वाला आदमी हूँ। बन्दूक़ गरमियों में आ जाती तो मन चले युवकों का मन खुदाई के काम में कम लगता। फिर सावन भादों में न वह होता, न यह और आपकी सहायता व्यर्थ जाती—'

'मैंने किया ही क्या और कितना है?' देशराज ने अपनी ऊब को विनय में प्रकट किया।

'नहीं राजा साहब, आपने बहुत किया और अब करेंगे।'

'अब! अब, क्या करूँगा?' राजा साहब के सम्बोधन का कोई उत्साहजनक प्रभाव देशराज के मन पर नहीं पड़ा। क्षण के एक छोटे से खंड में सामने खड़ी हुई विपत्तियों का पहाड़ आंखों में घूम गया।

अञ्जना कराही।

सनेही ने उस पर ध्यान न देकर तुरन्त कहा, 'आपकी जो अमानत, पांच हज़ार रुपये की जमा है उसके उठा लेने की मियाद बढ़ा दीजिये, और, आगे आने वाले कामों में, जैसे,—भरकों के मुंह मिट्टी से बन्द करना, गांव का स्वास्थ्य-सुधार, कुटीर उद्योग इत्यादि में—ज़रासा हाथ लगा दीजिये।'

'जो कुछ बन पड़ेगा. करूंगा,—बढ़ा दूँगा मियाद।' देशराज ने ज़रा चैन की सांस ली।

सनेही अञ्जना से स्वास्थ्य की थोड़ी सी बात करके चला गया। भविष्य के अन्धकार में देशराज को विपत्तियों का पहाड़ और भी बड़ा दिखलाई पड़ने लगा, और खाई-खड्डे और भी अधिक गहरे।

अञ्जना ने धीरज घराने के लिये कहा,'कोई राह निकालेंगे।'

देशराज टूटते स्वर में बोला, 'हाँ–आँ; अभी तो अक़्ल काम नहीं कर रही है। शायद अन्त में खेती का ही सहारा पकड़ना पड़े···।'

अभी कोई निश्चय मत करो। जैसे बने काफ़ी रुपया इकट्ठा करना है और––और, अन्त में वह बात––ब्याह करके आनन्द के साथ जीवन बिताने की––मत भूलो।' अञ्जना मुस्कराई।

पर उस मुस्कान में न कोई मद था, न विनोद। देशराज को वह खींचातानी जैसी लगी। यह कब तक उस तरह के प्रणय स्वांग करती रहेगी? होटल के नौकर के साथ भी वही सब! कौन सी हँसी हँसी होगी? कौन–कौन सी मुस्कानों का अभिनय किया होगा? ओफ! फिर भी कुछ हाथ न लगा!! और यदि माल बचाकर ले आतीं तो आती तो उसी नौकर के साथ, फिर क्या होता? यहाँ वह नौकर हाव भावों से निराश होकर क्या न कर बैठता? ओफ़! ओफ़!!

[५२]

दशहरे का त्योहार आ गया। घर घर जवारे बोये गये। जिनकी गाँठ में बिस्वे भर भी ज़मीन नहीं थी, उन्होंने भी बोये। देखते थे अंकुर कच्च हरे पीले और लम्बे हैं या नहीं। गहरे बसन्ती रङ्ग के हुये तो बस – आगे की फ़सल दुर्गा माई अच्छी देंगी। ढेरों जानवर मरे, असंख्य जन बीमार पड़े, ख़रीफ़ की फ़सल नहीं के बराबर हुई, अन्न कष्ट हुआ, इस सबकी काली काई चित्त पर से हट गई। शरद के स्वागत में शारदा और दुर्गा के गीत गाये और भविष्य की धुन में फिर लग गये। दिवाली जैसे आती रही है, आई और मन की मौज को कुछ ओज देकर चली गई। सरकारी फ़ार्म, निजी और सहकारी खेतों में बीज बो लिया गया। केवल वे खेत अभी पड़े थे जिनमें बँधियों के पड़ जाने के कारण पानी भरा हुआ था। बटोले की वह पड़ती जो उसने पिछले साल बांगुर्दन सहकारी समिति को लगाई थी और सुहाना में वह जो बनमाली ने सहकारी में डाली थी, बंधियों वाली थीं। इनमें पानी भरा था। उनका स्वामित्व न बटोले के हाथ में रहा और न छदामी के। अब गाँव की पञ्चायत जिन्हें दे दे। परन्तु पञ्चायत, समितियों के रजिस्टर से निकाल कर, व्यक्तियों को नहीं दे सकती थी। फिर भी वे बड़े बड़े चौखूंटे खेत छदामी और बटोले के कहलाये जा सकते थे। दोनों सोचते थे कि क्या इन्हें समितियों से निकाल कर निजी खेती में जमाया जा सकता है ? दोनों संशय में थे। नहीं जानते थे कि समितियों में अनजाने ही भीतर भीतर कुछ शक्ति आ गई यद्यपि उनका रूप ऊपर से जर्जर दिखलाई पड़ता था उस शक्तियों के कारण वे खेत समितियों के रजिस्टरों में से हिल नहीं सकते थे।

सनेही ने भरकों की मुंह भराई के लिये प्रयत्न आरम्भ कर दिया। गरमियों म नहर-नालियों की खुदाई का अनुभव उत्साह को प्रेरित कर रहा था।

टहल को लेकर एक दिन सनेही निकल पड़ा। लोगों को जगाया। किसी को ज्वर, किसी को खांसी, किसी को कुछ और किसी को कुछ सनेही ने देखा, जिन्हें कोई भी व्याधि नहीं थी वे भी मुंह फेर गये।

काम करने के लिये मजबूर करने की कोई विधि रचे बगैर—बिना किसी न किसी फ़ार्म्यूला ऑफ कम्पलशन के —काम नहीं चलेगा,'—

टहल ने चिढ़कर कहा,—'जवारों की चहल-पहल और दिवाली की मनमौजी कूंद–फांद के समय न इनको जूड़ी थी और न खांसी ! पैसे मिलेंगे, आगे का भविष्य बनेगा, फिर भी इतनी सुस्ती !'

सनेही ने कहा, जैसे अँधेरे में कुछ टटोल रहा हो—

'काम के लिये मजबूर करके मिहनत कराने की विधि का पुराना नाम बेगार है, और नया नाम सेवा। यह समझा बुझाकर और कभी–कभी धमका कर भी कराई जाती है। अन्तर बहुत कम। किसी लौ की प्रेरणा पर त्याग वाली सेवा चलती है, पर वह टिकाऊ नहीं होती। पुरस्कृत सेवा ही टिकाऊ हो सकती है और उसी के बल भरोसे वह लौ टिकाऊ बनती है। इसी पुरस्कार वाली, सेवा का आसरा पकड़ना चाहिये। टहल का ध्यान कहीं और था।

कुछ क्षण बाद सनेही बोला,

'बटोले और मन्टू को साथ ले लें, शायद वे लोग उनकी आंतों में से असली बात का पता ला सकें।'

बुलाने पर मन्टू और बटोले अनमनें होकर साथ लगे। पहले तो मजदूरों ने इनसे भी मनगिरी बातें कीं, फिर खुल पड़े।

'मजूरी रुपया रोज़ से कम नहीं लेंगे और उसमें से एक पैसा भी न कटने देंगे।'

'हिस्सों की क़िस्त का रुपया काटना ही है तो बोंगस (बोनस) में से ले लेना।'

'सहकारी समिति से हमको मिलता ही कितना है ? बटिया पर रखने की शर्त तै हो जाय तो हम काम करने को इसी घड़ी तैयार हैं।'

'पर ऐसा नहीं होना चाहिये कि दो पसली वाले को भी एक रुपया रोज और बाईस पसली वाले को भी उतना ही।'

बटोले को एक बात सूझी—

'हमारी पड़ती वाले में हो जाना बटिया—जितने चाहो उतने।'

'और इसी शर्त पर हम टहल बाबू के खेतों पर काम करेंगे। बटिया लेंगे, मजूरी नहीं लेंगे।'

सनेही ने टहल को लक्ष्य करके बटोले से कहा, 'पड़ती पञ्चायत की हो गई है और बहुत शीघ्र समिति उसकी मालिक हो जायगी, बटिया का चलन आगे चलकर निजी खेती को बढ़ावेगा, सहकारी उमङ्ग को मिट्टी में मिला देगा।'

'और डॉक्टर साहब,'—टहल 'दादा' का सम्बोधन न करते हुये बोला,—'यह चलन समष्टि की भावना की अवहेलना करके व्यक्ति के महत्व को बढावेगा।' वर्ग—संघर्ष, जिसका मैं उपासक हूँ, रुक जायगा।'

सनेही चिड़चिड़ा पड़ा,—'फिर कर पड़ोगे नारों, प्रतीकों, रंगों और झंडों की पूजा! साधनों में बँध कर रह जाओगे, साध्य कहीं दूर जा पड़ेगा। जिस वर्ग संघर्ष के द्वारा तुम समूहवाद को, जिसे साम्यवाद का अलङ्कार पहिनाये बैठे हो, गाँव और देश में लाना चाहते हो, वह समूहवाद और व्यक्ति की स्वतन्त्रता, एक पाँत में नहीं बैठ सकते। भेड़ों का समूह एक डण्डे से हाँका जा सकता है, परन्तु मानव समाज की हँकाई ऐसे नहीं हो सकती।'

टहल भभका। इन्होंने जी की जलन मेरे ऊपर निकाली! वह कुछ कहना ही चाहता था कि बटोले बोला,—'काम की बात करिये। आपकी बहस न मैं समझता हूँ और न ये लोग। बटिया की बात मुझे पसन्द आई।'

टहल की भभक ने दूसरी रास्ता पाई,—'तो सारे निजी खेतों को क्यों नहीं समिति को सौंप देते? घर में बटिया और समिति में भी

वही ! और फिर पड़ती का वह बड़ा खेत जिसकी जुताई समिति ने ट्रैक्टरों से अपने पैसे के जरिये करवाई, किसी का भी निजी नहीं हो सकता जिसमें बटिया की शर्त का फ़ायदा उठाया जा सके।'

बटोले से न सहा गया--

'समिति हमारा और हमारी सन्तान का जनम नहीं काटेगी। वह डली तुम्हारी हुक्का निगाली ! ले लो मेरा इस्तीफ़ा !! हम ऐसे ही भले।'

टहल की चोटी तक ज्वाला की लौ जा छूटी--और, फिर नीचे जा पहुँची। अवाक् रह गया। क्या यह वही बटोले है ?

गोली का घाव खाई जांघ पर हाथ सहसा पहुँच कर रह गया।

सनेही की विजय हुई। अहंकार मुस्कान की टोपी लगा कर होठों पर आ गया।

'अरे टहल भाई,'--सनेही ने कहा,--'न तो गये गुजरे सतयुग को आज की ही घड़ी में घसीट कर पूरा समूचा बिठलाया जा सकता है और न अपने पूर्वाग्रहों के रचे स्वप्निल, कल्पित, स्वर्ग को खींच कर नाक के नीचे वाले क्षण में सामने की ज़मीन पर खड़ा किया जा सकता है। समझ से काम लो,--जो बन आवे सहज में ताही में चित दे।'

मज़दूरों की भीड़ उनके निकट आ गई। उन्होंने समझा कोई बखेड़ा उठने बैठने वाला है।

सनेही ने टहल को अपने कन्धे से लगाकर कहा, 'तुम समझे कोई झगड़ा है ! हमारी इनकी ऐसी बातें तो होती ही रहती है।'

टहल सनेही के कन्धे से हटकर बोला, 'अच्छा भाई बटिया ही सही। काम तो चले किसी तरह।'

मंटू चुपचाप खड़ा, उपयुक्त अवसर की खोज में था--

भलों के झगड़े समझौते में खतम होते हैं, बुरों के एक दूसरे के मिटाने में। बटोले की बटिया वाली बात मान ली गई। टहल बाबू की बात ये मानेंगे--समिति को नहीं छोड़ सकेंगे।'

'बटोले ने बैठे स्वर में कहा, 'मैं अपने निजी खेत समिति में नहीं लगाऊँगा, चाहे कुछ हो जाय; हैं ही कितने ?; रह गई वह पड़ती सो देखूँगा समिति उसे कैसे पचाये लेती है।'

सनेही ने सँभाला, 'मैं पूछता हूँ, आम खाने से मतलब या गुठलियाँ गिनने से ?'

एक मज़दूर काफ़ी चालाक था। उसने, मानो, सबकी तरफ़ से रुकी गाड़ी को ठेला,—'अरे तो मान तो लिया डॉक्टर साहब,टहल बाबू ने। मज़दूरों को ज्यादा मजरी और अन्न दिलवाने के पक्ष में वे सदा से रहते आये हैं।'

दूसरा उससे भी कुछ बढ़कर था—

'हम पूछते हैं भरकों के मुंह बन्द करके करोगे क्या ? उनमें खेती तो होने से रही।' वह जानता था कि भरकों के मुंह भर देने से खेतों का कटना बन्द हो जायगा, पर वह उन लोगों की धुन को सान पर चढ़ाना चाहता था, मजूरी एक रुपया रोज और समिति में बटाई पर अनाज का हिस्सा—उसे पक्का करना था।

सनेही और टहल को अपनी उमंग सान पर चढ़ानी पड़ी,—

'बहुत ज़रूरी है। खेतों को आगे की बरबादी से बचाना है। भरकों में पेड़ लगायंगे जैसे नीम, शीशम, सीताफल, खजूर, सहतूत, आंवला, इमली, कैथ, बेरी, महुआ वगैरह, वगैरह, जिन्हें गरमियों में पानी नहीं देना पड़ता।'

'अरे भाई पूरी मजूरी लो, फसल पर बटिया का अनाज और भत्ता। और क्या चाहते हो ?'

'नितप्रति की अटकें पूरी होती जावें—मिट्टी का तेल, कपड़ा, तमाखू, और क्या। जैसे नहर नालियों की खुदाई के दिनों में होता था।'

'हाँ, हां, ज़रूर। जो जैसा और जितना काम करेगा उतना पावेगा। सब धान बाईस पन्सेरी नहीं तौली जावेगी।'

दूसरे दिन से ही आरम्भ करने का निश्चय कर लिया गया। तगड़े मज़दूर उत्साह में थे। टहल की छुट्टी थी—दूसरे दिन रविवार था।

सनेही टहल को अपने घर ले गया। मरीज़ों से निबट कर घर से चला था इसलिये बिठलाने का अवकाश था। राजदुलारी भीतर थी।

सनेही ने कहा, 'तुमने इन लोगों की जवारों की चहलपहल और दिवाली की मनमौजी कूदफांद की बात कही थी। कभी सोचा कि ऐसा क्यों होता है ?'

'ढीलेढाले शासन–युग में मानव की प्रकृति।'

'बिलकुल असंगत। यह क्यों नहीं मान लेते कि अदृष्ट के प्रति अज्ञेय—जान पहिचान में और विश्लेषण में न आ पाने वाली–श्रद्धा का समय समय पर जागरण और उसकी उकसाई हुई स्फूर्ति जो सब तरह की बीमारियों और सुस्तियों के ऊपर भी सवार हो हो जाती है ?

'अध्यात्मवाद ? अध्यात्मवाद न ? आप आजकल बहस बहुत करने लगे हैं।'

'न भाई, बहस के लिये नहीं लिवा लाया हूँ। बहस ही करनी होती तो–ह ! ह !! ह!!!—तो पैवलाव नाम के तुम्हारे मान्य विदेशी से शुरू करता जिसके सिद्धान्त प्राणी-विज्ञान शास्त्र में तो सर्वमान्य हैं—'

'परन्तु—?'

'परन्तु, 'मनोविज्ञान के क्षेत्र में सन्देह उत्पन्न करने वाले। उसी से शुरू करता। हर साल यहाँ का मानव इन उत्सवों को मन के ओज के साथ मनाता आया है। जहाँ से यह ओज उत्पन्न हुआ है उसके सही रूप को पकड़ कर चलें तो अन्य विषयों के लिये भी स्वभाव के बनने में देर नहीं लगेगी। और, जहां स्वभाव बना कि काम करने कराने के लिये मजबूर करने की कोई भी विधि—फार्म्यूला ऑफकम्पलशन---काम में नहीं लाना पड़ेगा।'

'जैसे ?'

'ऐसे—वेद शब्द का चाहे ये अर्थ तक न जानते हो, परन्तु है वह इन्हें मान्य, उसके दो तीन वाक्य समझाकर रटा दो । आंखें खुल जायंगी और काम करते रहने की बान पड़ जायगी। यह भी एक फार्म्यूला है, लेकिन फार्म्यूला ऑफ कम्पलशन से कहीं अच्छा।'

टहल हँस पड़ा,—'भौतिकवाद को हराने की, अध्यात्मवाद की वही पुरानी चाल। ढोंग की पूजा कराने का ढङ्ग !'

'सो नहीं है। साथ मिलकर चलो, मिलकर बोलो, मिलकर पदार्थों का भोग करो—यह सब क्या ढोंग है ?' अगर वे सब हमारे तुम्हारे चिल्लाने से नहीं जागते तो उनके कान पर शंख क्यों न फूंकें ? लेकिन तुम्हें यहां का शंख पसन्द नही है, बाहर की बिगुल अच्छी लगती है।'

टहल को बुरा लगा।

'आप और आपके आध्यात्मवादी भौतिकवादियों को अहंकारी कहते हैं—'

'अहंकार ने तो भौतिकवाद को जन्म ही दिया है।'

'जी नहीं उसका पिता विज्ञान है। मैं तो कहूँगा कि आध्यत्मवाद में जितना अहङ्कार है, उतना भौतिकवाद में कदापि नहीं।'

'वादविवाद को ठंडा करनेवाला एक नुस्खा मैंने तैयार किया है। यदि फुर्सत हो तो सुनाऊँ ?' राजदुलारी ने यकायक आकर कहा और मुस्कराई।

'अरे ! तुम क्या खड़ी खड़ी सुन रही थीं ?' सनेही ने हँस कर आश्चर्य प्रकट किया।

यह वही मुस्कान है, वही, गदेली, जिसने मां बन-कर अस्पताल में फिर से जीवन दिया था।

'क्या है भावी ? क्या है वह नुस्खा ? सुनाइये।' टहल बोला।

'रूप छोटा सा प्रभाव बहुत बड़ा ? चटपटी पकोड़ियां, हींग की पुट दी हुई बढ़िया दही के साथ।' राजदुलारी ने कहा।

वे सब विनोद मग्न हो गये। पकोड़ियां आईं और उन्होंने अपना काम किया।

'अच्छा दादा, वही सही। आज़माइये अपनी सूझ को।' कहकर टहल चला गया।

राजदुलारी ने पूछा, 'कौन सा अहङ्कार बड़ा ?—आध्यात्म का या भौतिकवाद का ?

सनेही खिलखिला पड़ा।

'छोटा भाई ने नहीं हरा पाया तो तुम्हारी चुटकी पछाड़ने के लिये आ कूदी।'

राजदुलारी भी हँस पड़ी।

'तुमसे सुनी बातें ही तो कभी कभी दुहरा देती हूँ।'

हँसी का हिलाड़ुला वातावरण जब ज़रा थमा, सनेही ने कहा,—'कल हम वेद मन्त्रों की ध्वनि से अपने काम का आरम्भ करेंगे। तुम चलोगी साथ ?'

'मैं रास्तों में गायत्री नहीं गाती। घर का काम और फिर तुम्हारे मरीज़ जिन्हें तुम मेरे ज़िम्मे छोड़ जाते हो, मेरे लिये क्या कम हैं ?'

'कुछ काम तो कर ही जाता हूँ। कल के बाद अधिक ध्यान दूंगा, विश्वास दिलाता हूँ। अपनी देवी से यह जो प्रसाद कभी कभी पा जाता हूँ वह मेरा एक बड़ा सम्बल है।'

राजदुलारी ने बात बनाई—'अब पकोड़ियां उस दिन, जब मेरे जी में आयेगा।'

उन दोनों में कभी झगड़ा नहीं होता था, क्योंकि वे अकेले में भी कभी एक दूसरे का अपमान नहीं करते थे।

दूसरे दिन सनेही और टहल ने स्वस्थ मज़दूरों का एक दल बनाया और काम करने के लिये चल पड़े। देशराज और बनमाली को भी साथ ले लिया। लटोरेसिंह ने उन सबको व्यवस्था का रूप दिया।

सनेही ने मज़दूरों को छोटे–छोटे से कुछ वाक्य याद करा दिये और अर्थ समझा दिया। मज़दूरों के मन को भाया।

उन सबके आगे सनेही बोलता हुआ चला––संगच्छध्वं सं वदध्वं, सहनौभुनक्तु, समानी मुषा सह वो अन्न भागाः।' मज़दूर ग़लत-फ़लत उच्चारण करते हुये, उत्साह के साथ कुदाली फावड़े हिलाते उठाते चले जा रहे थे। सनेही के मन में उठता था––मैंने यह लहर उत्पन्न की है, मेरा उठाया हुआ यह संवेग स्थिर रहेगा, मेरा यह विधान–– टहल चप था। उसके अभिमान को धक्का लग रहा था।

[५३]

कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगा था। चौथा पहर लगते ही सूर्य की किरणें इतनी नरम जैसे चैत की चांदनी। नाहरगढ़ महल के एक कमरे के ऊँचे चौड़े द्वार से बाघराज की पीठ और कालीसिंह के चेहरे पर किरणें पड़ रही थीं। कालीसिंह के माथे के कोने से लेकर कान तक खपड़े के घात का गहरा मटमैला चिह्न किरणों में भूरा-भूरा सा दिख रहा था।

'तो देशराज को चिट्ठी का यही उत्तर दिये देते हैं कि रुपये का अभी कोई इन्तज़ाम नहीं है, माल रक्खे रहें, जब सुभीता होगा या तो हम उठा लावेंगे या वह ले आवें।'

बाघराज ने एक पत्र मेज़ पर रखते हुये कहा,—'अञ्जना को यक्ष्मा हो जाने का सन्देह है, घंटे भर के लिये हम हो आते तो कैसा रहता ?'

'जैसी मर्ज़ी,'—कालीसिंह उपेक्षा के साथ बोला,—'आपका जाना ठीक नहीं जान पड़ता, और न उन लोगों का यहां आना, आप ही ने कहा था।'

'खैर न जायेंगे। सङ्गीत समारोह होना ही है। उसमें वे दोनों आ जायेंगे।'

'महीने दो महीने की तो बात ही है। तब तक फ़सल कट जायगी। जैसे इतने दिनों वे वहाँ और आप यहाँ चुपचाप बैठे रहे, वैसे दो महीने और सही। इस बीच में अगर अञ्जना मर गई तो टण्टा साफ़ हो जायगा और कोई दूसरा अच्छा काम करने वाला मिल जायगा—'

'तुम तो बेकार की बात करते हो। बड़े-बड़े खिलाड़ी तक चूक जाते हैं। अञ्जना तो ग़ज़ब की है। वह नहीं चूकी। उसकी ग़लती से काम नहीं बिगड़ा।'

'जो हुकुम। देशराज रुपया चाहता है। कहता है कि बिना नकदी के काम एक डग भी आगे नहीं चलेगा। दो पेटियां भी तभी देगा, जब रुपये उसके हाथ पड़ जायेंगे। उसने जो और बातें लिखी हैं, वे ऊल-जलूल हैं। सार की बात यही है। रुपया कहाँ से आवेगा ?'

बाघराज ने राजसी सिर हिलाया। 'चिट्ठी का उत्तर भेज दूँ, फिर बतलाऊँगा' उसने कहा।

बाघराज ने उत्तर लिखा और ड्राइवर को बुलाकर दे दिया। ड्राइवर उत्तर लेकर चला गया और दरवाज़े की बग़ल में खड़ा हो गया।

बाघराज ने अपनी योजना बतलाई,—'फ़सल पर बड़ी महारानी साहब पचास हज़ार रुपया देंगी। इन रुपयों में से कुछ सङ्गीत सम्मेलन पर खर्च किये जायेंगे, या यों कहें कि सङ्गीत सम्मेलन पर लागत लगाई जावेगी। बड़ी-बड़ी शौक़ीन गायिकाएं कीमती गहनों से मढ़ी आवेंगी। सम्मेलन चार-छः दिन तक चलेगा। अञ्जना तब तक स्वस्थ हो जावेगी और वही आकर सर्वश्रेष्ठ नाचने-गाने वालियों को पुरस्कार बांटेगी....' इसके बाद बाघराज ने बहुत धीमे स्वर में कुछ देर तक कालीसिंह से जो कुछ कहा, वह ड्राइवर ने नहीं सुन पाया।

कालीसिंह हँसा। चमकती छोटी आंखों के पैनेपन और उस हँसी के मेल की भयानकता को बाघराज ने सहज ही पचा लिया।

कालीसिंह बोला, 'खूब जिये, जीती रहे, अञ्जना। पर वैसी ग़लती फिर कभी करे तो उसका गला काट दिया जाय' कह कर कालीसिंह गम्भीर हो गया, और अब उसके चेहरे पर उतना भयावनापन न रहा।

बाघराज ने कहा, 'दो तीन महीने में सङ्गीत-सम्मेलन का विज्ञापन भी काफ़ी हो जायगा। सरकार और उसके अधिकारियों का ध्यान फिसल जायगा कि कब, क्या और कैसे करें।'

कालीसिंह की दृष्टि द्वार से दिखलाई पड़ने वाले दूरवर्ती पहाड़ों की ऊँची-नीची श्रेणियों पर गई। पहाड़ों के नीचे बसे हुये गांवों से उठता हुआ धुआं समानान्तर रेखाओं में फैल गया था। कालीसिंह की भौंहें सिकुड़ गईं, एक हाथ की उँगलियाँ घाव के निशान पर पहुँच गईं। दांत भींचकर बोला, 'और सरकार के सङ्गीत सम्मेलन के बाद में अपना बदला चुकाऊँगा, फिर भले ही बैरागी बन कर कहीं लोप हो जाऊँ। उन लोगों की बन्दूकों और कवायद परेड को धूल न चटाई तो सरकार के कदमों की कसम—'

बाघराज ने सङ्केत से आगे की बात का कहना वर्जित कर दिया।

× × ×

उसी सांझ और धुयें की उन्हीं समानान्तर रेखाओं के पीछे बांगुर्दन में कुछ युवकों को लटोरेसिंह कवायद परेड करा रहा था। टहल की बन्दूक़ थी और चार व्यक्तियों को लाइसैन्स वापिस मिल गये थे। युवकों में सुहाना के भी कुछ थे। वे सब उत्साह के साथ बन्दूक़ों को हथिया रहे थे। जिसको मिल जाती, वही मगन हो कर सोचता कि डाकुओं, लुटेरों और देश के अन्य बैरियों को मैं अकेला ही मार भगाऊँगा! सनेही, टहल, मंटू, बटोले बनमाली इत्यादि सभी, को यह लग रहा था। निशाने बाजी गाँव के बाहर होरही थी, पर उन्हें अवगत हो रहा था जैसे किसी रणक्षेत्र में हों!! सनेही के मन में आया मुझे भी लाइसैन्स मिल जाय, और, इनमें से कइयों को, तो गांव में उत्साह और अनुशासन की लहर आ बसे। टहल की कल्पना में उठा—सरकार न जाने लाइसैन्स देने में इतनी कंजूसी क्यों करती है। काफ़ी हाथ पड़ जावें तो क्रांति करा दूँ! तुरन्त मन में आ गया—शायद सरकार इसीलिये लाइसैन्स देने में कन्जूसी करती है, परन्तु यह तो जन-तन्त्र है!

सूर्यास्त के पहले ही क़वायद परेड बन्द कर दी गई और हथियार सँभाल लिये गये। फिर हुई कबड्डी जिसके फुर्तीले दाव पेंचों ने भीतर की बचीखुची कालोंच को पोंछ डाला—जिसे चोट लगी वह भी हँस पड़ा!

रात हो जाने पर इनमें से कई का जी चाहता था कि थोड़ा सा और खेलें, परन्तु लटोरेसिंह और सनेही ने सारे अनुष्ठानों को समय से सीमित कर दिया था, इसलिये दूसरे दिन की प्रतीक्षा में घर चले गये। वहीं एक अखाड़ा भी था। दो तीन को कुश्ती लड़ने का शौक़ था। वे कुश्ती का अभ्यास करने लगे।

'ब्यालू के बाद आज टहल की बारी है,प्रौढ़ पाठशाला में पढ़ाने की,' सनेही ने बतलाया।

रात्रि पाठशाला खोल ली गई थी। शिक्षितों को बारी बारी से एक घंटे रोज़ पढ़ाना पड़ाता था।

टहल ने कहा, 'वयस्क लड़कियों और हरिजनों के पढ़ाने के लिये, जो दिन में अवकाश नहीं पाते मैंने घर पर, ही पाठशाला खोल ली है। आज वहीं जाना पड़ेगा।'

'तो जनक तुम्हारी पाली साध देवे।'

'मैं नहीं जाऊँगा, मुझे और भी काम है।' जनक ने सनेही को कोरा जवाब दे दिया।'

'यह लड़का नहीं सुधरने का,'—सनेही क्षुब्ध स्वर में बोला,—'और अपने साथियों को भी ले डूबेगा। कोई और है जो टहल की पाली को साध दे?'

टहल चुप रहा। बनमाली ने हां भरी। पढ़ाने गया और कभी कभी जाता रहा, परन्तु पढ़ाता कम था, अपने अनुयाइयों की संख्या बढ़ाने में अधिक चित्त देता था।

[५४]

सुहाना में राजदुलारी ने स्त्रियों की पढ़ाई का काम जारी रक्खा। दे पाती थी वह घंटा आध घंटा ही, पर देती थी इतना समय नित्य नियम से।

बांगुर्दन में टहल पढ़ाता तो रात में लगभग नित्य ही, परन्तु कभी दस पांच मिनिट और कभी दो दो घंटे। हरको भी पढ़ने आती थी। उसके होठों पर मुस्कान फिर आ गई थी। वह नित्य नहीं आती थी, और प्रायः, कदाचित अकस्मात्, ऐसा हुआ कि जिस रात वह नहीं आई, टहल ने कम समय दे पाया।

स्त्रियों में कानाफूसी शुरू हो गई—इन दोनों के बीच कुछ होने वाला है। स्त्रियां ऐसे मामलों में शीघ्र ही सही ग़लत निष्कर्ष पर पहुँच जाती हैं। घाटीवाली की शङ्का जागी, परन्तु उसने जहां की तहीं सुला दी—टहल इस तरह के आचरण के परे है।

टहल पढ़ाते पढाते बोला, 'कुछ मशीनें ऐसी आ गईं हैं जो गाँव के भीतर लगाई जावेंगी।'

'गांव में कांस तो है नहीं जो उखाड़ा जावे! क्या घरों को रोंदने आई हैं?' हरको ने हँस कर कहा। उसके ऊपरी दांतों के बीच की खोल टहल को बुरी नहीं लगी।

'अरी नहीं हरको! कपड़ा बुनने और तेल पिलाई की मशीनें हैं। बुनकरों और तेलियों के रोजगार को उन्नति मिलेगी।' टहलने ज़रासा उसकी तरफ़ देख कर, फिर अन्य स्त्रियों की ओर आंख घुमाते हुये समझाया।

'आटा चक्की क्यों नहीं लगाते? पीसते पीसते मेरे तो हाथों में ठट्टें पड़ गई हैं। देखो।' हरको ने अपने दोनों हाथ पसारे। टहल ने दृष्टि फेरी। उसकी आंखों में निहोरा लखते ही निगाह नीची कर ली। भरी देह की कोमल गदेलियों में ठट्टों को देख कर उसका मन चाहा

कि उँगलियों से टटोलूँ, परन्तु वह रह गया। कुछ स्त्रियों ने एक दूसरी की ओर ताका।

'आटा चक्की भी लगेगी। राघवन आ गये हैं। आये तो बहुत समय बाद हैं, पर यहाँ काम चालू करने तक रुपेंगे। लुहारी का भी कारखाना खोला जा रहा है जिसमें अपने यहाँ के लुहार आसपास के गांव तक के लिये अच्छे अच्छे औज़ार बना सकेंगे,' टहल ने कहा।

इस चर्चा में स्त्रियों का मन नहीं रमा।

एक बोली, 'तो आज की पढ़ाई बन्द ?'

'नहीं, नहीं। एक ज़रा सी बात और--मैंने अपने स्कूल में साबुन बनाने का सिखलाना आरम्भ किया है। तुम लोग भी सीखो। अपने साबुन से अपने मैले कुचैले कपड़े धोकर साफ़ रक्खा करो।'

हरको ने कहा, 'मैं सीखूंगी।'

टहल की बात पर अन्य स्त्रियां सकुच कर हँस पड़ीं।

घाटीवाली ने टोका,—'पढ़ाना हो तो पढ़ाओ, खिल-खिल ठिल-ठिल बहुत हो चुकी।'

एक स्त्री ने हरको के कान में धीरे से फूंका,—'कह दो कि हम तो अभी साबुन बनाना सीखेंगे।'

हरको ने आंख तरेरी। टहल लिखाने पढ़ाने में लग गया।

× × × ×

रबी की फ़सल हरी भरी और ऊँची पूरी थी। पौधों में दाने पड़ने लगे। सरकारी फार्म और निजी खेती की ज्यादा देख भाल और सहकारी कृषि की निगरानी में लगभग वही ढीलापन। बिक्रम अवश्य अब उतनी आजादी के साथ पसर नहीं चरा पाता था। सब की आँखें उस पर थीं। बहुत ही थोड़े लोग उसके पक्ष में थे। देशराज भी किनारा काटने लगा था। परन्तु उसके ढोर, सरकारी जङ्गल और उसका घर तो साथ थे, उसे किसी की परवाह न थी। देशराज की दी हुई पड़ती हाथ की नहीं रही थी। वह सब सुहाना सहकारी में थी परन्तु घर बैठे

मुनाफ़ा मिलते रहने की आशा थी। बागुर्दन के अपने शत्रुओं--टहल, बटोले, मन्टू इत्यादि से उसे वैर भुनाना था। यह भाव उसके मन को शक्ति देता रहता था। उसके शत्रु अब निर्भय थे--हमारे पास बन्दूकें हैं, इसने कोई बदमाशी कराई तो बिछा देंगे।

यह भाव संन्ध्या की कवायद परेड के समय बहुत सतेज रहता था, पर दिन में नित्यप्रति समस्याओं के सामने उतना ही निस्तेज।

× × × ×

बटोले हाट बाजार में अपने हाथ के बुने कपड़ों की गठरी लादकर ले जाता था। पड़ता बहुत कम बैठता था। इस काम को करके खेती बढ़ाने की सोची तो खेत थोड़े से। जिस पड़ती पर बड़ी बड़ी बंधियों वाले चौखूंटे खेत बन गये थे उसका स्वामित्व खतरे में। घर पर ग्राहक कपड़ा लेने आवे तो लागत में भी खोट। मशीनें लगा दी गई थीं, देखें ये क्या करती हैं?

राघवन ने समझाया,—'मशीनों की बुनाई से जो कपड़ा तैयार होगा उससे काफ़ी लाभ होगा; मन को मत गिराओ।'

'सूत वक्त पर नहीं मिलता। सरकार भेजती है तो बीच वाले न जाने कहां कोर कसर लगा देते हैं।'

'मैं बीच वालों के सिर पर रहूँगा, कोर कसर नहीं लगने पावेगी।'

'इतने दिनों कहां थे आप?'

'क्या बतलाऊँ भाई बटोले। एक काम के साथ नौ और लगा दिये गये। उनमें उलझा रहा। अब नहीं होगा, क्योंकि सरकार ने उन कामों के लिये दूसरे अफ़सर कर दिये हैं।'

बटोले का मन नहीं भरा। थोड़ी देर सरकार की आलोचना-यानी गाली प्रदान—करता रहा।

बोला, 'मिलों कारखानों के कपड़े के मुक़ाबले में हमारा रुजगार कैसे ठहरेगा?'

'तुम लोगों को ललिता के बांध से बहुत जल्दी सस्ती बिजली मिलेगी। काम चलाने सिखलाने के लिये जानकार आयेंगे और यहां रहेंगे।'

'मिलों को भी तो वही सस्ती बिजली मिलेगी और, जानकारों की वहाँ कमी ही क्या है ?'

'तुम लोगों की बनाई धोतियों, साड़ियों और तौलियों इत्यादि को मुनाफ़े के साथ बेचने के लिये मिलों में इन कपड़ों का बनाया जाना कम कर दिया जायगा। खपत और बिक्री के लिये सहकारी साधन होंगे, ज़िम्मेदारी हम लोगों की। दलालों से कोई वास्ता नहीं रहेगा। अनाज बिक्री के लिये भी यही पाटी काम में लाई जावेगी।'

इस पर बटोले ने बड़े चाव के साथ अपनी बड़ी पड़ती के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किया।

राघवन ने हँसकर कहा, 'तुम्हारे हाथ में रहे या न रहे तुम्हारी समिति में तो है। तुम्हें मुनाफ़ा मिलता रहेगा। भूमि या खाने कमाने के साधन को अपनी मुट्ठी में किये रहने का मोह इसलिये घर किये रहता है कि बुरे दिनों में किसका सहारा पकड़ेंगे ? अब उसकी चिन्ता न अपने लिये करनी चाहिये और न सन्तान के लिये। सहकारी समिति अमर, तुम्हारा काम अजर और उनसे मिलने वाला मुनाफा अजर और अमर।'

'अपना निज का भी तो कुछ होना चाहिये।'

'वह सब अपना है, पराया नहीं है। बिलकुल अपना ही कुछ रखना है तो साग भाजी और फलदार पेड़ों के बाग बगीचे लगाओ। मिलकर चलो, मिलकर। अब तो एक ही नारा ज़बान से बांध लो—मिलो या गलो।'

'यह तो सब ठीक है, लेकिन नये नये कामों के लिये पैसा कहां से आवेगा ?'

'पैसा मिलेगा। सरकारी योजना में है। हम देंगे। चिन्ता मत करो बस एक बात याद रक्खो—मिलो या गलो। और दूसरी आम खाने से मतलब या गुठलियां गिनने से ?'

सनक में आकर राघवन बहुत कुछ कहकर चला गया। आम खाने और गुठलियाँ न गिनने वाली कहावत बटोले ने सनेही से भी सुनी थी। कुछ गुदगुदी देने लगी।

× × ×

नियुक्त तिथि पर ललिता नदी के बांध से नहर में पानी लाने के उत्सव का उद्घाटन किया गया। उद्घाटन करने वाले और उसका तमाशा देखने वाले सब स्थिर आनन्द की चुहल में थे। पानी नहर में पड़ा और कहीं तेजी के साथ कहीं धीमी गति से आगे बढ़ा। राघवन समारोह से छुट्टी लेकर जल्दी जल्दी सुहाना बांगुर्दन आया। पानी जब गतिवान् हो जाता है तो लगता है जैसे कोई प्राणी हो। उसके आने का समाचार पहले से मिल गया था। गांव वाले नहर पर जहां तहाँ जा खड़े हुये। उनको अपनी खोदी हुई नालियों द्वारा उन खेतों में पानी की उस सजीवता को लाना था जिससे पौधे आनन्दविभोर हो जाते हैं और उनका दाना दुगना मोटा पड़ जाता है। यदि नालियाँ न खोदी गईं होती तो समिति के ये खेत पड़े रह जाते और उसके बट्टे खाते में ही दर्ज रहते।

पानी के आते ही लोग उछल पड़े जैसे जल की सजीवता से उन्होंने अपने प्राणों के लिये तत्काल कुछ पाया हो।

कई कंठों से निकल पड़ा,—'सिंचाई की खेती बन्दूक सा हथियार—इनसे हारा करतार ! थोड़े से रक़बे में भी बहुत अन्न उगाया जा सकेगा !!'

फिर सनेही की सराहना हुई। जानते थे कि उसी के हठीले दिग्दर्शन के कारण नालियां खुदी थीं और उन खेतों की सिंचाई होने वाली थी। सनेही के अहङ्कार को भी बल मिला—मैंने कराया यह सब! फिर राजदु-

लारी का प्रश्न याद आ गया—अहङ्कार कौनसा बड़ा: आध्यात्म का या भौतिकवाद का ? उसकी दृष्टि पास खड़े हुये टहल पर गई। उसको भी लोग धन्यवाद दे रहे थे, पर उतना नहीं जितना सनेही ने पाया था। सनेही ने सोचा, यह आध्यात्म का अहङ्कार नहीं है, कठिनाइयों पर विजय पाने का मोद है !

राघवन ने पीछे से आकर सनेही के कन्धे पर हाथ रक्खा। 'डाक्टर साहब, आपको और आपके उत्साही दल को मेरी भरपूर बधाई।' फिर राघवन ने टहल को भी बधाई दी।

राघवन ने घूम फिर कर सनेही और टहल से कहा, 'भरके भी आप लोगों ने पूर दिये ! खूब किया !!'

'थोड़े से और रह गये हैं।' सनेही बोला।

राघवन उमङ्ग में था,—'वे भी पुर जायेंगे। बांगुर्दन के तालाब की मरम्मत का ठेका दे दिया गया है। सरकार का पूरा ध्यान, आप लोगों की लगन और तपस्या के कारण, इन दोनों गांवों की ओर आकृष्ट हुआ है। रुपये पैसे की कमी नहीं रहेगी। जी खोलकर खर्च करिये। आप लोगों पर शासन का बहुत विश्वास है।'

सनेही के अहङ्कार ने मन के एक कोने में छिपे छिपे धीरे से कहा,—बन्दूक का लाइसेन्स ले लो और दूसरों को दिलवा कर अधिक से अधिक नाम कमाओ।

सनेही बोला, 'हम लोग तालाब की मरम्मत भी इसी तरह कर लेते, लेकिन खैर, ठेका हो गया सो अच्छा ही हुआ। अब हम सड़कें सुधारने, बनाने, गांव की सफ़ाई, पानी सोखा गढ़ों, सार्वजनिक खाद खाइयों सौच-कूपों इत्यादि और परलोक सुधार की बातों पर भी ध्यान देंगे। क्यों टहल भाई ?'

'जी हां,'—टहल के स्वर में उमङ्ग की ऊँचाई न थी।

राघवन कहता रहा,—'मुझे अचम्भा होता है कि आप लोग अपना घरू काम करते रहते भी, इन सब बातों के लिये कहां से समय निकाल लेते हैं !'

दूसरे गांवों में कहीं आप सरीखे एक एक ही होते तो थोड़े से समय में ही हम सबका चाहा हुआ नया युग आ जाता। नर-नारियों के लिये रात्रि पाठशाला खोल ली ! रक्षक दल का काम सवाये डचोढ़े पर है !! कुटीर उद्योगों का उत्साह के साथ आरम्भ हो गया—'

सनेही बीच में बोला,—'हमने अपने साथियों के लिये अनिवार्य कर दिया है कि कोई न कोई छोटी मोटी दस्तकारी हर एक सीखें।'

राघवन ने टहल को बढ़ावा दिया,—'आपने साबुन बनाने का काम शुरू करके बहुत ही अच्छा किया—'

टहल ने आह भर के टोक दिया,—'वह काम एक हफ़्ते चला और फिर बन्द हो गया। लोगों को रुचा ही नहीं।'

'तो क्या हुआ ? पीछे पड़े रहिये, एक दिन उनकी रुचि में सदा के लिये आ बसेगा।' राघवन बोला।

सनेही ने कहा, 'मैं इन्हें यही समझाता रहता हूँ कि जिस काम को पकड़ो उसके पीछे हाथ धोकर पड़े रहो।'

फिर वही बड़प्पन की बात ! टहल को अच्छी नहीं लगी।

हूं करके राघवन से पूछा, 'आप ही तो न जाने कितने समय बाद यहाँ आये हैं, बतलाइये कब लौटेंगे, बरस भर में ? छः महीने में ?'

उसने हँसकर उत्तर दिया, 'नहीं टहल बाबू, आगे ऐसा नहीं होगा। अन्य कार्यों में लगा दिया गया था। अब तो यही करने को है।'

× × ×

सनेही और टहल ने गांव की सफ़ाई का भी काम हाथ में लिया—सप्ताह में एक बार। इसमें विद्यार्थियों के सिवाय और बहुत कम लोगों ने साथ दिया। अपने घर का कूड़ा कचड़ा पड़ौसी के घर के सामने छिपे लुके डाल देना मामूली बात थी। इसमें कुछ कमी आई। कूड़ा खाद के एक ढेर में डाला जाने लगा था, जो गांव बाहर था। खाद

के ढेर थे अब भी सबके अलग अलग और बहुतेरों के तो घर के सामने ही। पानी सोखे गढ़े भी बनाये गये।

उस दिन गांव सफ़ाई का काम सुहाना में होना था—पुलिस चौकी के सामने से जाकर देशराज और बनमाली के मकानों तक। जनक ने यहां काम करने से इनकार कर दिया—'ये लोग अपने हाथ से काम करें,—हम पुलिस के नौकर नहीं हैं।'

सनेही ने झाड़ना शुरू किया ही था कि पुलिस वालों ने उसे विनय के साथ रोक दिया और खुद काम करने लगे।

जनक हँसा। पुलिस वालों की आँखें लाल हो गईं।

देशराज के घर के सामने लड़कों ने शोर मचाया—उससे ज़रासा ही कम जो उन्होंने साल भर पहले सत्याग्रह की आड़ में मचाया था। सनेही और बनमाली ने झाड़ू लगाई। टहल पीछे हट गया। देशराज निकल आया। 'यह क्यों, डॉक्टर साहब!' उसने कहा।

'आपको और इन सबको चेताने के लिये,' सनेही चिढ़े हुये स्वर में बोला।

'मैं सौगन्ध खाता हूँ कि इस मुहल्ले में सदा सफ़ाई रहेगी,' देशराज ने सौगन्ध खाई और उसके नौकर सफ़ाई के काम पर लग गये।

'यह कुछ नहीं। अपने हाथ से करना चाहिये,' सनेही ने सावधान किया।

'हां हां, देशराज जी अपने हाथ से करें जैसे हम करते हैं।' टहल पीछे से चिल्लाया।

लड़के बौखला उठे,—'नौकरों से मत कराओ, अपने हाथ से करो! ज़िमींदारी मुर्दाबाद!!'

'चुप!' सनेही गरजा। सनेही को इतनी ज़ोर के साथ बोलते पहले कभी किसी ने नहीं सुना था,—'बेहया कहीं के!! काम करना हो तो ठिकाने से करो, वरना अपने घर जाकर चीखो।'

सब सन्न से रह गये।

देशराज ने मीठी बातों से वातावरण को ठंडा किया। चाय पीने के लिये उन सबको बुलाया। पर चाय का समय नहीं था; किसी ने स्वीकार नहीं किया। काम निबटने पर सब चले गये—सनेही को देशराज ने रोक लिया।

'आपको हाथ का कुछ काम अवश्य करना चाहिये,' सनेही ने व्याख्यान के स्वर में कहा।

'कर रहा हूँ। खेती पर बहुत ध्यान दे रहा हूँ। खेतों में विलायती खाद दिया था, नहर का पानी मिल जाने से फ़सल बहार पर है।'

'थोड़े समय उपरान्त ही भूमि कमज़ोर पड़ जायगी।'

'देखूंगा। अञ्जना का निरीक्षण करियेगा? पहले से बहुत स्वस्थ है। फ़सल कटने के बाद नाहरगढ़ में होने वाले सङ्गीत सम्मेलन में जायेगी। उसकी तैयारी की धुन में है।'

'अच्छा!'

[५५]

पूरने के लिये थोड़े से ही भरके और रह गये थे। सहकारी समिति मजूरी पर और अधिक रुपया खर्च करने में असमर्थ थी। लोगों का मन भी नहीं लग रहा था, यद्यपि भरकों की ऊपरवाली भूमि समिति की थी; उसमें एक दिन नहर का पानी आना था और प्रचुर मात्रा में अन्न मिलने की आशा थी। इस पर पड़ी ठेकेदार को बांगुर्दन तालाब की मरम्मत के लिये मज़दूरों की ज़रूरत। ठेकेदार मजूरी की दर बढ़ाने को तैयार, क्योंकि फ़सल कटने के दिन आरहे थे, जब मज़दूर ढूंढ़े भी न मिलेंगे।

उसे बाधा थी—सनेही और टहल का अनुशासन और उन लोगों का भी दबाव, जो गाँव में दर का बढ़ाना पसन्द नहीं करते थे। फिर भी सब बातों की एक सीमा होती है। उस सीमा को ठेकेदार पहिचानने वाला ही था कि उसने प्रस्ताव किया—'तीन चार दिन की बात और रह गई है, भरके पुराई में थोड़े से आदमी अपने लगाये देता हूँ; जैसे ही यह काम समाप्त हुआ कि फिर तालाब की मरम्मत पर यहां के मज़दूरों को मजूरी की इसी दर पर जुटा दूंगा, इधर के थोड़े से टोटे को उधर समझ लूंगा; काम तो अवधि के भीतर हो जायगा।'

पहिले दिन काम मजे में चला। दूसरे दिन सनेही, टहल और जनक की पाली पड़ गई। ठेकेदार मज़दूरों से काम करा रहा था। लड़कों ने कवायद परेड उतनी नहीं सीखी थी जितनी हकूमत करना। शेखी और कर्कशता का दौरा आने लगा था।

ठेकेदार ने एक मज़दूर को डांटा,—'बार बार तमाखू पीता है, कामचोर कहीं का! चिलम फोड़ कर फेंक दूंगा, अगर छुई तो।'

'फोड़ोगे तो! मेरे क्या हाथ पैर नहीं हैं?'

ठेकेदार को क्रोध आ गया। मारने के लिये झपटा। मज़दूर से गुत्थमगुत्था हो गई। जनक दौड़ पड़ा। उसने बीच-बिचाव तो कम

किया—ठेकेदार पर दो तीन हाथ छोड़ दिये। ठेकेदार के भी आदमी दौड़ पड़े। होहल्ला और मारपीट शुरू हो गई। सनेही और टहल दूर थे। दौड़कर आ गये। ठेकेदार का एक आदमी पुलिस चौकी पर दौड़ा गया। सनेही और टहल झगड़े की आग को बुझाने का प्रयत्न करते रहे।

जनक पर भी घूंसे और थप्पड़ पड़े। ठेकेदार और जनक दोनों, क्रोध में पागल से हो गये थे। टहल का अनुशासन और सनेही का आतंक काम नहीं कर पा रहा था। ठेकेदार और जनक फिर से जूझ पड़ने के लिये अकुला रहे थे। गालियों का लेनदेन तो चल ही रहा था।

ठेकेदार का आदमी पुलिस के दो सिपाहियों को लेकर आ गया।

'यह है वह छोकरा!' ठेकेदार का आदमी चिल्लाया।

'हम इसे पहिचानते हैं,—' एक पुलिस वाले ने कहा,—'बहुत ढीठ है। चाहे जिससे लड़ बैठता है।'

पुलिस वाले उस दिन की बात नहीं भूले थे जब जनक ने चौकी के सामने झाड़ू लगाने से गर्व के साथ इनकार कर दिया था और उन्होंने सनेही के हाथ से झाड़ू लेकर खुद पकड़ी थी।

'ज़बान संभालकर बोलना, नहीं तो मुंह तोड़ दूंगा। छोकरा तू तेरा बाप!'—जनक सिपाही पर तड़पा।

'बस! बस!! अपने को क़ाबू में रक्खो जनक !!!'—सनेही ने फटकारा।

'सिपाही आपका कौन है जो इससे कुछ नहीं कहते?'—जनक के स्वर में दबने का कोई लक्षण नहीं आया।

टहल धीरे से बोला, 'रहने दो जनक। शान्त रहो।' पुलिस वालों ने जनक को पकड़ने की कोशिश की। जनक ने हाथ पैर चलाये—पुलिस वालों पर लात और थप्पड़ पड़े, एक की वर्दी भी

थोड़ी सी फट गई। सिपाहियों ने यम का रूप धारण किया। सनेही और टहल ने उन्हें मुश्किल से संयत कर पाया। सिपाही जनक को चौकी पर पकड़ ले गये। जमानत देने की बात चली तो उन्होंने कह दिया कि अपराध असाधारण है, कचहरी से भले ही ज़मानत हो जाय, यहाँ नहीं हो सकती। देशराज और बनमाली को बीच में डाला गया। उन्होंने अपनी क्रियाओं द्वारा मामले को दबाने का उपाय किया परन्तु पुलिस ने नहीं माना। काम बन्द हो गया। लड़के चौकी के चारों ओर घूमने लगे। मना करने पर भी नहीं मानते थे। पुलिस बन्दूकें ताने सन्नद्ध थी कि सदर जाने वाली मोटर लॉरी आई। पुलिस ने उसको रुकवा लिया। सांझ होने पर लड़कों की भीड़ हट गई। दो सिपाही जनक को लेकर लारी में जा बैठे। लॉरी चल दी। सिपाही और जनक थोड़ी देर बाद ठंडक में आ गये।

थाने वाले पुर पर पहुँचते ही सिपाहियों ने जनक को उतारा। रात हो गई थी,थाने की हवालात में छोड़कर उन्हें सुहाना लौटना था, फिर चाहे थाने के पहरेदार जनक को इसी लॉरी से सदर ले जावें, चाहे दूसरे दिन की लॉरी से।

जनक ने लॉरी से उतर कर टूटे धीमे स्वर में कहा, 'पेशाब करनी है।'

एक बोला, 'ऐसे वहाँ बोलते बर्तते तो तुम्हारी यह दुर्गति न होती' और उसे खोल दिया।

मूत्र-त्याग के लिये जनक थोड़ी दूर जा बैठा। सिपाहियों की आंख उस पर थी।

परन्तु उनकी आँखों ने कुछ ही क्षण पीछे देखा कि जनक ने उचाट मारी और लारी में उतरने चढ़ने वालों के आगे पीछे से अदृश्य हो गया! सिपाही दौड़े चिल्लाये। कुछ दूर तक जनक की विलीन होने वाली टेढ़ी तिरछी रेखा दिखलाई पड़ी, फिर कुछ नहीं। हाथ मलते रह गये।

थाने में दिन की घटना और इस भाग निकलने की रिपोर्ट की। सुहाना की दिशा में सिपाही छूटे। ढूँढ खोज होती रही, परन्तु वह नहीं मिला।

दूसरे दिन मामले की सूचना सदर में भेजी गई। जनक की गिरफ़्तारी के लिये सौ रुपया इनाम घोषित हुआ।

जनक का कोई पता नहीं। टहल उसके लिये बहुत चिन्तित था। सनेही को भी दुःख था। जनक के घर वाले उसके लिये बिसूरते रहे थे।

उन्हीं दिनों दमरू क़ैद काटकर आ गया। उसे ज्वर था। गांव में उसके आने की कोई खुशी नहीं। मण्टू रुष्ट, हरको ने बिलकुल मुंह फेर लिया जैसे दमरू कोई रोगीला कुत्ता हो! अदालत ने उसे क़तल के अपराध से बरी करके मारने पीटने के अपराध में छः महीने की क़ैद का दण्ड दिया था, परन्तु जात बिरादरी ने उसे क़तल ही माना। हुक्का पानी, मिलना-जुलना सब बन्द। आते ही रोटी के लाले पड़ने लगे। बटोले ने साहस किया तो गाँव बाहर दूर अपने एक खेत की रखवाली पर रख लिया। उसे यान्त्रिक करघों के चलाने चलवाने से खेती के काम के लिये कम अवकाश मिल रहा था। दमरू वहीं ज्वर में पड़े पड़े रोटी की गुज़र पर रखवाली का काम करने लगा।

'क्या अपने काम का यही अन्त होना था?' जनक की ढूँढ़ खोज और दमरू के इस बहिष्कार से दुखी होकर टहल ने एक दिन सनेही से घर जाकर कहा।

गम्भीरता के साथ उसनें उत्तर दिया, 'जोश को होश संभाले रहे तो विफलता की यह कड़ी सफलता की कड़ी का एक जोड़ ही बनेगी। जैसे समय अनन्त है वैसे ही काम भी अनन्त है। आओ, हम तुम काम की अगली कड़ी को पकड़ें।'

उस दुर्घटना के हो जाने के बाद से कवायद परेड, खेल कूद इत्यादि सब शिथिल पड़ गये थे।

'दादा',—बहुत दिनों पीछे टहल ने उसे यह सम्बोधन किया था,—'दादा ! वह छोकरा मूर्ख होते हुये भी उतना बुरा तो नहीं है ।'

'हमारे यहाँ के छोकरे विचलित और पथ-भ्रष्ट बहुत हो गये हैं । इनका सुधारना बहुत जरूरी है ।'

'अबकी बार, मिल जाय तो, उसे आप बेत लगाना, परन्तु अपने भीतर उसे स्थान दिये रहना ।'

टहल का गला भर आया और आंखों में आंसू छलक आये । सनेही ने टहल के कन्धे पर हाथ रक्खा । कुछ कहना चाहता था, पर न कह सका ।

'दादा उस दिन जब सिपाहियों के सामने आपने उसे डाँटा. तब वह आपके साथ भी गंवारी से पेश आया था । क्या आप उसे माफ़ नहीं करेंगे ? उसका कोई नहीं है । न मालूम जीवित है या मर गया ।'

टहल के आँसू बह पड़े । हिलकी आ गई । वह सनेही के घुटनों की ओर झुका । सनेही ने पकड़ कर छाती से लगा लिया । उसकी आँखों में भी बड़ी बड़ी बूंदें उमड़ आई थीं ।

राजदुलारी धीरे से आकर एक तरफ़ खड़ी हो गई ।

'बस टहल बहुत हो चुका । लड़कपन में मैं उससे भी ज्यादा गँवार और बुरा था । जनक तो बुरा है ही नहीं', सनेही ने कहा ।

'तुम्हारे लड़कपन का कुछ सबूत तो मैं दे सकती हूँ,'—राजदुलारी धीरे से आकर बोली,—'अरे यह क्या ! गङ्गा यमुना का सङ्गम हो रहा है क्या ?'

सनेही ने कहा, 'बिना सरस्वती की सहायता के गङ्गा यमुना का सङ्गम अधूरा रहता है',—आंखों में आंसू, होठों पर मुस्कान, गले में कम्प । सनेही और टहल अलग अलग हो गये ।

'भाबी ! मेरी मां से बढ़कर मां !! दादा से कह दो कि आगे मुझे चांटे चाहे भले ही लगा दिया करें, पर च्युंटियां न लिया करें ।'

'बस टहल, मुझे मेरे अहंकार की याद मत दिलाओ ।'

'आप का अहंकार ! नहीं, मुझ में ज्यादा है ।'

राजदुलारी ने व्यङ्ग किया, 'तुम्हारा भौतिकवादी अहङ्कार तो जान पड़ता है कि गल गया—' और रुक कर सनेही की ओर मुंह करके मुस्कराई ।

सनेही आंसू पोंछ कर हँस पड़ा ।

'टहल, इन सरस्वती जी ने उस दिन ठीक कहा था कि अध्यात्म-वाद का अहंकार भौतिकवाद के अहंकार से बड़ा होता है ।'

'यदि किसी वाद को सिंगारना सजाना है तो मैं यह चली, क्योंकि मैं आज पकौड़ियों की रिश्वत नहीं दूंगी किसी भी वाद को ।'

'एक वाद की बात तो तुमको सुननी ही पड़ेगी, सरस्वती जी,'—सनेही ने सांस भर के कहा,—'अपने भीतर बसे हुये किसी भी सिद्धांत या वाद के हुकुम पर चलते रहने का अभ्यास ही विवाद और बखेड़े उत्पन्न करता है । वह अमरबेल की तरह छाया रहता है और सारी शक्ति को सोखता रह कर वादी को निर्जीव बना देता है । मैं आगे उसके हुकुम पर न चलकर विवेक से काम लूंगा । सब से बड़ी और सत्यानासी अमरबेल यही जान पड़ती है ।'

'मैंने गांठ बांध ली,'—उत्साह भरे स्वर में टहल बोला ।

'मैंने तुम से पहले बांध ली,'—सनेही ने कहा ।

राजदुलारी की मुस्कान में फूटा,—'मैं पकौड़ियां तब खिलाऊँगी जब देख लूंगी कि ये गाँठें खुल नहीं सकतीं । एक गाँठ और बाँध लो—जनक की खोज और अधिक तत्परता के साथ कराओ ।'

[५६]

ठंड उतार चढ़ाव पर आ गई। अलसी, गेहूँ, चना गदरा उठे। सूर्यास्त होने में थोड़ा विलम्ब था। बिक्रम सतर्कता के साथ सरकारी जङ्गल से ढोरों को इकट्ठा करके पानी पिलाने के लिये नाले में उतरा। किनारे की एक झुरमुट में खरखराहट हुई। बिक्रम को विश्वास था कि झुरमुट में बनरखा नहीं हो सकता। एक क्षण ध्यान लगा कर बोला, 'निकल भी आओ। खाना तमाखू जो आज्ञा हो, ले आऊँ,' और हँसा।

उसकी धारणा थी कि कालीसिंह का कोई गिरोही निकल पड़ेगा, परन्तु सामने आ गया जनक ! नङ्गे पैर, फटे कपड़े, बाल बिखरे, चेहरा सूखा हुआ। बिक्रम को आश्चर्य हुआ। चेहरे पर रोब आ गया।

'तुम यहाँ कैसे ? तुम्हारे ऊपर तो सौ रुपया इनाम है ?'

'हाँ है। सुना है।' क्षीण स्वर में कहकर जनक उसके निकट आकर खड़ा हो गया।

बोला, 'अब सहा नहीं जाता। दो दिन से खाने को नहीं मिला है।'

बिक्रम सोचने लगा।

'तुम तो बड़े तेज थे ! क्या हो गया तुमको ?'

'मैं बड़ा गधा था। कुछ खाने को मिल जाय तो आदमी बन जाऊँ।'

एक क्षण सोचकर बिक्रम ने कहा, 'यहाँ तो खाना आ नहीं सकता। घर क्यों नहीं चले जाते ?'

'पुलिस पकड़ कर मार लगावेगी।'

'मेरे घर आ जाओ रात में। खाना खाकर जहाँ चाहो चले जाना।'

'पकड़वा तो नहीं दोगे ?'

'अरे नहीं ! तुम लोगों ने मुझे जैसा समझ रक्खा है वैसा नहीं हूँ।'

'अच्छी बात है। रात होने पर आऊँगा। यह जो एक झोपड़ी खेत के पास टीले पर से देखी थी, उसमें कौन है ?

'कोई डर की बात नहीं। खेत बटोलवा का है, रखवाली के लिये दमरुआ पड़ा रहता है। बहुत करके ज्वर में है। ज़रा सा किनारा काट के आ जाओगे तो वह नहीं देख सकेगा।'

'अच्छा।'

बिक्रम ढोरों को लेकर ताकते झांकते निकल गया। जनक भी आड़ ओट लेते हुये जङ्गल के किनारे आ गया। सूर्यास्त के समय उसने देखा कि बिक्रम के कुछ ढोर खड़ी फ़सल चरते हुये निकल गये। उसके सूखे खून में गरमी आ गई। फिर अपनी असमर्थता का स्मरण करके रह गया।

रात हो जाने पर वह उस झोपड़ी के पास आया। भीतर कोई कांख रहा था। हो न हो यह दमरू है, जनक ने सोचा और अंधेरी झोपड़ी में घुस गया।

'कौन है रे ?' मरे से स्वर में कांखने वाले ने कहा।

'मैं हूँ। भूख लग रही है। है कुछ ?'

'कौन ?'

'जनक। जनक। तुम्हारे गांव का जनक।'

'भैया जनक, मैं दमरू हूँ। गाँव भर का बुरा दमरू, खाने को मेरे पास कुछ नहीं है। पुलिस तुम्हारे पीछे पड़ी हुई है। कहीं भाग जाओ।'

'कहाँ जाऊँ ? इधर उधर मारा-मारा फिरता रहा हूँ। अब कहां जाऊँ?,

'तो रात भर यहीं पड़े रहो भैया। ठंड लग जायगी तो नहीं बच पाओगे। पर हां, खाना कहाँ से आवे ?'

दमरू उठ बैठा। कांखते कांखते बोला, 'कहो तो तुम्हारे घर से मांग लाऊँ, लेकिन गांव वाले तो मुझे भूत प्रेत समझने लगे हैं।' उसने अपने बहिष्कार और जातपांत के दंड की बात सुनाई।

यह वही दमरू है जो बाघ की तरह दहाड़ा करता था ! और वह बिक्रम कैसा मिनमिना रहा था !!

जनक ने अपने घुटनों पर सिर रख लिया और सोच विचार में पड़ गया।

'तो मैं जाऊं भैया जनक ?' दमरू ने कराहते हुये पूंछा।

'न,'—जनक ने तुरन्त सिर उठाया,—'न। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।' जनक को अपने भीतर यकायक शक्ति की लहर अवगत हुई।

'मेरे साथ ! मेरे साथ चलने की अटक ही क्या है ?'

'देखो, पकड़े न जाना। शरीर में वैसा बल होता तो जहाँ कहते तुम्हें वहीं अपने कन्धों पर रख कर ले जाता, पुलिस-वुलिस की ज़रा भी परवाह न करता।'

मुझे साथ लेकर चलो। पुलिस की बिलकुल परवाह नहीं है, चौकी पर ले चलो। खाना वहीं आ जायगा। तुमको इनाम वाले सौ रुपये मिल जावेंगे। कुछ रुपये से पाँत पंगत देकर बिरादरी में मिल जाना, बाकी से और काम चला लेना।'

'ऐं! कहते क्या हो, भैया जनक!' दमरू चक्कर में पड़ गया। दोनों में नाहीं और हाँ की होड़ सी लग गई। अन्त में दमरू परास्त हो गया। दोनों चल पड़े। जनक ने सोचा—बिक्रम के घर जाता तो खाना मिलता चाहे न मिलता, मैं पकड़ा अवश्य जाता और इनाम उसे मिलता।'

थोड़ी देर में वे दोनों चौकी के सामने जा खड़े हुये।

जनक ने दमरू को आगे बढ़ाया,—'कहदो, कहदो कि मैं जनक को पकड़ लाया हूँ।'

दमरू की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। जनक ने धकेला। एक सिपाही चौकी के बाहर निकल आया। 'चिल्लाया,—'कौन है रे ?'

रुँधे कांपते गले से दमरू बोला, 'मैं हूँ दमरू।'

'क्या फिर कोई क़तल किया ?'

पीछे से जनक ने टेहुनी गड़ाई। दमरू ने और भी गिरे स्वर में कहा, 'जनक भैया को पकड़ लाया हूँ—यानी—'

जनक आगे आ गया।

'यानी-व्यानी कुछ नहीं। दमरू मुझे पकड़ ले आये है। अब आप मेरा जो कुछ करना चाहें कर डालें।' उसके स्वर में क्षीणता न थी।

'अच्छा! अच्छा, आओ इधर।'

जनक छाती ताने बढ़ गया। अन्य सिपाही निकल आये। किसी ने उसकी मारपीट नहीं की। परन्तु हवालात में कर लिया। घर समाचार भेज दिया गया। टहल खाना लेकर चौकी के भीतर चला गया। जनक के त्याग को देखकर वह हर्ष से भर गया था।

बाहर से बिक्रम ने बुलाया। एक सिपाही बाहर गया।

बिक्रम ने कहा, 'जनक को फँसाने जा रहा हूँ। वह मेरे घर आयगा। दो तीन सिपाही मकान घेरने के लिये आ जायं।'

'चुप चोट्टे! जनक आ गया है। चौकी में बन्द है। भाग जा। तुझसे तो वह क़तल करने वाला दमरू भला जिसने साफ़ साफ़ सब कह दिया।'

बिक्रम कुड़कर चला गया।

थोड़ी रात गये सनेही आया। जनक के सिर पर हाथ फेरते गद्‌गद् हो गया।

'टहल भाई,यह है अपना व्यवहारिक अध्यात्म! आज जनक मुझसे बड़ा हो गया!'

'मैंने किया ही क्या है? पेट भर खाने को मिल गया, नहीं तो भोर न जाने क्या होता।' धीमे स्वर में जनक बोला।

'आगे तुम अपनी कमाई से हम सबको पोसोगे,' सनेही ने कहा। टहल का गला भर आया—

'यदि अहङ्कार न करेगा तो आपके चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीख सकेगा।'

जनक बोला, 'सजा काट आने पर मन लगाकर सीखूंगा।'

'कहीं तुम्हारी जगह मैं जा सकता सजा काटने—'सनेही ने कहा।

सिपाही हैरान थे।

[५७]

मुक़द्दमे के लिये जनक दूसरे दिन सदर भेज दिया गया। उसी दिन बनमाली को समाचार मिला कि स्वतन्त्रता के युग में जिन्होंने कष्ट झेले थे उनमें के वर्तमान असमर्थों को खेती के लिये भूमि दान की जायगी। सनेही के पास भी सूचना भेजी गई। उसने तत्काल इनकार कर दिया।

बनमाली सरकारी फ़ार्म के अधिकारी के पास पहुँचा, क्योंकि सरकारी फ़ार्म में बाहर से आये हुये विस्थापितों और राजनीतिक पीड़ितों को दिये जाने लायक़ रक़बे थे और अधिकारी की सिफारिश पर अच्छा सा रक़बा मिल सकता था।

बनमाली ने अपने त्यागों की गिनती गिनाई। अधिकारी उसे पहले से जानता था। बोला, 'पहले विस्थापितों के लिये भूमि अलग करनी है, फिर गांव के उन लोगों के लिये जिनके पास रञ्चमात्र भी नहीं है।'

'मेरे पास नहीं के बराबर समझिये। जो पड़ती देशराज से मिली थी वह छदामी की बनकर समिति की हो गई। अपने खेत समिति में लगा चुका हूँ। निज की खेती के लिये गांठ में अब कुछ नहीं रहा।'

'कुछ ऐसे हैं जिनके पास इतनी भी भूमि नहीं। पहले उनको मिलनी चाहिये। उनसे बचे तब किसी और को। सरकार निश्चय करने वाली है कि अपने फ़ार्म से पचास पचास एकड़ भूमि सुहाना और बांगुर्दन की सहकारी कृषि समितियों को देगी।'

बनमाली को ताव आ गया। समझ गया कि इसी की सिफ़ारिश पर समितियों को सरकारी भूमि मिल रही है। उतनी बढ़िया!

'आप सरीखे लोग त्याग तपस्या का मूल्य आंक ही नहीं सकते। मैंने क्या क्या नहीं खोया! आप सरीखे अफ़सरों ने ही सरकार को बदनाम कर रक्खा है। नौकरशाही के इसी तरह के पुर्जे ही सरकार की मशीन को नहीं चलने देते।'

'आप सरीखे लोग सरकारी मशीन के पहियों में डण्डा अड़ा देते हैं इसलिये नहीं चल पाती वह,'—अधिकारी भी क्षुब्ध हो गया,—'एक डॉक्टर सनेहीलाल हैं जिन्होंने इंच भर भी भूमि लेने से इनकार कर दिया है, और हम सब की मदद भी करते रहते हैं।'

बनमाली का पारा और भी गरम हुआ,—'मैं शहीद हूँ और आप केवल एक नौकर। मैं देखूंगा।'

'मैं पहले ही देख चुका हूँ। कहिये तो गिनाऊँ आपके शहीदी करिश्में—एक बार चोरी में—दूसरी बार—'

'खबरदार!' बनमाली के मुंह से फेन निकल पड़ा।

बहुत होगा,नौकरी से अलग ही न कर दिया जाऊँगा, अधिकारी के मन में आया। परन्तु बनमाली चला गया इसलिये झगड़ा वहीं रह गया।

बनमाली सोचता था—यदि मेरी बात न सुनी गई तो किसी भी सरकारी संस्था से सम्बन्ध न रक्खूंगा, सहकारी समिति को भी लात मार दूंगा।

× × ×

आई हुई फ़सल के सुनहले दानों को देखकर बनमाली ने तै कर लिया कि अभी समिति को नहीं छोड़ूंगा और जब छोड़ूंगा तब उसे ऐसा करके छोड़ूंगा कि कभी पनपे ही नहीं, क्योंकि चाहे मेरी कटे या न कटे सरकारी अफ़सरों की नाक तो जड़ से कट जायगी जो समिति पर जान देने का तमाशा करते फिरते हैं!

धरनीधर से उसे सहयोग की आशा न थी क्योंकि वह अपने पल्ले समेट कर छोटी मोटी साहूकारी में तल्लीन हो गया था—युग आते हैं और चले जाते हैं, पर हम बने रहते हैं; न लोगों की फ़जूल खर्ची कम होगी और न हमें कोई हिला सकेगा। उसका यह विश्वास था।

ग़रीबों और सम्पत्ति वालों, साहूकारों और रिनियों, सहकारी समिति के भूमिधरों और मज़दूरों की निगाह फ़सल पर थी जो कटने को आ गई।

फ़सल कटने लगी। चैतुये निकल पड़े। गत वर्ष की दुर्घटना की हलकी सी स्मृति भर रह गई थी।

देशराज की फ़सल अच्छी आई। सहकारी समितियों की भी बुरी नहीं थी। जङ्गली जानवरों और गाँवों के ढोरों के उजाड़ने पर भी बहुत बची हुई थी। कटनी के बाद अनाज खलिहान में आ गया। कब दायं हो और अन्न घर में रख लें, सभी की कामना थी।

नाहरगढ़ में होने वाले सङ्गीत सम्मेलन की तिथि निकट आ रही थी। अञ्जना को जल्दी पड़ रही थी। देशराज भी चाहता था कि दायं हो जाय और अनाज गोदाम में पहुँच जाय तो अफ़ीम की दोनों पेटियां नाहरगढ़ ले जाऊँ और रुपया लाकर निश्चय कर लूँ कि अफ़ीम व्यवसाय में आगे हाथ डालूँ या खेती को ही चैन के जीवन का निमित्त बनाऊँ। कटे पूले जल्दी जल्दी सुखवा कर उसने दायं करानी आरम्भ कर दी। गत वर्ष के ओले पानी का कड़वा अनुभव लोगों को याद था इसलिये सभी ने आतुरता के साथदायं चढ़ाई।

भूमिधरों को निजी खेती की चिन्ता पहले थी। सहकारी के मज़दूर सदस्य, मजूरी में अनाज पाने के लोभ से, सहकारी खलियान की उपेक्षा कर रहे थे। सनेही और टहल को जितना समय मिलता था उतने में इसकी देख भाल बारी बारी से कर रहे थे। एक दिन किराये के बैलों द्वारा, बहुत थोड़े समय में, दायं कराने का निश्चय कर लिया। एक खलियान पर दो जोड़ी बैल ऐसे आये जो आपस में फूंसा फांसी करने लगे। किसकी जोड़ी प्रबलतर है, इस प्रसङ्ग पर जोड़ी वालों में द्वन्द हो पड़ा।

एक बोला, 'हमारी जोड़ी.तुम्हारी को ओंधा कर देगी।'

दूसरे ने कहा, 'हमारी तुम्हारी को धूल चटा देगी।'

होड़ बदी गई और बैल छोड़ दिये गये। बैल लड़ पड़े। एक ने दूसरे को रगड़ा और खदेड़ कर भगा दिया। इतने में वहाँ सनेही आ गया।

उसने भर्त्सना की,—'मजूरी काटी जायगी। समय नष्ट कर रहे हो।'

विजयी बोला, 'कट जावे। बात तो सिरे रही।' फिर वे काम में लग गये।

सनेही कुछ और फटकार देने वाला था कि सोच कर रह गया,—इनकी हिंसा को कोई मार्ग चाहिये, एक ने दूसरे का सिर नहीं फोड़ा, यही क्या कम है?'

[५८]

नाहरगढ़ में होने वाले सङ्गीत सम्मेलन की तिथि सिर पर आ गई, परन्तु देशराज के खलिहान से अनाज गोदाम न पहुँच पाया। अनाज तो गोदाम में कारिन्दा पहुँचा ही देगा, उधर से जब लौटेंगे तो दो पेटियों की अफ़ीम से हलके होकर और उसका दाम जेब में रख के। फिर अञ्जना का हठ। उन्हीं दिनों सहकारी समिति की वार्षिक बैठक होनी थी। देशराज ने नाहरगढ़ जाने का निश्चय कर लिया।

सन्ध्या तक नाहरगढ़ पहुंच जाना था, तैयारी में लग गया। उसी समय सूचना मिली कि जनक छूट कर आ गया है। बिना ज़मानती वारंट था इसलिये मुक़द्दमे के फ़ैसले तक जेल में रहना पड़ा था। मैजिस्ट्रेट ने केवल चेतावनी देकर छोड़ दिया। उसके त्याग की असली बात छिपी नहीं रही। इसलिये इतना सस्ता छूटा। दमरू को इनाम के सौ रुपये मिल गये।

देशराज ने सोचा, बांगुर्दन होता हुआ नाहरगढ़ जाऊं। जब वह अंजना के लिये मोटर से बाँगुर्दन गया, गाँव में उल्लास का प्रवाह सा पाया। क़वायद परेड की तैयारी हो रही थी। टहल, सनेही, बटोले इत्यादि वहां सब थे।

देशराज मोटर से उतर कर उन लोगों के पास गया। किसी भी तुक की परवाह न करके लटोरेसिंह ने उसे फ़ौजी प्रणाम किया। जनक हाथ जोड़कर उसके पास आ खड़ा हुआ। देशराज ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

जनक ने कहा, 'उस दिन की अभद्रता के लिये क्या आप मुझे क्षमा कर देंगे। जब मेरे गुरुजन तो हाथ में झाड़ू लिये थे और मैं बकबक कर रहा था?'

'एक दिन जब मैं हाथ में झाड़ू पकड़ूंगा तभी उसका मार्जन होगा,'—देशराज मुस्कराया।

सनेही ने उसकी मुस्कान में उस क्षण कुछ ऐसा आकर्षण अवगत किया जैसा पहले कभी नहीं किया था ।

बोला, 'इन्हीं लड़कों के भीतर तो हमारे देश की वह पुरानी रसायन छिपी है ।'

अन्य लोगों के शिष्टाचार की समाप्ति पर जनक ने मोटर में बैठी अंजना को नमस्ते की । वह चाहती थी कि इस ठौर से कब पीछा छूटे । चेहरे से प्रकट हो रहा था जैसे बीमार हो ।

मंटू ने बटोले के कान में धीरे से कहा, 'वहां नाचने जा रही है यह !'

'चुप ! चुप !! टहल या सनेही सुन लेंगे तो मुफ्त में फटकार खानी पड़ेगी ।'

सम्भव है, सहकारी समिति की बैठक के दिन तक न लौट पाऊं तो सनेही बैठक कर ले और आवश्यक कार्य निबटा ले इस प्रसङ्ग की चर्चा करके देशराज मोटर ले कर चला गया और सूर्यास्त के पहले ही नाहरगढ़ पहुँच गया । उस रात सम्मेलन का उद्घाटन होना था ।

× × ×

मधुमास और उसकी वधू वसन्त ऋतु, नीम, करोंदी और चांदनी की महकें । नाहरगढ़ में रंगीनी थिरक रही थी । दूर दूर से आई हुई नर्तकियाँ और गायिकायें अपने सुरूप को विविध प्रसाधनों से सजाये चुहल कर रही थीं । उनको देख कर अंजना को अपनी रूपरेखाओं को संवारने की धुन चढ़ आई । किस कलावन्ती में कितना गुण है और किसको क्या पुरस्कार मिलना चाहिये इसका निर्णय उसे और देशराज को करना था—अर्थात् अकेली उसे ही । तो सङ्गीत कला की जानकारी में वह सबसे बढ़-चढ़कर थी ही । सुरूपता और सजावट में भी उन्हें मात न दी तो बात ही क्या रही । उसके चेहरे पर सुर्खी आ गई । मैं बीमार नहीं थी । डॉक्टर सनेहीलाल भी कहा करता था । उसने

कहीं पढ़ा या सुना था कि यौवन मन की स्थिति है। मन फड़कने लगा।

कलावन्तियां तितलियों जैसे रङ्ग-विरङ्गेपन में थीं। बहुत से फिल्मों में वे जैसी दिखलाई जाती हैं उनसे किसी भी बात में कम नहीं। अपने जजों को मोटर से उतरते देखकर उनकी थिरकनों में कमी आ गई। जब देखा कि राजा बाघराज उन दोनों का शील के साथ स्वागत कर रहा है, तब उन्होंने भी अपना अभिनन्दन लहराया। बाघराज और वे दोनों बहुत समय उपरान्त मिले थे, पर इस प्रसङ्ग पर चर्चा उस समय नहीं हुई।

रात्रि के समय सजीला रङ्ग-मंच हंडों की रोशनी से जगमगा उठा। सङ्गीत समारोह का आरम्भ हो गया। यह एक सप्ताह तक चलना था। ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा—सभी प्रकार के गायन कार्य-क्रम में रखे गये थे और सभी प्रकार के नृत्य। पांच पाँच हज़ार से लेकर एक एक हज़ार रुपये तक के पारितोषक थे।

कलावन्तियों के वस्त्र तो बहुमूल्य थे ही, वे मोती, हीरा, जवाहर के सोने के जड़ाऊ गहने भी पहिने थीं।

गायन की मधुरता के साथ चटक मटक और लोच लचक की भी प्रतिद्वन्द्वता सी हो रही थी। अञ्जना को लगा मैं इनसे भी अच्छे कर-तब दिखला सकती हूँ और समय आने पर दिखलाऊँगी। सहसा एक आह उठी और दबी—चार पेटियां यों ही हाथ से निकल गईं, परन्तु उसमें मेरा कोई दोष नहीं था।

उस दिन के कार्य-क्रम की समाप्ति पर बाघराज, अञ्जना और देशराज एक कमरे में इकट्ठे हुये। उनमें उस दिन तक की घटनाओं की बात चली। कालीसिंह का भी प्रसङ्ग आया।

बाघराज ने कहा, 'कहीं छिपे पड़े हैं, बहुत दिन से नहीं मिले। ज़रूरत पड़ने पर बुलाये जा सकते हैं।'

फिर दो पेटियों में लाई गई अफीम का विषय छिड़ गया। देशराज बोला, 'बहुत नुकसान हो चुका है। यहाँ से अबकी बार काफ़ी रुपया साथ ले जाना पडेगा। उत्तर का क्षेत्र बदलना पड़ेगा और मालवे का क्षेत्र हथियाना पड़ेगा।'

'इधर के प्रदेशों में मुझे कोई नहीं पहिचानता होगा,' अञ्जना ने कहा और अपनी सहज मदीली चितवन बाघराज पर फिराई।

'यह सगीत समारोह आगे के काम की पहली कड़ी है। रुपया पूरा ले जाइये और कुछ ऊपर से भी। सुहाना में उस दिन मुझे सलाह दी गई थी कि बड़ी महारानी साहब से रुपया लूँ, तो मैंने पचास हज़ार ले लिये। इस सम्मेलन पर जो कुछ खर्च होगा, आगे वह सब वसूल हो जायगा, इसलिये अब खर्च की कोई चिन्ता नही।'

वे दोनों उत्साहमग्न हो गये।

अञ्जना मुस्कान में होकर मोती जैसे दाँत चमकाती हुई बोली, 'मैं पहले ही समझ गई थी, इस सम्मेलन के उद्देश्य को। जब चीज बटोरने के लिये मालवे में निकलूँगी तो सङ्गीत के हवाई जहाज पर बैठकर। ये रहेंगे मेरे साथ बाजा बजाने के लिये।'

यानी साजिन्दा! जीवन में पहिली बार उसको यह उपाधि खटकी। बोला, शायद मैं साथ न रह सकूँगा। गले मे पड़ी पुलिस–फांस कट जाय, तब बाहर का विचरण हो सकेगा मनमाना।'

बाघराज भी जानता था।

दो पेटियों की अफ़ीम की बात चल पड़ी। देशराज ने अपने ठहरने के कमरे में से उठाकर दोनों पेटियां बाघराज के हवाले कर दी।

अञ्जना ने कहा, 'सम्मेलन की समाप्ति पर चार छः दिन के लिये सुहाना चली जाऊँगी। डॉक्टर भी तो देखें कि एक सप्ताह के भीतर ही मैं कितनी बदल गई हूँ। आज कल अपने रोज़गार की फ़सल का मौसम है। सुहाना से अकेली यहीं आ जाऊँगी। फिर यहां से मालवे के क्षेत्र की यात्रा और—'

'हां, हाँ,' बाघराज ने सहमति प्रकट की। 'और मैं उधर सुहाना में नित्य नये रूप रखने वाली प्रगति और खेती–बाड़ी को अपना अङ्ग बनाकर उस फांस के कटवाने की फिकर करूँगा।'

बाघराज भी नहीं चाहता था कि देशराज नाहरगढ़ आये जाये या अञ्जना के साथ मालवे की यात्राओं में रहे।

'यहां की पुलिस का क्या हाल है ?' देशराज ने पूछा।

बाघराज ने उत्तर दिया, 'चिन्ता मत करिये। आप एक सप्ताह मजे में रह सकते हैं।'

'हां फिर सुहाना में—'

[५९]

बनमाली अपनी पौर के चबूतरे पर तकिया से टिका हुआ हुक्का पी रहा था और छदामी नीचे बैठा था।

कुछ देर पहले से बातचीत चल रही थी। बनमाली ने छदामी को चिलम देकर कहा, 'जो कुछ मैंने कहा है उसकी गांठ बांध लेना, और मेरा नाम जाहिर न हो, भला। वैसे मैं डरता भी नहीं।'

'अच्छा मालिक, और वह रुक्का····?' चिलम फूकते हुये छदामी बोला।

'यार मेरे क्यों जान छोड़े देते हो! रुक्के की फ़िकर मत करो; ठिकाने से रक्खा है,' कहकर बनमाली ने द्वार की ओर देखा। माल विभाग का एक निम्न कर्मचारी आ गया। आगत स्वागत के बाद बनमाली ने उसे बीड़ी दियासलाई दी।

कर्मचारी बीड़ी पीते पीते बोला, 'आपके गांव में खम्बे वाले लैम्प लगेंगे। गांव शहर सा जान पड़ेगा। पानी सोखे, नालियां-वालियां हो ही गई है, सड़क कुट जाय तो क्या कहना। पर या तो गांव पर टैक्स लगावे पञ्चायत या सब लोग अपना सारा काम छोड़कर अपनी अपनी मिहनत देवें। एक ही बात। पर है ठीक, बहुत ठीक।'

'काहे की ठीक? मरे जाते हैं हाथ मिहनत और टैक्स के मारे।' छदामी ने कहा।

'यह कौन है?' कर्मचारी ने पूछा।

'अपना ही है, बिलकुल अपना आदमी। परेशान है बेचारा। इसके सामने आप बिलकुल खुल के बात कर सकते हैं।'

'इन लोगों को मालूम है कि चकबन्दी होने वाली है? किसी के हाथ लगेंगे बढ़िया खेत और किसी के मत्थे पड़ेंगे घटिया ही घटिया। उस पर लगान ड्योढ़ा! पर अपने को क्या करना है। नाप तौल की,

काराज़ में दर्ज़ कर लिया, फिर अपने घर। अच्छा है जो कुछ न हो उठे।'

'सब जानते हैं, पर गाँव में फूट जो है। एक हो जावें तो न टैक्स लगे और न मुफ्त की मिहनत करके हाथ में ठट्ठे पड़ें।'

छदामी ने हुक्के पर चिलम रख दी। बोला, 'इससे तो ज़िमीदारों की बेगार भली थी। रास्ते पर हम अकेले चलते हों तो उसे सुधारते बनाते फिरें। कूड़ा साफ़ करो! नालियां काटो!! यह करो वह करो!!! नाकों दम आ गया है। अब हमारे पुरखों के खेत मिटाने को फिर रहे हैं।'

बनमाली ने सुझाया,—'तो इन्हें लिखा क्यों नहीं देते कि चकबन्दी नहीं करानी है। शाम को समिति की बैठक है, उसमें भी कह देना, बस।'

'लिख तो हम सब लेंगे, पर ऐसा करो कि साँप मर जावे और लाठी न टूटे। दो एक खेतों की चकबन्दी करा देना, बाक़ी से इनकार कर देना। मैं साध लूंगा।'

'जो कुछ आप और ये ठीक समझें, सो करो।' छदामी ने कहा।

'सब हो जायगा, पर भाई, हमारे भी पेट लगा है; बाल बच्चे हैं। सरकार तो ऐसी अन्धी बहरी है कि क्या कहूँ। आप ही कहिये बनमाली जी, आपसे बढ़कर देश में हैं कितने शहीद? मुझे कोई गिनाये तो जानूँ पर हाय रे भगवान, इनके लिये किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी!' कहकर कर्मचारी ने छप्पर पर निगाह उठाई।

'देखिये तो आप में क्या क्या करता हूँ,'—बनमाली बोला, 'इन सबके दांत खट्टे न किये तो मेरा नाम नहीं। और भाई छदामी, इनके घर खेती तो होती नहीं। कुछ सत्कार कर देना तो काम बन जायगा।'

छदामी ने हाँमी भरी। कर्मचारी ने विषयान्तर किया।

'यहाँ बिजली आयगी! ह! ह!! ह!!! मानो उस पर टैक्स लगेगा ही नहीं। घर में नहीं हैं दाने, अम्मा चलीं भुनाने! खेतों में

बिजली के खम्बे गाड़े जायेंगे। चकबन्दी हो जाने पर जिसके खेत में ये सनीचर खड़े कर दिये जायेंगे, उसके खेत में हल तो चलेगा क्या, बैल भी न घुसने पावेंगे। बैल ने कन्धा या सींग रगड़े नहीं कि वह सनीचर भन्नाया और नहर या बिजली के अफ़सर ने मुक़द्दमा चलाया। और, आपने सुना कि जिनके खेतों पर मशीनों से बंधियाँ डाली गई हैं उनसे चार रुपया फ़ी एकड़ हर साल जल कर लिया जावेगा? पानी भरेगा खेतों में इन्द्र देवता का टैक्स लेंगे नहर मुहकमें वाले। और, हे भगवान, हमारे देश में लगान की जितनी दर है, उतनी दुनियां के किसी कोने में नहीं। उस पर भी और बढ़ेगा!'

छदामी झल्लाया,—'हम मर जायेंगे तब हो पावेगा यह सब!'

× × × ×

देशराज की हवेली के आँगन में संध्या के पहले ही सहकारी समिति की बैठक हुई। एक विशेषता थी, बाँगुर्दन समिति की वार्षिक बैठक भी यहीं और उसी समय रक्खी गई। अपना अपना निश्चय लिखते भर जाना था। देशराज की अनुपस्थिति में सनेही को बैठक का प्रधान बनाया गया। बाँगुर्दन समिति का प्रधान बटोले था ही।

पहले जात बिरादरी के झगड़े तै करके सहकारी चर्चा का मार्ग स्वच्छ किया गया—नाइयों-बसोड़ों का झगड़ा, दमरू का बहिष्कार इत्यादि। उन्हें कुछ दान पुण्य करना पड़ा, दमरू के सिर पङ्गत खिलाने का खर्चा रहा।

तो भी, बिरादरी के ये झगड़े कम दामों में सुलझाये गये, क्योंकि सभी जातियों के लोग सहकारी समिति में थे और उनकी पञ्चायत में अधिक उदारता को गुञ्जाइश मिली। फिर खर्च, बीज, सरकारी मालगुजारी और रक्षित कोष के लिये रुपये अलग करके सनेही ने प्रस्ताव किया, 'बीमारी और अन्य विपत्तियों के आ पड़ने की हालत में मैम्बरों की सहायता के लिये एक कोष अलग रख लेना चाहिये।'

यह जल्दी से स्वीकृत हो गया। बाँगुर्दन समिति ने भी इसे अङ्गीकृत किया।

दूसरा प्रस्ताव,—'चकबन्दी बिना विलम्ब के कर ली जावे।'

सनेही ने इसके लाभ समझाये। विवाद हो पड़ा।

छदामी ने कहा, किसी के एक जगह इकट्ठे अच्छे खेत और किसी के एक ही जगह इकट्ठे बुरे खेत! फिर उनमें गड़ेंगे बिजली के खम्बे। मैं कभी नहीं मानने का।'

'खेत तो आ जायंगे समिति की मालिकी में, पैदावार पाते रहोगे। कोई झंझट नहीं। आम खाने से काम या गुठलियां गिनने से?' टहल बोला।

और सनेही ने छदामी से हँसकर पूछा, 'किसने बहकाया है तुम्हें?

'ओ हो! जैसे पढ़ों लिखों ने ही समझदारी का ठेका लिया हो। मैं सब जानता हूँ।' छदामी ने जानकारी का सिर हिलाया।

'जानते हो दादा यह मन्त्र किसने कान में फूंका है!' टहल ने कहा।

बटोले बोला, 'कोई कहे या न कहे, मैं बतलाता हूँ—ये छोटे छोटे सरकारी अफ़सर लगाया करते हैं ऐसी सुरङ्गे। मुझ ही को बहकाया था, पर हम लोग तो चकबन्दी का लाभ समझ गये हैं, इसलिये अवश्य करायंगे।'

बनमाली ने वोट लेने के लिये आग्रह किया। छदामी के साथी बनमाली का मुंह देखने लगे। टहल खिलखिला पड़ा।

सनेही ने रायें गिनीं तो वे लोग न इधर न उधर। प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। बाँगुर्दन समिति में सर्वसम्मति से। अब समस्या आई मुनाफ़ा बाँटने की। सनेही इसे सबसे पीछे लेना चाहता था, परन्तु वह बीच में आ गई। बनमाली ने इसे उठाया।

जिन्होंने अपने खेत समितियों में लगा रक्खे थे उन्होंने प्रति एकड़ के हिसाब से पैदावार बँटवानी चाही। फिर भूमिहीन मजदूरों के लिये क्या बचता जो बहुसंख्यक थे? समस्या ने गहरी उलझन का रूप पकड़ा। मजदूर उखड़ पड़े।

गरमियों में हमने लू खाते और पेट काटते नहर की नालियां खोदीं, कुंवार कातिक की गरमी में भरके पूरे। सड़क हम बनावें, हाथ मिहनत की जहां ज़रूरत पड़े हम पेले जावें, मुनाफा बँटाई के बखत ज़मीन वाले कहें कि हमें दे दो पचहत्तर फ़ी सदी ! हमने छोड़ी समिति। लाओ हमारे हिस्सों के रुपये।'

कम से कम पचास मज़दूर तुरन्त इस्तीफ़ा देने के लिये अड़ गये।

एक ने चिनोती दी,—'कर लेना खेती बिना मजदूरों के।'

बनमाली मुस्कराया,—'तुम लोग इस्तीफ़ा दोगे तो मैं भी समिति को छोड़ दूंगा।'

ज़मीन वाले बिगड़ पड़े,—'मज़दूरी न करोगे तो खाओगे क्या ? तुम इस्तीफ़ा दे दो। हम भी छोड़ देंगे। रोज की किलकिल से बचे। जैसे पहले खेती करते थे, वैसे ही फिर कर उठेंगे। मजदूरों का घर भर दो फिर बचता ही क्या है ? उन्होंने मज़दूरी बढ़ा दी, चोट हमारे ऊपर पड़ी। हम खेत वापिस लिये लेते हैं फिर लेवें मुंनाफे में अन्न। देखें कहां से लेते हैं।'

बनमाली बोला, 'दोनों की बात में सार है। असल में समिति का ढङ्ग ही कुढंगा है। ऐसे नहीं चल सकती। टूट जाय तो किसी का कुछ नहीं बिगड़ता।'

सनेही खिलखिला पड़ा।

'टहल भाई, एक पूँजीवाद पैसे वालों का है, दूसरा राजनीति वालों का। कोई उसे केन्द्रित करना चाहता है, कोई संगठन और तोड़-फ़ोड़ के द्वारा इसे,' सनेही ने कहा।

बनमाली तिलमिला गया। जनक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, 'समितियां टूटने के लिये नहीं बनी हैं। डॉक्टर साहब और मास्टर साहब बेलौस हैं। इनकी राय पर छोड़ दो। वे जो कुछ निर्णय करेंगे, सब के लिये लाभदायक होगा।'

बनमाली ने आतंक जमाने की कोशिश की,—'तुम अभी बच्चे हो, किसी भी समिति के मैम्बर नहीं। बोलने का हक नहीं है, बैठ जाओ।'

जनक की भोंह तन गई, परन्तु सनेही और टहल के संकेत पाकर बैठ गया।

उसकी बात का कुछ प्रभाव पड़े बिना न रहा।

सनेही ने कहा,—'परिश्रम और उसके फल को आपस में जोड़ने वाली कोई कड़ी तो होनी ही चाहिये।'

बटोले ने अपना अनुभव सुनाया,—'हमने तो अपनी निजी और समिति में लगाई खेती में भी बटियारे कर लिये हैं; कोई झगड़ा नहीं रहा।'

सनेही और टहल जानते थे कि भविष्य के लिये इस प्रणाली में भी सहिकारिता के लिये संकट है—

निजी खेती की नई जड़ें निकलेंगी,—परन्तु एक विचार में सन्तोष था—जो लोग साथ हैं वे तो साथ रहेंगे ही, जो खिलाफ़ हैं वे मंडलाते भले ही रहें, गरजें बरसेंगे तो नहीं। सनेही ने समझौते का मार्ग पकड़ा—

'भूमि वाले मैम्बर अपनी भूमि का लगान सरकारी दर पर ले लें; हर एक को भूमि की क़ीमत कूत ली जावे और उस क़ीमत को समिति के हिस्सों में फैलाकर उतने हिस्सों पर मुनाफ़ा बांट दिया जाय। मजदूर मेम्बरों को हिस्सों पर मुनाफ़ा मिलेगा और भूमिधरों को भी।'

छदामी बोला, 'मजदूरों के हिस्से हैं ही कितने ?'

बनमाली ने रोड़ा अटकाया,—'मैं भी यही कहने वाला था। भूमिधरों को रकबों के हिसाब से मुनाफ़ा दिया जाना चाहिये और मजदूरों को उनके हिस्सों पर; ऊपर से बोनस।'

मजदूर मैम्बरों ने सोचा, सनेही की बात में सार है, बनमाली अपने स्वार्थ की कह रहा है। उन्होंने सनेही के सुझाव का समर्थन किया।

बटोले बोला, 'चकबन्दी हो जाने के बाद हम अपने सब निजी खेत समिति में डाल देंगे। दो दो जगह ध्यान बांटना व्यर्थ है।'

'शाबाश!'—टहल उमङ्ग में चिल्लाया,—'अभी क्यों नहीं लगा देते? चकबन्दी तो होवेगी ही।'

बटोले राज़ी हो गया। टहल उससे लिपट गया।

'मैं समिति से इस्तीफ़ा दे दूंगा,' बनमाली ने अनिश्चय के स्वर में कहा।

सनेही ने मिठास के साथ वर्जित किया, 'अभी नहीं। कारवाई पूरी होने के बाद कहियेगा।'

'समितियाँ टूटेंगी नहीं,' जनक ने चुटकी ली। सनेही ने झंझट बढ़ने नहीं दिया,—

'भाइयो, मैं बहुत घमण्डी हो गया था। टहल भाई और जनक से मैंने बहुत सीखा है—'

'अरे! अरे!! आप यह क्या कहते हैं!!!' टहल ने तो कहा ही और भी कई कण्ठों से निकला।

सनेही कहता गया,—'समिति में एक बिना लिखा पढ़ा नियम होना चाहिये कि यदि कोई ग़लती करे तो उसे मान ले और कह डाले। अपनी ही छानबीन करते रहना अपने को बढ़ाने का बड़ा अच्छा नुस्खा है।'

एक मज़दूर बोला, 'हम तो समिति को नहीं छोड़ेंगे, चाहे कोई कुछ कहे।'

सनेही ने कहा,—'क्यों छोड़ो? समिति की निजी भूमि ही इतनी हो गई है कि सबकी गुज़र हो सकती है। और फिर भरकों के पुर जाने से नये नये खेत बनते चले जावेंगे। खजूर के पेड़ों से गुड़, महुआ इत्यादि से फलफूल भी जल्दी मिल सकेगा। शहद की मक्खियां पालेंगे जिनसे घर बैठे शहद मिलेगा। जब शहतूत के पेड़ लग जावेंगे तब रेशम पैदा करने का भी काम चल पड़ेगा—'

बनमाली ने आवाज़ा कसा,--'कल्पना का स्वर्ग है।'

'कल्पना का नहीं, यथार्थ का स्वर्ग है।' सनेही ने उत्तर दिया।

'आप तो आगे की काररवाई चलायें। ये तो कहते ही रहेंगे" बटोले बोला।

बनमाली ने देखा कि उसकी पराजय होने वाली है।

सनेही ने कहा, 'हर एक मैम्बर के लिये ज़रूरी होगा, कि किसी न किसी दस्तकारी का काम सीखे। फ़िज़ूल खर्ची बन्द करनी होगी। आपस में कोई भी लैन-दैन नहीं कर सकेगा।'

बटोले को खटका, परन्तु किसी ने उजर नहीं की। बात मान ली गई।

सनेही ने प्रस्ताव किया,—'लिखने पढ़ने और निगरानी का काम करने वाले मैम्बरों को साधारण मजूरी का दुगना दिया जावे, मजूरी के घण्टे उनसे आधे।'

टहल ने विनय के साथ विरोध किया,—'ज्यादा है, दादा।'

सनेही मुस्कराया,--'भारत से बाहर के कुछ देशों में तो तिगुना तक दिया जाता है।'

बनमाली बोल उठा,—'कम है।'

अन्त में सनेही की बात मान ली गई।

उसने अपने लिये कहा, 'परन्तु मैं उतना नहीं लूंगा. जो दर स्वीकृत की गई है उसकी आधी लूंगा। जितने घण्टे काम करना चाहिये उतने से कम काम किया तो उसी हिसाब से मजूरी भी कम। और, यह नियम सबके लिये लागू होगा।'

जनक ने बनमाली से पूछा,—'आपने क्या निश्चय किया—समिति में रहेंगे या इस्तीफ़ा देंगे ?'

'फिर बोला !' बनमाली ने डाँटा।

'बात तो जनक ने ठीक कही,' बटोले ने कहा।

'नहीं दूँगा इस्तीफा, बस ? यही चाहते हैं न सब लोग ?' बनमाली ने सोचा कि सहकारी में अभी तो लाभ है। कोई चाहते हों या न चाहते हों, उस समय बनमाली नहीं चाहता था कि छोड़ूँ।

लोगों ने मुश्किल से हँसी रोकी।

'अब एक बात और रह गई है,'—सनेही ने कहा,—'खाद के ढेर अलग अलग न लगाकर गाँव के बाहर एक बड़े गड्ढे में रखते जाना चाहिये। किसका कितना खाद कूड़ा गड्ढे में पड़ा इसका हिसाब मन्त्री रक्खेंगे। उसी हिसाब पर जितना दाम तै हो खाद वालों को चुका दिया जाया करेगा।'

'जो अपनी अलग खेती करते हैं वे क्या करेंगे ?' छदामी ने पूछा।

'वे अपना अलग रक्खें। गाँव में रखने से बीमारी फैलेगी, बाहर कहीं जगह ढूँढ़ लें, नहीं तो पञ्चायत में मुक़द्दमा भुगतें।' बटोले ने उत्तर दिया।

बहुमत से यह बात भी मान ली गई। फिर पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। पदाधिकारी वे ही रहे जो पहले थे। देशराज और बनमाली के लिये सनेही ने अनुरोध किया था जो स्वीकृत तो हो गया, परन्तु कुछ अरुचि के साथ बैठक समाप्त हो गई।

× × ×

सनेही और टहल को एकान्त का अवसर मिला।

'दादा, आप आज बहुत संभाल ले गये। कुछ लोग सहकारी खेती को चौपट करने की ठान कर आये थे, जैसे बनमाली।'

'मेरे भीतर एक विश्वास काम कर रहा है कि अध्यात्मवाद और भौतिकवाद को जोड़ने वाली एक मज़बूत कड़ी सहकारिता ही है। यथार्थ के सिंहासन पर आदर्श की मूर्ति का स्थापन। परन्तु टहल, मुझ

अकेले का विश्वास कर ही क्या सकता है यदि तुम्हारा बल मुझे प्राप्त न हो ?'

'दादा, ऐसी बात न कहो, मेरी आँखें तो अब खुल रही हैं।'

'तो घर चलो। खाने को अच्छा मिल गया तो और भी खुल जायेंगी।'

'भावी न देंगी तो उनसे लड़ पड़ूंगा।'

तुम्हें तो लड़ने के लिये कुछ चाहिये, फिर वह कहीं भी मिले,' सनेही ने कहा और हँस पड़ा।

[६०]

नाहरगढ़ के सङ्गीत समारोह का अन्तिम दिन आ गया। छः दिन बड़ी धूमधाम रही। सभी ने अपनी अपनी कला की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया। बाहर से अनेक श्रेणियों के दर्शक आये थे। उस दिन तो भीड़ बहुत बढ़ गई थी।

कलाकारों की सराहना के साथ बाघराज की वाह वाह भी बहुत हो रही थी। जगनू ने मन में कहा, 'इस रङ्गीली फ़िल्मी पल्टन की कवायद परेड खूब रही!'

'राजा गये तो इनके साथ कला भी बिदा ले जायगी।' कई सांस भर-भर के कह रहे थे।

थोड़े से भी थे जो बेबूझ पहेली सी कह रहे थे, 'राजाओं की बन्दगी छोड़कर कला अब जनता से हाथ मिलाने आ रही है।'

अञ्जना ने अन्तिम प्रदर्शन के लिये एक कठोर परीक्षा रक्खी। उसने कार्य-क्रम में रक्खा कि एक सीमित समय के भीतर गायिकायें आठ रागरागनियों की रागमाला गायें और नर्तकियां आठ प्रकार के नृत्यों को एक क्रम में गूँथकर नाचें।

जिन्होंने यह कर दिखलाया उनको अलग पारितोषक दिये जाने की घोषणा की गई। अन्त में अञ्जना के हाथों बीस हज़ार रुपये के पुरस्कार वितरित कये गये।

दूसरे दिन भीड़ छँट गई। कलाकारों को विश्राम लेने के लिये रोक लिया गया। तै हुआ कि दिन में आराम कर लेने के बाद रात में कलाकार बाघराज की मोटर ट्रक और एक कार से चले जावें और थोड़ी देर सुहाना में देशराज के घर ठहरते हुये दूसरे दिन की गाड़ी से अपने-अपने घर।

सूर्यास्त के उपरान्त बाघराज ने देशराज को पच्चीस हज़ार रुपये के नोट सम्भलवा दिये।

'उन दो पेटियों के माल का दाम चुक गया और आगे का काम चलाने के लिये कुछ पेशगी आपके पास पहुँच गई।' बाघराज ने कहा।

देशराज ने जी भर कर धन्यवाद दिया और सुहाना जाने की तैयारी में लग गया।

'मैं ज़रा राजा साहब के पास हो आऊँ; कुछ और हो सके तो जट लाऊँ। पिछला नुक़सान पूरा करने के लिये और भी तो चाहिये। आखिर दो पेटियों का माल तो उन्हीं की ग़लती से खोया।' कह कर अञ्जना हँसती हुई चली गई।

बाघराज से बिदा लेने के लिये कलावन्तियां कमरे में थीं। अञ्जना ने द्वार पर आते ही झिझक व्यक्त की। बाघराज ने उसे सम्मान के साथ भीतर बुला लिया और उन सबको बिदा दे दी। रात हो गई थी। कमरे में हण्डे का प्रकाश कर दिया गया था। वे दोनों अकेले रह गये।

बाघराज ने अञ्जना के चेहरे पर इतनी मृदुल मुस्कान और मदीली चितवन पहले कभी नहीं देखी थी।

अञ्जना ने ज़रा से कांपते कोमल स्वर में कहा, 'मेरा मन नहीं चाहता कि चली जाऊँ। यहाँ आते ही स्वस्थ हो गई। लगता है जैसे कभी बीमार थी ही नहीं। बहुत समय बाद आ पाई। देखूँ कब लौट पाती हूँ।'

'आपने कहा था कि सुहाना में चार छः दिन ठहर कर लौट पड़ूंगी। चाहता तो मैं भी हूँ कि आप बनी रहें। शिकार खिलाऊं, घुमाऊं-फिराऊं आपको।'

'क्या करूं बस नहीं चलता। वे चार छः दिन सुहाना में कैसे कटेंगे, कह नहीं सकती।' अञ्जना ने आह छोड़ी और द्वार की तरफ़ ताका कोई सुन तो नहीं रहा है, कोई आ तो नहीं रहा है: बाघराज की पीठ द्वार की ओर थी। अञ्जना के स्वर और भाव ने उसे हिला दिया। यह मुझसे प्रेम करने लगी है नहीं तो इतना सकपकाती क्यों? उसी क्षण उसे कालीसिंह का वाक्य याद आया—बड़ी खतरनाक औरत है! उहूँ!

कालीसिंह तो बिना सींग–पूँछ का जानवर है !! बाघराज ने अञ्जना की आँखों से आंखे मिलाई। उनमें मदीलापन था या जल भर आया था ? नीची पड़ गईं । क्या कोई अभिनय है ? स्थिरता के साथ देखने का प्रयत्न किया। अञ्जना के होठों पर एक सूक्ष्म स्पन्दन था ।

बाघराज ने अञ्जना की आंखों में और होठों पर जो कुछ देखा, वह उसके शब्दों से कहीं ज्यादा था ।

बाघराज के गले में कम्प आया,—'अञ्जना देवी, मैं अपने मन की आपसे क्या कहूँ । आज न जाने क्या से क्या हो गया है ।'

'महाराज ! मेरे महाराज !!' अञ्जना के मुंह से निकला और वह उठकर दरवाज़े तक गई। किसी को भी वहां न देखकर उसने पीछे से बाघराज के गले में हाथ डाल दिये । यह अभिनय नहीं है,—मन में बिजली सी कोंधीं और बाघराज ने बैठे–बैठे ही अपने दोनों हाथ पीछे की तरफ़ बढ़ाकर उसे समेट लिया ।

कुछ क्षण उपरान्त अञ्जना ने कहा, 'आपने अपने जज साहब को समारोह के जज को कुछ नहीं दिया ! मैं और कुछ नहीं चाहती केवल यहाँ स्थान चाहती हूँ' और उसने बाघराज की छाती पर अपनी एक गदेली पसार दी ।

'वह तो आपका हो ही गया है, और जो कुछ यहां है उसे आप अपना समझिये ।'

उसी समय देशराज कमरे के दरवाज़े तक आया और छिपकर खड़ा हो गया । अञ्जना को आहट मिली और थोड़ी सी परछाहीं दिखलाई पड़ी । अञ्जना हटने को हुई परन्तु बाघराज के हाथ ढीले नहीं पड़े । अञ्जना ने पीछे मुड़कर देखा । हटने की धीरे-धीरे, परन्तु दृढ़तापूर्वक कोशिश करती हुई अञ्जना कुछ ऊँचे स्वर में बोली, 'तो सङ्गीत समारोह के जज साहब आपने जो कुछ देने का वचन दिया है, उसे भूल मत जाइयेगा ।' संयत करने पर भी गला अब भी थोड़ा सा काँप रहा था ।

बाघराज ने अपने हाथ खींच लिये। अञ्जना अलग हो गई।

बाघराज उल्लास में आ गया–'कह तो दिया–'

देशराज ने दांत पीसे और तुरन्त चला गया।

'कोई आया था!' अञ्जना घबरा कर बोली।

'देखूं', बाघराज भी भयभीत हो गया। उठकर बाहर ताका-झांका परन्तु वहाँ किसी को न पाया।

'होगा, मुझे परवाह नहीं है,'—अञ्जना ने दृढ़ता दिखलाने का प्रयास किया,–'अब मैं चलूं, कहीं कोई और न आ जाय। चार छः दिन में तो लौट ही पड़ना है।' अञ्जना चलने को हुई।

'क्या बतलाऊँ; इतने दिन बाद आज हम दोनों एक दूसरे के सामने खुले। खैर, चार छः दिन की तो बात ही है। तब बक घड़ियां गिनूंगा। जब आप आवें, तब यहां का सब कुछ अपना समझें।'

फिर एक क्षण ठहर कर बोला, 'मैं देशराज जी से एकाध दिन रुक जाने के लिये कहूँ।?'

'नहीं, अब जाने दीजिये।'

बाघराज ने कुछ व्यथित होकर बिदा किया।

अञ्जना जब देशराज के पास पहुँची, वह तैयार होकर बैठा सिगरिट पी रहा था।

'बड़ी देर लगादी!' कुछ अनमनें स्वर में देशराज ने कहा।

'तुम कहीं गये थे क्या?' अञ्जना ने प्रश्न किया और उसका उत्तर पाने की प्रतीक्षा न करके तुरन्त बोली, 'नाटक रचते रचते देर लग ही गई।'

'कैसा?'

'अजी कुछ विलक्षण सा। बड़ा कन्जूस है। पर मैंने पिघला लिया एकाध दिन के लिए ठहर जाओ तो खासी अच्छी रक़म लेकर चलें।'

देशराज के कलेजे में छुरी सी छिद गई। 'एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। देखना है कि सुहाना में अन्न वन्न का क्या हुआ। समिति की बैठक में क्या तै हुआ।'

उसकी अन्यमनस्कता और रुखाई से अञ्जना ने ताड़ लिया कि बहुत करके यही बाघराज के कमरे तक गया था।

हँसकर बोली, 'समय नहीं है, नहीं तो सुनाती कि मैंने बाघराज को किस अभिनय से सीधा किया। अब जो चाहो सो उससे कराना और लेना।'

देशराज ने रीती आँखों उसकी ओर देखा।

'घर चलकर ब्योरेवार सुनाऊँगी, हँस पड़ोगे।' अन्जना ने उसके गले में हाथ डाल दिये। जैसे वहाँ हाथ रक्खे थी!

देशराज का मन कुछ स्थिर हुआ।

'जगनू को सामान उठाने के लिये बुलाया। वह आता ही होगा।' उसने कहा।

'मैं सामान रखवा दूंगी, तब तक बाघराज से बिदा ले आओ।

देशराज बिदा लेने चला गया।

[६१]

आगतों की भीड़ को बिदा करते समय बाघराज की अस्थिरता छलकी जा रही थी। किसी ने उसे व्याकुलता समझी, किसी ने वियोग का कष्ट। अञ्जना ने उसमें अपना प्रभाव देखा और वह किसी बड़े जुआड़ी की तरह भारी दांव के जीत लेने की कतर ब्योंत करने लगी। देशराज ने उसमें मूर्ख का अगौरव अवगत किया। बाघराज को हण्डों की रोशनी लगी जैसे कांप रही हो और हण्डे झूल रहे हों। मोटरों ने भर्र भर्र की, अपने लैम्प जगाये और चलदीं। बाघराज ने अपने खास ड्राइवर को तुरन्त बुलाया।

'सुहाना जाने के लिये एक कच्ची रास्ता भी है न जो आठ मील जाकर पक्की सड़क में मिल गई है ?'

'हाँ सरकार।'

'तुरन्त कच्ची रास्ता से जाकर पक्की सड़क पर दो तीन मील चल कर कालीसिंह को मेरा संदेशा दो कि अञ्जना देवी को न छुये, उनपर छाया भी न पड़ने पावे। आगे वाली मोटर में गईं हैं।'

'पर सरकार कच्ची रास्ता तो बहुत ऊँची नीची है, खाई जैसी लीकों वाली।'

'तो पक्की सड़क से ही जाओ, उन मोटरों से आगे निकल कर मेरी बात का भुगतान करो।'

'और अगर मोटरें भी तेजी के साथ जाती हुईं तो सरकार—'

'अबे गधे, जाता है या नहीं यहां से ? कच्ची रास्ता से निकलजा। मैं शिकार के लिये कच्ची से कई बार गया हूँ।'

'सरकार, ट्रक की ऊँचाई कच्ची को भुगत लेती है, पर यह खासगत मोटर तो नीची है।'

'कमबख्त जा यहां से ! कर जल्दी जो मैंने कहा है !'

ड्राइवर चला गया। उस दिन वाली बात का स्मरण हो आया जब वह दीवार से चिपका हुआ कालीसिंह और बाघराज की बातचीत सुन रहा था; तो यह थी वह खुसफुस जो मेरे कानमें नहीं पड़ पाई थी! उस शैतान औरत ने महाराज पर उल्लू की लकड़ी फेरी और मुझे गालियां दिलवाईं! खैर, मैं तो नमक की पालूंगा ही।

झल्लाहट में ड्राइवर ने गाड़ीखाने से मोटर निकाली और तेजी के साथ चल दिया। उसे अपने आगे सड़क की मोड़ों पर मोटरों के लैम्पों की झांईं पड़ जाती थी। अभी निकालता हूँ इनसे आगे अपनी गाड़ी। उसने गति और भी बढ़ाई। यकायक चक्के से आवाज निकली—फस्स! फू ऊ!! गति धीमी पड़ गई और गाड़ी ऐंड़ी-बेंड़ी चलने लगी। ड्राइवर ने साध लिया, नहीं तो सड़क किनारे के एक पेड़ से टकरा जाती। रोक कर देखा तो एक पहिया बिलकुल बैठ गया था। उसमें बैल के नाल का टूटा टुकड़ा धँस गया था। ड्राइवर उस चक्के को निकालकर दूसरे के चढाने की धुन में लग गया। वे मोटरें तेजी के साथ बढ़ती चली जा रहीं थीं। सबसे आगे देशराज की थी।

बारहवें मील पर पहुँचकर उन मोटरों को यकायक रुक जाना पड़ा। सड़क पर बड़े-बड़े पत्थर रक्खे हुये थे। मोटरें कतराकर भी नहीं निकल सकती थीं।

जैसे ही मोटरें रुकीं सड़क किनारे के निकटवर्ती पेड़ों की आड़ से मोटर लैम्पों पर पत्थर बरस पड़े। लैम्प टूट गये। रोशनी गुल, पीछे की मोटर ट्रक की केवल एक बत्ती जगमगा रही थी। धांय! बन्दूक की आवाज के साथ कानी मोटर ट्रक अन्धी हो गई। पेड़ों की आड़ से डाकुओं ने निकल कर मोटर यात्रियों की तूफताप शुरू कर दी। सबसे पहले आक्रमण देशराज की मोटर पर हुआ। देशराज ने उतर कर लिपट झिपट की, परन्तु लातों घूंसों और डण्डों की मार से गिर गया। अञ्जना की थराई विनती व्यर्थ हुई, अन्य कलावन्तियों की भी। जिन्होंने

ज़रासा भी प्रतीकार किया वे पिट गईं। देशराज के पच्चीस हज़ार रुपये, अञ्जना के गहने, कलावन्तियों के पुरस्कारों के सारे रुपये और गांठ के रुपये पैसे तथा गहने भी लूट लिये गये। साज सिङ्गार के कपड़ों के बक्स तक डाकू उठा ले गये। यह सब नरक-लीला पाव घंटे के भीतर ही घट गई।

आध घंटे बाद जब बाघराज का ड्राईवर मोटर लेकर आया तब उसने अपनी गाड़ी के तेज़ उजाले में बत्तियों के टूटे कांच, सड़क पर छोटे बड़े पत्थर देखे। देशराज अपनी मोटर की बग़ल में सड़क पर बेहोश पड़ा हुआ था। उसके सिर से खून निकल रहा था, अञ्जना सिसक रही थी। अन्य स्त्रियों में कोई बिलख-बिलख कर रो रही थीं, कोई अचेत पड़ी थीं। उनके साज़िन्दे और मोटरों के ड्राईवर बिना पिटे कुटे ही अधमरे से जान पड़ रहे थे।

बाघराज का यह ड्राईवर हक्का-बक्का सा रह गया। पहली भावना जो उसके मन में उठी वह थी लौट कर भाग जाने और बाघराज को समाचार देने की। परन्तु उसे अन्य ड्राईवरों, जगनू, साज़िंदों और रोती-बिलखती स्त्रियों की करुण पुकारों को मानना पड़ा—ख़ास तौर से अञ्जना की पुकारों को। देशराज को मोटर में रख लिया गया। जगनू मोटर चलाने के लिये जा बैठा। बत्तियां सब गाड़ियों की असमर्थ हो गई थीं। उजेला केवल उस मोटर में था जो ड्राईवर नाहरगढ़ से अभी लाया था। सड़क के पत्थर हटा दिये गये। आगे आगे बत्तियों वाली मोटर और पीछे पीछे वे अंधी मोटरें धीरे धीरे सुहाना की ओर चलीं।

[६२]

रविवार का दिन था। सवेरे ही टहल सनेही के घर पहुँचा।

'दादा स्कूल में लड़के बढ़ गये हैं। छोटी छोटी दस्तकारियां सीखने की कक्षायें खोल दी है, कुछ नये कमरों के बनाने की ज़रूरत पड़ गई है। ईंट पत्थर का प्रबन्ध कर लिया है। लकड़ी खपड़ों का भी हो ही जायगा। हम और हमारे विद्यार्थी कमरे बनायेंगे। आप आशीर्वाद देने चलिये।' टहलने कहा।

'इनसे तो वाद-विवाद माँगा करो,' राजदुलारी हँसी।

'मेरे और टहल के बीच मे अब शायद ही कोई मतभेद रहा हो। यदि कोई होगा भी तो तुम्हारी पकौड़ियाँ तो हैं मतभेद मिटाने के लिये।' सनेही ने कहा।

'अभी खिलाऊँ?' राजदुलारी ने पूछा।

'अभी नही भावी, दोपहर आकर पकौड़ियों के साथ कुछ और भी लूँगा। दादा उद्घाटन कर देंगे। नीव खुदाई का काम शुरू हो जायेगा, मैं लकड़ी की खोज में निकल जाऊँगा। फिर दोपहर तक आ जाऊँगा, तब तक दादा मरीज़ों से निबट लेंगे।' टहल ने उत्तर दिया।

'लकड़ी में तुम्हें दिलवा दूंगा,'—सनेही ने कहा, 'देशराज ने पारसाल जो लट्ठे कटवाये थे उनके आँगन में पड़े हुये हैं। यदि कभी वहां रङ्ग-मञ्च बना तो कुछ उस में काम आ जायँगे, बाकी स्कूल के कमरों के लिये।'

'रङ्गरेलियों के लिये निकल गया है उस चुड़ैल को लेकर। जो कभी नहीं सुधर सकता, उसे तुम समझते हो कि सुधार लोगे। उसका तो नाश अवश्यम्भावी है। वह लकड़ी नहीं देगा। व्यर्थ ही हेटी कराओगे।' राजदुलारी बोली।

'अब मैं तुमसे विवाद करूंगा। जिमींदारी एक न सुधरने योग्य

परम्परा थी, उसका उन्मूलन हो गया; परन्तु व्यक्ति सुधरेंगे और बने रहेंगे।'

बाहर से किसी ने बुलाया।

'तो दादा पहिले हमारा उद्घाटन', कहता हुआ टहल उसके साथ बाहर आया। माल विभाग का वही निम्न-कर्मचारी खड़ा था। उसने नमस्ते की। सनेही ने शिष्टाचार के साथ भीतर बुला लिया। टहल को बैठना पड़ा।

कर्मचारी ने कहा, 'सूखी बैटरी का रेडियो सैट आपकी समिति को दिया गया है। आपके घर भेज दूं डॉक्टर साहब ?'

'किसी के भी घर नहीं। स्कूल में लगा दिया जावेगा। ये बैठे हैं बाँगुर्दन समिति के मन्त्री। इन्हीं के हवाले कर देना।'

'भेजा तो गया है सुहाना समिति के लिये।'

'कोई भेद नहीं, दोनो एक हैं। मेरी ज़िम्मेदारी पर लगा दीजिये। देशराज या कोई भी आक्षेप नहीं करेगा।'

'बनमाली साहब तो करेंगे।'

'भुगत लूंगा। आप चिन्ता न करें।'

'अच्छी बात है। शहद की मक्खियां पालने के लिये बक्स आये हैं। उन्हें कहां रखवा दूं ?'

'बनमाली रक्खेंगे एकाध ?'

'इनकार कर दिया है। कहते थे यह इल्लत नहीं पालता।'

'मैं रखवा दूंगा। नाम बतला दूंगा आपको। और कुछ ?'

'आप शायद जल्दी में हैं ?'

'जी हां।'

'तो भी थोड़ा सा समय दीजिये। मुझसे पूछा गया है कि सुहाना और बाँगुर्दन में खजूर के कितने पेड़ हैं ? पटवारी को मालूम नहीं। आपको सब पते हैं। मुझे गिनती की रिपोर्ट आज ही करनी है।'

'इतनी जल्दी !'

'यह सरकार ही ऐसी है। कभी नीम के पेड़ गिनवाती है, तो कभी खजूर के ! किसी दिन करोंदी के काँटे गिनवाने का आदेश देगी !! हम लोग तो परेशान हैं। कोई भी काम नहीं कर पाते।'

'पटवारी को ले जाइये और गिन डालिये।'

'अन्दाज से बतला दीजिये वैसे तो पन्द्रह दिन में भी गिनती न हो सकेगी।'

'हुकुम कब मिला था ?'

'एक हुकुम है कि जिसकी बात करूं ?'

'मेरे अनुमान में तीन साढ़े तीन हजार खजूर होंगे।'

'तो लिख दूंगा, तीन हजार पांच सौ बयालीस हैं ! हुकुम मिले पन्द्रह बीस रोज हो गये; लेकिन चकबन्दी, गांव गांव रेडियो सैटों का बांटना, मधु मक्खियों के बक्स वगैरह वगैरह के मारे हैरान रहा। अब एक प्रार्थना और, फिर बस : राघवन साहब आप दोनों सज्जनों की बहुत मानते हैं। मेरी तरक्की की बात उनके कानों डाल दीजियेगा। मैं और कुछ नहीं चाहता आपसे।'

टहल झल्ला पड़ा,—'ये कहें या न कहें, मैं कह दूंगा कि आप सरीखे कर्मचारी सरकारी योजनाओं में सुरङ्गें लगाया करते हैं ! —'

सामने से जगनू हांफता हुआ दौड़ा आया।

'राजा साहब का सिर फट गया है ! डाकुओं ने लूटा मारा !!'

'क्या ?' उन लोगों के मुंह से निकला।

जगनू ने संक्षेप में दुर्घटना का समाचार सुनाया।

'आओ टहल,' सनेही ने कहा और इलाज का सामान लेकर जगनू के साथ चला गया।

हवेली के आंगन में मोटरें खड़ी थीं। चौकी की पुलिस आ गई थी। और बाहर गांव के लोगों की भीड़।

ड्राइवरों को हिदायत थी कि टस से मस न हों। उधर थाना और सदर सूचना भेज दी गई थी।

सनेही ने देशराज का उपचार किया और उन स्त्रियों का भी जिनमें से किसी का गला दबोचा गया था, किसी का हाथ मरोड़ा गया था, किसी का कुछ और किसी का कुछ। देशराज के एक बड़ी चोट सिर में तो थी ही, और भी बहुत सी अङ्ग अङ्ग पर थीं।

बाघराज की खासगती मोटर के ड्राइवर ने पुलिस से प्रार्थना की, 'दो गाड़ियाँ वे हैं और एक राजा देशराज की। उनसे मेहमान रेलवे स्टेशन तक पहुँच जायेंगे। मुझे नाहक रोक रक्खा है। महाराजा साहब नाहरगढ़ मेरे लिये परेशान होंगे।'

'क्यों ?' पुलिस के चीफ ने पूछा।

'क्योंकि वहां कोई दूसरी अच्छी गाड़ी नहीं है, शायद कहीं जाना चाहें। इसके अलावा उन्हें इस डाके की कोई खबर नहीं।'

'तुम इन गाड़ियों के पीछे-पीछे आये ही क्यों ? डाकुओं से जरूर तुम्हारा कोई वास्ता है।'

'मेरा !'

'जो कुछ भी हो। सदर से बड़े पुलिस अफसर और मैजिस्ट्रेट आ रहे हैं। उनके आने पर ही छुटकारा पा सकोगे। तब तक इधर उधर मत हिलना।'

ड्राईवर सकपका कर रह गया। सोच विचार में डूबने उतराने लगा। निकटवर्ती थाने का दरोगा कुछ सिपाहियों को लेकर आ गया और उसने ड्राइवर को हिरासत में ले लिया।

उपचार करते और देशराज को होश में लाते लाते सनेही को तीन घंटे लग गये। टहल वहां से चला गया था।

होश आते ही देशराज के मुंह से निकला,—'बाघराज बेईमान।'

दरोगा ने सनेही से अनुरोध किया, 'इनका अन्तिम बयान लिख लीजिये, कहीं मर न जावें।'

अञ्जना रोने लगी।

'अञ्जना ! अमर बेल—' कह कर देशराज फ़िर अचेत हो गया।

'अभी ठहरिये,' सनेही ने दरोगा से कहा,—'ये जियेंगे, बयान कराने की आतुरता मत कीजिये।'

थोड़ी देर पीछे सदर से मैजिस्ट्रेट और पुलिस के बड़े अफसर आ गये। मोटरों की फूटी बत्तियों की जांच आते ही की गई। मैजिस्ट्रेट ने किलपती हुई स्त्रियों का बयान लिया और जगनू का भी। जगनू ने बतलाया कि बाघराज का खासगती ड्राइवर डाका पड़ने के थोड़ी ही देर बाद आ गया था। उस ड्राइवर का भी बयान लिया गया। उसने असली बात के छिपाने का थोड़ा सा ही प्रयत्न कर पाया। फ़िर अपने आने के कारण की सारी कहानी कह दी। 'अब मारो चाहे पालो, मेरा कोई दोष नहीं।' उसने अन्त में कहा। पुलिस अफसर ने फस्स हुये टयूब टायर की जांच की।

देशराज को पूरा चेत आ गया। उसको मालूम हो गया कि रुपये गहने, कपड़े सब लूट लिये गये। ड्राइवर को पीछे पीछे से भेजे जाने की बात भी उसे बतलाई गई। अञ्जना का वह अन्तिम अभिनय जो उसने पिछली रात बाघराज के साथ किया था, आंखों के सामने ऐसे आखड़ा हुआ जैसे उसी क्षण हो रहा हो। पेटियां डकार गया! रुपये और गहने लुटवा लिये!! बिचारे मेहमानों को भी न छोड़ा!!! पिछली दो पेटियों को भी इसी ने खाया!!!!

मैजिस्ट्रेट ने देशराज का बयान लिया। उसने घटना का सविस्तार वर्णन जब तक कि पिट कर अचेत नहीं हो गया था, किया। उसने यह भी कह डाला कि बाघराज के महल में अवैध अफ़ीम की पेटियाँ रक्खी हुई हैं!

बयानों की समाप्ति पर मैजिस्ट्रेट ने सनेही से पूछा, 'इनके प्राण संकट में हों तो सदर अस्पताल में भिजवा दिया जाय?'

सनेही ने आश्वासन दिया, – 'प्राण संकट में नहीं हैं। यहीं अच्छे हो जायेंगे।'

उन दो मोटरों के ड्राइवरों और कलाकारों को वहीं रोक कर पुलिस और मैजिस्ट्रेट अपनी मोटरों में नाहरगढ़ चले गये। बाघराज की खासगती मोटर वहीं छोड़ दी गई, ड्राइवर को साथ ले गये। जगनू को भी साथ कर लिया।

सनेही देशराज को सान्त्वना देकर सीधा स्कूल चला गया। टहल और लड़के तुरन्त आ गये। नये कमरों के बनाने का उद्घाटन किया गया। विद्यार्थी और अन्य उपस्थित डाके वाली घटना का वर्णन सुनना चाहते थे। सनेही ने कहा, 'वह पीछे, पहले कुछ और सुनो और गांठ में बांध लो।' उसने जो कुछ कहा उसका सार यह था कि मन के भीतर छाई अमरबेल मुश्किल से मुरझाती है, अभय हो जाओ तो कोई बेल कुछ नहीं कर सकती, अभय होने के लिये घृणा और ईर्षा का त्याग, लोभ में कमी, ईश्वर में विश्वास बहुत जरूरी है; हिम्मत के साथ कठिनाइयों का मुकाबला करना, उन पर खेल, कूद के जरिये हँसना और मंजिल की तरफ दृढ़ता के साथ बढ़े चले जाना ही जीवन है, और यह जीवन तभी सफल समझा जावे जब कदम बढ़ाने के लिये प्रेरणा, त्याग और तपस्या से मिले; इसी क्रिया के द्वारा भीतर वाली अमरबेल मुरझा जायगी।

किस किसने उसकी बात को गांठ में बांधा, सनेही को मालूम नहीं हो सका; परन्तु उसने देखा कि टहल ध्यानमग्न है और उसका ध्यान उस समय भी नहीं उचटा, जब लोगों ने डाके की दुघर्टना का ब्योरा सुनने की मांग की। सनेही संक्षेप में सुना कर कुछ मिनिट नींव खोदने में लग गया। फिर भोजन करने घर चला गया।

बड़ी आयु के विद्यार्थी नींव खोदने लगे और छोटी आयु वाले खुदी हुई मिट्टी तसलों में ढोढो कर एक तरफ रखने लगे। छोटे छोटे सुन्दर बालकों के गालों और बाहों पर धूल पसीने में रम कर बैठने लगी। कौन कितना काम कर सकता है, इसकी उनमें होड़-सी लग गई। चपलता के साथ काम कर रहे थे—और, बड़े बातूनी। बातों

का साथ उनकी हँसी और मुस्कानें दे रही थीं। टहल को लगा भौतिक वाद और अध्यात्म का शायद यहां भी संयोग है। उसने विद्यार्थियों से कहा, 'तुम्हारे काम की ख़बर दूर-दूर फैल रही है। गरमी की छुट्टियों में बाहर से विद्यार्थी तुम्हारी सहायता के लिये आवेंगे।

जनक बोला, 'वाह मास्टर साहब, हम अपना काम उन्हें नहीं छीनने देंगे !'

[६३]

उसी दिन के प्रातःकाल के पहले ही कालीसिंह और उसके गिरोहियों ने चोर खिड़की से प्रवेश किया। बाघराज जाग रहा था। रात वैसे ही बीती थी।

कालीसिंह ने हर्ष के साथ सूचना दी,—'काम बावन तोले पाव रत्ती बना! रुपये, गहने, सब हाथ लग गये!! पता नहीं आगे की मोटर में कौन था, उस पर कसके मार पड़ी।'

'ऐं!' बाघराज थोड़ी देर अवाक् रहा।

कालीसिंह ने कहा, 'किसी ने पहिचान नहीं पाया। मोटरों की बत्तियां पहले ही तोड़ डाली थीं। बत्तियों का थोड़ा-सा नुकसान हो गया सो कोई बात नहीं।'

'आगे वाली मोटर का कौनसा यात्री पीटा गया?'

'मालूम नहीं। कोई पुरुष पिटा। बेहोश होकर गिर पड़ा था। कुछ साथी आगे थे, मैं बीच में था,उन्होंने उसे पहिचान नहीं पाया।'

'उसमें देशराज था। शायद उसका ड्राइवर जगनुआ पिटा हो। सब रुपये हाथ लग गये?'

'सब। एक पैसा भी कम नहीं।'

'हमारी खास गाड़ी मिली थी जो मैंने उन लोगों के पीछे पीछे दौड़वाई थी?'

'नहीं सरकार, हमें कोई गाड़ी नहीं मिली।'

'ड्राइवर के हाथ एक संदेशा भेजा था।'

'न कोई ड्राइवर मिला और न कोई संदेसा। हम तो काम पूरा करके सीधे जंगल पहाड़ों में जा पहुँचे और रात भर चलते जागते आ रहे हैं। क्या संदेसा भेजा था सरकार ने?'

'यही कि अञ्जना को न छुआ जावे।'

'तो उसके गहने उतारने के सिवाय और किसी ने कुछ नहीं किया। हम लोग स्त्रियों को न छूने की सौगन्ध खाये हुये हैं, सो सरकार को अच्छी तरह मालूम है।'

'खैर, सामान उस कोठे में रख दो और आराम कर लो। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक जागता रहा हूँ। मैं भी सोऊँगा।'

'जो हुकुम।' बतलाये हुये कोठे में लूटा हुआ सामान बन्द करके रख लिया गया। वे सब थके मांदे, अलसाये हुये थे।

सोने के लिये जाते समय कालीसिंह कह गया,—'अब हम सबके पास इतना पैसा हो गया है कि आगे से यह काम बन्द कर देने की सोच रहा हूँ। केवल इस चोट का बदला चुकाना है सो बैसाख जेठ मे देखूँगा।'

'हूँ।' करके बाघराज जा लेटा और सो गया। कालीसिंह और उसके साथी भी सो गये।

दोपहर तक वे सब सोते रहे। फिर नहाने धोने के बाद भोजन किया और थकावट दूर करने के लिये लेट गये। दिन में वैसे भी बाहर निकलने में उस दिन खुटका था। तीसरे पहर मोटरों की आवाज़ सुनाई पड़ी जो महल के सामने आ खड़ी हुई थीं। उन्होंने समझा कि मिहमानों को रेलवे स्टेशन पहुँचाने के बाद गाड़ियाँ लौट आई हैं। परन्तु ज़रा धकधक हुई—टूटी फूटी बत्तियों और डाके के समाचार ने लोगों का कुतूहल उकसाया होगा। वे सब चुपचाप जहाँ के तहां पड़े रहे।

मोटरों में हथियार बन्द पुलिस आई थी। महल का घेरा डाल लिया गया। बाघराज को तुरन्त बुलाया गया। बाघराज फक रह गया।

मैजिस्ट्रेट ने शिष्टता के साथ कहा, 'मेरा एक कष्टदायक कर्तव्य यहाँ पुलिस को ले आया है, राजासाहब।'

'अ ··अ ··अ यहाँ तो कोई नहीं साहब—' बाघराज की घिग्घी बँध गई।

'सुहाना के बड़े आदमी देशराज ने बतलाया है कि आपके महल में ग़ैरक़ानूनी अफ़ीम की पेटियां रक्खी हैं,' मैजिस्ट्रेट ने आरम्भ किया।

'वो····ओ···ओ····झूठ कहता है। बदमाश है।' बाघराज ज़ोर से बोला।

'उन्होंने अपना ड्राइवर जगनू हमारे साथ भेजा है। वह पता बतलायगा। आपके ड्राइवर ने भी कुछ कहा है। पुलिस की हिरासत में बाहर खड़ा है।'

बाघराज बग़लें झांकने लगा।

मैजिस्ट्रेट कड़ा पड़ गया,—'देखिये राजा साहब, हमारे साथ बहुत काफ़ी हथियार बन्द पुलिस है। ज़रा सी भी गड़बड़ की तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जावेंगे। अभी खैरियत है। अगर देशराज की बतलाई बात झूठ निकली तो आपका अफ़ीम के मामले में कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैं खाना-तलाशी लूंगा।'

बाघराज विवश हो गया।

खानातलाशी की काररवाई आरम्भ कर दी गई।

कालीसिंह को मालूम हो गया। उसने दांत पीसकर दूसरी सौगन्ध खाई—टहल और देशराज के साथ बांगुर्दन और सुहाना— दोनों गांवों को राख कर दूंगा। वह अपने साथियों समेत चोर दरवाज़े से निकल भागा। दोनों ओर से बन्दूकें चलीं, परन्तु कोई घायल नहीं हुआ। कालीसिंह गिरोह समेत निकल कर जंगल में विलीन हो गया।

राजा साहब, 'ये लोग कौन थे ?' मैजिस्ट्रेट कड़का। बाघराज कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका। खाना तलाशी में अफ़ीम की दो पेटियां मिलीं और एक कोठे में से रात की लूट का सारा माल।

बाघराज को गिरफ्तार करके पुलिस सन्ध्या के पहले सुहाना आ गई। कलावन्तियों ने अपने अपने गहने और कपड़े पहिचाने। अञ्जना ने अपने।

बाघराज फूट पड़ा,—'अफ़ीम की पेटियां देशराज लाकर रख गया मेरे फँसाने के लिये।'

'और इन बेचारियों के गहने कपड़े कौन रख गया आपके महल में ? ड्राइवर को किसने भेजा था कालीसिंह को संदेसा देने के लिये ? देशराज के रुपये किसने लुटवाये ? क्या संगीत सम्मेलन इन्हीं सब बातों के लिये नहीं किया गया था ?' प्रश्न पर प्रश्न किये गये।

'देशराज अपने साथ इतने रुपये नाहरगढ़ लाता ही क्यों ?' बाघराज ने फटे हुये स्वर में कहा।

'रईस जो ठहरे। हो जाते फ़िदा किसी कलावन्ती अप्सरा पर तो बरसा देते। मन न भरा तो लौटा लाये,' पुलिस अफ़सर बोला,—'पर यह वे जाने।'

बाघराज और उसके खासगती ड्राइवर को पुलिस कैद में ले गई। अञ्जना, जगनू और कलावन्तियों को क़ानूनी काररवाई के लिये साथ ले लिया। टूटी बत्तियों वाली मोटरें और बाघराज की वह मोटर भी यात्रा और उस काररवाई के लिये काम में लाई गईं।

सिर के घाव के सिवाय देशराज की अन्य चोटें दो तीन दिन में अच्छी हो गईं। सनेही ने बतलाया कि वह घाव भी अच्छा हो जायगा, परन्तु समय लेगा।

अञ्जना और जगनू बयान लिखवाकर सदर से लौट आये। बाघराज का वह ड्राइवर सरकारी गवाह हो गया। अदालत मुकद्दमे को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, परन्तु देर करनी पड़ी।

देशराज ने अञ्जना से कहा, 'मैं अपना जीवन अब नये सिरे से आरम्भ करूँगा। तुम भी कुछ विचार करो।'

'हाय, मैं कहीं की न रही !' अञ्जना रोने लगी।

यह भी क्या कोई अभिनय है ? देशराज ने निर्भयता के साथ सोचा। बाघराज के साथ किया गया काण्ड फिर आँखों में घूम गया।

'तुम कुछ दिनों अपने घर लखनऊ जाकर रहो।'

'घर पर है ही क्या ?'

'जितने रुपये चाहिये हों, ले जाओ। उस काम पर से चित्त बिलकुल हटा लेना। मैं तो खेती-बाड़ी से अपना निर्वाह करूँगा। काफ़ी है।'

थोड़ी सी फुस-फुसाहट के बाद अञ्चना ने रुपये ले लिये और यह कह कर चली गई कि मुकद्दमे की पेशी हो जाने पर सदर से सुहाना आऊँगी। जगनू उसे रेलवे स्टेशन पर पहुँचा आया।

[६४]

बांगुर्दन और सुहाना के विद्यार्थियों ने गरमी की छुट्टी आते ही स्कूल के कमरे बनाने का काम तेज कर दिया। देशराज ने सब की सब लकड़ी दे दी थी। खपड़ों का भी प्रबन्ध हो गया। दस पाँच दिन में यह काम समाप्त कि फिर कोई दूसरा ले लेंगे।

एक दिन सवेरे घाटीवाली बग़ल में कुछ दबाये घर से निकली। मंटू छाया में अपने चबूतरे पर उदास बैठा था।

घाटीवाली रुक गई। बोली, 'कैसे बैठे हो भैया? हरको कहां गई?'

'ज़रा सा बैठ जाओ माँ जी तो कहूँ।'

'सनेहीलाल के घर जा रही थी; खड़े खड़े ही सुने लेती हूं।'

परन्तु—मंटू पीढ़ा ले आया। उसके आग्रह पर चबूतरे पर बैठ गई।

मंटू ने दूसरे सिरे से बात उठाई, 'नाहरगढ़ के राजा को गैर कानूनी अफ़ीम रखने के जुरम में लम्बी सजा हो गई है और कालीसिंह डाकू के पकड़े जाने पर डाकों का भी मुकद्दमा चलेगा। फिर होगा डामर।'

'कल ही सुन लिया था, जब देशराज गवाही देकर सदर से लौटे। जो जैसा करता है वैसा पाता है।'

'पर माता जी, सच्ची बात तो यह है कि अफ़ीम देशराज ही रख आये थे। डाके भी इन्होंने ही डलवाये हैं। दुनियां भर कह रही है। धरनीधर सेठ तो चौराहे पर खड़े होकर कह रहे हैं पर कैसा अन्धेर है कि बच गये।'

'तो क्या तुम इसी कारण उदास बैठे हो?'

'अरे नहीं माताजी! हमें क्या करना है। मैं दमरू की कह रहा हूँ। टहलबाबू और डॉक्टर साहब के जोर लगाने से वह बिरादरी में मिला लिये गये हैं, और मुझे भी उजर नहीं था, सो तो ठीक हुआ, पर आदमी का कतल करके इतना सस्ता छूटा! इसी का अचम्भा है।'

घाटीवाली अकुला उठी—

'घाम हो रहा है, मैं अब चलूँ।'

'तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ माँ जी, आधी घड़ी और—'

'तो कहो न, क्या बात है ?'

'हरको अब मेरे हाथ की नहीं रही। अभी अभी रोकते रोकते कहीं चली गई है। कहीं बिठलाने की बात करता हूँ तो बक उठती है। जान पड़ता है कि वह दमरू के घर बैठना चाहती है।'

'कैसे जाना ?' घाटीवाली ने धक्का सा खाकर पूछा।

'दमरू कहता था कि हमारा घर बसा दो तो मेरी लड़ाई हो पड़ी। जब हरको ने सुना तो वह भी मुझसे जूझने को हो गई। आप उसे समझा दो तो मेरी बात रह जायगी।'

घाटीवाली उद्विग्न हो गई।

'क्या हरको दमरू के घर बैठना चाहती है ? उसने कुछ कहा ?'

'उसने तो कुछ नहीं कहा। पर दमरू ने क्यों कहा ? कुछ बात तो होगी।'

घाटीवाली को चैन मिला।

'वह और कहीं बैठ जावे तो ?'

'आपके पांव पड़ूं माँ जी; ऐसा हो जाय तो मेरा भार हलका हो और बदनामी से बचूं।'

'अच्छा, देखूंगी।' कहकर घाटीवाली चली गई।

मार्ग स्वच्छ, गन्दे पानी को सोखने के लिये पानी सोखे गड्ढे, मोड़ों पर खम्बे लगे लैम्प, बच्चे नये जाँघिये और अद्धे कुर्ते पहिने कहीं कबड्डी, कहीं किली डंडा खेलते हुये, कहीं छोटे छोटे पतले डण्डों की बन्दूकें बनाये क़वायद परेड की नक़ल करते मोदमग्न थे। जगह जगह घरों पर शहद की मक्खियां गुन गुन करती हुईं इधर से उधर उड़कर ऊंचाई पर रक्खे मधुमक्खी बक्सों में लगे छत्तों में शहद भर रही थीं। किसी किसी ने बिना एक मक्खी की भी जान लिये बक्स में से शहद

निकाल ली थी और खरीददार को अच्छे भाव बेच रहा था। एक पेड़ के नीचे गाय के बछड़े कूंदफांद कर रहे थे। उनके कन्धे कनौटे इतने सुन्दर कि घाटीवाली ने उन्हें चूम लेना चाहा। ये बछड़े सरकारी सांड़ के जाये थे जो पशुओं की नसल सुधारने के लिये दिया गया था। आगे चली तो बटोले का मकान मिला। उसकी घरवाली और वह कलवाले करघे से कपड़ा बुनने में लगे हुये थे। घाटीवाली को देखकर उन्होंने हाथ थाम लिये और उसे प्रणाम किया। घाटीवाली ने असीस दी,—'खूब फूलो फलो बेटा।'

'माँ जी, बिजली आ जावे तो आपके चरणों की कृपा से मिल वालों का मुकाबला कर डालें।'

घाटीवाली सुहाना की ओर बढ़ी। टहल का स्कूल मिला। बड़ी आयु के विद्यार्थी दो कारीगरों की सहायता से कमरे उठाने में लगे थे और कुछ खजूर का गुड़ बनाने पर जुटे थे। 'माताजी नमस्ते!' लड़के घाटीवाली को देखते ही चिल्ला पड़े। टहल वहां नहीं था।

'माताजी हमारा बनाया थोड़ा सा गुड़ ले जाइये।' स्कूल में लगा रेडियो-बज रहा था। बच्चों की पुकार घाटीवाली को रेडियो-गायन की एक मनोहर तान सी जान पड़ी। उसने बच्चों का बनाया थोड़ा सा गुड़ ले लिया।

गाँव के बाहरी भाग में घाटीवाली को दिखलाई पड़ा कि घरों के सामने बेड़ों में खाद कूड़े के ढेर नहीं हैं—सब सार्वजनिक गढ़े में पहुंच गये थे! और कुएँ पर अधिकांश स्त्रियां गाँव की ही बनी खादी के गहरे लाल रङ्ग में रङ्गे कपड़े पहिने चुहल करती हुई पानी भर रही हैं और उनके साथ बाल बच्चे साफ़ सुथरे कपड़े पहिने हाल की बनी रोटी खाते हँस रहे हैं। घाटीवाली ने हुलसा कर सोचा, 'चिरजीवी रहें मेरे दोनों बेटे जिनकी मिहनत का यह फल है।'

स्त्रियों ने टोका, 'कहां जा रही हो मांजी, सवेरे सवेरे?'

'सनेहीलाल के घर।' घाटीवाली ने उत्तर दिया।

'डॉक्टरनी तो रात में पढ़ाती हैं, मां जी।'

'मैं पढ़ने नहीं जा रही हूँ, बहू,' हँसी और चल दी।

सुहाना में पहुँची तो पहले बिक्रम का घर बेड़ा मिला। बेड़े में खाद का ढेर लगा हुआ था। दुर्गन्धि के मारे घाटीवाली ने अञ्चल से नाक दबा ली और वहां से जल्दी निकल गई। 'इसकी अकल नहीं कोई ठिकाने लगाता।' उसके मन में खीझ उठी।

सनेही का मुहल्ला शुरू होते ही फिर वैसी ही, बाँगुर्दन की जैसी, स्वच्छता। सनेही के घर के ऊपर और आसपास के घरों पर शहद की मक्खियां मन्द मन्द तानें सी ले रही थीं। बैठक में सनेही और टहल बातें कर रहे थे। सनेही ने आदर-पूर्वक नमस्ते की। घाटीवाली असीस देकर भीतर चली गई।

राजदुलारी साग-भाजी काट-कतर रही थी। उसने हाथ पोंछ कर पैर छुये और आसन दिया। घाटीवाली ने आशीर्वाद बरसाये और राजदुलारी को खजूर का गुड़ दिया।

'आज तो मां जी, सवेरे सवेरे मुंह मीठा किया तो कोई बड़ा शुभ समाचार देने आई हो; और, इस पोटली में क्या लाई हो ?'

घाटीवाली ने बटोले के हाथ की बुनी, बढ़िया सूत की, रङ्गीन साड़ी निकाली और हँस कर कहा, 'लो बेटी।'

मैं तो ऐसी रंगीन साड़ी पहिनती नहीं, राजदुलारी के होठों तक आया।

'टहल भैया के ब्याह पर पहिनूंगी या दुलहिन को पहिनाऊँगी।' उसने कहा।

बैठक से टहल का स्वर सुनाई पड़ा,—'हम लोग जिस ढङ्ग से समाज का निर्माण करना चाहते हैं उसकी कोई सही तस्वीर सामने नहीं है। हमारे लिये लोकतन्त्र का मतलब है योजना विहीन अकर्मण्यता। तस्वीर की अस्पष्ट रेखायें मात्र हैं, न उसमें ब्यौरा है और न रङ्ग हैं।'

फिर सनेही का,—'नक़शों के अनुसार मकान बनाये जा सकते हैं, मशीनें तैयार की जा सकती हैं, परन्तु मानव के काम काज समय समय पर सहसा आखड़ी होने वालीं समस्याओं के अनुकूल हो कर ही चलते हैं। कोरे नक़शों में बढ़ाई हुई और बढ़ती हुई उलझनों और पेचीदगियों के मारे सभ्यतायें इसलिये गिर जाती हैं कि उन नकशों को सार रूप में बदलने और सुधारने वाले ऐसे नरनारी काफ़ी संख्या में उत्पन्न नहीं होते जिनके दिल और दिमाग़ ऊँचे दर्जे के हों। काम चलाऊ प्रवृत्ति यदि अधिकांश नरनारियों का निरन्तर स्वभाव बन जावे तो योजनाओं की तस्वीर की अरूपता और अस्पष्टता कोई बड़ी बाधा नहीं डाल सकती।'

फिर कुछ नहीं सुनाई पड़ा।

'ये दोनों फिर लड़ गये।' घाटीवाली ने कहा।

'अभी लड़ तो नहीं रहे हैं, आगे जो कुछ हो।' राजदुलारी हँसी।

'टहल के न पैर में बेड़ी है और न ज़बान पर कड़ी। मैं तो हैरान हूँ, बहू जी।'

'तो डाल दीजिये न पैरों में बेड़ी; ज़बान पर कड़ी अपने आप पड़ जायगी,' और उसे कुछ आभास हुआ।

'व्यक्ति और समाज में कौन बड़ा?' टहल का प्रश्न सुनाई पड़ा।

सनेही का उत्तर,—'व्यक्तियों, ख़ास तौर से बड़े व्यक्तियों का ही समूह तो समाज को बनाता है। वे समाज के पराग हैं।'

'वाह दादा! यह तो गड़बड़ की बात रही।'

'...मैं यह कहता हूँ कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे की अमर बेल न बन पावें।'

फिर आवाज़ धीमी पड़ गई।

राजदुलारी ने मुस्करा कर कहा, 'अब यह कौन लड़ रहा है, माँ जी?'

घाटीवाली हँस कर बोली, 'जिसके पैरों में सोने की बेड़ी पड़ी है और जिसकी जीभ से मोती झरते रहते हैं। पर इस टहल को क्या कहूँ ?'

'स्वतंत्रता और समानता का समन्वय सहकारी सिद्धान्त कर सकता है,' फिर सनेही का स्वर।

'यह तो मैं मानने लगा हूँ दादा सोलह आने, और जो कुछ आपने कहा उसे भी मान गया। अब एक आप मेरी मान लीजिये। यह कि सहकारी समिति से बनमाली और बिक्रम को निकाल दीजिये। बनमाली काम नहीं करता, मुफ्त के पैसे खा रहा है; बिक्रम के एब किसी से छिपे नहीं हैं। सहकारी समिति के फ़ैसलों को ये कोई नहीं मानते। दोनों खाद के ढेर अपने अपने बेड़ों में रक्खे हुये हैं।'

'एक बात टहल ने अकल की कही', घाटीवाली बोली। यह न सुनाई पड़ सका कि सनेही ने क्या कहा। फिर टहल और सनेही धीमे स्वर में बात करने लगे !

घाटीवाली ने एक क्षण ठहर कर कहा, 'टहल पहले से बदल तो बहुत गया है। अकेले में बैठ कर कुछ ध्यान भी करने लगा है।'

'रात में पढ़ाते भी हैं। हरको पढ़ने आती है या बन्द कर दिया ?' राजदुलारी ने आँख गड़ा कर पूछा।

घाटीवाली ने थोड़ा सा सकुच कर उत्तर दिया,—'आती तो है। क्या कहूँ बहू जी। कुछ स्त्रियां ऐसी बातें कर उठीं हैं कि कान नहीं दिया जाता। और वह विधवा है।'

'तो क्या हुआ माँ जी ? चलन चल गया है। जोड़ी अच्छी रहेगी। मुझे तो बड़ी खुशी होगी।'

'जैसी जानो। तुम सब जहां ले चलो, चलूंगी।'

'बस फिर यह साड़ी हरकुँवरि को और मेरी तरफ़ से कुछ ब्याज पर ब्याज।'

'वाह ! यह तो मैं तुम्हारे लिये लाई थी।'

'सो माँ जी गुड़ से मेरा मुंह तो मीठा हो गया।'

राजदुलारी ने सोचा घाटीवाली यही चर्चा करने आई है।

सनेही के पास कुछ मरीज़ आ गये। टहल भीतर चला आया।

'हो गई लड़ाई खतम ?' राजदुलारी ने कहा।

'यह लीजिये ! मैं क्या लड़ रहा था ? भावी को लड़ाई लड़ाई ही दिखलाई पड़ती है।'

'मुझको कुछ और भी दिखलाई पड़ता है। लड़ो मत, हरको भजो, हरको !' राजदुलारी के स्वर में जो व्यङ्ग था वह उसकी बात से भी बढ़ कर था।

घाटीवाली ने पीठ फेर ली। टहल के चेहरे पर लाज का रङ्ग दौड़ गया। उसने लाज को छिपाने के लिये चालाकी की,—'भजन वजन पीछे, भावी, कुछ खाने को पहले।' मुस्कराया। पर मुस्कान ने उसकी चालाकी को चुरा लिया।

साड़ी को हाथ में लेकर राजदुलारी ने घाटीवाली से पूछा, 'तो उस शुभ अवसर के लिये बक्स में बन्द करके रख लूं इसे ?'

'मैं दादा से शिकायत करूँगा कि भावी भूखे का पेट बातों से भरना चाहती है,' कह कर टहल चला गया।

'समझ गई मां जी ? मुहूर्त शोधिये अब।'

हरकुअँरि के भाई से तो पुछवा लो, बेटी। आदमी उल्टा पुल्टा सा है कुछ।'

'टहल भैया के दादा सीधा कर लेंगे।'

'हाँ, हो तो जायगा।'

[६५]

गरमी बढ़ती गई। लू सपाटे भरती रही। पर लोगों को नहीं मालूम पड़ी। जेठ का महीना समाप्त हो गया। असाढ़ लग गया। धूल और बादलों की धुन्ध आकाश में छाने लगी। जानवरों को पानी पीने के लिये नहर में था। नई नसल के बछड़े-बछियां नहर के किनारों पर चलते–फिरते फूलों जैसे लग रहे थे। पुरानी नसल के साँड़ और बछड़े खस्सी मशीन द्वारा खस्सी कर दिये गये थे। वे भी नहर किनारे की घास चर के पुष्ट दिखलाई पड़ते थे। नहर और नहर की नालियों के निकटवर्ती खेत जोत डाले गये और उनमें नहर का पानी देकर सूरत के कपास का बीज बो दिया गया। पहले ही बो दिया जाना चाहिये था, परन्तु बनमाली के बहकाने के कारण देर लग गई,—'यहां यह बीज नहीं पनप सकता। पीछे सिर पटक–पटक कर रोओगे।' कुछ दिन बाद किसानों की समझ में आया कि फ़सल पर जब कपास आयगा तो एक एकड़ में पचास मन तक होगा! ऐसे उत्साह के सामने किसान के लिये कहां की गरमी और कहां की लू! पानी समय पर बरसे या न बरसे, अब तो—'सिंचाई की खेती और बन्दूक, हथियार, इनसे हारा करतार! और, अगसर खेती, अगसर मार, घाघ कहें ये कबहुँ न हार!!'

हम कठिनाइयों से लड़ जायेंगे। किसानों के भीतर का ओज जाग पड़ा। फिर भी उन्होंने घमण्ड को स्थान नहीं दिया। कहते थे,—'हम रामायण बांचेंगे और सुनेंगे। राम को सुमिरेंगे और देवी की पूजा करेंगे जिनकी कृपा से कठिनाइयों से लड़ने का साधन हाथ लगा।'

सहकारी कृषि समितियों पर भूमि हीन मजदूरों की श्रद्धा बढ़ गई। कुछ भूमिधर निकल भागे तो बहुत से उनमें बने रहे। बिक्रम को सुहाना समिति से निकाल दिया गया और कुछ दिन बाद बनमाली को भी, क्योंकि उसके बहकाने के कारण कपास का बीज कुछ विलम्ब

से बोया जा सका था, और वह सहकारी कार्यों को सदा कोई न कोई धक्का दिया करता था।

× × × ×

अन्य सहकारी खेतों में सार्वजनिक सहकारी गड्ढे से खाद डाला गया। दो ढोरों पीछे एक गाड़ी का कूता लगाया गया और उसी हिसाब से दाम चुका दिया गया।

नहर की जो नालियां कट-फट गई थीं या पुर गईं थीं उनकी मरम्मत कर ली गई। बहुत काम हुआ फिर भी बहुत सा बाक़ी था जैसे बचे हुये भरकों का पूरना, बांगुर्दन और सुहाना के बीच वाले नाले पर आने–जाने के लिये पुलिया का बनाना जो भरी बरसात में भी काम दे सके, शिक्षा और सफाई, मलेरिया, चेचक, मोतीझरा, कफज्वर इत्यादि का नियन्त्रण, स्वरक्षा और मनोरञ्जन के साधनों का संचय, हरिजनों का उत्थान, आध्यात्मिक तत्वों का प्रसार, जीवन के ऊँचे स्तर का ग्रहण, जान–बीमा इत्यादि। जीवन का नया ओज हाथ में आ गया था, इसलिये कार्यकर्ताओं को ये सब सम्भव दिखलाई पड़ने लगे थे।

× × ×

आधा असाढ़ बीत गया, बादल मंडलाते तो रहे पर बरसे नहीं। किसान का जी छोटा पड़ने लगा, परन्तु वह घबराया नहीं।

उन्हीं दिनों गांव पञ्चायत का चुनाव हुआ। बनमाली और धरनीधर हार गये। उन्हें एक नई उपाधि मिली—रङ्गे सियार हैं ये। छदामी और उसके सहवर्गियों ने वोट नहीं दिया।

छदामी ने बनमाली से कहा था,—'रुक्का लिखवा लिया था अब वोट लेने आ गये।'

'चोरी की बात कह दूँगा।'

'तो रुपया नहीं दूँगा, वोट तो किसी हालत में भी नहीं मिलने के।'

सनेही सरपञ्च चुना गया। टहल, मंटू, छदामी, बटोले और देशराज चुनाव में सफल हुये। देशराज को सनेही की सहायता मिली।

'युगों की प्राप्त पदप्रतिष्ठा ने इन्हें जो सम्बल दिया है उसने भेद पैदा किये, और वे अभी बने हैं। मानसिक उँचाई और निचाई के अन्तर तो सदा ही बने रहेंगे। देशराज में परिवर्तन भी बहुत आ गया है, उसे मिलाये रखने में समाज को लाभ है,'—सनेही ने बटोले, टहल, छदामी इत्यादि को समझा लिया था।

× × ×

बनमाली ने अपने निकाले जाने पर ऊधम मचाया। कहीं शिकायती तार दिये, कहीं रजिस्ट्री चिट्ठियां—समिति की दशा बहुत ख़राब हो रही है! रुपये पैसे पानी की तरह बहाये जा रहे हैं!! हिसाब का कुछ ठीक नहीं!!! मनमानी बर्ती जा रही है, इत्यादि!!!!

राघवन आया। हिसाब देखा परखा गया। सब ठीक। समितियों की एक बैठक हुई।

राघवन ने कहा, 'बनमाली सरीखे लोगों का सहकारी समिति में न रक्खा जाना ही अच्छा।' फिर उसने एक गांव का नाम लिया जिसमें सहकारी समिति ही टूट गई थी। राघवन ने उसके टूट जाने का कारण बतलाया,—'सहकारी कृषि समिति को जो भूमि लगाई गई उसका अधिकांश पुराने जिमींदारों की पड़ती थी। सड़ी बछिया बाम्हन को! पड़ती को रियायती दर पर ट्रैक्टरों से तुड़वाना था, असल में इसलिये सहकारी समिति का ढोंग रचा गया था। दमड़ी की बुलबुल टका रंगाई! जैसे ही काम बना समिति तुड़वा ली गई। अन्य मैम्बर उन स्वार्थियों के दबाव और चकमों में थे, हमारी एक भी न चली। बड़ी बात है कि बनमाली सरीखे लोगों की लीला यहाँ न चल सकी।'

टहल बोला, 'राघवन साहब, हमारे दादा बहुत उदार हैं, इसलिये बनमाली और बिक्रम को अभी तक निभाते आये।'

'सुधार की मशीन को सुथरी हालत में रखने के लिये ज़रूरी है कि उस पर जङ्ग न चढ़ने पावे, नहीं तो वह बिगड़ जायगी। समाज की इस मशीन के घिसे पुर्ज़ों को हटाकर नये लगाना अनिवार्य है। मुस्तैदी के साथ देखभाल करनी उतनी ही ज़रूरी,—अपनी आलोचना उसका ओंघन और भीतर का संवेग उसका तेल है।'

टहल को सनेही की कही हुई बात का स्मरण हो आया।

मन्त्री का चुनाव होना था। सनेही ने छदामी का नाम लिया। टहल उछल पड़ा। परन्तु छदामी पढ़ा लिखा न था। उसने इनकार कर दिया।

गद्गद स्वर में बोला, 'बनमाली ने दो पूले की चोरी लगाकर मुझसे रुक्का लिखवा लिया था। पढ़ा न लिखा आपके किस काम का? हाँ यदि आप सब की आज्ञा हो तो मेरे बड़े लड़के सुन्नू को कर दो। वह मिडिल पास है।'

सनेही के प्रस्ताव पर सुन्नू को मन्त्री बना लिया गया।

मंटू ने सोचा—यह रही बनमाली के गाल पर करारी चपत।

व्यक्तिगत खेती से सहकारी कृषि समिति को हानि पहुँचने का डर लगा रहता है इस प्रसङ्ग पर बात उठी।

कांपते स्वर में देशराज ने कहा, 'छोटे छोटे निजी खेतों से भले ही नुक़सान होता हो, पर मेरा तो बड़ा फ़ार्म है जिसमें मशीनों से काम लूँगा। फिर भी यदि सब भाइयों को अखरता हो तो अपने फ़ार्म को सहकारी में लगाये देता हूँ।'

उसके स्वरकम्प में सनेही को किसी सच्चे कष्ट का आभास मिला। बोला, 'नहीं आप अपना फ़ार्म अलग रखिये। बड़े बड़े निजी फ़ार्मों की एक ही सार्थकता है। वह है उनको सुधरे हुये उन्नत रूप में निरन्तर रखकर अधिक अधिक अन्न का उपजाना। छोटे और बिखरे हुये खेत अवश्य सहकारी में आ जाने चाहिये।'

सनेही की बात मान ली गई। देशराज ने अपने ऐसे खेत सहकारी समिति में सहर्ष लगा दिये। छदामी भी राज़ी हो गया। अब ऐसे बहुत थोड़े लोग बचे जिनके निजी खेती वाले छोटे छोटे खेत थे। उनको नहीं छेड़ा गया।

'किसी दिन झखमार कर सहकारी में मिला देंगे,' मन्टू ने बटोले के कान में कहा।

छोटे पैमाने पर चलने वाले धन्धे बढ़ाने और उनका संगठन संचालन सहकारी रूप में करने पर चर्चा हुई, जिससे मज़दूर कभी बेकार न रहने पावें।

'होना ही चाहिये। सहकारी धन्धे और सहकारी कृषि की तो जोड़ी है। इसकी भी समिति बना डालेंगे। एक एक मंज़िल पूरी करते जावें। मुझे एक कविता याद आ गई—' और राघवन ने हिन्दी उर्दू की एक खिचड़ी सुनाई,—

'हमारा यह जीवन निरन्तर सफ़र है,
जो मंज़िल पै पहुँचे तो मंज़िल बढ़ा दी।'

राघवन की बात लोगों को बहुत पसन्द आई। तालियां पीटने लगे। टहल बोला, 'आज एक बात तै हो जानी चाहिये : लोग समिति को, छोड़ न सकें और कभी छोड़ें तो अपने खेत वापिस न ले सकें।'

सनेही ने और बहुतों ने समर्थन किया।

राघवन ने कहा, 'है तो अच्छा। क़ानून की कुछ बाधायें अवश्य हैं।'

सनेही ने टोका,—'आप ही ने एक दिन यह सुझाव दिया था।'

'मैं अब भी कहता हूँ'—राघवन उमङ्ग में भर गया,—'विविध प्रकार की समितियां बननी चाहिये। आप लोग निश्चय कर लें तो क़ानून सीधा हो जायगा। बाप बेटे और भाई भाई के हिस्सा बांट होने के समय एक खास रक़बे से कम का बटवारा क़ानून स्वीकृत नहीं करता। उस रक़बे को बेच कर कीमत बांटी जा सकती है। विरासत और वसीयत का भी यही पहलू है। इसलिये क्यों न समिति में लगाये

गये खेतों का मूल्य आँक लिया जाय और उस मूल्य के हिस्से बना लिये जावें ? ये बाँटे या बेचे जा सकेंगे । जो लोग समिति को छोड़ देना चाहें वे अपने हिस्सों का रुपया ले लें या हिस्सों को बेच दें, ज़मीन समिति की ही बनी रहेगी । एक क्षण सोच कर बोला, 'सरकारी फार्म से जुती जुताई, सुधरी सुधराई भूमि दोनों समितियों को मिलेगी । वह किसी की भी व्यक्तिगत न होगी । उस भूमि की पैदावार का मुनाफ़ा तो अपने अपने हिस्से की क़ीमत के अनुसार ही बटेगा ।

इसके द्वारा क्रम क्रम से तिनके का सही बांट होने लगेगा और ज़मीन को वापिस न लेने की भी परम्परा बन जायगी ।'

टहल ने अनुरोध किया, 'तो उस परम्परा की बुनियाद आज ही क्यों न डाल दी जाय ?'

'ज़रूर । बनमाली और विक्रम को ज़मीन न लौटाई जावे ।' बटोले ने जोर लगाया ।

सनेही ने निषेध किया,—'यह नियम इतना कड़ा न बनाया जाय । कि निकाले गये व्यक्ति पर दुहरी मार पड़े ।'

टहल ने अनुमोदन किया । सनेही प्रसन्न हुआ । आगे के लिये नियम बना लिया गया उसमें लचीलापन रक्खा गया ।

टहल ने प्रस्ताव किया,—'कम से कम कुछ जानवर ज़रूर सहकारी कृषि समिति के होने चाहिये ।'

बटोले ने तुरन्त इनकार किया,—'मैं अपने बकरी बकरे तो नहीं लगाऊँगा ।'

'क्यों ? क्या रखवाला खा जायगा ? राघवन ने हँस कर प्रश्न किया ।

'क्या ठीक । खाने उड़ाने वालों की कमी नहीं है ।' बटोले ने कहा, लोग हँस पड़े ।

मन्टू धीरे से बोला, 'बिक्रम कर सकता है ।' पर उसकी बात हँसी में समा गई ।

जो जितने दे सके उतने समिति को सौंप दे; एक चरवाहा रखवाला नियुक्त किया जावे और इन ढोरों के लिये घर और छायाबान बनाये जावें—यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

बटोले ने कहा, 'मैं अपने बैल नहीं दूंगा। हाँ समिति किराया देकर काम में लाती रहे।'

'बैल रक्खो, गायें भैंसे, बकरे, बकरी यहाँ तक कि हाथी ऊँट बांधो कोई नहीं रोकता। बाग़ बग़ीचे लगाओ तो और भी अच्छा,'—राघवन हँसा।

बटोले को स्मरण हो आया, बोला,—'मैंने तो अपनी सब ज़िमीन समिति को लगा दी।'

'बेड़ा तो होगा ?' राघवन ने पूछा।

टहल ने सान्त्वना दी,—'बाग़ बग़ीचे के लिये जितनी भूमि चाहोगे समिति लौटा देगी।'

बटोले को सन्तोष हो गया।

राघवन ने समिति के लिये बीज गोदाम, सुधारे हुए निरोग बीज नये प्रकार के हल बखर और फ़सलों के हेर फेर की बात कही। 'फ़सलों का हेर फेर कागज़ों में लिखी सलाह को न मान कर प्रकृति के इशारों पर चलता है जिन्हें किसान का अनुभव और विवेक जानता है। बीज गोदाम के लिये अगले साल गुन्जाइश कर लेंगे। समिति के भवन में अभी तो जगह है। सुधरे हुए बीज का हम सदा स्वागत करेंगे। नये हल बखर जिन्हें हमारे बैल सह सकें ज़रूर भेजिये। फिर वे यहीं बनने लगेंगे। जब बड़े बैलों की नसल बन जायगी तब बड़े हल बखर काम में ले आवेंगे। नमूने सामने रहेंगे ही।' सनेही ने कहा।

कार्य की समाप्ति पर देशराज ने अनुरोध किया, 'अब रामायण का पाठ होना चाहिये।'

सब को अच्छा लगा। टहल ने सोचा—देशराज और रामायण पाठ! पर हां आज रामायण पाठ का दिन भी तो है।

रामायण का पाठ गायन वादन के साथ हुआ।

× × ×

दूसरे दिन जब टहल और सनेही अकेले में मिले, टहल ने कहा, 'दादा, देशराज में क्या सचमुच परिवर्तन हो गया है ?'

'स्वाभाविक है। मनुष्य को सत्ता भ्रष्ट कर देती है, अनियन्त्रित-सत्ता निस्सीम दर्जे की भ्रष्टता पर पहुँचा देती है,—किसी ने ठीक ही कहा है। देशराज की सत्ता कम हो गई, उधर चोटें खाईं इसलिये सुधार की ओर बढ़ रहा है।' सनेही ने उत्तर दिया।

फिर सनेही ने दूसरे विषय की बात छेड़ी,—'विवाह सम्बन्ध के लिये मैंने मंटू से बात की थी। मैंने साफ़ कह दिया कि यदि कुल के हठ और चक्कर में पड़े तो लड़की हाथ की नहीं रहेगी, नमालूम क्या कर डाले। वह मान गया है।'

टहल चुप रहा।

× × ×

विद्यार्थियों की छुट्टियां समाप्त नहीं हुईं थीं। बाहर से भी कुछ का एक जथा साइकिलों पर आया। थोड़े से भरके पुरने को रह गये थे; उनकी पुराई में इन विद्यार्थियों ने सहयोग दिया। भोजन की व्यवस्था साथ कर लाये थे। चलने के समय मजूरी लेने के लिये उनसे कहा गया, क्योंकि सनेही, और टहल भी मुफ्त सेवा में विश्वास नहीं करते थे।

विद्यार्थियों ने कहा, 'हम जो हर्ष और प्रेरणा यहां से लिये जा रहे हैं वही हमारी मजूरी हैं। हम लोग बारी-बारी से, समय-समय पर, अनेक गांवों में जायंगे। वहां देखेंगे कि लोग इसी तरह सिर उठा कर चलने लगे हैं या नहीं जैसा कि यहां की जनता को आपने समर्थ कर दिया है।'

[६६]

थोड़ा-सा पानी बरस गया था। उतने से ही मिट्टी में से गन्धें-सुगन्धें निकल पड़ी। हल-बखर चल उठे।

चौथा पहर लग गया था। पूर्व उत्तर के कोने पर धूमरे बादल छाये हुये थे। पश्चिम से सूर्य की किरणें बरसे हुए पानी से धरती को फुला रही थीं। पूर्व की ठडी हवा के कारण किरणों की तेजी नहीं आंस रही थी।

दमरू बटोले के उस खेत में बखर चल रहा था जो जङ्गल के निकट था और जिसे बटोले ने अपने अन्य खेतों के साथ समिति में लगा दिया था। जंगल के एक कोने से आगे-आगे बिक्रम के ढोर निकले और पीछे से वह। दोनों में रामराम हुई। बिक्रम दमरू के पास आ गया। ढोर जंगल किनारे की हरियाली पर मुँह डालने लगे।

'बीड़ी पीलो दमरू। यह हत्यारा काम तो पीठ पर चढ़ा ही रहेगा।'

दमरू ने बखर खड़ा कर दिया। दोनों बीड़ी पीने लगे।

'बटोला ने तुम्हें तिहाई बटिया पर रक्खा है! मैंने जब सुना तो आग लग गई' बिक्रम ने कहा।

'थोड़ी-सी जिमीन से गुजर नहीं दिखलाई पड़ी तो करनी पड़ी। मुकद्दमें में इतना खर्च हो गया और उन दिनों में घर ऐसा उखड़ा कि जिसका ठिकाना नहीं। इसलिये मानना पड़ा। मंटू को अधबटिया पर रक्खा है! बहिन जो टहल के घर जा रही है!!'

'गगरी में अनाज गँवार का राज! सिर पर धरती उठा रक्खी है टहल और मन्टुआ ने।'

'बेईमान हैं। मैंने कहा था मंटुआ से कि मेरे साथ कर दे हरकुरिया को तो मैं उसे ऐसे लगा जैसे करधई करोंदी का काँटा हूँ। मैं जानता कि कुछ अनहोनी सोच रक्खी है तो उस पर थूकता भी नहीं।'

'अरे भैया, सब एक से एक बढ़कर हैं। ये कापटी–सोसटी की नई बला ले आये हैं गांव में ! धरम-करम को डुबोने की ठान ली है इन्होंने !!'

'सो तो साफ़ ही दिखलाई पड़ रहा है।'

'तभी तो मैं उनकी किसी भी बैठक में नहीं बोला,' दमरू ने कहा।

'यह तो कुछ दिनों में टूट जायगी। किसी के साथ कोई ज़बरदस्ती, किसी के साथ कोई। हमारी सोंझ में आ जाना जब चाहे तब। मैं कापटी को पहले ही छोड़ चुका था। किसी बैठक में नहीं गया। तो उन्होंने निकालने का स्वांग कर डाला ! भैया, अपना घूरा सोने की खान कहलाता है। इसे उन्हें नहीं दिया तो पाज़ीपन पर उतर आये। बिचारे बनमाली की कितनी बेइज़्ज़ती की––छदमियां के छोकरे को उनकी जगह मन्त्री बना दिया ! और उस देशराज को तो देखो ! भारी बेईमान निकला !! मैंने कितनी निभाई, लेकिन कितना अधर्मी है !!! महाराज बाघराज को भी फँसा दिया !!!! क्या करना है, अपने काम से काम। जो जैसा करेगा सो पायेगा।'

'सो तो है ही।'

'असल में भैया, ये सब मेरे ढोरों पर जलते हैं। आगे जब नई नसल के पैदा होंगे, हज़ार-हज़ार पांच-पांच सौ में बेचूंगा एक एक जोड़ी; तब तो भुन कर खाक ही हो जावेंगे। उनकी सोसटी में बना रहता तो कुछ न कुछ ढोर दे देने पड़ते। अच्छा हुआ किसी तरह पीछा तो छूटा। तुम भी कुछ ढोर रक्खो। अधिया–बटिया पर रखना चाहो तो थोड़े से दे दूँगा।'

'देखूंगा। एक दिन करना ही पड़ेगा।'

'तो सोसटी को लात मार देना। बनमाली की, हमारी तुम्हारी और थोड़े से अपने मन वालों जैसों की एक जमात बन जावे तो न

कापटी कुछ कर सकेगी और न सोखटी। मैं तुम्हारा घर बसाने की भी फिकर कर दूँगा।' बिक्रम अपने ढोरों को लेकर चला गया।

दमरू ने फिर बखर नहीं चलाया। छाया में बैठ कर संकल्प-विकल्प करता रहा। जब सूर्यास्त में थोड़ी देर रह गई बैल बखर लेकर बाँगुर्दन चला गया।

जब वह आया गांव में लटोरेसिंह गले में बिगुल डाले क़वायद परेड करा रहा था। सूर्यास्त होते ही उसने बन्द करने की बिगुल बजाई। काम बन्द हुआ। बन्दूकें यथा स्थान रख दी गईं। सनेही को बन्दूक़ का लाइसैन्स मिल गया था। वह अपनी लेकर सुहाना चला गया। थोड़ी देर में रामायण का पाठ होना था।

आठ बजे रात के सब इकट्ठे हो गये। घंटे डेढ़ घंटे में पाठ हो गया। उस रात सनेही और गाने वाले इस सोरठे पर बहुत रीझे—

मूक होई बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन,
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।

× × ×

रात दूसरे पहर में रम चुकी थी। ठंडी हवा के मन्द झोंके पेड़ों को मानो गहरी नींद लेने के लिये सहला रहे थे। नहर का पानी कल कल करके झींगुरों की चीं चीं को ताल सी दे रहा था। स्तब्धता का रङ्ग गहरा होता जा रहा था।

जङ्गल की एक कोर में से पन्द्रह सोलह हथियार बन्द व्यक्ति धीरे २ निकले और सावधानी के साथ नहर किनारे चलने लगे। उनके पैरों की आहट नहर की कल कल को चिनौती देने लगी। थोड़ी दूर चलकर वे सुहाना-बांगुर्दन की दिशा में मुड़ गये और एक जगह पहुँच कर कुछ खुसफुस करने लगे।

× × ×

रामायण पाठ के उपरान्त सनेही घर जा लेटा। सोचने लगा—समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वैज्ञानिक योजनायें करें और दोनों

को प्राण शक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरन्तर कल्याण होता रहे। स्वतन्त्रता और अनुशासन का साथ तभी बन सकता है। समाज में सुगन्धि और दुर्गन्धि के सभी तत्व मिश्रित होकर चलते रहते हैं। यदि सुगन्धि प्रबलतर हो तो दुर्गन्धि छिप जाती है। परन्तु युगों से होता आ रहा है यही कि कभी वह बढ़ जाती है और कभी यह। तो सुगन्धि कैसे अधिक मात्रा में सदा बनी रहे? यदि जाग्रत व्यक्ति में वह प्रार्थना बनी रहे—मन की खोई हुई शक्ति और शुचिता, उसकी तेजस्विता और प्रेरणा, हमारे पास फिर फिर लौटें,—आ न एतु मनः, पुनः,—तो वह सुगन्धि सदा व्यक्ति और समाज में प्रबलता के साथ बसी रहेगी। उसके मुँह से वह मन्त्र निकला—आ न एतु मनः पुनः और उसे नींद आ गई। राजदुलारी ने नहीं सुना। वह पहले ही सो गई थी।

× × ×

उन हथियारबन्द व्यक्तियों में से चार ने पुलिस चौकी को घेर लिया, सुहाना में फैल गये और उतने ही बांगुर्दन में। सुहाना के गिरोह में से दो देशराज की हवेली के दरवाज़े जा छिपे। बाहर की साँकल चढ़ा दी। पुलिस चौकी के घेरने वालों ने पहले धायं धायं की। सिपाही जाग पड़े, हथियारों के लिये दौड़ पड़े। फिर घेरने वालों ने दूसरी बाढ़ दागी। सिपाहियों ने किवाड़ बन्द कर लिये, बाहर न निकल सके।

तुरन्त ही बांगुर्दन में बन्दूक़ चलीं। टहल और बटोले के मकान घेर लिये गये थे। बन्दूकें वहीं चली थीं। टहल जाग पड़ा। वह खपरैल पर नहीं गया। पौर के दरवाजे की सांस से बन्दूक़ चलाने लगा। समझ गया था कि घेरने वाले कौन होंगे।

लटोरेसिंह ने एकत्र हो जाने के संकेत की अपने घर से बिगुल फूंकी। रक्षादल के लोग सचेत हो गये।

'धायं!' टहल की बन्दूक़ से गोली छूट कर एक घेरने वाले पर पड़ी, और वह चीखकर धराशायी हो गया। उसके साथी भागे। टहल ने

किवाड़ खोलकर आड़ ली और फिर धाड़ ! यह गोली भी न चूकी। दूसरा चीख़कर गिरा और कराहने लगा। बाक़ी गिरोह सुहाना की ओर भागा। रक्षादल के लोग इकट्ठे हो गये। टहल ने भागने वाले आक्रमणकारियों की दिशा बतलाई। नियम संयम और चतुरता के साथ लटोरेसिंह ने संचालन किया। धीरे से बोला—

'हम इन सब डाकुओं को मारेगा और पकड़ेगा। चलो।'

उन दो घायलों के हथियार और कारतूस अधिकार में कर लिये गये और रक्षकदल वालों को दे दिये गये। बांगुर्दन की नाकेबन्दी करके रक्षकदल का एक बड़ा अङ्ग सुहाने की ओर चला, क्योंकि वहाँ से बन्दूकों के चलने की आवाज़ें आ रही थीं। लटोरेसिंह ने मोर्चे बाँध दिये।

× × ×

बन्दूकों की आवाज़ पर राजदुलारी और सनेही जाग पड़े। देशराज की हवेली और चौकी पर चलने वाली धांय-धांय आक्रमणकारियों के निकट होने की बात बतला रही थी और बांगुर्दन में चलने वाली, आक्रमणकारियों के वहां होने की। तो अबकी बार दो–तीन पर लक्ष्य है : देशराज, टहल और बटोले; लूटमार और बदला लेने, दोनों की प्रेरणा है। उसने तुरन्त कपड़े पहिने और बन्दूक ली और कार्तूस कसे। बांगुर्दन से बिगुल का निमन्त्रण सुनाई पड़ा।

'अकेले कहां जाते हो ?' राजदुलारी ने घबरा कर कहा,—'मैं भी चलूंगी।'

सनेही बोला, 'अभी नहीं। जब सीख लो, तब। स्त्रियों को भी सिखलाया जायगा।'

सनेही चला गया।

बाहर निकल कर वह तै नहीं कर पा रहा था कि कहां जाऊँ कि देशराज की हवेली से आग लगने की लौ दिखलाई पड़ी। वह उसी दिशा में बढ़ा। हुँ ! देशराज को जलाना चाहते हैं !!

'धायं', उसके सिर पर से गोली सनसनाती निकल गई। वह तुरन्त लेट गया। हवेली का फाटक थोड़ी दूर था। मार्ग में कोई मोड़ नहीं थी।

हवेली पर से चारों दिशाओं में गोली चलने लगी। ये गोलियाँ डाकुओं की हैं, क्योंकि देशराज के पास तो बन्दूक़ है नहीं—सनेही सड़क के किनारे किनारे लेटे लेटे ही, आगे बढ़ा। चार आक्रमणकारी सामने की दिशा से भागते हुये आये और हवेली के फाटक में घुसने को हुये। सनेही ने बन्दूक़ चलाई। छरें का कारतूस था। दो गिर पड़े। दो पीछे लौट पड़ने को हुये थे कि सनेही ने फिर बन्दूक चलाई। वे दोनों लड़खड़ा कर गिरे। सनेही आगे खिसका और फाटक की एक कोर पर पहुँच गया। हवेली के ऊपर से बन्दूक़ चल रही थी और ज्वाला बराबर बढ़ रही थी। सनेही धीरे धीरे फाटक में से हवेली के आंगन में पेट के बल रेंगते रेंगते पहुँचा : उसे, घायल आक्रमणकारियों का चीत्कार तो नहीं सुनाई पड़ा, पर हवेली में से देशराज की आवाज़ पहिचान में आ गई—'मुझे बचाओ ! मुझे बचाओ !!' कुछ दूरी पर फिर बिगुल का शब्द हुआ और बन्दूकों की बाढ़ दगी। सनेही को हवेली के एक सिरे पर आग के प्रकाश में कोई दिखलाई पड़ा। उसने निशाना बाँधा था कि पीछे से पैरों की आहट मिली। बन्दूक़ चलाई, पर हाथ हिल गया और निशाना चूक गया। पैरों की आहट लौट गई। 'धायं' ! हवेली के उस सिरे से हुआ और सनेही के मुंह से आह निकली। बन्दूक हाथ से छूट कर गिर पड़ी। वह छटपटाने लगा।

हवेली के बाहर बन्दूकों पर बन्दूकें चलीं। गोलियाँ हवेली पर पड़ रही थीं जैसे हवेली की तरफ़ घेरा बढ़ता चला आ रहा हो। हवेली के उस सिरे से भी बाढ़ें दग रही थीं। थोड़ी देर बाद गांव से बाहर बन्दूकों के चलने का शब्द हुआ और क्षण क्षण में दूर होता चला गया।

यकायक हवेली के सिरे से चलने वाली बन्दूक का चलना बन्द हो गया और बन्दूक आँगन में आ गिरी।

'वह मारा है !' मार्ग से कोई बोला।

फिर बन्दूकों का चलना बन्द हो गया। पुलिस के सिपाही बन्दूकें ताने हुये हवेली के आँगन में आ गये। जो चार घायल फाटक के बाहर पड़े कराह रहे थे उनको कुछ सिपाही भीतर घसीट लाये। हथियार उनके पहले ही कब्जे में कर लिये गये थे।

सिपाहियों ने आग के उजाले में देखा कि सनेही का हाथ छाती पर है और खून की धार बह रही है। उसे उठा कर चबूतरे पर लिटा दिया और हवेली के दरवाजे की बाहरी साँकल खोल दी जो आक्रमणकारियों ने चढ़ा दी थी। उसी समय सनेही के घर की दिशा से टहल और उसके कुछ साथी आ गये। सनेही की दशा देखकर वह चीख कर गिर पड़ा—"दादा ! दादा !!"

किवाड़ खोलकर देशराज निकल आया। उसकी बुरी हालत थी। लोग हवेली की आग को बुझाने पर जुट पड़े। बनमाली भी आ गया और आग बुझाने में लग गया। जो लोग हवेली के उस सिरे पर चढ़ कर आग बुझा रहे थे, जहाँ से एक आक्रमणकारी कुछ समय पहले बन्दूक दाग रहा था, वे यकायक चिल्लाये—'यहां एक घायल जल रहा है !' उसे खींच कर निकाला गया और आँगन में लाया गया। उसके एक कन्धे को फोड़ कर गोली पार हो गई थी और टांगें अधजली हो गई थी, परन्तु उसमें अभी दम बाकी थी। आग का नियन्त्रण हो गया। बिलकुल नहीं बुझी थी, परन्तु उजेला नहीं रहा था। लालटैनें आ गईं।

लटोरेसिंह और उसके कुछ संगियों के साथ राजदुलारी आ गई। सनेही के पैरों पर गिर कर रोने लगी। टहल को चेत आ गया। सिसक कर बोला,—'भावी मां ! मेरी माँ !!'

लटोरेसिंह ने कहा, 'पाँच को मार दिया, पर बाकी साला निकल भागा।'

सनेही को ध्यान के साथ देखा गया।

टहल चिल्लाया,—'भावी, दादा को बचाओ! रोओ मत। साँस ले रहे हैं। दवा का बन्दोबस्त करो। राजदुलारी, जनक और कुछ बन्दूक वालों के साथ घर चली गई और मरहमपट्टी और दवायें लेकर आ गई। उसी ने उपचार किया।

× × ×

प्रातःकाल के पहले ही हवेली के आंगन में बहुत से लोग आ गये। घाटीवाली और हरको राजदुलारी के पास पहुँच गईं और रो पड़ीं। सनेही की गदेली के पीछे गोली पड़कर पार हो गई थी। छाती पर और उसके अन्य अङ्गों पर जो रक्त फैला था वह गदेली का ही था। राजदुलारी आँखें मूदे हुये, होठों से कुछ बिरबिराती हुई, चुप बैठी थी।

'ओं ''आ न ए तु म नः पु नः' सनेही के मुंह से धीरे धीरे निकला। राजदुलारी ने ऊपर की ओर अपने हाथ बाँधकर आँखें खोलीं। आँसुओं की धार बह पड़ी। हरको और घाटीवाली का रोना बन्द हो गया और वे भी हाथ जोड़कर किसी से कुछ प्रार्थना कर उठीं।

पुलिस के सिपाहियों की आंखों में आँसू आ गये। सनेही को होश आ रहा था।

'डॉक्टर साहब बच गया। भगवान की मर्ज़ी,' लटोरेसिंह ने कहा।

फिर और प्रकाश हुआ। वह अधजला घायल अन्त के क्षणों में था। उसे कोई नहीं पहिचान पा रहा था। देशराज हिम्मत करके पास गया।

'कालीसिंह है यह! कालीसिंह,'—वह यकायक बोला और फिर सम्भाला,—'या शायद कोई और हो। पर इसके माथे से लेकर कान तक घाव का जो चिह्न है उससे जान पड़ता है कि बागुर्दन में खपड़ों की चोट खाया वही होगा यह!'

लोगों ने उसकी असङ्गत बात पर ध्यान नहीं दिया। सबने विश्वास कर लिया कि कालीसिंह ही है, वही इतना भयंकर दुस्साहस कर सकता था।

'बाघराज का बदला चुकाने मेरे ऊपर कालीसिंह ही आ सकता था।' देशराज बोला।

'और मुझसे और बटोले से बदला लेने के लिये भी।' सनेही की ओर देखते हुये टहल ने कहा।

पुलिस ने तुरन्त सदर के लिये रिपोर्ट भेजी।

'बांगुर्दन से समाचार आया कि टहल के मकान के पास दो डाकू मरे पड़े हैं।'

'कुछ को हमारा ज्वानों ने मार बिछाया है, देखता है, वे कहां गये।' कहता हुआ लटोरेसिंह चला गया।

चार घायल डाकू आँगन में सिसक रहे थे।

'इनको और खतम कर दें तो पूरे एक दर्जन डाकुओं के मार मिटाने का पुण्य मिल जायगा।' जनक चिल्लाया।

सनेही को चेत आ गया था। कराहते हुये स्वर में बोला,—'घायलों को मत मारो। पानी···पानी···पानी।'

सनेही को पानी पिलाया गया।

पानी पीने पर उसके मुंह से निकला,—'घायलों की म····रह···· म···'····और वह फिर अचेत हो गया।

राजदुलारी ने फिर आंखें मूंद कर हाथ जोड़े।

पुलिस ने जनक और उसके मित्रों को जो घायल डाकुओं को मार डालना चाहते थे, मना कर दिया,—'कानून के खिलाफ़ है।'

उस अधजले घायल का देहान्त हो गया। हवेली की आग बुझा ली गई।

सनेही को फिर चेत आने लगा। उसे उठा कर हवेली के भीतर लिटा दिया गया।

सनेही ने मुर्झाई हुई सी राजदुलारी से कहा, 'घायलों की पट्टी,' और कराहा ।

'करती हूँ' कहकर राजदुलारी चली गई और बहुत शीघ्र लौट आई। उनकी मरहम पट्टी करके सनेही के पास जा बैठी। घाटीवाली और हरको वहीं आ गईं। सनेही पूरे चेत में आ गया।

× × ×

दस ग्यारह बजे के लगभग सदर से सिविलसर्जन, पुलिस और मैजिस्ट्रेट आ गये।

सनेही कराह रहा था। सिविलसर्जन ने सुई द्वारा दवा दी और पट्टी बदलकर मरहमपट्टी की। सनेही को नींद आने लगी।

सिविलसर्जन ने कहा, 'इनके लिये कोई खतरा नहीं, आप लोग ज़रा भी चिन्ता न करें। थोड़ी देर में इन्हें सदर अस्पताल ले जाऊँगा।'

फिर बोला, 'डॉक्टर सनेहीलाल हमारे पेशे के गौरव और समाज के फूल हैं।'

पुलिस ने घटनास्थल का निरीक्षण किया। देशराज ने पिछले वर्ष जो लकड़ी कटवाई थी उसमें के दो तीन शहतीर आँगन के एक कोने में पड़े रह गये थे। वे हवेली की दीवार से टिके पाये गये जैसे नसेनी बनाई गई हो। इन्हीं की सहायता से डाकू हवेली पर चढ़े होंगे, पुलिस ने निष्कर्ष निकाला।

पुलिस अफ़सर कालीसिंह का फोटो साथ ले आया था जो उसके दफ्तर में था। उसकी आकृति से फ़ोटो को मिलाकर बोला, 'यह कालीसिंह ही है। कोई शक़ नहीं।'

मैजिस्ट्रेट ने कहा, 'एक भयंकर गिरोह खतम हुआ। तीन मारे गये, चार घायल हुये जो मरे के बराबर हैं, क्योंकि बच जाने पर भी फांसी या जनम कैद होगी। जो भाग निकले हैं, वे कभी सिर नहीं उठायंग,—किसी दिन पकड़े भी जावें। घायल हो गये होंगे, तो सड़ सड़ कर मरेंगे।'

जाब्ते की खानापूरी करने के बाद लाशों और घायलों को लेकर एक पुलिस लॉरी सदर चली गई। अन्य मोटरों से सनेही, राजदुलारी, घाटीवाली और टहल गये।

गांव वाले सनेही और रक्षक दल की सूरवीरी पर मुग्ध हो गये और सनेही के शीघ्र स्वस्थ हो जाने के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगे।

× × ×

जब सब चले गये और केवल कुन्जीलाल कारिन्दा रह गया, देशराज को ऐसा लगा जैसे हवेली खाने के लिये मुँह बाये हो, फाटक टूटा हुआ, हवेली का एक सिरा जला। ऊपर की ओर आंखें कीं, बरगद के पेड़ पर अमरबेल छाई हुई थी। गर्दन नीची कर ली। सरूप चेहरे की बड़ी-बड़ी आँखों के नीचे स्याही ज्यादा गहरी हो गई थी, गड्ढे ऐसे कि मानो एक हफ्ते से न सोया हो।

कारिन्दे ने कहा, 'मालिक, भगवान की कृपा से फिर सब ज्यों का त्यों हो जायगा। बड़े भाग्य की बात तो यह रही कि आपका बाल बांका नहीं हुआ।'

'हूँ।' देशराज की आँखों के सामने गत हानियों के तांतों के चित्र खिच गये—वे पेटियाँ गईं, दो अपने इन्हीं हाथों सौंप आया था, पच्चीस हजार छिन गये, अञ्जना का ज़ेवर लुट गया, हथियार ज़ब्त और पुलिस निगरानी ऊपर से! अब और क्या होगा? इससे तो कालीसिंह को पहले ही पकड़ा देता तो पाँच हज़ार रुपये इनाम के मिल जाते, हथियार बने रहते और यह सब कुछ न होता। परन्तु होनहार - अब?

कुछ क्षण बाद कारिन्दा बोला, 'मालिक अपना फ़ार्म बहुत बड़ा है, उस पर चित्त देंगे। सब कुछ बन जायगा।'

'हां ·· आं ठीक है।'

और अञ्जना? फिर आ जायगी। बाघराज के साथ उसने क्या कोरा अभिनय किया था? ऐसा अभिनय पहले तो कभी नहीं किया,

रुपये कमाने के लिये ? बाघराज के पास से जब मेरे सामने आई तब उसके चेहरे पर घबराहट की एक भी शिकन न थी। तो मेरे साथ जो कुछ होता रहा है वह भी क्या केवल अभिनय का ताँता ही नहीं था ? रुपये कमाने के लिये ?

उसकी आंख आंगन में पड़े रक्त पर गई। ओफ़ ! ये सब वे थे जो मुझे मिला करते थे !! और मुझे खाक में मिला देने के लिये चढ़ दौड़े !!!'

फाटक से डाकिया आकर एक लिफ़ाफ़ा दे गया। अञ्जना का पत्र था। उसमें लिखा था.—'.....परेशानी की कोई बात नहीं। हिम्मत मत हारना। अपना काम फिर चमकेगा, दिन में उसकी कतर ब्योंत में लगी रहती हूँ, रात में केवल आप ही आप दिखलाई पड़ते हैं,—आपकी वही...अमरबेल।'

देशराज की भौंहें सिकुड़ गईं। चिट्ठी फाड़ कर फेंक दी। काग़ज़ कलम मगवा कर उसने तुरन्त उत्तर लिखा—

'...सिवाय खेती के और कुछ नहीं करूँगा; कुछ कर भी नहीं सकता हूँ। आपका...वही।'

न तो अञ्जना ने अपने पत्र में नाम लिखा था और देशराज ने लिखा।

कारिन्दे से कहा, 'बरगद पर छाई अमरबेल को इसी समय छिन्न-भिन्न करके अलग करवा दो; बरगद की कुछ डालों को तो यह चाट गई है, किसी दिन सारे पेड़ को चाट जावेगी, तब कहीं खुद खतम होगी।'

कारिन्दे ने नौकरों को बुला कर बरगद पर छाई अमरबेल को नष्ट करवा दिया। उसकी समझ में नहीं आया। सोचा दुःख के मारे पागलपन सा सवार हो रहा है।

एक अञ्जना है, एक राजदुलारी ! आकाश पाताल का अन्तर !! देशराज की आंखों में चित्र घूम रहे थे।

कारिन्दे ने डरते डरते कहा, 'मालिक, रात भर के जागे हैं। नहा-धो लें और कुछ खा पीकर सो जावें।'

'हाँ।'

'एक बिनती करूँ ?'

'हूँ।'

'जल्दी में कोई काम न करियेगा। हुकुम हो तो फ़ार्म पर चला जाऊँ ? मशीनें चलवानी हैं।'

'हाँ जाओ।'

'और एक बिनती : फ़ार्म को सहकारी समिति में मत लगाइयेगा। कुछ ठीक नहीं कि सहकारी का कब क्या हो जाय। अपनी सो अपनी—'

देशराज ने ऊपर की ओर देखा। अमरबेल मिटा दी गई थी। उसे सूनापन मालूम हुआ, मन के भीतर से किसी ने ज़ोर मारा। कारिन्दे को टोक कर बोला,—'ठीक कहते हो। सहकारी को जो खेत दे दिये हैं उतने काफ़ी हैं। फ़ार्म निजी खेती के लिये ही रहेगा।'

× × ×

सनेही के अच्छे होने में थोड़े ही दिन लगे।

सेवा सुश्रूषा प्रचुर मात्रा में की गई थी।

गांव लौटने के पहले सनेही ने टहल से कहा, अब पढ़ोगे वह पुस्तक ?'

राजदुलारी वहीं थी।

'दादा, वह तो क्या, जो कुछ बतलायेंगे सभी पढ़ूँगा और करूँगा।'

'उसकी आलोचना का सार तो मैंने तुम्हें सुनाई ही दिया था ? पढ़ोगे उसे ?'

'मैं तो छुऊँगा भी नहीं।'

'ऐसी आलोचना की एक एक मूर्ति बना कर कॉलेजों में रख दी जाय तो कैसा रहे?—उसकी आकृति खा चबा जाने वाली; कोई चबा जाने को न मिले तो अपना ही हाथ चबा उठे।'

'ग्रन्थकारों का भी कुछ दोष है दादा।'

'ज़रूर है। खास तौर से उनका जो व्यापक घृणा का प्रचार करते करते स्वयम् अपने से घृणा करने लगते होंगे।'

'अब लड़ बैठो तुम दोनो; न लड़ो तो मैं लड़ा दूंगी,' राजदुलारी ने मुस्करा कर कहा।

'मैं आपसे लड़ा करूँगा, भावी, आपसे। न कुछ खिलाओ न पिलाओ!'

'खिलाऊँगी पिलाऊँगी तुम्हें पेट भर, जब हरको भजने लगोगे।'

सनेही ने मुंह फेर लिया।

टहल ने उँगली के संकेत से वर्जित किया।

[६७]

पानी बरसा और बरसता रहा। सनेही इत्यादि घर आ गये। सनेही की गदेली में गोली के छेद का निशान बन गया, पर जैसा कि उसने एक दिन राजदुलारी से कहा था, मन के भीतर के तो बहुत से छेद पुर गये हैं।

कालीसिंह के पकड़ने या मारने पर जो पांच हज़ार रुपया का सरकारी इनाम घोषित था वह सनेही इत्यादि के कहने पर और पदाधिकारियों के न्याय के अनुसार भी, सुहाना और बाँगुर्दन की समितियों को दिया गया। इनाम का रुपया रक्षित कोष में रख दिया गया। लगभग घर-घर बन्दूकों के लाइसैन्स दे दिये गये।

'ये दोनो गाँव जीवट वाले व्यक्तियों के हैं। इनका निर्देशन ठीक-ठीक होता रहे तो अन्य गाँवों के लिये ये आदर्श बन जायेंगे।' पदाधिकारियों के मत में बैठा।

× × ×

सलूनो का दिन था। राखी बँध गई। जवारे निकले। दोनों गाँवों का जलूस बना। बांगुर्दन के तालाब पर जाना था। सनेही उत्साह के साथ जलूस में शामिल हुआ। स्त्रियों में घाटीवाली, हरको और राजदुलारी भी थीं। गायन-वादन के साथ जलूस सुहाना के बाहर होने को हुआ।

टहल ने एक जगह कूड़ा-कचड़ा पड़ा देखकर कहा, 'हम अपनी ग़रीबी को रोया करते हैं। पर इस कूड़े-कचड़े को हटाने और बीमारियों की रोक के लिये सरकारी सहायता लेते हुये कौन सा खर्च होता है?'

जिन लोगों ने अपने बेड़ों के खाद ढेर सार्वजनिक गढ़े में डाल दिये थे उन्होंने उन ढेरों की भूमि पर लौकी, तोरई इत्यादि बो दी थीं। तोरई की बेलों पर सोने के रङ्ग वाले फूल छा गये थे। सनेही को भासा कि सोना चला जाय तो रंज दे जाता है और ये सुनहले फूल चले जाने के बाद पाचक-पोषक फल देते हैं—ये उस सोने से बड़े हैं।

जलूस बांगुर्दन में पहुँचा।

गायन-वादन के बीच-बीच में नारे लग रहे थे—

'जीवन के स्तर को ऊँचा उठावेंगे।'

'हल की नोक से धरती की छाती पर अपनी उपज का हुकम लिख दो!'

'हम सदा कुछ न कुछ काम करते रहेंगे!'

'समानी युषा सह वो अन्न भागा—अन्न जल के साधनों पर हमारा समान अधिकार हो!'

'सह नौ भुनक्तु.—साथ मिलकर भोगें!'

'यह जीवन हमारा निरन्तर सफर है, जो मञ्जिल पै पहुँचे तो मञ्जिल बढा दी!'

जलूस में बनमाली, विक्रम और दमरू भी थे—छिपे लुके-लुके से, शरमाये-शरमाये से। होठ हिला रहे थे, कहते कुछ न थे।

जलूस बांगुर्दन के बाहर हो गया। बदली छाई हुई थी। चारों तरफ़ ऐसी हरियाली जैसे ज़िमीन को नई जवानी मिल गई हो। जलूस उमङ्गों पर था। थोड़ी देर बाद तालाब पर पहुँच गया। मरम्मत किया तालाब जल से भर गया था।

प्राचीन खंडहलों की मूर्तियां मुस्कराती लग रही थीं।

कुछ लोग पूजा करने लगे, कोई भुँजरियां खोंटने लगे। बातें भी चल रही थीं। मन्टू चुप था। कोई नारियल फोड़ने लगा, कोई कुछ करने लगा, कोई कुछ। देशराज के मन में उठा– 'ये सब खेत, तालाब मेरे थे और यह सारी रय्यत भी।,' मुँह से आह निकली।

सनेही टहल के पास जा खड़ा हुआ। जनक उसके निकट था। ज़रा हट कर घाटीवाली के साथ हरको थी।

'बहुत समय से एक बात मन में चक्कर काट रही थी,'—सनेही ने टहल से कहा,—'आज पक्की हो गई। अध्यात्म के विकास के लिये विज्ञान की सहायता अत्यन्त आवश्यक है, अनिवार्य है।'

टहल उमङ्ग के साथ बोला, 'और विज्ञान को अध्यात्म के निर्देशन की।'

जनक ने एक ही क्षण में सनेही और टहल की ओर देखा और उन दोनों के वाक्यों को मन ही मन रटने लगा—याद हो जायेंगे तो किसी दिन समझने की भी कोशिश करूँगा।

घाटीवाली के ज़रा निकट जाकर सनेही ने मोदमग्न जनता पर आंख पसारी और सबका ध्यान आकृष्ट किया—'अब एक बड़ा काम!'

लोग उसके निकट आ गये।

सनेही ने हरको का हाथ पकड़ कर टहल के हाथ में दे दिया।

'सब लोग कहो,—आ न एतु मनः पुनः—मन की खोई हुई शक्ति और शुचिता, उसकी तेजस्विता और प्रेरणा, हमारे पास फिर लौटकर आवें।'

लोगों ने दुहराया। टहल ने भी। पर उसे बोलते समय जान पड़ा कि उसके कानों में किसी दूसरे के शब्द पड़ रहे हैं। अपने और हरको के हाथों को जोड़ते समय उसे सनेही की गदेली के छेद में ऐसा लगा जैसे वहाँ कोई प्रकाश पुञ्ज हो!

सनेही ने गाया—

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरवर गहन;
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।

और फिर सब एक साथ बोले—

'आ न एतु मनः पुनः'

❀ इति ❀

हमारे प्रकाशन

श्री वृन्दावनलाल वर्मा कृत

उपन्यास

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	६)
मृगनयनी	५)
कचनार	४॥)
अचल मेरा कोई	३॥।)
सोना	३)
मुसाहिबजू	१॥)
लगन	१।)
प्रेम की भेंट	१।)

नाटक

झांसी की रानी	२)
हंस–मयूर	२।)
राखी की लाज	१।)
पूर्व की ओर	२।)
केवट	१।)
खिलौने की खोज	१।)
नीलकंठ	१।)
बीरबल	१।)
कनेर	१)
बांस की फांस	१)
फूलों की बोली	१।)
मंगल सूत्र	१)
काश्मीर का कांटा	१)
लो! भाई पंचो!! लो!!!	।॥)
पीले हाथ	।॥)
जहांदारशाह	।॥)
सगुन	।॥)

कहानी संग्रह

शरणागत	१।)
कलाकार का दण्ड	१।)

अन्य लेखकों द्वारा लिखित

कब्रों की दुनियां में	(कहानी)	१॥।)
इन्सान के रूप	(कहानी)	१।)
नई कहानियां	,,	१॥)
चले चलो	कविता	।॥)
सरसी	,,	२)
विश्व–भारती	,,	१॥)
नारीजीवन चक्र	(निबंध)	१॥)
अगस्त ब्यालीस	,,	५)
महाप्रयाण	,,	२)
रजाकार पतन	,,	१॥)
बापू का नरलोक और देवलोक	,,	॥)

: : श्री वृन्दावनलाल वर्मा–साहित्य के एकमात्र प्रकाशक : :

मयूर–प्रकाशन, झांसी।